THE BOOK WAS DRENCHED

खण्डित भारत

लेखक—

डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

प्रकाशक

प्रथमावृत्ति] १९४६ [मूल्य ८)

विषय-सूची

प्रथम भाग

दो राष्ट्र

द्वितीय भाग

साम्प्रदायिक त्रिभुज

तृतीय भाग

विभाजनकी योजनाएँ

चतुर्थ भाग

अखिल भारतीय मुस्लिम लीगका पाकिस्तानका प्रस्ताव

पञ्चम भाग

मुस्लिम राजोंकी उत्पादक योग्यता

षष्ठ भाग

पाकिस्तानके विकल्प

प्रथम भाग

दो राष्ट्र

१

पाकिस्तानका आधार—दो राष्ट्र

भारतको मुसलमान और गैर-मुसलमान—इन दो पृथक् क्षेत्रोंमें विभाजित करनेका प्रस्ताव, जिसमें प्रत्येक क्षेत्र स्वतन्त्र प्रभु सत्ताके रूपमें रहे, इस सिद्धान्त-पर आधृत है कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक् राष्ट्र हैं। मुसलिम लीगके लाहौरवाले अधिवेशनमें, जिसमें इस प्रकारके विभाजनका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, अध्यक्ष-पदसे श्री मुहम्मद अली जिनाने कहा था कि 'राष्ट्रकी किसी भी परि-भाषाके अनुसार मुसलमान एक राष्ट्र हैं अतः उनका अपना निवास-स्थान, अपना प्रदेश और अपना राज्य होना चाहिए।'* 'यह समझना अत्यन्त कठिन है कि हमारे हिन्दू भाई इसलाम और हिन्दुत्वके वास्तविक रूपको क्यों नहीं समझ पाते। ये दोनों शाब्दिक अर्थमें धर्म नहीं हैं प्रत्युत ये दो पृथक् और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। हिन्दू और मुसलमान कभी एक संयुक्त राष्ट्रके रूपमें रह सकते हैं, यह कोरा स्वप्न है। एक भारतीय राष्ट्रकी यह भ्रामक धारणा बहुत आगे बढ़ चुकी है और यह हमारे अनेक कष्टोंका कारण बन रही है। यदि हमने समयपर इस धारणाको निर्मूल न किया तो यह भारतका सर्वनाश किये बिना न मानेगी। हिन्दुओं और मुसलमानोंके धार्मिक सिद्धान्त, सामाजिक रीतिरिवाज और साहित्य—एक दूसरेसे सर्वथा पृथक् हैं। उनका परस्पर रोटी-

---

* 'रीसेण्ट स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑव मिस्टर जिना', पृष्ठ १५५

बेटीका सम्बन्ध नहीं है और वस्तुतः दोनोंकी परस्पर विरोधी भावनाओंपर आधृत सभ्यताएँ पृथक्-पृथक् हैं। जीवनपर दोनों भिन्न प्रकारसे विचार करते हैं। दोनोंके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोणमें अन्तर है। यह पूर्णतः स्पष्ट है कि हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनोंको पृथक्-पृथक् ऐतिहासिक आधारोंसे प्रेरणा मिलती है। उनकी पुरातन गाथाएँ, उनके वीर और उन वीरोंकी कहानियाँ पृथक्-पृथक् हैं। प्रायः ही एकका वीर दूसरेका शत्रु माना गया है और एककी विजय दूसरेकी पराजय। ऐसे दो राष्ट्रोंको एक राज्यमें गूँथनेका प्रयत्न, जिसमें एक अल्पसंख्यक है दूसरा बहुसंख्यक, अवश्य ही असन्तोष उत्पन्न करेगा और उस शासन-व्यवस्थाका अन्त करके छोड़ेगा जो ऐसा राज चलानेका प्रयत्न करेगी।'*

'एक पञ्जाबी'ने 'कान्फेडरेसी ऑव इण्डिया' नामक पुस्तकमें इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए कहा है कि 'हम अपनी पिछली विवेचनासे इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेसे पृथक् हैं। उनकी सभ्यताएँ वैयक्तिक हैं। उन्होंने एक दूसरेको प्रभावित भले ही किया हो परन्तु वे एक दूसरेको आत्मसात् नही कर सकतीं। उनकी आदतें और रीतिरिवाज, उनकी सामाजिक प्रथाएँ, नैतिक नियम, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विचार, परम्पराएँ, भाषाएँ, साहित्य, कलाकृतियाँ और जीवनका दृष्टिकोण एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न ही नहीं अपितु परस्पर विरोधी हैं। ऐसे विरोधी दृष्टिकोणोंको लेकर एक राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। इन बातोंसे सदैव ही अविश्वास और भ्रम उत्पन्न होता है। दोनों सम्प्रदायोंके बीच मौलिक मतभेद, भूतकालकी स्मृतियाँ और वर्तमानकालकी प्रतिद्वन्द्विताएँ और गत १००० वर्षके भीतर एक दूसरेके प्रति किये गये अन्याय और अपराध—दोनोंके बीच न पट सकनेवाली खाई उत्पन्न करते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इधर कई शताब्दियोंमें दोनोंमें एक ही बात समान रही है और वह है दोनोंपर विदेशी शासनका भार

* 'रीसेण्ट स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑव मिस्टर जिना', पृष्ठ १५३

लदा रहना। जैसे ही वह भार हटा कि दोनों अलग हो जायँगे और दोनोंके मतभेद, जो आज अस्पष्ट हैं, पूर्णतः स्पष्ट होकर चमकने लगेंगे।'*

अलीगढ़के मुहम्मद-अफजल हुसेन कादरी और प्रोफेसर सैयद जफरुल हसन, जिन्होंने कि पुस्तकोंमें भारतके विभाजनकी योजना प्रकाशित की है, 'एक पञ्जाबी' से पीछे नहीं हैं। आप कहते हैं कि '१९३५ के भारत शासन-विधानका मौलिक दोष यह है कि वह इस प्रकट सत्यको स्वीकार नहीं करता कि भारतके मुसलमान हिन्दुओंसे पृथक् राष्ट्र हैं, दोनोंके दृष्टिकोण और विचारोंमें आकाश पातालका अन्तर है और अन्य किसी कथित हिन्दू या अहिन्दू राष्ट्रमें उनका घुलमिल जाना सम्भव नहीं है।' तथा 'हमारा यह निश्चित मत है कि भारतके मुसलमानोंको लगातार और जोरसे इस बातकी माँग करनी चाहिए कि भारतके मुसलमान स्वतः एक राष्ट्र हैं। हिन्दुओं तथा अन्य गैर-मुसलमान दलोंसे उनका राष्ट्रीय अस्तित्व सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः सुडेटां जर्मनों और चेकोंमें जितना पार्थक्य था उससे कहीं अधिक पार्थक्य हिन्दुओं और मुसलमानोंमें है।'

अल हमजाने 'पाकिस्तान—एक राष्ट्र' नामक पुस्तकमें ये बातें दिखायी है—(१) भारत एक देश नहीं है। उसमें कई देश हैं जिनकी मानवीय परिधियोंमें व्यापक अन्तर है, और (२) यहाँके निवासियोंकी नस्ल और संस्कृतिमें इतना अधिक अन्तर है कि दोनोंको ('राष्ट्र' शब्दके वर्तमान राजनीतिक अर्थमें) एक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। उन्हें कई राष्ट्रोंमें विभक्त समझना चाहिए।† यह मतभेद प्रदर्शित करनेमें आप भाव-विभोर होकर कहने लगे हैं कि हिन्दुत्व मानों वर्षासे उद्भूत है और इसलाम मरुभूमिसे!‡ 'पश्चिमोत्तर पार्थक्य सारे भारतमें ऊँटोंके आश्चर्यजनक रीतिसे वितरणद्वारा प्रकट

---

* **एक पञ्जाबी : 'कान्फेडरेसी ऑव इण्डिया', पृष्ठ १५०-'५१**

† **अल हमजा : 'पाकिस्तान—ए नेशन', ,, ७**

‡ **,, वही ,, ४५**

हो रहा है।'* 'भौगोलिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक—सभी दृष्टियोंसे ऊँटोंके साथ हमारा ऐसा बहुमुखी सम्पर्क रहा कि हम स्पष्ट रूपसे उसमें एक सभ्यताका विकास अंकित पाते हैं। ऊँटको हम उस महान ऐतिहासिक प्रगतिका प्रतीक मान सकते हैं जो एक स्वतन्त्र नस्लकी आवश्यकताके कारण दक्षिण-पश्चिमी एशियासे निकलकर सारे विश्वमें छा गयी। आज कई शताब्दियोंके उपरान्त हम दूर दूर देशोंमें अत्यन्त उज्ज्वल रूपमें अरबकी महत्ताको आलोकित देखते हैं और शताब्दियोंके इस प्रदर्शनमें हम आदिसे अन्ततक अरबको तप्त बालुकाकी पृष्ठभूमि-वाले कारवाँको ऊँटकी पीठपर सवार होकर विजय-पथपर बढ़ता हुआ पाते हैं। अरबकी महत्ताके दिन बीत गये किन्तु अपनी शुष्क व्यापकता और अपने निवासियोंकी धार्मिक और सांस्कृतिक समानताके लिए प्रख्यात देशमें ऊँट आज भी मनुष्यका साथी बना हुआ है। ऊँटका देश आज भी तुर्की और ईरानी तलवारों और खञ्जड़ियों, मसजिदों और मुअज्जिनों, बुर्जों और मीनारोंका देश बना हुआ है।'† लेखक ऊँटपर आधृत अपने तर्कके बेतुकेपनको रत्तीभर महसूस नहीं करता और पश्चिमोत्तर प्रदेशके पार्थक्यको अरबके ऊँटोंका सजातीय बताकर सिद्ध करना चाहता है जबकि राजपूताना जैसे भारतके अन्य प्रदेशोंमें भी वैसे ही ऊँट पाये जाते हैं जो 'तलवारों और खञ्जड़ियों, मसजिदों और मुअज्जिनों, बुर्जों और मीनारोंवाले देश नहीं हैं।' इस तर्कको यदि सङ्गत मान लिया जाय तो पूर्वी प्रदेशके पृथक्करणके लिए कोई दलील ही नहीं रह जाती, कारण अपने पशु और वनस्पति-जगत्, शस्यश्यामला भूमि और अत्यधिक वर्षाके कारण वह उष्ण कटिबन्धमें है। इस प्रकार मलाया जैसे उष्ण कटिबन्धवाले देशोंमें कोई भी मुसलमान न होना चाहिए था।

श्री एफ० के० खाँ दुर्रानीने प्रादेशिक विभिन्नता और ऐसी ही अन्य बातोंपर आधृत उत्तर पश्चिमी पाकिस्तानके पक्षमें उपस्थित किये जानेवाले तर्कके

---

* अलहमजा : 'पाकिस्तान—ए नेशन' पृष्ठ ७०

† „ वही, पृष्ठ ७२

लचरपन की उपेक्षा नहीं की है। आप 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान' ('पाकिस्तानका अर्थ') नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि 'सभी मुसलमान, फिर वे चाहे पाकिस्तानमें रहते हों या हिन्दुस्तानमें, एक राष्ट्र हैं और हम पाकिस्तानवासियोंको चाहिए कि हम हिन्दुस्तानमें रहनेवाले सहधर्मियोंको एक ही रक्तमांसका समझें।'* अलहमजाके तर्कोंकी आलोचना करते हुए आप कहते हैं कि "पाकिस्तान ए नेशन' पुस्तकके लेखकका सारा तर्क उस भौगोलिक विशेषतापर आधृत है जो पश्चिमोत्तर प्रान्तों—पञ्जाब, काश्मीर, सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान—को भारतके अन्य प्रान्तोंसे पृथक् करती है। कुछ प्रान्तोंमें अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक वर्षा होती है, कुछ प्रान्तोंका मुख्य खाद्य गेहूँ है और कुछका चावल। मानसूनवाले प्रान्तोंमें वनस्पति, लता और झाड़ियाँ खूब हैं और अन्य प्रान्तोंमें कम। विभिन्न प्रान्तोंके पशुओं और वनस्पतिमें बड़ा अन्तर है। पश्चिमोत्तरके शुष्क प्रदेशोंमें जहाँ ऊँट मिलता है वहाँ दक्षिण और आसाम तथा बङ्गालके तर प्रदेशमें हाथी पाया जाता है। उत्तर-पश्चिमके शुष्क प्रदेशोंमें एक विशेष प्रकारकी नस्ल पायी जाती है जबकि अन्यत्र उससे भिन्न प्रकारकी, उससे कोमल तथा अधिक गहरे रंगवाली नस्ल मिलती है। भारत जैसे विशाल देशके, जिसमें अनेक नस्लोंके लोग निवास करते हैं और जो अनेक अक्षांशों और देशान्तरोंके बीच बसा है तथा जो समुद्र, पर्वत और मरुभूमिके विभिन्न प्रभावोंसे प्रभावित है, निवासियों तथा वनस्पति आदिमें विभिन्नता स्वाभाविक और अनिवार्य है। मुसलिम भारतकी राजनीतिपर वे बातें लागू नहीं होतीं। यदि हम इसी तर्कपर चलेंगे तो हमें पश्चिमोत्तर प्रदेशके निवासियोंको भारतकी ऐसी मुसलिम जनसंख्याके एक बड़े अंशसे हाथ धो लेना पड़ेगा जो पाकिस्तानसे बाहर रहती है और जिसकी वेशभूषा और भोजन हमसे भिन्न है। हमें उसके साथ विदेशी जैसा व्यवहार करना पड़ेगा। जीवन अथवा हितोंमें उनके साथ हमारा कोई साम्य न रहेगा। पाकिस्तानका कोई भी मुसलमान इस स्थितिको स्वीकार

---

* एफ० के० खाँ दुर्रानी : 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान', पृष्ठ ८

न करेगा और पञ्जाबका कोई भी मुसल्मान तो इसपर विचारतक करना पसन्द न करेगा।"*

अपनी बात सिद्ध करनेके लिए अन्य व्यक्तियोंने—जैसे डाक्टर भीमराव अम्बेडकरने अपनी पुस्तक 'थाट्स ऑन पाकिस्तान' में—इतिहासके पृष्ठोंसे वह सामग्री एकत्र की है जिसमें यह दिखाया गया है कि किस भाँति मुसलमान आक्रमणकारियों और शासकोंने हजारों मन्दिर नष्ट कर डाले, मूर्तियोंको भङ्ग कर दिया, मन्दिरोंको मसजिदोंमें परिवर्तित कर दिया अथवा उनकी सामग्रीसे, उनके खम्भों आदिसे अन्यत्र मसजिदोंका निर्माण किया; किस भाँति उन्होंने तलवारका भय दिखाकर इसलाम धर्म कबूल करनेका आदेश दिया और उससे इनकार करनेपर हजारों हिन्दुओंको तलवारके घाट उतार दिया। इसका निष्कर्ष यही निकाला गया है कि हिन्दू न तो इन अत्याचारोंको भूले ही हैं और न कभी भूल ही सकते हैं; ये घटनाएँ कभी उनके स्मृतिपटसे विलीन नहीं हो सकतीं। यह भी बताया गया है कि मसजिदके सम्मुख बाजा अथवा गोहत्या जैसे सामान्य कारणोंको लेकर हिन्दू-मुसलिम दङ्गोंका होना यह बात स्पष्ट कर देता है कि पुरानी शत्रुता अब भी कायम है तथा ब्रिटिश गुलामी और उसका कड़ा शासन भी दोनों सम्प्रदायोंमें मेल करानेमें असमर्थ रहा है।

अब भारतके कुछ भागोंमें मुसलिम राज्यकी स्थापनाके पक्षमें दिये जानेवाले इस तर्कको समझना जरा कठिन है। जो लोग भारतको हिन्दूक्षेत्र और मुसलिम-क्षेत्रमें बाँटनेकी बात कहते हैं उनका अन्ततः उद्देश्य तो यही है।

(क्या इसका तात्पर्य यह है कि इसलामने गैरमुसलमानोंके पवित्र स्थानोंको दूषित करने और कलाकी हत्या करनेकी स्वीकृति दी और उसे प्रोत्साहित किया? यदि उसने इन कृत्योंकी अनुमति दी और उन्हें उचित ठहराया तो क्या अब यह कहा जा सकता है कि उसने अब ऐसे कृत्योंका निषेध कर दिया? इस बातका भी प्रमाण क्या है कि अब इस सम्बन्धमें इसलामके दृष्टिकोणमें अन्तर

---

* एफ० के० खाँ दुर्रानी : 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान' पृष्ठ, १–२

हो गया है ? यदि यह कहा जाय कि इसलामका प्रचार करनेवाले कुछ महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियोंने अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए इस प्रकारके बर्बरतापूर्ण कृत्य किये, जिनका अरबके मसीहासे कोई सम्बन्ध न था तो अब भी इस बातका क्या ठिकाना कि भविष्यमें पुनः इस प्रकारके महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति उत्पन्न होकर इसी प्रकार अपनी शक्तिका उपयोग न करेंगे ? क्या इसका तात्पर्य यह है कि विभाजित क्षेत्रोंमें मुसलिम राज स्थापित हो ताकि उन गैर-मुसलमानोंपर, जो दुर्भाग्यसे उनके क्षेत्रोंमें पड़ जायँ, पुनः पहलेके समान अत्याचार हों और होते रहें ? यदि ऐसा हो तो किसी भी गैरमुसलमानद्वारा ऐसी योजनाके समर्थनकी आशा रखना व्यर्थ है ।

यदि ये सब बातें इसलामके उपदेशके अनुकूल नहीं हैं और वस्तुतः शान्ति और सहनशीलताके उसके मौलिक सिद्धान्तोंके प्रतिकूल हैं तो क्या यह वाञ्छनीय है कि पुराने इतिहासको खोजकर इस प्रकारके उदाहरण मुसलमानों और गैरमुसलमानोंके समक्ष उपस्थित किये जायँ ? क्या यह कार्य पुरानी कटु-स्मृतियोंका स्मरण दिलाये बिना किया जा सकता है ? इन्हें तो सबके हितकी दृष्टिसे भुला डालना ही वाञ्छनीय है । मुसलमानोंको सोचना चाहिए कि यह मुसलमानोंके इतिहासका लज्जाजनक परिच्छेद है जिसमें इसलामके नामपर मुसलमानोंने ऐसे कृत्योंद्वारा अपने धार्मिक सिद्धान्तोंकी हत्या की जिसे इसलाम कभी भी उचित नहीं ठहरा सकता । ऐसे कृत्य उन्होंने अपने स्वार्थ और अधिकार-लोलुपताके वशीभूत होकर किये, इसलामके प्रचारके लिए नहीं; कारण, उसका प्रचार ऐसे कृत्योंसे नहीं अपितु इनसे कहीं शुद्ध, पवित्र और उत्तम कृत्योंसे हो सकता था। गैर-मुसलमानोंको यह इसलिए भुला देना चाहिए कि ऐसे धर्मका कुत्सित रूप दृष्टिसे ओझल हो जाय जो अपने प्रचारके लिए इस प्रकारके अत्याचार कर सकता है । तभी उनमें सद्भाव और प्रेमकी भावनामें वृद्धि होगी ।

यदि मुसलमान और गैरमुसलमाम ऐसे उद्धरणोंके आंशिक निष्कर्षको भी मुसलिम शासनके अंशके रूपमें ग्रहण कर लें तो मुसलमानोंको उन्हीं उपायोंका सहारा लेना होगा जिन उपायोंका सहारा उनके पूर्वजोंने लिया था । जो लोग

ऐसी घटनाओंके उद्धरण और उदाहरण देते हैं वे ही यह भी बतायेंगे कि उस जमानेके मुसलमानोंने तत्कालीन गैरमुसलमानोंकी स्वीकृति और इच्छासे ऐसा अधिकार नहीं प्राप्त किया था। यदि अनेक शताब्दियाँ बीत जानेपर तथा इस बीच विश्वकी स्थितिमें अपार परिवर्तन हो जानेपर, आजकी स्थितिमें भी भारतके मुसलमानोंने भारतके गैरमुसलमानोंके प्रति और गैरमुसलमानोंने मुसलमानोंके प्रति अपना रुख नहीं बदला तो यही आशा रखनेका क्या आधार है कि गैरमुसलमान इस मामलेमें अपना रुख परिवर्तित कर देंगे और पिछला कुछ भी इतिहास रहते हुए भी उन गलतियों तथा अत्याचारोंकी पुनरावृत्ति स्वीकार कर लेंगे जिनकी सारे सभ्य संसारने, जिसमें भारतके मुसलमान भी सम्मिलित हैं, घोर निन्दा की है।

प्रश्न यह है कि ऐसे कार्य इसलाम धर्म और उसके विश्वासका अंग हैं अथवा नहीं। यदि वे उसका अङ्ग हैं तो कोई भी गैर-मुसलमान ऐसी किसी भी बातके लिए राजी नहीं हो सकता जिससे ऐसे आदर्श मुसलिम राजकी, जिसका अन्तिम आदर्श शुद्ध इसलामी ढङ्गपर विश्वक्रान्तिका हो,* स्थापनाद्वारा उपरिलिखित उद्धरणोंमें वर्णित कार्योंकी पुनरावृत्ति हो सके। यदि ये कार्य इसलाम धर्म और विश्वासका अङ्ग नहीं हैं तो इनकी स्मृतिको ताजा करनेसे कोई लाभ नहीं। उनसे गैरमुसलमानोंकी भावना उत्तेजित ही होगी। विभाजनको कोई पसन्द करे अथवा न करे किन्तु इतना तो निश्चित है कि भावनाओंको उत्तेजित करना किसीका उद्देश्य नहीं हो सकता। यदि यह दिखाना इसका उद्देश्य हो कि पिछली घटनाओंके कारण हिन्दू और मुसलमान एक साथ मिलकर नहीं रह सकते और इसलिए उन्हें पृथक् हो ही जाना चाहिए तो यह स्मरण रखना चाहिए कि इसका परिणाम ठीक उल्टा हो सकता है। सम्भव है हिन्दू इसी कारण मुसलिम क्षेत्रके अपने लाखों सहधर्मियोंको उन्हीं पिछली घटनाओंकी पुनरावृत्तिका शिकार होने देनेके लिए छोड़नेको प्रस्तुत न हों। अतः इस प्रश्नपर व्यावहारिक रूपसे विचार करनेके लिए ऐसे उद्धरणोंका कोई मूल्य नहीं।

---

* एक पंजाबी—'कान्फेडरेसी ऑव इण्डिया', पृष्ठ २६९-७०

ऐसे उद्धरणोंकी उपयोगिता अथवा उद्दश्यकी बात छोड़कर यदि हम विचार करें तो हम देखेंगे कि पुरानी अथवा नयी शुष्क पुस्तकोंसे ऐसे उद्धरण एकत्र कर देनेमें विशेष श्रम नहीं करना पड़ता। अबतककी ऐतिहासिक पुस्तकोंमें राजाओं और विजेताओं, उनके सुकृत्यों और कुकृत्यो, उनके युद्धों और विजयों, उनके दरबारों और महलोंकी रङ्गरेलियोंकी ही तो चर्चा भरी पड़ी है। इन पुस्तकोंके लेखकोंने सर्वसाधारणकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। साधारण मनुष्य तो शान्तिपूर्वक खेतोंमें हल अथवा फावड़ा चलाकर अपनी कुटियामें अपने चरखे, हँसिया, हथौड़ा, कुदाल, सुई, डोरा आदि छोटे छोटे गृहशिल्पोंकी सहायतासे अपने पसीनेकी कमाईद्वारा ही अपनी रोजी चलानेमें मस्त और प्रसन्न था। जनताके इतिहासमें पण्डितों और पुजारियों, साधुओं और महात्माओं, विद्वानों और सुधारकों, कवियों और दार्शनिकों, कलाविदों और संगीतज्ञोंके जीवन और कार्योंका जो महत्त्व होता है उसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। इन पुस्तकोंके रचयिताओंके मस्तिष्कपर, जो कि बहुधा ऐसे राजाओं अथवा विजेताओंके दरबारी होते थे, यह भ्रान्त धारणा सवार रहती थी कि किसी मुसलिम सम्राट् अथवा विजेताकी धार्मिकता काफिरोंके प्रति ऐसे कार्योंके वर्णनद्वारा ही सिद्ध की जा सकती है। अधिकतर दरबारी होनेके नाते वे इन राजाओं अथवा विजेताओं और इसलामके प्रति अपना यह कर्तव्य समझते थे कि ऐसी घटनाओंका विस्तारसे वर्णन किया जाय ताकि वे भावी शासकोंके लिए उदाहरणका काम दें और विजित देशके निवासी उन्हें पढ़ पढ़कर भयभीत हों। यह आवश्यक नहीं कि लोग इन घटनाओंको अतिशयोक्तिपूर्ण अथवा असत्य समझकर इनका मूल्य कम आंकें, किन्तु उन्हें केवल स्मरण रखना चाहिए कि केवल ये ही घटनाएँ ऐसी न थीं जिनका विवरण सुरक्षित रखा जाता। यदि इनके साथ-साथ ऐसी घटनाओंका भी विस्तृत विवरण रखा जाता कि किस भाँति सैकड़ों वर्षोंतक हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेका दुःख-सुख बँटाते हुए मिलकर एक साथ रहते थे, किस भाँति साधु और महात्मा उनके रीति-रिवाजों, प्रथाओं, जीवन और जीवनकी अन्य बातोंको प्रभावित करते और विशेष दिशामें

मोड़ते थे, किस भाँति हिन्दुओंके ढङ्गपर ही मुसलमानोंके घरोंमें बच्चोंके जन्मोत्सव और स्त्री-पुरुषोंके विवाहोत्सव मनाये जाते थे, किस भाँति विभिन्न प्रान्तोंमें इन्हीं रीति-रिवाजोंमें हिन्दुओंकी भाँति ही मुसलमानोंके यहाँ भी अन्तर रहता था, किस भाँति मुसलिम फकीर मुसलमान शासकोंको तलवारकी अपेक्षा हिन्दुओंका धर्मपरिवर्तन करानेमें कहीं अधिक समर्थ होते थे—तो वह विवरण मुसलमान शासकों अथवा विजेताओंके जुल्मों और अत्याचारोंके विवरणसे कहीं बड़ा और विस्तृत होता। इस प्रकारके इतिहासकी पृष्ठ-संख्या, उन इतिहासोंके साथ, जिनमेंसे उपर्युक्त ढङ्गके उद्धरण लिये गये हैं और जिनके आधारपर इतिहासकी पाठ्य-पुस्तकें बनी हैं, उसी अनुपातमें रहती जो अनुपात देशकी आम जनताके और राजाओं तथा दरबारियों, उनके सेनापतियों और अधिकारियों, उनके हरमों और महलोंके बीच रहता। उनका अनुपात वही रहता जो शान्ति, सद्भाव, दया, सहृदयता, सहनशीलता और मेलके दिनों और लड़ाई-झगड़ा, मारपीट, दङ्गा, उपद्रव, लूटमार, हत्या, डाका, अग्निकाण्ड आदिके दिनोंमें रहता है। आज भी समाचारपत्रोंमें दङ्गा-फसाद, उपद्रव, लूटमार, लड़ाई-झगड़ा आदिके समाचारोंके लिए जितना स्थान दिया जाता है, वह उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक होता है, जितना शान्ति, सद्भाव और प्रेम आदिके समाचारोंके लिए दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति ५०० वर्ष बाद इन्हीं समाचार-पत्रोंके आधारपर, अथवा इनके उद्धरण देकर कोई इतिहास लिखने बैठे तो वह इनके आधारपर यह बात बड़े मजेमें सिद्ध कर सकता है कि ब्रिटेनके सुशान्तिपूर्ण शासनकालमें भी शायद ही कोई दिन ऐसा रहा हो जिस दिन भारतमें शान्ति रही हो।

अतः उपयुक्त सामग्रीके अभावमें ऐसी पूर्ण और विस्तृत पुस्तक लिखना सरल नहीं जिसमें सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति, जीवनपर उसकी गम्भीर और अमिट छाप और जनतापर उसके अस्पष्ट प्रभावोंकी पूरी चर्चा हो।

———

२

राष्ट्रीयता और राज

चूँकि सीमाप्रान्त और पूरबी भारतमें पृथक् और स्वतन्त्र मुसलमानी राजोंकी स्थापनाकी माँग इस सिद्धान्तके आधारपर की जाती है कि मुसलमानोंका एक पृथक्—भारत कही जानेवाली भौगोलिक सत्ताके हिन्दू तथा अन्य निवासियोंसे भिन्न—राष्ट्र है, इसलिए 'राष्ट्र' का अर्थ साफ-साफ समझ लेना जरूरी है। भौगोलिक दृष्टिसे भारत एक है–इस तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता। कारण, मनुष्य भूगोलमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। श्री एफ० के० खाँ दुर्रानीने स्पष्ट ही कहा भी है—'इसके विपरीत, मैं डाक्टर बेनीप्रसादके इस कथनसे सहमत हूँ कि संसारमें ऐसा कोई भी देश नहीं जिसे समुद्र और पहाड़ोंके कारण भारत-जैसा अखण्ड-रूप प्राप्त हो। जाति, जलवायु और धरातलके रूपोंमें इतनी विभिन्नता होते हुए भी सुलेमान-श्रेणीसे लेकर आसामकी पहाड़ियों-तक और हिमालयसे लेकर समुद्रतक भारत एक ही भौगोलिक इकाई है।'*

तब प्रश्न यह है कि राष्ट्र है क्या? राष्ट्रके उपकरण क्या हैं? विभाजन-योजनाके समर्थकोंने इस प्रश्नपर प्रकाश डाला और उत्तर दिया है, साथ ही अपने उत्तरके समर्थनमें विद्वान् लेखकोंके मत भी उद्धृत किये हैं। श्री दुर्रानीने इस विषयपर विस्तारके साथ विचार किया है, इसलिए उनके निकाले हुए कुछ निष्कर्षोंका यहाँ उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा—(१) "भौगोलिक दृष्टिसे भारत एक देश होते हुए भी इसके अधिवासियोंमें विभिन्नता है, और राजों तथा राष्ट्रोंके निर्माणमें विशेषता अधिवासियोंकी ही होती है, भूगोलकी नहीं।··· रेननके शब्दोंमें 'नदियोंके मार्ग और पहाड़ोंकी दिशाएँ सजीव भावनाको वशी-भूत नहीं कर सकतीं।···भूभाग केवल धरातल और युद्ध एवं कार्यके लिए क्षेत्र प्रदान कर सकता है, भावना तो मनुष्य ही प्रदान कर सकता है।

*एफ० के० खाँ दुर्रानी : 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान', पृष्ठ २

जनता कही जानेवाली पवित्र वस्तुके निर्माणमें मनुष्य ही सब कुछ है; अन्य कोई भौतिक पदार्थ इस कार्यको सम्पन्न नहीं कर सकता।' (२) वस्तुतः जाति भी भूगोलकी ही तरह राष्ट्रोंके निर्माणके पक्ष या विपक्षमें कोई निर्णायक हेतु नहीं है। (३) हिन्दू नेता गत दो दशकोंसे इस मतका प्रचार करते आ रहे हैं कि धर्म (मजहब) को राजनीतिके साथ नहीं मिलाना चाहिए; केवल राजनीतिके आधारपर राष्ट्रका निर्माण होना चाहिए। क्या केवल राजनीतिके आधारपर राष्ट्रका सृजन सम्भव है? राजशास्त्रियोंके मतसे केवल विशुद्ध राजनीतिक बन्धन राष्ट्रके निर्माणमें समर्थ नहीं हुआ करते।* अपने वादके समर्थनमें उन्होंने लार्ड ब्राइस और सिजविकका मत भी दिया है। सिजविकका कहना है—'यदि किसी राजनीतिक समाजके सदस्योंमें एक ही सरकारके आज्ञानुवर्ती होनेके अतिरिक्त उन्हें पारस्परिक ऐक्यके सूत्रमें बाँधनेके निमित्त और कोई चेतना विद्यमान न हो तो उस समाजकी स्थिति सन्तोषजनक तो होगी नहीं, उसका स्थायित्व भी अपेक्षाकृत कम ही होगा। ऐसे समाजमें समय समयपर सम्भावित बाहरी युद्धों और भीतरी असन्तोषके कारण होनेवाले विघटनकारी आघातोंका सामना करनेके लिए आवश्यक सङ्गठन शक्तिका प्रायः अभाव ही होगा। फलतः हमें मानना पड़ता है कि राजके सदस्योंको परस्पर आबद्ध रखनेके लिए कुछ और बन्धनोंका होना आवश्यक है जो 'राष्ट्र' में सन्निहित हैं।'† सिजविक आगे कहता है 'जो राज्य राष्ट्र भी है उसके रूपकी आधुनिक कल्पनाके लिए जो तत्त्व वस्तुतः अनिवार्य रूपसे आवश्यक है वह यह है कि एक ही सरकारके अधीन होनेका जो लाभ है उसके अलावा राजके व्यक्तियोंमें अपनापन, एक ही शरीरीके अङ्ग होनेकी चेतना, विद्यमान हो जिससे युद्ध या क्रान्तिके कारण उनकी सरकारका अन्त हो जानेपर भी उनमें परस्पर आबद्ध रहनेकी प्रवृत्ति बनी रहे। इस चेतनाके विद्यमान रहनेपर ही उनका समुदाय

---

* एफ॰ के॰ खाँ दुर्रानी : 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान', पृष्ठ ४–६

† ,, वही ,,

राष्ट्रका रूप ग्रहण कर सकता है फिर चाहे और तत्व भले ही वर्तमान न हों।'* लार्ड ब्राइसकी व्याख्याके अनुसार 'राष्ट्र ऐसे मनुष्योंका समुदाय है जो किन्हीं भावनाओंसे प्रेरित होकर परस्पर आकृष्ट और आबद्ध हों। इन भावनाओंमें जाति एवं धर्मगत भावनाएँ प्रधान हैं, पर इनके साथ ही एक सामुदायिक भावना भी है जो सामान्य रूपसे एक ही भाषाके प्रयोग, साहित्यपर स्वत्व, अतीतकालमें सम्मिलित रूपसे सम्पादित कार्यों या कष्टसहनकी स्मृति, आचार-विचारोंकी एक-रूपता तथा एक ही जैसे आदर्शों एवं महत्वाकांक्षाओंके कारण उत्पन्न होती है। कभी तो परस्पर आबद्ध रखनेवाली ये सभी भावनाएँ विद्यमान रहती हैं और कभी दो-एकका अभाव भी देख पड़ता है। इन कड़ियोंकी संख्या जितनी ही अधिक होगी ऐक्यकी भावना भी उतनी ही अधिक मात्रामें पायी जायगी। फिर भी भावनाकी प्रगाढ़ताकी कसौटी कड़ियोंकी संख्या नहीं बल्कि प्रत्येक कड़ीकी दृढ़ता है।'† कुछ लेखकोंका मत उद्धृत करनेके अनन्तर श्री दुर्रानी इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि 'वस्तुतः राष्ट्रीयता केवल चेतनाका विषय है, मानस-की एक विशेष अवस्था मात्र है।'‡ उन्होंने डाक्टर अम्बेडकरका मत भी दिया है जो उनके इस मतका समर्थक है—'यह श्रेणीगत चेतनाकी एक अनुभूति है जो एक ओर तो उन व्यक्तियोंको जिनमें यह इतनी प्रगाढ़ होती है कि आर्थिक सङ्घर्षों या समाजगत उच्चता नीचताके कारण उत्पन्न होनेवाले भेदभावोंको दबा-कर एक सूत्रमें बाँधे रखती है और दूसरी ओर, उनको ऐसे लोगोंसे पृथक् कर देती है जो उस श्रेणीके नहीं हैं।' × इसलिए श्री दुर्रानी यह अन्तिम परिणाम निकालते हैं कि (४) हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच दलगत अथवा श्रेणीगत चेतनाका सर्वथा अभाव है। उनमें आपसमें न तो खान-पान हो सकता है और

---

* एफ० के० खाँ दुर्रानी : 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान', पृष्ठ ९

† ,, वही पृष्ठ ८

‡ ,, वही पृष्ठ ११

× ,, वही पृष्ठ १२

न शादी-ब्याह। एकका भोजन दूसरेके लिए सर्वथा अग्राह्य होता है और मुसलमानसे छू जानेसे हिन्दू अपवित्र हो जाता है। उनमें ऐसा कोई भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं है जो सामान्य रूपसे दलगत चेतनाका उत्पादक हेतु बन सके। ऐसी स्थितिमें दोनों दलोंका मिलकर एक संयुक्त और अखण्ड रूपमें परिणत होना मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे वस्तुतः असम्भव ही है।"*

तुलनात्मक दृष्टिसे राष्ट्रीयताकी यह कल्पना आधुनिक है और हालमें ही, दो या अधिकसे अधिक तीन शताब्दी पूर्व, इसका इस रूपमें विकास हुआ है। राष्ट्रकी संज्ञा प्राप्त करनेवाले दलोंमें लार्ड ब्राइस या प्रोफेसर सिजविक-द्वारा उल्लिखित तत्व अल्पाधिक मात्रामें पाये तो जाते हैं, पर प्रत्येक तत्वके सम्बन्धमें यह विचार करना कि वह वर्तमान है या नहीं और यदि है तो किस मात्रामें, और फिर इस परीक्षाके आधारपर यह निश्चय करना कि अमुक दल राष्ट्र कहला सकता है, ठीक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः राष्ट्रीयताका निश्चय तो परस्पर घात-प्रतिघात करनेवाले इन विभिन्न तत्वोंके समवाय या योगफल और उस ऐतिहासिक स्थितिके आधारपर ही किया जा सकता है जिसमें यह घात-प्रतिघातकी क्रिया सम्पन्न हुई। जैसा कि स्टालिनने निर्देश किया है, 'मूलतः राष्ट्र मनुष्योंका एक समुदाय, निश्चित समुदाय है' पर उनका 'एक जाति या एक श्रेणी' का होना आवश्यक नहीं। यह समुदाय ऐसा भी नहीं होता जो आकस्मिक कारणोंसे या अत्यल्प कालके लिए बना हुआ हो, बल्कि स्थायी लोक-समुदाय हो।' सर्वसामान्य भाषा राष्ट्रकी एक परिचायक विशेषता है। इसी प्रकारकी दूसरी विशेषता सर्वसामान्य निवास-स्थल है। समवेत आर्थिक जीवन, आर्थिक सम्बन्ध, भी एक अन्य विशेषता है। इन विशेषताओंसे भिन्न राष्ट्रमें एक अपनी विशेष आध्यात्मिक प्रवृत्ति, अपनी विशेष मनोरचना—दूसरे शब्दोंमें, राष्ट्रीय चिह्न होता है जो भिन्न संस्कृतिका स्पष्ट परिचायक होता है। स्टालिनके अनुसार 'राष्ट्र वह लोक-समुदाय है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे विकसित और स्थायी

---

* एफ० के० खाँ दुर्रानी : 'दि मीनिंग ऑव पाकिस्तान', पृष्ठ १३

होनेके साथ सर्व-सामान्य भाषा, भूभाग, आर्थिक जीवन और संस्कृतिमें परिलक्षित होनेवाली विशेष मनोरचनासे युक्त हो ।'*

'राज' और 'राष्ट्र'का अन्तर भी हमें स्पष्ट कर लेना चाहिए। ये दोनों सर्वदा सहव्यापी नहीं हुआ करते। एक ही राजमें कई राष्ट्रोंके अस्तित्वके ज्वलन्त उदाहरण भूतकालमें भी मिले हैं और वर्तमान कालमें भी देख पड़ते हैं। कनाडा राजमें अंग्रेज और फरासीसी दो विभिन्न राष्ट्रीय दल हैं। दक्षिण अफ्रिकामें अंग्रेजों और बोअरोंने भीषण रक्तपातके बाद आपसके समझौतेसे एक राजकी स्थापना की। संयुक्त राज अमेरिकामें विभिन्न राष्ट्रीयताके लोग एक राजके सदस्यके रूपमें आबाद हो गये हैं। रूसके सोवियत जनतन्त्रमें कई राष्ट्रीयताएँ मिली हुई हैं जिन्हें विधानद्वारा स्वशासन और पृथक् होनेका अधिकार प्राप्त है। स्वशासनाधिकार तो यहाँतक व्यापक है कि वे अपनी-अपनी सेना रख सकती हैं, विदेशी राजोंसे सीधे सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं, उनके साथ समझौता कर सकती हैं और दूतादि भी रख सकती हैं। स्विट्जरलैण्डके अधिवासियोंका उदाहरण तो अतिप्रसिद्ध है ही। राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे उनका सम्बन्ध फरासीसी, जर्मन और इटालियन तीनों राष्ट्रोंसे है जिनसे वे परिवेष्ठित हैं, फिर भी वे सबके सब एक ही राजमें हैं। सी० ए० मेकार्टनीने 'नेशनल स्टेट्स एण्ड नेशनल माइनारिटीज' नामक पुस्तकमें लिखा है कि 'यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि 'राष्ट्रीयता' शब्दसे इन दोनों भावोंमेंसे किसी एकका निर्देश होता है जो मूलतः और प्रकृतितः तो सर्वथा भिन्न हैं पर व्यवहारमें प्रायः एक दूसरेके लिए काम दे देते हैं।' यह खेदजनक बात है कि इंग्लैण्डकी ऐतिहासिक प्रगति कुछ ऐसे क्रमसे हुई है कि उस देशमें दोनों एक दूसरेके पर्याय-से हो गये हैं, और अंग्रेजी भाषा अपने प्रयोक्ताओंके फूहड़ यथार्थवादका प्रतिबिम्बन करती हुई दोनोंका काम एक ही शब्दसे चलाया करती है, फिर भी राष्ट्रके प्रति आत्मीयताकी अनुभूतिकी द्योतक 'राष्ट्रीयता' राष्ट्रकी सदस्यताकी द्योतक

* 'मार्क्सिज्म ऐण्ड दि क्वेश्चन ऑव नेशनलिटीज', पृष्ठ ६

'राष्ट्रीयता'से मूलतः भिन्न है। इन दोनोंके उत्पादक हेतु भी भिन्न-भिन्न हैं और विभिन्न वस्तुओंकी ओर उनका नियोजित किया जाना सर्वथा सम्भव है।

पहली, जिसे हम सुविधाके विचारसे 'व्यक्तिगत राष्ट्रीयताका भाव' कह सकते हैं, व्यक्तिगत विशेषताओंपर आश्रित है, जो प्रायः परम्परा-प्राप्त और साधारणतः वस्तुपरक होती हैं। व्यक्तिमें पायी जानेवाली ये विशेषताएँ उसके निवासस्थानसे, चाहे वहाँके बहुसंख्यक निवासियोंमें वे पायी जाती हों या नहीं, सर्वथा स्वतन्त्र होती हैं; वहाँके राजनीतिक शासनसे भी, चाहे उसके अधिकारि-वर्गमें ये विद्यमान हों या न हों, इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इन विशेष-ताओंसे युक्त व्यक्तियोंका समुदाय ही राष्ट्रका रूप ग्रहण करता है*। जिन विशेषताओंपर यह चेतना आधृत होती है उनमें परस्पर बड़ी भिन्नता होती है, पर मोटे रूपमें वे 'लघु त्रिगुट सन्धियाँ : जाति, भाषा और धर्म'की परिधिमें आ जाती हैं। हम फिर भी कहेंगे कि वे राजनीतिक भावोंसे सर्वथा शून्य होती हैं। आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, ब्राजिल या होनोलुलूमें रहनेवाले जर्मनका प्रत्येक अंश बरलिन-निवासीकी तरह ही जर्मन होता है।

बुनियाद और सच्चे प्रयोजनकी दृष्टिसे राज इससे (राष्ट्रसे) सर्वथा भिन्न है। राज वह साधन है जिसके द्वारा बहुसंख्यक लोगोंका कार्य-व्यापार सञ्चालित और (साधारणतः) रक्षित होता है। जो लोग सामूहिक रूपसे राजका निर्माण करते हैं उनका समूह भी इंग्लैण्डमें उसी 'राष्ट्र' संज्ञासे निर्दिष्ट होता है जो उससे नितान्त भिन्न प्राकृतिक इकाईके लिए प्रयुक्त होता है, जिस-पर ऊपर विचार किया गया है। किसी कार्यको सर्वसामान्य मानने और इस प्रकार उसे राजके नियन्त्रणका विषय समझनेकी जो सीमा है उसमें भी विभिन्न समयों और देशोंमें अन्तर हो जाया करता है। किसी-किसी परिस्थितिमें तो यह रक्षा-विषयसे अधिक नहीं बढ़ती, और किसीमें विशुद्ध निजी बातोंको छोड़कर जीवनके अधिकांश पहलू इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। ध्यान देनेकी

---

*सी० ए० मेकार्टनी : 'नेशनल स्टेट्स एण्ड नेशनल मॉइनारिटीज'(१९३४)पृष्ठ६

बात यह है कि उन सांस्कृतिक विशेषताओंपर जो व्यक्तिगत राष्ट्रीयताकी सूचक हैं, अधिकांश राजोंने सबसे कम ध्यान दिया है और आज भी उनके सम्बन्धमें अधिकतर यही समझा जाता है कि वे राजके नियन्त्रणका विषय नहीं हैं।... दूसरी ओर, राजद्वारा सम्पन्न होनेवाले अधिकांश कार्योंका व्यक्तिगत राष्ट्रीयतासे कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। निवास-स्थानकी रक्षा, सार्वजनिक व्यवस्थाकी रक्षा, अपराधोंकी रोक और दण्ड-व्यवस्था, सड़कों आदिका निर्माण, जनताकी सम्पत्तिकी रक्षा, समान रूपसे कर लगाना और वसूल करना, आदि कार्योंका सम्बन्ध राजके प्रत्येक निवासीसे है, फिर चाहे वह ईसाका अनुयायी हो या मुहम्मदका, उसकी मातृभाषा अंग्रेजी हो या वेल्श या यीडिश। इन राजनीतिक और सामाजिक कार्योंमें, जो राजके सच्चे कर्तव्य हैं और जिनसे सबलोग समान रूपसे लाभान्वित होते हैं, प्रत्येक व्यक्तिको हाथ बँटाना पड़ता है।*

प्रथम महायुद्ध समाप्त होनेके समयसे ही राष्ट्रीय राजोंका प्रश्न व्यापक अध्ययनका विषय बन गया और इसपर बहुत-सा साहित्य भी प्रस्तुत हो गया है। १९३४में सी० ए० मेकार्टनीकी प्रामाणिक पुस्तकके प्रकाशनके बादसे, जिसका ऊपर मैंने लम्बा उद्धरण दिया है, अध्ययनका सिलसिला जारी रहा है। इस सारे अध्ययनसे उसके ही निष्कर्षोंकी पुष्टि हुई है जो संक्षेपमें इस प्रकार हैं—व्यक्तिगत राष्ट्रीयता और राजनीतिक राष्ट्रीयताकी भिन्नता स्पष्ट कर दी जानी चाहिए; यह आवश्यक नहीं कि राज और राष्ट्र सहव्यापी हों; राष्ट्रीय राजोंकी स्थापनाका प्रयत्न असफल हुआ है और इससे नयी समस्याएँ पैदा हो गयी हैं; राष्ट्रीय राजों और राष्ट्रीय अल्पसंख्यकोंके प्रति उनके बर्तावका अनुभव सुखद और उत्साहवर्द्धक नहीं प्रतीत हुआ; राष्ट्रीय राजोंसे अल्पसंख्यकोंके सम्बन्धकी सन्धियोंके पालन करानेकी राष्ट्रसंघद्वारा दी गयी गारंटी अप्रभावकर और व्यर्थ सिद्ध हुई; अल्पसंख्यकोंकी समस्या राष्ट्रीय राजोंकी स्थापनासे हल नहीं होगी क्योंकि सारे विजातीय लोगोंको निकाल बाहर कर सिर्फ सजातीय लोगोंका राज स्थापित करना

*सी.ए.मेकार्टनी :'नेशनल स्टेट्स एण्ड नेशनल माइनारिटीज'(१९३४)पृ.११-१२

सम्भव नहीं है ; समस्याका समाधान बहुराष्ट्रीय राजसे होना सम्भव है जिसमें सभी राष्ट्रीय अल्पसंख्यकोंको अपनी व्यक्तिगत राष्ट्रीयताके विकासके निमित्त पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है ।

फ्रीडमानका मत है कि राष्ट्रीयतावाद और आधुनिक राज दो विभिन्न शक्तियाँ हैं जो न तो अभिन्न हैं, न समरूप हैं और न परस्पर-सम्बद्ध । * वह इस निष्कर्षपर पहुँचा है कि इस संक्षिप्त आलोचनद्वारा यही प्रतिपादित करनेका प्रयत्न किया गया है कि राष्ट्रीय आत्मनिर्णयके आधारपर प्रतिष्ठित राजका आदर्श स्वयं-विरुद्ध है, और जबतक राष्ट्रीय राज अन्तिम मानके रूपमें माना-जाता है तबतक समस्याका सन्तोषजनक समाधान होना असम्भव ही बना रहेगा। जान पड़ता है, इस समस्यापर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेवाले सभी विद्वान् इस विषयपर एकमत हैं । इस समस्यापर गहरी छानबीनके पश्चात् मेकार्टनीने, सोवियत रूस और ग्रेट ब्रिटेनके अनुभवके आधारपर बहुराष्ट्रीय राजके ही पक्षमें अपना निर्णय दिया है।† उसने प्रोफेसर कारके इस मतपर कि 'सामान्य परम्परा और संस्कृतिके सूत्रमें अल्पाधिक सहजातीय और भाषा-भाषी दलके स्वतन्त्र राजनीतिक इकाईके रूपमें प्रतिष्ठित किये जाने या कायम रखे जानेका जो सिद्धान्त माना जाता था उसका अब त्याग कर देना चाहिए, ('फ्यूचर आव नेशन्स'—पृष्ठ ४९)‡ और डी० एच० कोलके इस मतपर कि 'इस बीसवीं शताब्दीमें राष्ट्रीयता राजका समुचित आधार नहीं मानी जा सकती' ('यूरोप, रशा ऐण्ड दि फ्यूचर'—पृष्ठ १४) अपनी स्वीकृति प्रदान की है । ×

आगे वह इस परिणामपर पहुँचा है कि इस कला-कौशल और यान्त्रिक प्रगतिके जमानेमें राष्ट्रीय राजका, विशेषकर छोटे राजका, अस्तित्व असम्भव ही है।

---

* फ्रीडमान—'दि क्राइसिस आव दि नेशनल स्टेट' (१९४३), पृष्ठ ६
† ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ४०
‡ ,, ,, ,, ,, पृष्ठ १३३
× ,, ,, ,, ,, पृष्ठ ४०

यदि वह राज अपनी सीमाओंके भीतर जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें समर्थ भी हो तो वह बाहरी आक्रमणका सफलतापूर्वक सामना नहीं कर सकेगा। आधुनिक रक्षाका क्षेत्र केवल इतना ही नहीं है, इसीके अन्तर्गत साधनोंकी व्यापकता और सुरक्षित सेना और सामान भी है जिनके कारण महाशक्तियों और छोटे राष्ट्रीय राजोंके बीचकी विषमता बहुत अधिक बढ़ गयी है।* उसने अपने निकाले हुए निष्कर्षोंको संक्षेपमें इस प्रकार दिया है—'विश्लेषणसे यह पता चला कि आजकी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियाँ राष्ट्रीय राजकी ओरसे विरत करती हैं।······राष्ट्रवाद और राजका गँठबन्धन होनेपर जब दोनों एक दूसरेसे आगे निकलनेका प्रयत्न करने लगते हैं तब सङ्कटकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। राष्ट्रीय आत्मनिर्णय-जन्य विकट स्थितियोंसे बचनेका एक मार्ग बहु-राष्ट्रीय राज है जिसमें एक सशक्त राजनीतिक संघ विभिन्न राष्ट्रीय दलोंको सांस्कृतिक अधिकारोंके उपभोगका अधिकार देता है, पर राजनीतिक, सैनिक और आर्थिक अधिकारोंके त्यागकी माँग करता है।'†

श्री कोबनकी 'स्टडी आन नेशनल सेल्फ डिटरमिनेशन' रायल इन्स्टिट्यूट आव इण्टरनेशनल अफेयर्सके तत्वावधानमें ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेससे सन् १९४५में प्रकाशित हुई है। वे भी मेकार्टनी और फ्रीडमानके ही निष्कर्षोंपर पहुँचे हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। उनकी पुस्तकसे लिये गये निम्नलिखित उद्धरणोंसे यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी—राजनीतिक इकाई या राजके रूपमें राष्ट्र एक उपयोगात्मक संस्था है जिसे राजनीतिक सूझने राजनीतिक—और साथ ही आर्थिक–उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए बना रखा है। राजनीति मानवके आत्म-हितका क्षेत्र है और इसकी सफलता उसी मात्रामें मानी जाती है जिस मात्रामें यह मानवके अच्छे जीवन-विधान और व्यवस्था, शान्ति और आर्थिक हितके निमित्त भौतिक साधनोंकी व्यवस्था करनेमें समर्थ होती है।'

---

* फ्रीडमान—दि क्राइसिस आव दि नेशनल स्टेट। पृष्ठ ९

† फ्रीडमान–दि 'क्राइसिस आव दि नेशनल स्टेट', पृष्ठ ८३

इसके विपरीत, सांस्कृतिक धारणाकी दृष्टिसे राष्ट्र स्वयं एक अच्छी चीज, बुनियादी तथ्य और मानव-जीवनका अनिवार्य प्रथम स्वीकृत सत्य माना जाता है। इसका सम्बन्ध मानव-हृदयकी स्फूर्तियोंसे है और इसका कार्यव्यापार कला और साहित्य, दर्शन और धर्मके क्षेत्रमें होता है।······दोनों प्रकारकी प्रगतियों, जो दुर्भाग्यसे एक ही नाम 'राष्ट्र'के द्वारा व्यक्त की जाती हैं, के लक्ष्योंकी भिन्नता मौलिक है। यह बात भलीभाँति स्पष्ट की जा सकती है कि यह पृथकीकरण सैद्धान्तिक मात्र नहीं है। * उन्होंने कनाडाके फरासीसियों और अंग्रेजोंका जो अपनी व्यक्तिगत राष्ट्रीयताका परित्याग न कर सामान्य राजनीतिक राष्ट्रीयता स्वीकार किये हुए हैं, और स्पेनिश अमेरिकाके विभिन्न राजोंका उदाहरण दिया है जिनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तो एक है पर कई राजनीतिक राजोंमें विभक्त हैं। "ऐसे बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें सांस्कृतिक और राजनीतिक राष्ट्रीयताके समरूप न हो सकनेकी असफलता स्पष्ट रूपसे देखी जा सकती है और वर्तमानकालमें जहाँ दोनोंको एक ही साँचेमें जबर्दस्ती ढालनेकी कोशिश की गयी है उसका परित्याग साधारणतः आपज्जनक ही हुआ है।" †

आगे चलकर उन्होंने यह भी दिखलाया है कि राजत्व-सूचक राष्ट्रीयताका मान उतना ही परिवर्तनशील है जितना एक कालसे दूसरे कालमें, एक देशसे दूसरे देशमें, यहाँतक कि एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिमें राष्ट्रीयताकी भिन्नता पायी जाती है। इसमें राजके निवासियोंके एक-जातीय होनेका अर्थ भी संलग्न है जो कभी सत्य नहीं हो सकता क्योंकि जातियोंके हिसाबसे संसारका विभाजन सम्भव नहीं है। उनका अन्तिम निष्कर्ष है—'जिस पुरानी दुनियामें सांस्कृतिक राष्ट्रों और राजनीतिक राजोंकी पहलेसे चली आनेवाली आपसकी ग्रन्थियोंका सुलझाव नहीं हो पाया है उसे अब इस विश्वासका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिए कि राष्ट्रीय राज ही दृढ़ राजनीतिक समुदायका एकमात्र आदर्श है।' जैसा कि

* अल्फ्रेड कोबन : 'नेशनल सेल्फ डिटरमिनेशन', पृष्ठ ६०

† ,, ,, ,, पृष्ठ ६०

एक्टनने वर्षों पूर्व कहा था,—राजनीतिक पद्धतिमें बहुराष्ट्रीय राजको पुनः स्थान देना चाहिए जहाँसे इसे कभी हटाना ही नहीं चाहिए था।······हालके तथा गत शताब्दीके इतिहाससे राजनीतिक राज और राष्ट्रमें एकरूपता लानेके सम्बन्धमें इसके अलावा और कोई शिक्षा नहीं मिलती। हमें लाचार होकर इसी परिणामपर पहुँचना पड़ा कि अधिकांश परिस्थितियोंमें दोनोंको सहव्यापी बनाना सम्भव नहीं है। सांस्कृतिक दृष्टिसे संयुक्त, राष्ट्रीय राजको आदर्श राजनीतिक संस्था बनानेका प्रयत्न अव्यावहारिक सिद्ध हो चुका है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे भी यह कभी मान्य नहीं हुआ। *

राष्ट्र और राज—इन दो विभिन्न सत्ताओंमें जो परस्पर गड़बड़ी पैदा हो गयी है उसका कारण यह है कि राष्ट्रीय आत्मनिर्णय पूर्ण-सिद्धान्तके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है जिसके अनुसार प्रत्येक सांस्कृतिक दल अपने लिए पृथक् स्वतन्त्र राजका दावा करनेका अधिकारी है, पर इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकारका कोई पूर्ण-सिद्धान्त हो ही नहीं सकता, और राष्ट्रीय आत्मनिर्णय भी उसी प्रकार सीमित है जिस प्रकार भिन्न-भिन्न विचारोंके कारण समाजमें व्यक्तिकी स्वतन्त्रता सीमित रहती है।

कोबनका प्रश्न है—'क्या ऐसे भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और राजनीतिक कारण नहीं हैं जो संसारकी बहुत-सी छोटी राष्ट्रीयताओंके लिए राष्ट्रीय आत्मनिर्णयको प्रभुराजके रूपमें माननेका सिद्धान्त अमान्य करते हैं? यदि किसी राष्ट्रके बहुसंख्यक सदस्य भी राजनीतिक स्वतन्त्रताके इच्छुक हों तो परिस्थितियाँ इसे रोक दे सकती हैं और सिर्फ इच्छा, चाहे वह कितने ही आदमियोंकी क्यों न हो, उन्हें बदलनेमें समर्थ नहीं हो सकती। बर्कके शब्दोंमें, अगर हम बच्चोंकी तरह चन्द्रमाको पानेके लिए शोर मचायें तो बच्चोंकी तरह ही हमें चिल्लाते रह जाना पड़ेगा।'† मैं इतना और कहूँगा कि ये सभी विचार

---

* अल्फ्रेड कोबन—'नेशनल सेल्फ डिटरमिनेशन', पृष्ठ ६२३

† अल्फ्रेड कोबन—'नेशनल सेल्फ डिटरमिनेशन', पृष्ठ ७४

भारतके विभाजनके विरुद्ध हैं, विशेषकर इस कारण कि विभाजनके लिए ऐसी कोई सीमा निर्धारित करना असम्भव है जिसमें पृथक् किये गये मुसलमानी राजोंमें कमसे कम उतने ही अल्पसंख्यक न बच रहते हों जितने सारे भारतमें मुसलमान। भारतकी आर्थिक और सैनिक परिस्थितियाँ इसके एक बड़े राजके रूपमें ही बने रहनेकी आज्ञा देती हैं और छोटी छोटी स्वतन्त्र राष्ट्रीय इकाइयोंमें विभक्त होनेसे मना करती हैं। पृथक् होना विध्वंसात्मक कार्य है। आरम्भमें ही इसका सहारा लेना उचित नहीं कहा जा सकता; इसका सहारा तो अन्तिम स्थितिमें और कोई उपाय न रह जानेपर ही लिया जा सकता है। यदि यह मान भी लिया जाय कि भारतमें वही स्थिति प्रस्तुत हो गयी है—और मुसलिम लीगके सिवा और कोई दल इस प्रकारकी स्थितिके निकट पहुँचनेकी बात भी नहीं करता—तो भी किसी-किसी विशेष भूभागके पृथक् हो जानेसे समस्याका समाधान नहीं हो जाता; क्योंकि फिर भी हिन्दू भारतमें जो मुसलमान बच रहेंगे उनकी संख्या २ या ३ सौ लाखसे कम न होगी और जैसा कि अन्यत्र दिखलाया गया है, गैर-मुसलमान प्रधान-क्षेत्रोंके सम्मिलित किये जानेपर ४७९ लाख और पृथक् रखे जानेपर १९६ लाख गैर-मुसलमान मुसलमानी राजोंमें पड़ जायँगे। इसलिए हमें कोई ऐसा हल ढूंढ़ निकालना चाहिए—जो आधुनिक विचार-धाराके अनुकूल हो, जो शताब्दियोंके इतिहासको खण्डित न करता हो, जो भूगोलके प्रतिकूल न पड़ता हो, जो संसारकी वर्तमान स्थितिमें देशकी रक्षा अगर असम्भव नहीं तो अत्यधिक कठिन न बना देता हो, जो पृथक् हुए राजोंपर असह्य भार न लाद देता हो, जो परिणाममें नये राजोंके निवासियोंकी दशा अनिश्चित कालके लिए विपन्न और पतित न बना देता हो, जो मुसलमानी और हिन्दू राजोंके सामने एक दूसरेको उदरस्थ कर लेनेकी समस्या न खड़ी करता हो, जो आवेशमें आकर न निकाला गया हो और जो स्थायी सङ्घर्षके लिए क्षेत्र न तैयार करता हो।

इस भाँति जहाँ हम देखते हैं कि राजकी स्थापनामें व्यक्तिगत राष्ट्रीयताका महत्त्वपूर्ण स्थान है वहाँ यह भी है कि सदैव केवल यही उसका एकमात्र अथवा प्रधान उपादान नहीं रहता। साथ ही जहाँ यह बात स्वीकार की जा सकती है

कि किसी राष्ट्रकी स्थापनाके लिए शुद्ध राजनीतिक ग्रन्थियाँ ही पर्याप्त नहीं हैं, वहाँ इस बातसे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रोंकी स्थापनामें उनका महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। यदि किसी दल विशेषपर बाहरी दबाव पड़े तो जूलियन हक्सलेके शब्दोंमें उक्त 'बाहरी दबाव ही किसी राष्ट्रके क्रमिक विकासका सम्भवतः सबसे बड़ा उपादान ठहरेगा।' भारतमें यही हुआ है पर हम इसकी चर्चा बादमें करेंगे।

३

मुसलमान—एक पृथक् राष्ट्र

विभाजनका औचित्य सिद्ध करनेके लिए इतना ही दिखा देना पर्याप्त नहीं है कि कि हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्रके अङ्ग नहीं हैं। यह दिखाना भी आवश्यक है कि मुसलमान एक पृथक् राष्ट्र हैं और उनका पृथक् राज रहनेकी आवश्यकता है। श्री दुर्रानी अपने भाव प्रकट करनेमें चूकते नहीं। कहते हैं कि 'प्राचीन कालके हिन्दू एक राष्ट्र नहीं थे। वे एक जनसमूह मात्र थे।'

भारतके मुसलमानोंकी स्थिति कुछ विशेष अच्छी न थी। वस्तुतः इसलाम अपने जन्मदाताके समयमें ही एक राजके रूपमें गठित हो गया। उसके राजनीतिक आदर्शोंकी भलीभाँति व्याख्या हो चुकी है। मेरे मतसे इसलाम स्वयं ही एक राजशास्त्र है।···परन्तु मेरे इस कथनका अर्थ यह नहीं कि इसलामी राज ऐसा राज है जिसमें अल्लाहको सर्वोच्च अधिकारी मानकर ईश्वरी आदेशोंका ही पालन कराया जाता है।···इसलामी राज लोकतन्त्र शासन-व्यवस्था है जिसके सुचारु रूपसे सञ्चालनके लिए प्रत्येक मुसलमान जिम्मेदार है।······उमर महानका कथन है कि 'ला इसलाम इला ब जमाअत' अर्थात् 'सङ्गठित समाजके बिना इसलामका कोई अस्तित्व ही नहीं है।' दुर्भाग्यकी बात है कि इसलामी राज अधिक दिनोंतक न चल सका। उम्मायदों और अब्बासिदोंने उसे नष्ट कर डाला, उसे 'मुल्क' अर्थात् स्वेच्छाचारी, एकतन्त्र, वंशानुक्रमी राज बना डाला।···इन्हीं दो स्वेच्छाचारी शासनोंके समय मुसलिम समाजके राजनीतिक जीवनको चौपट करनेके लिए और दो उपादान आकर उसमें जुट गये। एक वह धर्मशास्त्र था जिसमें ईश्वर और ईश्वरके प्रति मनुष्यके कर्त्तव्यकी चर्चा रहती है और दूसरा था सूफीवाद।···ये दोनों वस्तुएँ मिलकर मुसलिम आत्मा-

को पथभ्रष्ट करने लगीं और इन्होंने इसलामको नैतिक और राजनीतिक दर्शनसे पलटकर एक प्रकारके 'धर्म'में परिवर्तित कर दिया। उसे ऐसी वस्तु बना दिया जिसे राजनीतिक नारे लगानेवाले लोग 'व्यक्ति और ईश्वरके बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध' कहकर पुकारते हैं।···मुसलमानोंने जिस समय भारतपर विजय प्राप्त की उस समय सारे संसारके मुसलमानोंका यह स्वीकृत मत हो चुका था कि धर्म और राजनीति पृथक् पृथक् वस्तुएँ हैं। जिन लोगोंने भारतपर विजय प्राप्त की वे मुसलिम राजकी राष्ट्रीय सेनाके सदस्य न थे प्रत्युत एक साम्राज्यवादी अधिनायकके भाड़ेके टट्टू थे। उन्होंने भारतमें जिस राजकी स्थापना की वह राष्ट्रीय मुसलिम राज न था अपितु एक स्वेच्छाचारी और उसके पिछलगुओंका राज था। अपने ही हितोंकी पूर्तिके लिए वे उसकी रक्षा करते थे। भारतका मुसलमानी साम्राज्य केवल इस अर्थमें मुसलिम राज था कि उसके सिंहासनपर जो लोग विराजमान थे वे अपने आपको मुसलमान बताया करते थे। मुसलमानोंने भारतपर अपने पूरे शासनकालमें कभी भी राष्ट्रत्वकी भावनाका विकास नहीं किया।···अतः हमारे यहाँ हिन्दू और मुसलमान—दो जातियाँ बनी रहीं। दोनों एक ही साम्राज्यवादी सत्ताकी गुलाम थीं और दोनों राष्ट्रीय भावनाओं अथवा राष्ट्रीय महत्त्वाकाङ्क्षाओंसे शून्य थीं।

'हिन्दुओं और मुसलमानोंके धार्मिक विश्वासों और रीतिरिवाजोंके पार्थक्य और भिन्नतापर बहुत कुछ लिखा जा चुका है।···फिर भी, इन सब बातोंके बावजूद, इन दोनोंके धार्मिक विश्वासोंमें कोई ऐसी भावना है जिसके कारण ये दोनों शताब्दियोंतक आपसमें मिलकर प्रेमपूर्वक रहते आये और यदि ब्रिटिश राजकी अनुभूतियों और कष्टोंको उनके मस्तिष्कसे निकाल दिया जाय और पुरानी ही धार्मिक भावना उनमें पुनः जागृत कर दी जाय तो वे पुनः अच्छे पड़ोसीके रूपमें एक ही राजकी छत्रच्छायामें बड़े आनन्दपूर्वक रह सकते हैं। यह भावना सहनशीलताकी भावना है जो कि दोनों ही धर्मोंमें समान रूपसे व्याप्त है।··· यदि दोनों सम्प्रदायोंके बीच यह सम्बन्ध लगातार बना रहता, उसमें कोई बाधा न पड़ती तो यह निश्चित है कि समय आनेपर भारत-भूमिपर एक ऐसे राष्ट्रका

जन्म हो गया होता जिसका मस्तिष्क और जिसकी आत्मा एक होती। क्या यह कभी सम्भव है कि वे दिन पुनः लौटें ?*

अतः शताब्दियोंके निकट सम्पर्क और पारस्परिक सहानुभूतिपूर्ण बर्तावके बावजूद हिन्दू और मुसलमान पृथक् ही बने रहे। दोनों धाराएँ मिलकर एक न हो सकीं। 'दोनोंमें इतना अधिक पार्थक्य था कि यदि कभी उनमें उत्कट रूपसे वह भावना उत्पन्न हुई होती जिसे राजनीतिक विचारक 'राष्ट्रीय चेतना' कह कर पुकारते हैं तो उसका उनपर उलटा प्रभाव पड़ता ; वे दो पृथक् राष्ट्रोंमें परिणत हुए बिना न रहते। कारण, पृथक् राष्ट्रकी भावनाकी उग्ररूपसे जागृति हा तो राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रत्व है। इस समय वही तो हिन्दुओं और मुसलमानोंमें उत्पन्न हो गयी है।†

'दोनों स्वयं-जागृत राष्ट्र बन गये हैं और इस नयी जागृतिके अनुरूप जबतक दोनों अपने पारस्परिक सम्बन्धोंका पुनः मेल नहीं बैठाते तबतक काम न चलेगा।'‡

श्रीदुर्रानी आगे इस बातकी विवेचना करते हैं कि ऐसा किस प्रकार सम्भव हो सका। फिर आप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि 'संक्षेपमें यदि हम कहना चाहें तो यही कहेंगे कि यह ब्रिटेनकी भेदभावपूर्ण और एक सम्प्रदायकी बलि चढ़ाकर दूसरे सम्प्रदायका पक्षपात करनेकी नीतिका प्रत्यक्ष परिणाम है।

'हिन्दुओं और मुसलमानोंकी राष्ट्रीयता धीरे धीरे पनपी है और निश्चित रूपसे यह कहना कठिन है किस दिन वह पूर्ण रूपसे विकसित हुई। पहले वह आर्थिक प्रतिद्वन्द्विताके रूपमें खड़ी हुई, विशेषतः सरकारी नौकरियोंके सम्बन्धमें; बादमें राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विताके रूपमें परिवर्तित हुई और अन्तमें उसने राष्ट्रीय शत्रुताका रूप ग्रहण किया।'

---

* एफ० के० खां दुर्रानी : 'मीनिंग आव पाकिस्तान' पृष्ठ ३४

† ,, ,, पृष्ठ ४७

‡ ,, ,, पृष्ठ ४८

आपके कथनानुसार ब्रिटिश शासनमें मुसलमानोंकी अवनति और सर्वनाशमें जिन अनेक बातोंने मुख्यरूपसे सहायता की उनमें कुछ इस प्रकार हैं—(१) बङ्गालके उद्योग-व्यवसायका सर्वनाश; (२) बङ्गालका इस्तमरारी बन्दोबस्त, जिसके अनुसार छोटे हिन्दू रेवेन्यू कलक्टर जमीदार बन गये और बड़े मुसलिम रेवेन्यू अफसरोंकी उपेक्षा कर उनका स्थान यूरोपियन अफसरोंको दे दिया गया; (३) करहीन सहायताका उठा लिया जाना, जिसपर कि मुसलिम शिक्षापद्धति निर्भर करती थी, इस प्रकार उसे नष्ट कर देना; (४) शिक्षापद्धतिका नाश होनेसे यह स्वाभाविक था कि सरकारी नौकरियोंमें मुसलमानोंको स्थान न मिलता और उन स्थानोंपर हिन्दुओंका ही प्राधान्य रहता। यह प्राधान्य ओछी चाल-बाजियों द्वारा अब भी कायम रखा जा रहा है। नौकरियोंमें यह साम्प्रदायिक वैषम्य भारतकी राजनीतिका मुख्य अङ्ग है और साम्प्रदायिक कटुता बढ़ानेमें इसका बहुत बड़ा हाथ रहा है।

इसके साथ ही हिन्दुओंमें आक्रमणकी भावनाका विकास होता रहा है तथा दोनों सम्प्रदायोंमें पारस्परिक अविश्वास और राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता चलती रही है। बंगाल और उत्तर भारतमें यह भावना विशेषरूपसे दिखाई पड़ती है; जिसके उदाहरण हैं—(१) 'वन्देमातरम्' गीतके भीतर छिपी भावना; (२) सन् १८५७के गदरके तुरत बाद उसके विफल होनेपर यद्यपि वस्तुतः हिन्दुओंने ही आरम्भ किया था और बादमें मुसलमान भी उसमें शामिल हो गये थे, हिन्दुओंने अपने साथी मुसलमानोंके साथ विश्वासघात किया और वे सरकारके भेदिया बन गये जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकारका सारा क्रोध मुसलमानों पर पड़ा और फलतः हजारों मुसलमान तलवारके घाट उतार दिये गये, उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी, उनके अनाथ बच्चे ईसाई पादरियोंको सौंप दिये गये; (३) काशीके प्रमुख हिन्दुओंद्वारा १८६७में आरम्भ किया हुआ यह आन्दोलन कि उर्दूके स्थानपर, जो कि उस समय आम भाषा बन चुकी थी, ब्रजभाषा चलायी जाय और अरबी लिपिके स्थानपर देवनागरी लिपि चालू की जाय, जिसके फलस्वरूप हिन्दू तीन-चौथाई शताब्दीसे उर्दू भुलाने और उसके

स्थानपर हिन्दी सीखनेके लिए प्रयत्नशील दीख पड़ते हैं। अब गान्धीजीने, जो ऐसे मामलोंमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक ईमानदारीसे हिन्दू-भावना व्यक्त करते हैं, जरा भी लज्जित हुए बिना कह दिया है कि हिन्दुस्तानीसे ऐसे सभी शब्द निकाल देने चाहिए जो हिन्दुओंको इस बातका स्मरण दिलाते हैं कि इस देशपर कभी मुसलमानोंका राज था, * (४) हिन्दुओंकी अपने पूर्व इतिहास में दिलचस्पी, जिससे 'वह परम महत्त्वपूर्ण उपादान मिला जिसका अभाव अभी-तक इस जातिको एक राष्ट्र बनानेसे रोके हुए था'। † यद्यपि यह दिलचस्पी ब्रिटिश शिक्षापद्धतिके कारण उत्पन्न हुई जिसने ब्रिटिश नागरिकों अथवा ईसाई मिशनरियोंद्वारा लिखी इतिहासकी ऐसी पाठ्यपुस्तकें पाठ्यक्रममें रखीं 'जिनका उद्देश्य ही विषवमन करना तथा हिन्दुओंमें मुसलमानोंके प्रति घृणा और शत्रुता उत्पन्न करना' था। ‡ (५) चोटीके कांग्रेस नेता तथा शिवाजीकी पूजाके नये प्रवर्तक कट्टर मराठा बालगङ्गाधर तिलकद्वारा चलाया गया गोहत्या-विरोधी आन्दोलन।

ये ही सब बातें थीं जिनको दृष्टिमें रखकर सर सैयद अहमद खांने अपनी नीति निर्धारित की और वे अपने सहधर्मियोंको कांग्रेससे अलग रहनेकी सलाह देनेके लिए विवश हुए। उनपर बङ्गालके हिन्दू पत्रोंके रुखका भी कम प्रभाव नहीं पड़ा था। 'ये पत्र मुसलमानोंको विद्रोही बता रहे थे और इसीलिए इस बातपर जोर दे रहे थे कि मुसलमानोंको सरकारी नौकरियाँ नहीं मिलनी चाहिए।' ×

इसभाँति '१८५७के बाद कभी भी हिन्दुओं और मुसलमानोंने यह बात महसूस नहीं की कि हम दोनों एक हैं' और 'सर सुलतान अहमदने सरकार और जनता दोनोंको ही यह चेतावनी दी कि प्रतिनिधि संस्थाएँ केवल ऐसे देशोंके लिए उपयुक्त हो सकती हैं जहाँ एकजातीय आबादी हो, पर भारत जैसे देशमें,

---

* एफ० के० खां दुर्रानी : मीनिंग आव पाकिस्तान' पृष्ठ ६७,
† पृष्ठ ६८, ‡ पृष्ठ ७४, × पृष्ठ ७०

जहाँ बहुजातीय लोग निवास करते हैं, सारे सामाजिक और राजनीतिक खतरे उठाये बिना पार्लमेण्टरी संस्थाएँ स्थापित नहीं हो सकतीं।' *

परन्तु १९०६में जब यह बात प्रकाशित हुई कि प्रान्तीय कौंसिलें सङ्घटित होंगी तो एक मुसलिम प्रतिनिधि-मण्डलने मुसलमानोंके लिए पृथक् प्रतिनिधित्वकी माँग की और वह माँग स्वीकृत हो गयी। पृथक् निर्वाचनकी पद्धति न रहनेसे निश्चय ही संयुक्त एकजातीय राष्ट्र न बनता, उसका अर्थ केवल यह होता कि मुसलमानोंपर हिन्दुओंका प्रभुत्व हो जाता।†

यद्यपि राजनीतिक जागृतिके पूर्व हिन्दुओंके धार्मिक पुनर्जागरणका कार्य आरम्भ हो गया था तथापि १९०६–७ तक हिन्दुओंमें साम्प्रदायिकतासे राष्ट्रीयताको अधिक महत्त्व देनेका गान्धीवादी आदर्श प्रविष्ट नहीं हुआ था और उस समय प्रत्येक व्यक्ति या तो शुद्ध अर्थमें हिन्दू था अथवा मुसलमान। 'साम्प्रदायिकता' शब्द उस समय घृणासूचक शब्द नहीं बना था। उस समय हिन्दू और मुसलमान अपने प्रतिद्वन्द्वीके प्रति सौजन्य, सहनशीलता और सहानुभूतिपूर्ण विवेकका व्यवहार करते थे। यह बात हिन्दूसभामें भी थी, जिसकी सबसे पहले १९०७ में पंजाबमें नींव पड़ी थी और बादमें वह अखिल भारतीय संस्थाके रूपमें परिणत हो गयी थी, और अखिल भारतीय मुसलिम लीगमें भी, जिसकी कि नींव दिसम्बर १९०६में पड़ी थी।

ब्रिटिश अत्याचारोंके भयसे प्रभावित होनेके कारण, सर सैयद अहमद खांके नेतृत्वमें मुसलमानोंकी नीति राजभक्ति और चाटुकारितासे पूर्ण थी। यह नीति अलीगढ़वालोंसे विरासतमें मिली थी यद्यपि जिन कारणोंसे इसका जन्म हुआ था वे कारण मिट चुके थे। ‡ मुसलिम राजभक्तिको निम्नलिखित घटनाओंसे गहरा धक्का लगा था—(१) १९११में ट्रिपोलीपर इटलीका आक्रमण और उसमें ब्रिटिश सरकारका शामिल होना (२) दिसम्बर १९११में बङ्गालके विभाजनका

---

* एफ० के० खां दुर्रानी : 'मीनिंग आव पाकिस्तान', पृष्ठ ७८

† पृष्ठ ७९, ‡ पृष्ठ ८३

रद किया जाना; (३) एक सड़क-निर्माणकी योजनाका विरोध करनेपर कानपुरमें मुसलमानोंकी निर्दयतापूर्ण हत्या। इन सब बातोंसे प्रभावित होनेके कारण मुसलिम लीगमें मौलिक परिवर्तन हुआ जिससे उसने उत्तरदायी स्वशासनकी प्राप्ति अपना राजनीतिक उद्देश्य घोषित किया और कांग्रेसका तथा उसका लक्ष्य एक हो गया। दोनों संस्थाओंके वार्षिक अधिवेशन एक ही स्थानपर होने लगे। १९१६में उन्होंने प्रसिद्ध 'लखनऊ समझौता' किया जो १९१९ के भारत शासन विधानमें शामिल कर लिया गया। उक्त समझौतेमें मुसलमानोंके प्रति पूर्ण न्याय तो नहीं हुआ है पर उससे एक अत्यन्त महत्त्वकी यह बात अवश्य निकलती है कि कांग्रेसने यह बात स्वीकार कर ली कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक् राष्ट्र हैं और कांग्रेस जहाँ हिन्दुओंकी प्रतिनिधि संस्था है वहाँ मुसलिम लीग मुसलमानोंकी।* कांग्रेसने अब यह स्थिति अस्वीकार कर दी है और वह सारे भारतके प्रतिनिधित्वका दावा करने लगी है।

प्रथम महासमर अतिशयोक्तिपूर्ण राष्ट्रीयताकी भावनाकी उपज था। उसने उनलोगोंमें भी यह विष भर दिया जो अभीतक इससे मुक्त थे। उसने भारतवासियोंके हृदयमें विदेशी शासनसे मुक्त होनेकी तीव्र लालसा उत्पन्न कर दी, उनमें स्वतन्त्रताकी उत्कट भावना जाग्रत कर दी जिसके कारण १९१९ से लेकर १९२२ तककी हिन्दू-मुसलिम-एकता सम्भव हो सकी।'† किन्तु 'गांधीजी तथा उनके सहयोगियोंने अपने आपको प्रादेशिक राष्ट्रीयताके आकर्षक प्रवाहमें बह जाने दिया।' 'कांग्रेसके कर्णधारोंने यह घोषणा कर दी कि राजनीतिमें धर्मका प्रवेश नहीं होना चाहिए।' और 'कांग्रेसने भूगोल, राजनीति और अर्थशास्त्रके आधारपर संयुक्त भारतीय राष्ट्र बनानेका प्रयत्न आरम्भ किया। वस्तुतः उसने यह अनुमान कर लिया कि राष्ट्र तो पहलेसे ही बना बनाया है। सहज ही यह जाना जा सकता था कि यह अनुमान गलत है। उसके आधार गलत थे और कांग्रेसने राष्ट्रीयताकी

---

* एफ० के० खां दुर्रानी : 'मीनिंग आव पाकिस्तान्', पृष्ठ ८४

† " " " पृष्ठ ९०

जो इमारत खड़ी करनेकी कल्पना की थी वह तीन सालके भीतर ही गिरकर चकनाचूर हो गयी।...'महात्मा' जेल चले गये और हिन्दू-मुसलिम एकताका प्रदर्शन समाप्त हो गया। स्वामी श्रद्धानन्द और पण्डित मदनमोहन मालवीयने जेलसे निकलकर मुसलमानोंके विरुद्ध खुला और निर्लज्जतापूर्ण प्रचार आरम्भ कर दिया। १९२३ में अखिल भारतीय हिन्दू महासभाका पुनस्संघटन हुआ।... १९०७ और १९१५ में अन्य सम्प्रदायोंके हितोंको हानि पहुँचाये बिना हिन्दू-हितोंकी रक्षाकी घोषित नीतिका त्याग कर दिया गया और एक नया आदर्शवाद खड़ा किया गया कि भारत हिन्दुओंका पवित्र देश है और हिन्दुओंको एक राष्ट्र होनेका स्वतः अधिकार है जिसमें मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयोंका कोई स्थान नहीं तथा हिन्दुओंका राजनीतिक लक्ष्य है—हिन्दू राज।* १९२५ में स्वर्गीय लाला हरदयालका 'मेरे विचार' शीर्षक एक लेख जिसे उन्होंने अपना राजनीतिक घोषणापत्र बताया था, भारत पहुँचा और सारे भारतके हिन्दूपत्रोंने उसे प्रकाशित किया। श्री इन्दुप्रकाशने 'व्हेयर वी डिफर' नामक अपनी पुस्तकमें तथा डाक्टर अम्बेडकरने 'थाट्स ओन पाकिस्तान' नामक अपनी पुस्तकमें उस लेखके जो उद्धरण दिये हैं उन्हींके कुछ अंश श्री दुर्रानीने अपनी पुस्तकमें उद्धृत किये हैं। मैं यहाँ मूल लेखकके शब्दोंका सारांश दे रहा हूँ। उसमें कहा गया है कि राज हिन्दुओंका हो। मुसलमान उसमें रह सकते हैं किन्तु राज न तो मुसलिम राज ही हो सकता है और न हिन्दू-मुसलिम-संयुक्त राज। स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए हमें (हिन्दुओंको) न तो मुसलमानोंकी सहायताकी ही आवश्यकता है और न हम संयुक्त शासनकी स्थापनाके लिए ही इच्छुक हैं। हिन्दुस्तान और पंजाबके हिन्दुओंका भविष्य इन चार स्तम्भोंपर निर्भर करता है (१) हिन्दू संघटन, (२) हिन्दू राज, (३) मुसलमानोंकी शुद्धि और (४) अफगानिस्तान तथा सीमाप्रान्तकी विजय और शुद्धि। १९२३ से अबतक हिन्दूमहासभाकी नीति इसी आदर्शसे प्रभावित रही है और इसके समर्थनमें श्रीदुर्रानी श्रीसावरकरके

* वही, पृष्ठ ९१—९२।

हालके वक्तव्योंको उद्धृत करते हैं जिनमें उन्होंने कहा है कि 'भारत आज एक और एकजातीय राष्ट्र नहीं माना जा सकता, इसके विपरीत यहाँ मुख्यतः दो राष्ट्र हैं—एक हिन्दू और एक मुसलमान।' * आगे श्रीदुर्रानी कहते हैं कि 'श्रीसावरकरका निष्कर्ष इतिहास और राजनीतिक सिद्धान्तोंपर पूर्णतः आधृत है और उसका खण्डन करना सम्भव नहीं। विवादका प्रश्न केवल तब आता है जब वे अपने निष्कर्षसे ही असङ्गत बातें कह उठते हैं! राजनीतिक विचारक यही कहेंगे कि जब दो सम्प्रदायोंमें पृथक् राष्ट्र होनेकी भावना जाग्रत हो गयी है जैसी कि आजकल हमारे देशमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें है तो भीतरी तनातनी, गृहयुद्ध तथा इसी प्रकारकी अन्य बातें बचानेके लिए यही उत्तम होगा कि दोनों अलग हो जायँ और अपनी अपनी पृथक् राष्ट्रीय सरकारें स्थापित कर लें। अखिल भारतीय मुसलिमलीगका भी यही कहना है। श्रीसावरकर राष्ट्रत्वके प्रादेशिक आधारका तीव्र तर्कोंसे खण्डन करते हुए भी पुनः भौगोलिक आधारपर लौट जाते हैं और भारतको हिन्दुओंका पवित्र देश बताते हुए यह दावा करने लगते हैं कि सारे भारतपर हिन्दू राष्ट्रकी बपौती है। अतः आप सारे भारतके लिए ऐसी एक सरकारकी कल्पना करते हैं जिसमें हिन्दुओंका प्राधान्य रहेगा और मुसलमानोंको निम्न पद मिल सकेंगे। अर्थात् हिन्दू शासक रहेंगे और मुसलमान शासित।'†

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं। 'हिन्दुओंके पुनर्जागरण आन्दोलनको चरमसीमापर पहुँचा देनेके लिए ही कांग्रेसका जन्म हुआ था। वस्तुतः इससे हिन्दू राष्ट्रका उदय हुआ। यह ठीक है कि कांग्रेसके आरम्भिक इतिहासमें कुछ थोड़ेसे मुसलमान भी उसके साथ सम्बद्ध थे किन्तु थोड़ेसे समयको छोड़कर, वह सदा ही हिन्दू संस्था बनी रही और आज भी

*** १९३७में हिन्दू महासभाके अहमदाबादवाले अधिवेशनमें श्रीदामोदर सावरकरका भाषण, श्री एफ० के खां दुर्रानीद्वारा उद्धृत 'दी मीनिंग ऑव पाकिस्तान'—पृष्ठ १०२। † वही, पृष्ठ, १०५**

उसकी स्थिति वही है।' ‡ १९१६में कांग्रेसने लखनऊ समझौता करके यह बात स्पष्टतः स्वीकार कर ली। वह थोड़ासा समय जब उसका रूप हिन्दू संस्था जैसा नहीं रहा; गान्धीजी और अलीबन्धुके नेतृत्वमें असहयोग आन्दोलनका समय था। किन्तु उक्त आन्दोलन बुरी भाँति हुआ और उसमें मुसलमानोंको गहरी क्षति उठानी पड़ी। उस समय भी हिन्दू-मुसलिम ऐक्यके भवनमें यत्रतत्र सन्धियाँ दीख पड़ती थीं। "गान्धीजी खूब अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दू मस्तिष्क किस दिशामें घूमता है।···उनमें कभी भी यह साहस नहीं रहा कि वे हिन्दू जनमतका निरादर करते, भले ही वे यह समझते रहे हों कि वह गलत रास्तेपर है। गो-पूजा जैसे हिन्दुओंके अन्धविश्वासोंके प्रति उनके स्वच्छ मस्तिष्कमें कोई आदर नहीं हो सकता फिर भी हिन्दूजनताकी चापलूसी करनेके लिए, उसे प्रसन्न करनेके लिए वे अनेक बार यह घोषणा कर चुके हैं कि स्वराज्य यदि गायकी कुर्बानी न रोक सका तो उसका कोई मूल्य नहीं।" *

१९२३ में हिन्दू महासभाके पुनस्संघटनके बाद उसके हिन्दू राजकी स्थापनाके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए तीन अङ्गोंवाला कार्यक्रम आरम्भ किया गया। 'मुसलमान यद्यपि अल्पसंख्यक हैं तथापि अपनी सैनिक वीरताके लिए वे आज भी प्रख्यात हैं और हिन्दू, बहुसंख्यक होनेपर भी उनके आगे भेड़ ही बने रहते हैं।' † 'हिन्दू महासभाने १९२३में जब अपना नया आदर्श स्थिर किया तो उसने हिन्दुओंके हृदयमें आक्रमणकारीकी भावना उत्पन्न करने और भयकी वह भावना मिटानेकी योजना बनायी जो मुसलमानके नामसे प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें स्वतः उत्पन्न हो जाती है। उसने देशभरमें एक छोरसे दूसरे छोरतक दंगेकी सुविचारित योजना कार्यान्वित कर दी, सभी नगरोंकी सड़कोंको छोटा छोटा युद्धस्थल बना दिया जहाँ कि हिन्दू यह सीख सकें कि रक्तपातके खेलमें मुसलमानोंका किस भाँति सामना किया जाय।···जबतक हिन्दुओंके हृदयमें मुसलमानोंका भय था तबतक दंगे हो ही नहीं सकते थे। दंगे ही हिन्दुओंके

---

‡ वही, पृष्ठ १०९। * वही, पृष्ठ ११०–१११। † वही, पृष्ठ ११२।

सैनिकीकरणकी शिक्षाके उपाय थे।' * उस समयके समाचारपत्रोंमें पण्डित मालवीयजीके दौरेके जो विवरण प्रकाशित हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि वे ही इस प्रकारके दंगोंका संघटन करनेवाले प्रमुख व्यक्ति थे। 'पण्डित मालवीयके एक नगरमें जानेके कुछ सप्ताह बाद ही वहाँ भीषण दंगा हो गया।'

फरवरी १९२४ में गान्धीजी जब जेलसे बाहर निकले तो उन्होंने देखा कि सारे देशमें पण्डित मालवीयजीकी भीषण राजनीति व्याप्त है, किन्तु उनमें इस स्थितिका सामना करनेका साहस न था।...महात्माने इस अग्निको शान्त करनेके लिए कुछ भी उपाय नहीं किया और लगातार (१९२३ से २७) ५ वर्षतक मालवीयकी दुर्बुद्धि हिन्दू भारतके राजनीतिक जीवनकी पथ-प्रदर्शिका बनी रही पर वे कुछ न बोले। † हिन्दूलोग साइमन कमीशनका वहिष्कार करना चाहते थे और उनकी यह इच्छा थी कि इस वहिष्कारमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हों। 'अतः अपने पुराने ढङ्गके अनुसार हिन्दू नेताओंने गुप्त बैठक की और मुसलमानोंके विरुद्ध आतङ्क उत्पन्न करनेवाला आन्दोलन उठा लेनेका निश्चय किया और इस प्रकार दंगोंका सहसा अन्त हो गया।' ‡ 'गान्धीजी बिलकुल चुप रहे और उन्होंने उस रक्तरञ्जित नाटकपर अँगलीतक न उठायी जो पण्डित मालवीय, लाला लाजपतराय तथा अन्य महासभावादी सारे देशमें कर रहे थे और १९२८ के अन्तमें वे जब विश्रामके उपरान्त पुनः कार्य-क्षेत्रमें आये तो केवल हिन्दू सम्प्रदायके नेताके रूपमें ही आये, विश्रामके पूर्व जैसे हिन्दू और मुसलमान दोनोंके ही अखिल भारतीय नेताके रूपमें थे उस रूपमें नहीं। महात्माने जब मालवीयके हिन्दू राष्ट्रीयतावाद और हिन्दू राजके आदर्शको स्वीकार कर लिया तो मालवीय स्वयं ही क्षेत्रसे हटकर अपने व्यक्तिगत कार्योंमें संलग्न हो गये। उस समयसे गान्धीजी केवल हिन्दू सम्प्रदायके नेता हैं। उन्होंने कई अवसरोंपर यह बात स्वीकार भी की है तथा कांग्रेस अपनी नीति और अपनी सदस्यतामें लगभग पूर्णतः हिन्दू संस्था रही है।' +

---

* वही, पृष्ठ, ११४। † वही, पृष्ठ ११५–११६। ‡ वही, पृष्ठ ११७। + वही, पृष्ठ १२०–१२१।

'महासभा और कांग्रेसमें कार्यकर्ताओंका हेरफेर होता रहता है। १९३८ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने अपने बम्बईवाले अधिवेशनमें ऐसा प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जिसके स्वीकृत होनेपर न तो कांग्रेसके सदस्य महासभाके सदस्य बन सकते और न महासभाके सदस्य कांग्रेसके सदस्य बन सकते, परन्तु मुसलिमलीगपर लगा प्रतिबन्ध ज्योंका त्यों बना रहा।'* 'सन् ९१२४ से २८ तक गान्धीजी विभिन्न योजनाओंपर विचार करते रहे और उसके उपरान्त शुद्ध हिन्दू नेताके रूपमें जनताके सम्मुख प्रकट हुए।' † 'इसके बाद उन्होंने अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया। मुसलमान उससे सर्वथा पृथक् रहे। १९३१ में गान्धीजी द्वितीय गोलमेज सम्मेलनके लिए रवाना हुए तो दोनों सम्प्रदायोंमें कुछ समझौता करानेका प्रयत्न किया गया परन्तु गान्धीजीने उस प्रयत्नको विफल कर दिया और यह जानते हुए कि उनकी अँगुलियोंपर नाचनेवाले कुछ मुसलमान कभी राजी न होंगे यह माँग की कि मुसलमानोंको संयुक्त रूपमें अपनी माँग उपस्थित करनी चाहिए।' ‡

१९३५ का विधान बननेके उपरान्त उक्त विधानको कार्यान्वित करनेमें मुसलिमलीगने कांग्रेससे सहयोग करनेका निश्चय किया और श्री जिनाने यह आशा की कि अपनी घोषित नीतिके कारण चुनावमें कांग्रेस मुसलिमलीगका विरोध न करेगी, किन्तु कांग्रेसने उस आशाके विपरीत लीगको चुनौती दी। उसने लीगके विरोधमें अपने उम्मेदवार खड़े किये और राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरूने घोषणा की कि देशमें केवल दो दल हैं—एक कांग्रेस है और दूसरा ब्रिटिश सरकार। १९३७ के चुनावमें कांग्रेसको अत्यधिक बहुमतसे विजय प्राप्त हुई किन्तु उसकी विजय केवल हिन्दू निर्वाचन क्षेत्रोंमें ही सीमित रही। मुसलमानोंके ४८२ स्थानोंमें कांग्रेसने केवल ५८ स्थानोंपर अपने उम्मेदवार खड़े करनेका साहस किया जिसमेंसे भी उसके ३२ उम्मेदवार हार गये। अपनी सफलताके कारण कांग्रेसका दिमाग सातवें आसमानपर चढ़ गया और उसने यह

* वही, पृष्ठ ११६। † वही, पृष्ठ ११८। ‡ वही, पृष्ठ १२०–१२१।

माँग पेश करनी आरम्भ कर दी कि लीग या तो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही न रखे और यदि रखे तो कमसे कम राजनीतिक संस्था कहलाना छोड़ दे । मुस-लिम जन-सम्पर्क आन्दोलन आरम्भ किया गया और मुसलमानोंसे कहा गया कि वे अपना साम्प्रदायिक पट्टा छोड़कर कांग्रेसमें शामिल हो जायँ । यह अपील केवल मुसलमानोंसे की गयी जबकि हिन्दुओंके लिए यह स्वतन्त्रता रही कि वे एक साथ ही महासभाके भी सदस्य बन सकते हैं और कांग्रेसके भी ।* कांग्रेसने अपने बहुमतवाले प्रान्तोंमें उस समयतक अपना मन्त्रिमण्डल बनानेसे इनकार कर दिया 'जबतक इस बातका वचन न दे दिया जाय कि विधानके अनुसार गवर्नरोंको अल्पमतवालों तथा अन्य विशेष हितोंकी रक्षाके निमित्त जो अधिकार प्राप्त हैं उनका वे उपयोग न करेंगे ।'† युद्धकी घटाओंको सिरपर मँडराते देख सरकारने शान्ति बनाये रखनेके हेतु कांग्रेसके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया । उसने कांग्रेसको उक्त वचन देकर फिर एकबार मुसलमानोंके प्रति विश्वासघात किया । कांग्रेसने पदग्रहण करते ही सबसे पहले यही घोषणा की कि वह मुसलमानोंको मन्त्रिमण्डलमें लेनेके लिए बाध्य नहीं है । अतः उड़ीसाके मन्त्रिमण्डलमें कोई मुसलमान नहीं रखा गया और मध्यप्रान्तके मन्त्रिमण्डलको मुसलमान मन्त्रीसे मुक्त करनेके लिए शीघ्र ही एक अवसर खोज निकाला गया। इसके अलावा कांग्रेसने यह भी घोषणा कर दी कि वह मुसलमानोंको मन्त्रिमण्डलमें लेनेके लिए प्रस्तुत है बशर्ते कि मुसलमान अपने दलोंसे इस्तीफा देकर कांग्रेसके प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करें ।‡

"किन्तु असल बात यह है कि कांग्रेसका शासन मुसलमानोंके प्रति अत्य-धिक अन्याय और अत्याचारपूर्ण था ।...हिन्दू बहुमतवाले प्रान्त ऐसा व्यवहार करने लगे मानों हिन्दू राज आ गया हो ।...कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने यह आदेश निकाला कि सभी सार्वजनिक भवनों और स्कूलोंपर कांग्रेसका तिरङ्गा झण्डा फहराया जाय ।...उन्होंने सभी सार्वजनिक अवसरोंपर 'वन्देमातरम्' गान

---

* वही, पृष्ठ–१२३-१२५ । † वही पृष्ठ १२६ । ‡ वही पृष्ठ १२७-२८ ।

•जो कि हिन्दूराजका प्रतीक और मुसलमानोंके प्रति घृणोत्पादक है, गानेकी आज्ञा दे दी।'यहाँतक कि कांग्रेस शासित कुछ प्रान्तोंमें असेम्बलियोंकी कारवाई भी 'वन्देमातरम्' गानके पश्चात् आरम्भ होने लगी।" * 'मुसलमानोंको सामूहिक रूपसे आतङ्कित करने तथा सुयोजित दङ्गोंका आन्दोलन, जो पण्डित मालवीयने १९२३ से २७ तक जोरोंसे चलाया था, पुनः आरम्भ कर दिया गया।' 'इसका विस्तृत विवरण शरीफ रिपोर्टके दोनों भागोंमें, श्रीफजलुलहकके वक्तव्यमें तथा खा साहब अब्दुल रहमानखाँकी रिपोर्टमें मिल सकता है।'†

काग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने हिन्दू आक्रमणकारियोंकी रक्षा करनेके लिए ये उपाय किये—(१) निम्नपदस्थ अधिकारियोंको प्रोत्साहित कर ऐसा समझौता कराना जिससे मुसलमान गायकी कुर्बानीका अपना अधिकार त्यागकर उसके लिए क्षमा माँग लें और (२) पुलिसको तहकीकातमें देर लगानेकी अनुमति दे देना जिससे अपराधी प्रमाणके अभावमें बेदाग छूट जायँ। मजिस्ट्रेटोंका तबादला कर दिया गया तथा मुसलमानी क्षेत्रोंमें ताजीरी पुलिस तैनात कर दी गयी।

इसके उपरान्त श्रीदुर्रानीने हाईकोर्टके उस फैसलेके उद्धरण दिये हैं जिसमें चन्दूर बिसवाकाण्डके अभियुक्त बरी कर दिये गये थे। उस मुकदमेमें दौरा जजने, जो संयोगसे अंग्रेज था, एक हिन्दूकी हत्याके लिए कुछ मुसलमानोंको फाँसी और कुछ मुसलमानोंको कालेपानीकी सजा दी थी। उन्होंने अपनी टीकामें लिखा है कि 'मध्यप्रान्तके प्रधान मन्त्रीमें लज्जाका एक कण भी होता तो वे आत्महत्या कर लेते, नहीं तो कमसे कम सार्वजनिक जीवनसे तो वे अवश्य ही अवकाश ग्रहण कर लेते। श्री यूसुफ शरीफ केवल इसलिए बर्खास्त कर दिये गये कि उन्होंने एक ऐसे कैदीको मुक्त कर दिया था जिसकी कैदकी मीयाद लगभग पूरी हो चुकी थी। किन्तु नागरिकोंके जीवनके विरुद्ध इस घृणित षड्-यन्त्रके लिए कांग्रेसने प्रधानमन्त्री पण्डित (रविशंकर) शुक्लसे कोई जवाब तलब नहीं किया।···कांग्रेसके अधिनायक और पण्डित शुक्लके समर्थक गान्धीजी सदैव ही सत्य और अहिंसाकी रट लगाये रहते हैं और अपनी आन्तरिक आवाजका

* वही, पृष्ठ–१२९–१३०। † वही पृष्ठ १३१

डङ्का पीटा करते हैं। मेरा विश्वास है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर कभी भी ऐसे पाखण्डियोंसे बात नहीं कर सकता। गान्धीजीकी आन्तरिक आवाज और किसी-की आन्तरिक आवाज होगी। जो हो, न्यायके ऐसे उदाहरण और ऐसे सुशासनको देखते हुए भारतके मुसलमान कभी भी ऐसी स्थितिमें रहना स्वीकार नहीं कर सकते जिसमें उन्हें हिन्दुओंकी अधीनतामें रहना पड़े।'*

कांग्रेसके अत्याचारोंका वर्णन करते हुए आप आगे कहते हैं कि 'कितने ही स्थानोंपर मुसलमानोंको 'अजां' लगाने अथवा अपने खानेके लिए गायें मारनेकी मनाही कर दी गयी थी। मसजिदों और कब्रगाहोंको दूषित किया गया जिनकी क्षतिपूर्तिकी कोई आशा नहीं। किन्तु मुसलमानोंके लिए सबसे अधिक खराब और हानिकर वस्तु जिसका उद्देश्य उन्हें मुसलमानियतसे वञ्चित करना तथा सांस्कृतिक और सामाजिक एकताको नष्ट करना था, वर्धा-शिक्षा-योजना थी। भारतकी भावी कांग्रेस सरकारमें यह सबपर समान रूपसे लागू होनेको थी और विद्यामन्दिर योजनाके रूपमें मध्यप्रान्तमें उसका आरम्भ कर दिया गया था।'†

इन सब बातोंके उपरान्त कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफेसे सहज ही मुस-लमानोंको बड़ी राहत मिली। उन्होंने सन्तोषकी साँस ली। इसके उपरान्त व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन चला और क्रिप्स प्रस्ताव आया। क्रिप्स प्रस्ताव उदार था। उसमें केवल एक दोष था अर्थात् मुसलिम भारतके सम्भाव्य पृथक्करण और एक स्वतन्त्र मुसलिम राजकी स्थापनाकी योजना थी जिसे कांग्रेस किसी भी स्थितिमें स्वीकार न कर सकी।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका ८ अगस्त १९४२ का प्रस्ताव 'खुला विद्रोह' था और 'जापानको आमन्त्रित करनेके लिए खुला निमन्त्रण था। उस समय जापानकी सेनाएँ सीमाके दूसरी ओर थीं और उसे पारकर देशपर अधिकार जमानेके लिए उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रही थीं। इस भाँति यदि हम विचार करें तो अगस्त प्रस्ताव भारतवर्षके प्रति और मुख्यतः मुसलमानोंके प्रति भीषणतम विश्वासघातपूर्ण कार्य था। कारण, हिन्दू तो जापानके साथ निकट

---

* वही, पृष्ठ १३४-५। † वही, पृष्ठ १३५, १३६।

सम्पर्कका कुछ दावा भी करते हैं पर मुसलमानोंका तो जापानसे कोई सम्पर्क न था।'* 'वाइसराय लार्ड लिनलिथगोके लम्बे शासनकालमें केवल उस समय एक बार सरकारने तत्काल और प्रभावकर काररवाई की जिससे गान्धीजीके इस नाटकके प्रथम दृश्यपर ही काला पर्दा पड़ गया। मुसलिम भारत पुनः एक बार हिन्दू राजकी दयाका आश्रित होनेसे बच गया।'†

'यद्यपि इसलामके शास्त्रमें नैतिक शास्त्र भी है और राजशास्त्र भी; तथापि भारतके मुसलमान समष्टि रूपसे अच्छे राजनीतिज्ञ नहीं हैं। किन्तु वे जिस वातावरणमें रख दिये गये उसमें वे अधिक समयतक वैसे ही न बने रह सके। हिन्दुओंने उनके विरुद्ध जो 'सर्वाङ्गीण युद्ध' छेड़ दिया उसने उन्हें बुरी भाँति विचलित कर दिया। १९३७ में हम उन्हें चकित और विचलित अवस्थामें पाते हैं। १९३८ में हम देखते हैं कि मुसलमानोंमें यह भावना बढ़ती जा रही है कि हिन्दू-मुसलिम संयुक्त-राष्ट्रमें उनके लिए कोई स्थान नहीं। वर्षान्तमें हम सारे भारतमें ऐसी आवाज उठती देखते हैं कि भारतमें दो राष्ट्र हैं और मुसलमान अपने अधिकारानुकूल एक राष्ट्र हैं।'‡ 'और इसलिए मार्च १९४० में लाहौरमें भारतीय मुसलिमलीगने पाकिस्तानका जो प्रस्ताव स्वीकार किया वह और कुछ नहीं मुसलमानोंके राजनीतिक विश्वासका प्रदर्शन और लीगद्वारा उसकी स्वीकृति मात्र था।'×

इस भाँति श्री दुर्रानीके मतानुसार १९३८ में भारतके मुसलमानोंमें स्वतन्त्र राष्ट्र होनेकी भावना जाग्रत हुई और उन्होंने पाकिस्तान ही अपना लक्ष्य बना लिया। 'पाकिस्तानने उनकी कल्पनामें चार चाँद लगा दिये हैं। उन्हें उसमें ऐसी असंख्य विचित्र सम्भावनाएँ प्रतीत हो रही हैं जिनका कभी स्वप्न भी नहीं देखा जा सकता था। उनकी कल्पना है कि पाकिस्तान ऐसा राज होगा जहाँ मनुष्य अत्याचार, अन्याय, शोषण, स्वार्थ, लोभ और दरिद्रताके भयसे

---

* वही पृष्ठ १३९-४०। † वही पृष्ठ १४५। ‡ वही पृष्ठ १५३-५४
× वही पृष्ठ १५७।

सर्वथा मुक्त रहेंगे। इसलामी राज होनेसे उनके नागरिकोंमें नागरिक अधिकारों तथा आर्थिक सुविधाओंके सम्बन्धमें मुसलिम और गैरमुसलिमका कोई भेद न होगा। वे इसे 'हुकूमते इलाही' अर्थात् ईश्वरका राज्य कहते हैं, जिसे कि कुछ लोगोंने अज्ञानतावश ऐसे राजका नाम दे दिया है जिसमें सर्वोच्च अधिकारी ईश्वर होता है और उसीके आदेश और नियमोंपर सारा शासन चलता है। किन्तु इसलामी राज ऐसा राज नहीं है। इसलामी राज लोकतन्त्र है जिसके नागरिक 'हम स्वयं राज हैं' यह बात महसूस करते हैं और इसकी घोषणा करते हैं।'*

मैंने श्री दुर्रानीके इतने अधिक उद्धरण और निष्कर्ष इसलिए नहीं दिये हैं कि मैं उन्हें स्वीकार करता हूँ—इनमें कितने ही तो स्पष्टतः उपहासास्पद हैं—प्रत्युत इसलिए दिये हैं कि उन्होंने क्रमानुसार यह विवरण दिया है कि दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तने वर्तमान रूप कैसे ग्रहण किया। मैंने इसलिए भी इन्हें दिया है कि श्री दुर्रानी यह दावा करते हैं कि 'मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसने सबसे पहले यह बात प्रकाशित की कि हिन्दू और मुसमान केवल दो सम्प्रदाय ही नहीं हैं अपितु दो राष्ट्र हैं और इस कारण किसी समझौतेद्वारा दोनोंका एक संयुक्त राष्ट्र नहीं बन सकता और हिन्दू मुसलिम समस्याका एकमात्र स्वाभाविक और तर्कपूर्ण हल यही हो सकता है कि दोमेंसे कोई सम्प्रदाय या तो दूसरेको आत्मसात् कर ले अथवा बिना हानि पहुँचाये छोड़ दे।...मुसलिम राष्ट्रका एक सदस्य होनेके नाते मेरे लिए यह स्वाभाविक था कि मैं इस बातपर जोर दूँ कि मुसलमान इसलामके निमित्त पुनः भारतपर अपना कब्जा करें और इसीको अपना राजनीतिक लक्ष्य बनावें। मेरा अब भी यही मत है, कारण, मेरा विश्वास है कि भारतकी राजनीतिक मुक्ति इसलाममें ही निहित है।'†

---

* वही पृष्ठ १५८-१५९। † वही पृष्ठ १४६।

४

राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय राज

तत्काल जिस विषयसे हमारा सम्बन्ध है वह यह है कि अगर हम तर्कके लिए यह बाद मान भी लें कि भारतके मुसलमान सन् १९३८ से ही पृथक्-राष्ट्र होनेकी चेतनाका अनुभव कर रहे हैं, तो क्या हिन्दुओं और मुसलमानोंके पृथक् राज बन जानेसे समस्या हल हो जायगी और इन दोनों प्रकारके राष्ट्रीय राजोंमें अल्पसंख्यकोंकी स्थिति और अच्छी हो जायगी? इस सम्बन्धमें, पश्चिममें अभी हालमें ही जो कुछ घटित हुआ है उसके इतिहासका अध्ययन और यदि सम्भव हो तो, उससे शिक्षा ग्रहण करना लाभदायक ही होगा। यह बात भलीभाँति विदित है कि प्रथम महासमरका अन्त होनेपर यूरोपके केन्द्रीय साम्राज्योंके ध्वंसावशेषसे कई नये राजोंकी सृष्टि की गयी और उन्हें यथासम्भव एक जातीय राज बनानेका प्रयत्न किया गया। परिणाम यह हुआ कि महासमरके पूर्वकी बहुतसी अल्पसंख्यक जातियाँ नये राजोंमें, जिनका नामकरण उन्हीं जातियोंपर हुआ, बहुसंख्यक रूपमें परिणत हो गयीं, और पुराने विघटित राजोंकी बहुसंख्यक जातियोंके सदस्य नये राजोंमें अन्य लोगोंके साथ अल्पसंख्यक हो गये। चूँकि इस बातकी आशंका बनी हुई थी कि अल्पसंख्यकोंके प्रति दुर्व्यवहार संसारके शान्ति-भङ्गका कारण हो सकता है, इसलिए अल्पसंख्यकोंके प्रति व्यवहारका प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय विषय बन गया और अधिकांश राजोंको अपने अल्प-संख्यकोंकी रक्षाके सम्बन्धमें समझौते करने पड़े जो 'अल्पसंख्यक सन्धियाँ' (माइनारिटीट्रीटीज)के नामसे विख्यात हैं और राष्ट्रसङ्घ जिनका संरक्षक है।

विभाजनका उद्देश्य, प्रथम महासमरके बाद यूरोपमें स्थापित हुए राजोंकी तरह, हिन्दू और मुसलमानी राजोंकी स्थापना है जिसमें हिन्दू और मुसलमान

दोनोंको अपने-अपने राजमें अपनी विशेष प्रवृत्तिके अनुसार सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवनके विकासके निमित्त समुचित अवसर मिल सके और वे अपना भविष्य स्वयं निर्धारित कर सकें। इस उद्देश्यके सम्बन्धमें—यदि इसकी पूर्ति हो सके—किसीके झगड़नेकी आवश्यकता नहीं है। पर हिन्दू और मुसलमान अधिवासी सर्वत्र इस प्रकार बिखरे और आपसमें मिले-जुले हैं कि देशके किसी भी भागमें हिन्दू या मुसलमान किसीका ऐसा एक जातीय राज बन सकना सम्भव नहीं है जिसमें दूसरी जातिके बहुतसे लोग अल्पसंख्यकके रूपमें शेष न रह जाते हों। अधिवासियोंके बहुमतके धर्म (मजहब) के स्पष्ट आधारपर विशेष रूपसे बने हुए हिन्दू या मुसलमानी राजका हिन्दुओं या मुसलमानोंका राष्ट्रीयराज बन जाना निश्चित है, और इस प्रकारका राज बन जानेपर उसका उन मनोदशाओं और विचारोंसे अलिप्त रहना असम्भव होगा जिनका राष्ट्रीय राजमें अनिवार्य रूपसे प्राधान्य हुआ करता है। मेकाटेलीके शब्दोंमें 'भिन्न-भिन्न राजोंके शासनारूढ़ बहुसंख्यकराष्ट्र (भारतमें मुसलमानी राजोंमें मुसलमान और हिन्दू राजोंमें हिन्दू इसी प्रकारके राष्ट्र होंगे) जबतक इन राजोंको अपने राष्ट्रीय आदर्शों और महत्त्वाकाङ्क्षाओंकी प्राप्तिका साधन बनानेके प्रयत्नमें लगे रहेंगे—जो सिद्धान्ततः असम्भव और व्यवहारतः असाध्य है—तबतक अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षणकी किसी भी पद्धतिके सहारे अल्पसंख्यकोंकी स्थिति गवारा करने योग्य नहीं बनायी जा सकती।'*

*** सी० ए० मेकाटेनी : नेशनल स्टेट्स एण्ड नेशनल माइनारिटीज', पृष्ठ ४२१**

नोट—पाकिस्तानके समर्थक डाक्टर अम्बडेकरका कहना है 'दो प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायोंको, जिनमें एक बहुसंख्यक और दूसरा अल्पसंख्यक है, मिलाकर एक ही सरकारके फौलादी साँचेमें ढालनेका प्रयत्न साम्प्रदायिक समस्याका सर्वोत्तम हल नहीं है' ; और अगर गैर मुसलमान-प्रधान प्रान्तोंको पाकिस्तानसे अलग कर फिरसे उनकी सीमा निर्धारित करने और अधिवासियोंकी अदला-बदलीसे यह हल प्राप्त न हो तो पाकिस्तानकी योजना साम्प्रदायिक समस्यागत बुराइयोंको निकाल बाहर करनेमें समर्थ न हो सकेगी। इसलिए वे इन दोनों

राष्ट्रीय राज और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक—दोनोंमें परस्पर विरोध है। इस समस्याका समाधान दो प्रकारसे हो सकता है—एक तो यह कि मानो राजकी सीमा इस प्रकार निर्धारित की जाय कि अल्पसंख्यक जाति उसके बाहर पड़ जाय

उपायों—पुनः सीमा निर्धारण और अधिवासियोंकी अदला-बदली—का सहारा लेनेकी राय देते हैं, और उनकी समझमें, जहाँतक पाकिस्तानका सम्बन्ध है ये दोनों उपाय व्यवहार्य हैं। लेकिन वे हिन्दुस्तानको एकजातीय हिन्दूराज बनानेका कोई उपाय नहीं बतलाते जिसमें बहुतसे मुसलान अल्पसंख्यकके रूपमें शेष रह जाते हैं। वे सिर्फ इतना ही निर्देश कर सन्तोष कर लेते है कि इससे समस्याकी जटिलता बहुत कुछ कम पड़ जायगी और इस प्रकार समस्याका आसान हो जाना अन्ततोगत्वा हिन्दुओंके लिए लाभदायक ही सिद्ध होगा (बी० आर० अम्बेडकर—'पाकिस्तान ऑर दि पार्टीशन आव इण्डिया', अध्याय ६, खण्ड २–३, पृष्ठ ९५–१०७)।

जहाँतक सीमाके पुनर्निर्धारणका सम्बन्ध है, मैंने लीगके प्रस्तावके अर्थपर सम्यक् रूपसे ध्यान देते हुए इसपर विस्तारके साथ विचार किया है कि सीमाएँ क्या हो सकती हैं ; लेकिन कहा जाता है कि सन् १९४४ में महात्मागान्धीके साथ वार्ता चलाते समय श्री जिनाने प्रान्तोंकी वर्तमान सीमाओंको बनाये रखनेका ही आग्रह किया था। अधिवासियोंकी अदला-बदलीके सम्बन्धमें सिर्फ इतना कह देना काफी है कि डाक्टर अम्बेडकरने सीमाओंके सम्बन्धमें जो सुझाव रखा है उसके अनुसार पश्चिमोत्तर और पूरबके क्षेत्रोंके मुसलमानी राजोंसे हटनेवाले गैर-मुसलमानोंकी संख्या क्रमशः ६१ लाख और १ करोड़ ३४ लाखसे अधिक ही होगी। मालूम नहीं, डाक्टर अम्बेडकरको यह कैसे पता चला कि तुर्की, यूनान और बलगेरियामें २ करोड़ अधिवासी स्थानान्तरित हुए। मेकाटेनीके अनुसार इन देशोंके सारे अधिवासियोंकी संख्या ढाई करोड़-से कुछ ही अधिक है। इन तीनों राजोंमें सभी तरहके अल्पसंख्यकोंकी कुल संख्या ३५ लाखसे कुछ ही अधिक है। मेकाटेनीका कहना है कि बलगेरिया और यूनान तथा यूनान और तुर्कीमें अधिवासियोंकी अदला-बदलीके लिए जो कमीशन नियुक्त किया गया था उसने क्रमशः १५४-१९१ और ५४५-५२१ व्यक्तियोंके ही सम्बन्धमें निर्णय किया था।

या अधिवासियोंकी अदला-बदली हो, और दूसरा यह कि राजका आधार बदलकर उसे अराष्ट्रीय या बहुराष्ट्रीय राज बना दिया जाय।

हिन्दू और मुसलमान सारे भारतमें इस प्रकार बिखरे और आपसमें मिलकर बसे हुए हैं कि ऐसा कोई भूभाग अलग कर सकना असम्भव है जिसमें अल्पसंख्यक जातिके बहुतसे लोग शेष न रह जायँ। इस बातको सभी स्वीकार करते हैं इसलिए यह सुझाव रखा जाता है कि विशुद्ध मुसलमानी राज कायम न कर ऐसे राज हों जिनमें बहुसंख्यक हिन्दू या मुसलमानके साथ-साथ दूसरी अल्पसंख्यक जाति भी हो। देशके किसी प्रकारके विभाजनद्वारा एकजातीयता लाना असम्भव है।

क्या अधिवासियोंकी अदला-बदलीके जरिये एकजातीयता लायी जा सकती है? डाक्टर एस० ए० लतीफ और डाक्टर अम्बेडकरके अतिरिक्त और किसी व्यक्तिने इस प्रकारका सुझाव नहीं पेश किया है। मार्च, १९४० में, लीगके लाहौरवाले अधिवेशनमें अध्यक्ष-पदसे भाषण करते हुए श्री जिनाने कहा था 'भारतका भौतिक विभाजन होनेपर अधिवासियोंकी अदला-बदली कहाँतक व्यवहार्य होगी, इसपर विचार करना पड़ेगा।' * दूसरे लोग सम्बद्ध व्यक्तियोंकी अत्यधिक संख्या, इसमें होनेवाले व्यय और असुविधा तथा हटाये जानेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी अपनी भूमिके प्रति आसक्तिके विचारसे इसे अव्यावहारिक समझते हैं। इस सम्बन्धमें यूरोपके अल्पसंख्यकोंकी भी चर्चा की जा सकती है—

वहाँ अल्पसंख्यक समझौतों (पीसट्रीटीज)के अनुसार अधिवासियोंकी ऐच्छिक और अनिवार्य दोनों तरहकी अदला-बदलीका प्रयोग किया गया। मेकार्टनीका कहना है 'वस्तुतः स्वेच्छासे हटनेवालोंकी संख्या नहींके बराबर थी और समझौते (कन्वेन्शन)में जिस ऐच्छिक प्रवासकी बात रखी गयी थी

---

* स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आव मिस्टर जिना तीसरा संस्करण, पृष्ठ १५८

वह नामके लिए ही कार्यान्वित हुई।'* ऐसा कोई कारण नहीं दीख पड़ता जिसमें भारतमें इससे भिन्न स्थिति होनेका अनुमान किया जाय। यूनान और तुर्कीमें अनिवार्य प्रवास (विनिमय) का प्रयोग किया गया। इसके सम्बन्धमें मेकार्टनीने अपने निष्कर्षका सारांश देते हुए कहा है 'अधिवासियोंकी अदला-बदलीके जरिये अल्पसंख्यकोंकी समस्या हल करनेके सम्बन्धमें जो अनुभव प्राप्त हुआ है वह ऐसा उत्साह-वर्द्धक नहीं है कि इस प्रयोगकी पुनरावृत्ति की जाय। कहा जा सकता है कि युद्धोत्तर तुर्की और बालकन राजोंकी स्थिति बिलकुल असाधारण थी और अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित स्थितिमें न तो उतनी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी और न आर्थिक हानि होगी। इसके उत्तरमें कहा जा सकता है कि इस तरीकेका मूल सिद्धान्त ही उग्रतापूर्ण है। स्थिति व्यवस्थित और अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकोंका पारस्परिक सम्बन्ध सौख्यपूर्ण होनेपर अदला-बदलीकी आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है। स्वेच्छापूर्वक प्रवास करनेकी अपीलका भी कोई फल न निकलेगा। सम्बद्ध व्यक्तियोंकी इच्छाके विरुद्ध प्रवासके लिए बाध्य करना बर्बरतापूर्ण कार्य होगा। पर अनुभवसे यही सिद्ध हुआ है कि वस्तुतः बाध्य करनेवाली स्थिति न हो तो स्वेच्छासे तो अदला-बदली कभी होती ही नहीं। इससे यही मानना पड़ता है कि यह कार्य कष्टसे विरहित नहीं हो सकता। हाँ, सवाल सिर्फ यह उठ जाता है कि यह कष्ट निर्ममतापूर्वक पहुँचाया जाता है या उत्साहके आवेशमें।' † इसलिए मेकार्टनी इस निष्कर्षपर पहुँचता है कि 'अल्पसंख्यक जातिसे पिण्ड छुड़ाकर बहुसंख्यककी समस्या हल करनेके सारे प्रयत्न इस प्रकार हतोत्साह करनेवाले ही प्रमाणित हुए हैं।...इसलिए मिश्र अधिवासियोंवाले राजोंको अल्पसंख्यकोंकी ओरसे लगातार होनेवाली माँगोंके सम्बन्धमें समझौता कर लेना चाहिए। आजकल जो कठिनाई

---

* मेकार्टनी—'नेशनलस्टेट्स ऐण्ड नेशनल माइनारिटीज' (१९३४), पृष्ठ ४४०–४४१।

† मेकार्टनी—'नेशनल स्टेट्स ऐण्ड नेशनल माइनारिटीज' (१९३४), पृष्ठ ४४८–४४९।

उपस्थित होती है उसका मूलकारण राष्ट्रीय राजकी आधुनिक कल्पना : राजकी बहुसंख्यक जातिके राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आदर्शों तथा सभी अधिवासियोंके राजनीतिक आदर्शोंमें कोई भेद न मान लेना है। यदि इन दोनों मूलतः भिन्न विषयोंकी आपसकी सभी गड़बड़ी दूर कर दी जा सके तो ऐसा कोई कारण नहीं जिससे बीसों विभिन्न राष्ट्रीयतावाले सदस्य एक ही राजमें पूर्ण सामञ्जस्यके साथ न रह सकें और उनमेंसे सबसे छोटेको भी उस नैतिक अधःपातका शिकार होना पड़े जिसके बहुतसे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आज शिकार हो रहे हैं। आज भी यूरोपमें ऐसे कुछ राज हैं जिन्होंने राष्ट्रीय राजका रूप ग्रहण करनेके प्रयत्नसे अपनेको विरत रखा है और इसके फलस्वरूप उनमें वास्तविक अल्प-संख्यक समस्याका भी अस्तित्व नहीं है।' * इस सम्बन्धमें उसने सोवियत सङ्घका उदाहरण देते हुए भारतकी समस्यापर भी दृष्टिपात किया है—'यह सुझाव पेश किया जा सकता है कि सिर्फ भारतके ब्रिटिश शासक ही नहीं बल्कि भारतके अधिवासी भी यूरोपके अल्पसंख्यकोंके संघर्षपर ध्यान देंगे। इससे उनकी कोई हानि नहीं होगी। भारतकी आजकी स्थितिमें दो सङ्घर्ष बिलकुल स्पष्ट हैं, एक तो अंग्रेजोंके विरुद्ध वहाँके निवासियोंका है और दूसरा मुसलमानोंके विरुद्ध हिन्दुओंका। (छोटी-छोटी जातियोंकी अनगिनत उलझनोंका तो कुछ कहना ही नहीं)।'

चूँकि भारत-स्थित अंग्रेज इस देशकी कोई प्रमुख जाति न होकर विदेशी शासनसत्ताके प्रतिनिधि ही विशेष हैं, इसलिए पहला सङ्घर्ष हैप्सबर्गवंशके विरुद्ध मेजारोंके सङ्घर्षसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है और ब्रिटिश शासनको प्राप्त होनेवाला मुसलमानोंका समर्थन हैप्सबर्गवंश और हंगरीके जर्मन-क्रोटोंके मध्य बार-बार होनेवाले मैत्री-सम्बन्धका स्मरण दिलाना है और जैसे मेजारों और हङ्गरीकी विभिन्न राष्ट्रीय जातियोंका पारस्परिक सङ्घर्ष उस समयतक निर्णायक स्थितिपर नहीं पहुँचा जबतक हैप्सबर्गवंशियोंने घरेलू मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं छोड़ा वैसे ही अंग्रेजोंके भारतमें विद्यमान रहनेके कारण यहाँ

---

* मेकार्टनी कृत पृ० ४४८-४९।

बसनेवाली जातियोंका भी सच्चा सङ्घर्ष रुका हुआ है। भारतको ज्यों-ज्यों अधिकाधिक स्वशासनका अधिकार प्राप्त होता जायगा त्यों-त्यों यह सङ्घर्ष उन्हीं आन्तरिक सङ्घर्षोंका रूप ग्रहण करता जायगा जो पूर्वी यूरोपीय राजोंके विघटनके कारण हुए हैं।...इसलिए जो लोग इस इतिहासका अध्ययन करें वे उससे शिक्षा ग्रहण करनेकी बुद्धिमानी अवश्य दिखलाएँ।'* इस प्रकारकी एक शिक्षाका उल्लेख उसने पुस्तकके आरम्भमें ही किया है जिसे हम भारतीयोंके लिए स्मरण रखना हितकर होगा। जब मेजारों और हैप्सबर्गवंशीयोंके बीच खुल्लमखुल्ला सङ्घर्ष छिड़ गया तब क्रोट और प्रायः सभी दूसरे अल्पसंख्यक राजाके पक्षमें हो गये। हंगरीका शासन-चक्र विएनाकी ओरसे एक केन्द्रित और जर्मन विशेषता प्रदर्शित करनेवाली नौकरशाहीद्वारा सञ्चालित होने लगा। यह शासन न तो मेजारोंके लिए सन्तोषजनक था और न स्लोवानिक आकाङ्क्षाओंके लिए हितकर। इसपर 'एक चतुर मेजारने अपने एक क्रोट मित्रको कहा था—हमें जो कुछ दण्ड रूपमें प्राप्त हुआ है वही तुम्हें पुरस्कारमें मिला है।'†

इसलिए भारतीय समस्याके हलके लिए हिन्दुओं और मुसलमानोंके पृथक् राष्ट्रीय राजोंकी स्थापनाके पीछे दौड़नेकी अपेक्षा, जिसमें दूसरे समुदायके बहुतसे लोग अल्पसंख्यकके रूपमें शेष रह जाते हैं, क्या यह अधिक उपयुक्त न होगा कि भारत अराष्ट्रीय राजके ही रूपमें बना रहे जैसा वह इस समय है और पहले भी रहा है? लीगने मुसलमानोंके लिए पृथक् राज स्थापित करनेकी जो इच्छा प्रकट की है वह छः साल भी पुरानी नहीं है और जैसा कि आगे दिखलाया जायगा कमसे कम उतने सौसे भी अधिक वर्षोंका इतिहास खण्डित करनेवाली है। इसलिए उद्देश्य यह होना चाहिए कि राष्ट्रीय राजोंका निर्माण न कर

* मेकार्टनी—'नेशनल स्टेट्स ऐण्ड नेशनल माइनारिटीज' (१९३४) पृ० ४८०-८१।

† मेकार्टनी—'नेशनल स्टेट्स ऐण्ड नेशनल माइनारिटीज' (१९३४), पृष्ठ ११८

भारतके अन्तर्राष्ट्रीय राजकी ही, उसकी अराष्ट्रीय विशेषताको क्षति पहुँचानेवाले तत्वोंको दूर करते हुए, दृढ़ता प्रदान की जाय।

इस तर्कका अन्त लार्ड ऐक्टनके उस मतके साथ करना अच्छा न होगा (दो राजोंका सिद्धान्त माननेवालोंने भी इसे उद्धृत किया है) जिससे मेकार्टनी अपनी पुस्तकका अन्त करता है* 'यदि नागरिक समाजका उद्देश्य कर्तव्योंके पालनके लिए' स्वाधीनताका स्थापन मानें तो हम इसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि वही राज सर्वाधिक दृढ़ और पूर्ण होते हैं जिनमें······बिना कष्ट पाये कई विभिन्न राष्ट्रीय जातियाँ रहती हैं, जिन राजोंमें जातियोंका सम्मिलन नहीं हुआ है वे अपूर्ण हैं और जिनमें इस प्रकारका प्रयत्न नहीं किया गया है वे अशक्त और क्षीण हैं। जिस राजमें भिन्न भिन्न जातियोंको सन्तुष्ट कर सकनेकी क्षमता नहीं है वह स्वयं अभिशप्त है और जो राज उन्हें शक्तिहीन, आत्मसात् या बहिष्कृत करनेकी चेष्टा करता है वह अपनी जीवनी-शक्तिका नाश करता है और जो राज उन्हें अपनेमें समाविष्ट नहीं करता वह स्वशासनके मुख्य आधारसे ही वञ्चित है।†

---

* मेकार्टनी—'नेशनल स्टेट्स ऐण्ड नेशनल माइनारिटीज'—पृष्ठ ५०१

† 'एक्टन्स एसेज ऑव लिबर्टी', पृष्ठ २७८

५

चित्रका दूसरा पहलू

पिछले पृष्ठोंमें ऐसी 'बहुतसी बातें आयी हैं जो इसी लक्ष्यकी ओर संकेत करती हैं कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेसे पृथक् हैं और ये दोनों अभी आपसमें मिलनेवाले नहीं। पर साथ ही चित्रका एक और पहलू भी है जिससे वह देखा जा सकता है। आइये थोड़ी देरके लिए इधर भी दृष्टिपात करें।

जूलियन हक्सलेके शब्दोंमें बहुतसी मानव स्फूर्तियाँ, महत्वाकांक्षाएँ और भाव स्वाभाविक या कृत्रिमरूपसे परस्पर मिलकर उस वृहत् संयोगका सृष्टि करते हैं जिसे हम राष्ट्र शब्दद्वारा व्यक्त करते हैं। भाषा, मजहब, कला, विधान, आहार, भावभङ्गी, मिलना-जुलना, वेशभूषा, खेल-कूद आदि भी इसमें योगदान करते हैं, ।* उसका यह भी कहना है कि 'समूह-भावनाके विशेष रूपका, जिसे हम 'राष्ट्रीयता' कहते हैं, विश्लेषण करनेपर यही सिद्ध होता है कि वह किसी ऐसी वस्तुपर आधृत है जो भौतिक सम्बन्धको अपेक्षा व्यापक तो अधिक है पर उसकी व्याख्या वैसी सरल नहीं है। निश्चित भौगोलिक सीमाओंसे परिवेष्टित देशमें निवास, विशेष प्रकारके रहन-सहनके साँचेमें ढालनेवाला जलवायु, परम्पराएँ जिन्हें सबलोग अपना लेते हैं, सामाजिक संस्थाएँ और सङ्घटन, सर्वमान्य धार्मिक रीति-रिवाज, सामान्य व्यापार और पेशा आदि भी उन अनगिनत उपादानोंमें सम्मिलित हैं जो न्यूनाधिक मात्रामें राष्ट्रीय भावनाका निर्माण करनेमें सहायक हुए हैं। कल्पित 'रक्त सम्बन्धसे पुष्ट सामान्य भाषा भी बड़ी महत्वपूर्ण चीज है। पर दलगत अनुभूतिका पोषण करनेवाले सारे भावों, यहाँतक कि कल्पनाप्रसूत भौतिक या ऐतिहासिक सम्बन्धसे भी कहीं अधिक बलवती वह

---

* जूलियन हक्सले—'रेस इन यूरोप', पृष्ठ ३

प्रतिक्रिया है जो बाहरी हस्तक्षेपके विरुद्ध होती है। दलगत चेतनाके विकासमें यही सबसे अधिक सहायक हुई है। राष्ट्रीय विकासकी क्रियामें बाहरसे पड़नेवाला दबाव ही सम्भवतः सबसे बड़े कारणोंमें है।'*

इनमेंसे कुछ अधिक महत्वपूर्ण तत्त्वोंपर विचारकर देखें कि उन्होंने भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंको कहाँतक प्रभावित किया है।

क—धर्म

मैं पहले धर्मको ही लेता हूँ। यह सत्य है कि भारतके हिन्दू और मुसलमान भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायी हैं और उनका सामाजिक जीवन भी इन्हीं धर्मोंसे उद्भूत हुआ है। यह भी सत्य है कि कुछ धार्मिक कृत्यों और रीति-रिवाजोंमें बहुत अधिक अन्तर है और ऊपर-ऊपर यह भी जान पड़ता है कि उनमें आपसमें कभी मेल हो नहीं सकता; पर कुछ मौलिक बातोंमें जो अन्तर है वह उस अन्तरसे ज्यादा नहीं है जो एक ही व्यापक नामवाले मतोंके अनुयायियोंमें होता है जो निश्चय ही एक राष्ट्रके सदस्योंके रूपमें शान्ति और सद्भावपूर्वक साथ रह रहे हैं। मुसलमानको मसजिदके भीतरी हिस्से (जिसमें जायनमाज और बधने पड़े होते हैं) की बेहद सादगी और मन्दिरके भीतरी हिस्से (जिसमें देवमूर्तियाँ और पूजाका बहुत सामान रहता है) में जो असमानता देख पड़ती है वह उससे अधिक नहीं होती जो प्रोटेस्टेण्ट या प्रेस्बीटेरियन गिरिजाघरके भीतरी हिस्से (जिसमें आराधकोंके आसनों और उपदेशककी वेदीके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता) और रोमन कैथलिक गिरजाघर (जिसमें शानदार सजावट, मूर्ति, चित्रकारी, बती आदि बहुतसी चीजें होती हैं) में देखा जाता है। मुसलमानोंमें कट्टर सुन्नीलोगोंको मुहर्रमके रवाजों—ताजिया, ताबूत, सिपारा, अलम, पैक, बहिश्तीको देखकर लगभग वैसा ही उद्वेग होता है जैसा हिन्दुओंकी दुर्गाकी मूर्तिके जुलूसको देखकर। फिर भी आजतक किसीने यह दावा नहीं किया कि

* जूलियन हक्सले—'रेस इन यूरोप', पृ० १५।

'लेकिन जिस और कैथलिक एक ही राष्ट्रके अङ्ग नहीं हैं, और सुन्नी और शिया दो विभिन्न राष्ट्रोंके हैं। हिन्दुओंमें भी कुछ ऐसे सम्प्रदाय हैं जिनको मन्दिरों, उनमेंकी मूर्तियों और दूसरोंके धार्मिक कृत्योंसे वैसी ही चिढ़ है, फिर भी वे हिन्दू ही हैं। बाह्यचिह्नों और प्रतीकों, रीतियों और रस्मों, मजहब और पूजाके रूपों और विधियोंसे भिन्न, लोग दोनों धर्मोंके बहुतसे दार्शनिकोंको जानते-मानते रहे हैं जिन्होंने जीवन-मरण और मरणोत्तर जीवनके रहस्योंमें गहरी डुबकी लगायी है और ईश्वरके एक होने, आत्माकी अविनश्वरता, भौतिक वस्तुओंकी क्षणभंगुरता और आध्यात्मिक विषयोंके स्थायी महत्त्वके सम्बन्धमें एक ही जैसे मत प्रकट किये हैं। हिन्दुओंका वेदान्त दर्शन और मुसलमानोंका सूफी मत दोनों सत्यान्वेषणके कार्यमें एक ही परिणामपर पहुँचते हैं फिर चाहे एक दूसरेसे या अन्य किसी सामान्य सूत्रसे उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की हो अथवा नहीं। डाक्टर भगवानदास जैसा दोनोंके साहित्यका पारङ्गत विद्वान् दोनोंके प्रामाणिक ग्रन्थोंसे समानार्थक अवतरण आसानीसे दे सकता है।

'मुसलमानी रहस्यवादका तीसरा साधन भारतीय है। पूर्वके एक अध्यायमें दिखाया जा चुका है कि भारत और फारसकी खाड़ीके बीच घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था, व्यापारके साथ विचारोंका आदान-प्रदान भी निश्चय ही हुआ होगा। यह बात तर्कसिद्ध है कि जब भारतीय इतिहास और तलवार, भारतीय सुवर्ण और राज जैसी भौतिक उपयोगकी वस्तुएँ और चित्रित मेहराब तथा बीचमें उभरे हुए गुम्बदसी कलात्मक वस्तुएँ फारस और इराक पहुँच गयी थीं तब भारतके दार्शनिक विचार भी वहाँ अवश्य पहुँचे होंगे। आरम्भके उमैयाद शाहोंके शासनकालमें बहुतसे भारतीय माल-विभागमें काम करते थे। कहा जाता है कि खलीफा मुआवियाने सीरिया और विशेषकर अण्टिओकमें तथा हज्जाजने कासगरमें भारतीयोंकी बस्ती ही बसा रखी थी। खलीफाके शहरोंमें काली आँखों और जैतूनके रङ्गवाले हिन्दुओंके कन्धेसे मुसलमानोंका कन्धा रगड़ा करता था। साम्राज्यके पूर्वी प्रदेश—खुरासान, अफगानिस्तान, सिस्तान और बलूचिस्तान—धर्म-परिवर्तनके पूर्व बौद्ध* या हिन्दू थे। बल्खमें एक बड़ा मठ (विहार)

था जिसका निरीक्षक (स्थविर) बरमक नामक एक व्यक्ति था जिसके वंशज अब्बासी खलीफा लोगोंके प्रसिद्ध वजीर हुए।

'अरब लोग आरम्भिक कालसे ही भारतीय साहित्य और विज्ञानसे सम्पर्क स्थापित कर चुके थे। हिजरी सन्की दूसरी सदीमें ही उन्होंने बौद्ध ग्रन्थोंका भाषान्तर किया था। किताबुल्वुद और बिलावा एवं सिन्द हिन्द (सिद्धान्त) और शुश्रुद (सुश्रुत) तथा सरक (चरक) जैसे ज्योतिष और आयुर्वेद विषयक ग्रन्थ, कलीलादमनह (पञ्चतन्त्र) और किताब सिन्दबाद जैसे कथाग्रन्थ तथा तर्कशास्त्र और रणविज्ञान विषयक ग्रन्थ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

'जिन लोगोंसे उनका सम्पर्क होता था उनके रीति-रिवाज, रहन-सहन, विज्ञान, धर्म आदिका ज्ञान प्राप्त करनेमें वे बड़ी तत्परता दिखलाते थे। अल-किन्दीने भारतीय धर्मोंपर एक पुस्तक लिखी थी और सुलेमान तथा मसऊदीने यात्रामें सङ्कलित विवरणोंको अपनी रचनाओंमें स्थान दिया। अल्नादीम् अल्-अशरी, अल्-बेरूनी, शाहरास्तनी और बहुतसे अन्य लेखकोंने भारतीय धर्मों और दार्शनिक पद्धतियोंपर अपनी पुस्तकोंमें विस्तारके साथ विचार किया है।

मुसलमानी साहित्यमें बुद्धका सन्तके रूपमें वर्णन किया गया है और सन्त-कथा-लेखक मुसलमानोंने बुद्ध सम्बन्धी कथाओंको इब्न अधमकी कथाओंके साथ मिलाकर एक कर दिया है। जाड़ेमें भ्रमण करनेवाले और किसी जगह दो रातसे अधिक न ठहरनेवाले संन्यासियोंसे मुसलमान मनीषियोंका सीधा परिचय था। इन्हीं संन्यासियोंसे उन्होंने चार नियम—स्वच्छता, पवित्रता, सत्य और निर्धनता—तथा मालाका उपयोग सीखा था।

'इस स्थितिमें निर्वाण विषयक कल्पना, अष्टाङ्गमार्ग, योगाभ्यास और चमत्कार-सिद्धिके विषय इस्लाममें फना, तरीका या सलूक, मोराबुल्त और करामत या मंजाजके नामसे अपना लिए गये तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। *

---

* ताराचन्द—'इन्फ्लुएन्स आव इस्लाम, आन इण्डियन कल्चर।'—पृष्ठ ९५–९७।

'लेकिन जिस व्यक्तिने अपने साहसिक सिद्धान्तोंके द्वारा इस्लाम जगत्में हलचल मचा दी वह था हुसेन बिन मनसूरल हल्लाजा। उसने भारत आदि कई देशोंका भ्रमण किया और तीन बार मक्काकी यात्रा की। अन्तमें उसके कार्य इतने असह्य प्रतीत हुए कि वह सन् ९२२ में गिरफ्तार कर लिया गया। चूँकि कबीर, दादू, नानक और दूसरे भारतीय सन्त सूफियोंकी ही भाषाका प्रयोग किया करते थे इसलिए मनसूरकी रहस्य-पद्धतिकी संक्षेपमें व्याख्या कर देना आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि उसके शब्द सूफीमतमें टकसाल हो गये थे।'*

आगे चलकर इब्नअल् अरबी और अब्दुलकरीम जिलीने मनसूरके सिद्धान्तोंको अपनी पद्धतियोंमें और इब्नअल् फरीद तथा अबी सईद इब्न अबुल खैरने अपनी कविताओंमें स्थान दिया और इन सिद्धान्तोंका प्रभाव भी दूर-दूरके देशोंमें फैल गया जिनमें भारत भी है।

जिली हिन्दू धर्मसे परिचित था क्योंकि उसने दस मुख्य सम्प्रदायोंमें बहिमा (ब्राह्मण) का उल्लेख किया है। ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें उसने कहा है कि 'ये लोग नबी या फरिश्तेका सहारा लिये बिना ही पूर्णब्रह्मके रूपमें ईश्वरकी आराधना करते हैं। उसके कथनानुसार ब्राह्मणोंके धर्म-ग्रन्थ ईश्वरद्वारा नहीं बल्कि अब्रह्म (ब्रह्म) के द्वारा उनको प्राप्त हुए थे। ये धर्म-ग्रन्थ पाँच थे जिनमें पाँचवाँ अत्यन्त दुरूह होनेके कारण ब्राह्मणोंकी शक्तिके परे था! और जो उसे पढ़ पाते थे वे सीधे मुसलमान हो गये।' स्पष्ट ही जिलीद्वारा उल्लिखित यह पाँचवाँ ग्रन्थ वेदान्त है जिसका अद्वैत दर्शन जिलीकी दृष्टिमें इस्लामसे अभिन्न जान पड़ा।'† जो मुसलमान रहस्यवादी अन्तर्भाव (फना) वाले संयोग (वस्ल)के पथपर अग्रसर होता है उसे सदैव आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता होती है क्योंकि 'गुरुके अभावमें शैतान उसका इमाम बन बैठता है।' गुरु या आचार्य (पीर या शेख) ही वह केन्द्रीय वस्तु है जिसके चारो ओर सूफी मतका यन्त्र परिचालित होता रहता है। शिष्यको यह उपदेश दिया जाता

---

* वही, पृष्ठ ६९–७० । † वही–पृष्ठ ७७–७८ ।

है कि वह बराबर अपने गुरु (मुर्शिद) का स्मरण करे, निरन्तर ध्यान-धारणा-द्वारा अपनेको उसमें अन्तर्भूत कर दे, सभी मनुष्यों और वस्तुओंमें उसको देखे और अन्ततः गुरुमें ही अपनेको लय कर दे। मुर्शिदमें इस प्रकार अन्तर्भूत होनेपर गुरु विभिन्न अवस्थाओंसे पार करता हुआ अन्तमें ईश्वरमें उसका अन्तर्भाव करा देता है। मुहम्मदने ईश्वर (इस्लाम) के प्रति आत्मसमर्पणकी शिक्षा दी थी, सूफीमतने गुरुके प्रति आत्मसमर्पणकी शिक्षा दी जो इस पृथिवीपर ईश्वरका प्रतिनिधि स्वरूप है। ❀

हाजी वारिसअली शाह उत्तर भारतके एक सूफी फकीर थे। बाराबंकी जिले (युक्तप्रान्त) के देवोशरीफमें उनका मजार है। उनके शिष्य (मुरीद) अपने नामके साथ 'वारिसी' जोड़ा करते हैं और उनकी संख्या भी बहुत अधिक है। वारिसने सूफी मतकी शिक्षाओंका सारांश कुछ फारसी शेरोंमें दिया है जो इस प्रकार है—

मन हमीं गोयम कि पीरे मन ख़ुदास्त,
पेशे–मुनकिर ईं सखुन गुफ़्तन ख़तास्त;
यक सवाले मीं कुनम् ऐ मर्दुमान,
पस जवाब ऊरा देहन्द ऐ मोमिनान;
हेज़ुम अन्दर नार चूँ शुद सोख़्ता,
रिश्ता अन्दर जामेशुद चूँ दोख़्ता;
पस वरा हेज़ुम बगोयम् या के नार,
रिश्तारा जामा बगोयम् या के तार;
चूँके पीरे मन फना फिल्लाह शुद,
रफ़्त ब-शरियत हमाँ अल्लाह शुद;
पस बपाये ऊ कुनम् हरदम सजूद,
वक्फ़ कर्दम दर रेहशजाने वजूद;

❀ वही–पृष्ठ ८१

आशिक़ी अज़ जुमले आलम् बरतर अस्त ,
ज़ां के ईं मिल्लत .खुदाई अकबर अस्त ।

—अर्थात् मैं कहता हूँ पीर ही मेरा खुदा है। मुनकिर (अविश्वास करनेवाले) के सामने ऐसा कहना भूल है। ऐ लोगो, मैं एक सवाल करता हूँ। ऐ विश्वास करनेवालो, इसका जवाब दो। जब लकड़ी आगमें जल जाती है, जब तागेका कपड़ा बन जाता है तब मैं उसे आग कहूँ या लकड़ी, तागेको कपड़ा कहूँ या तागा? इसी तरह जब मेरा पीर खुदामें मिल गया तो मनुष्यका वजूद (अस्तित्व) खत्म हो गया, सब खुदाका रूप हो गया। इसलिए मैं हरदम उसके कदमोंकी बन्दगी करता हूँ। मैंने अपनी जिन्दगी और वजूद उसकी राहपर लगा दिया है। प्रेम सारे लोगोंसे बढ़कर है, इसलिए यही खुदाकी मिल्लत है।

हिन्दू धर्मग्रन्थ ऐसे प्रसङ्गोंसे भरे पड़े हैं जो गुरुकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन करते हैं—ऐसा गुरु जो साधनाके कठिन और दुर्गम मार्गपर शिष्यका नमन करता है और जिसके अभावमें प्रगति सर्वथा असम्भव है। वस्तुतः 'गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, और गुरु ही महेश्वर है, गुरु ही स्वयं परब्रह्म है, और मैं उसी गुरुकी वन्दना करता हूँ'—यह प्रतिदिनकी सामान्य स्तुति है। गुरुकी शरणमें जाना और उससे दीक्षित होना प्रत्येक हिन्दूका कर्तव्य और आकांक्षा है।

"कबीरके पन्थ (मार्ग, सम्प्रदाय) में गुरुका वही स्थान है जो सूफी मतमें। सूफियोंके सम्बन्धका यह कथन कि 'उनमें परमेश्वरकी आराधना मनुष्यकी ही आराधना है" इसमें भी उसी रूपमें मान्य है क्योंकि कबीरका कथन है—'गुरुको ही गोविन्द (ईश्वर) मानो' बल्कि इससे भी बढ़कर—

'अगर हरि रुष्ट होता है तो बचावकी सूरत रह भी जाती है पर गुरुके रुष्ट होनेपर तो निस्तार ही नहीं है।'

और सूफी सम्प्रदायकी तरह कबीर-पन्थमें भी 'वास्तविक ध्यान तो गुरुके ही रूपका और वास्तविक पूजन गुरुके ही चरणोंका है। गुरुका ही शब्द वास्त-

विक पोत हैं और वही तथ्य और अनुभूतिकी दृष्टिसे सत्य है ।' और तीनो लोकों और नवो भुवनोंमें गुरुसे बढ़कर कोई नहीं है ।'*

"सूफियोंकी ही तरह नानकका भी यह उपदेश है कि ईश्वरकी दिशामें आत्माकी यात्रामें गुरुद्वारा पथ-प्रदर्शन सर्वथा आवश्यक है। उनकी पद्धतिमें गुरुका स्थान ठोक वही है जो कबीर-पन्थमें ।"†

उत्तर भारतके प्रत्येक हिन्दूके मानसमें कबीर और नानकके नाम ठीक उन्हीं व्यक्तियोंके नामोंकी तरह प्रत्यक्ष होते हैं जो इस्लाम और हिन्दू वेदान्तसे समान रूपसे प्रभावित थे। कबीरकी साखियों और भक्तिके पदोंका अनगिनत हिन्दू पाठ करते हैं और असंख्य परिवारोंमें वे सायं—प्रातः प्रार्थनाके समय गाये भी जाते हैं।

'इस प्रकार कबीरने भारतीयोंका ध्यान एक सार्वलौकिक मार्गवाले धर्मकी ओर आकृष्ट किया और एक ऐसा पथ प्रस्तुत कर दिया जिसपर दोनों साथ-साथ चल सकें। किसी भी हिन्दू या मुसलमानको इस प्रकारके धर्मके प्रति आपत्ति नहीं हो सकतो थी। कबीरके सन्देशका यही रचनात्मक अंश था, पर इसका एक विध्वंसात्मक पहलू भी था। वह यह कि उस जंगलको साफ किये बिना जो प्राचीन पगडण्डियोंको ढँके हुए थे, कोई नया रास्ता तैयार करना असम्भव था। इसलिए कबीरने उस सारे बाह्य आवरणपर जितने सत्यको ढँक रखा था या भारतीय सम्प्रदायोंको एक दूसरेसे अलग कर रखा था, निर्भीक, एवं रोष तथा कटुतापूर्ण शब्दोंसे आक्रमण किया ; उन्होंने न तो हिन्दुओंको छोड़ा और न मुसलमानोंको।

'उन्होंने हिन्दुओंसे बाह्यधार्मिक कृत्य, बलिदान, सिद्धिका लोभ, मौखिक-पूजा, नियमोंकी आवृत्ति, तीर्थाटन, उपवास, मूर्ति एवं देवी-देवताओंकी पूजा, ब्राह्मणोंकी प्रधानता, वर्णगत भेदभाव, छूत-छात और खान-पान सम्बन्धी दुर्भावनाओंका परित्याग करनेको कहा जिसपर बुद्धके समयसे ही प्रत्येक सुधारक

---

* वही पृष्ठ १५८ । † वही, पृष्ठ १७६ ।

जोर देता रहा है ।...मुसलमानोंसे उन्होंने बिलगाव, नबी और उनकी पुस्तकपर अन्धविश्वास, धार्मिक कृत्योंमें बाह्याडम्बर, हज, रोजा-नमाज, औलिया, पीर एवं पैगम्बरकी पूजा छोड़नेको कहा ।

'उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनोंसे सभी जीवितोंके प्रति श्रद्धाभाव रखने और रक्तपातसे विरत रहने, जाति और पदगत अभिमानका परित्याग करने, प्रवृत्ति और निवृत्तिकी अतिसे बचने और जीवनको समर्पणकी वस्तु समझनेका भी अनुरोध किया । उन्होंने बार-बार यह बात दुहरायी है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही हैं, एक ही ईश्वरकी पूजा करते हैं, एक ही पिताकी सन्तान हैं और एक ही रक्तसे उनका निर्माण हुआ है ।*

यह बात हरएक आदमी जानता है कि गुरुनानकका सारा उपदेश दोनों धर्मोंके मूल सिद्धान्तोंका समन्वय मात्र है । 'नानकका सन्देश हिन्दू और मुसलमान दोनोंको मिलानेके लिए था । उन्होंने यह अनुभव किया कि समाजगत बुराइयोंको दूर करनेके लिए धार्मिक सङ्घर्षोंका अन्त परमावश्यक है ।† नानक अपने प्रति दयाका प्रदर्शन नहीं करते और दूसरोंके प्रति बर्तावमें भी स्वभावतः उतने कोमल नहीं थे । निश्चित, स्पष्ट विचार आदि भले-बुरेके विवेकके साथ उन्होंने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मोंके अन्धविश्वासों और बाह्याडम्बरोंकी कठोर भर्त्सना की है ।‡

कबीर मुसलमान और नानक जन्मना हिन्दू थे, फिर भी वे उस सम्मिलनके परिणाम थे जो बाहरी पार्थक्य और विभेदके होते हुए जारी था ।

केवल दार्शनिक और धार्मिक विचारोंमें ही पुनर्मिलनकी यह क्रिया चल रही थी, व्यवहारके सम्बन्धमें भी ऐसे अनेकानेक मुसलमानोंके उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन्होंने मन्दिरों और मठोंको तथा हिन्दू साधुओं और हिन्दू शास्त्रोंके विद्वानोंको जागीरें दी थीं । जिस प्रकार मुसलमान बादशाहोंद्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये गये मन्दिरों और पवित्र स्थानोंका विवरण तैयार किया गया है उसी

---

* वही पृ० १६३-५ । † वही, पृ० १६८ । ‡ वही, पृष्ठ १७२ ।

प्रकार उनके दिये हुए दानों और जागीरों आदिका भी विवरण यदि कोई विद्वान् प्रस्तुत कर सके तो यह बहुत बड़ा सेवा-कार्य होगा।

'यदि आपसमें सांस्कृतिक सहयोग न होता तो मुसलमान शासक हिन्दुओंके और हिन्दू शासक मुसलमानोंके आराधना-स्थानों और विद्यालयोंके निमित्त सनदें आदि क्यों देते? दक्षिण भारतके इतिहासके विद्यार्थियोंको आदिलशाही, कुतुब-शाही और आसफशाही वंशोंसे ब्राह्मणोंको मिली हुई वृत्तियोंके अनगिनत उदाहरण मिले होंगे। दिल्लीके बादशाहोंके साथ चलनेवाले संघर्षके बाद भी मराठा शासकोंने मुसलमानोंकी मसजिदोंके लिए इसी प्रकारकी वृत्तियाँ दी थीं।'* बिहारके दो प्रसिद्ध उदाहरणोंका भी यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। बोध-गयाके महन्तकी लाखों रुपये सालाना आमदनीवाली जमींदारीका मुख्य अंश दिल्लीके मुहम्मदशाहसे मिला था जिन्होंने महन्त लालगिरिको, जो संस्थापकसे चौथी पीढ़ीमें हुए थे, एक फरमानद्वारा मस्तीपुर ताराडीह नामक ग्राम दिया था। इसी तरह दरभंगाकी बहुत बड़ी—शायद भारतकी सबसे बड़ी—जमींदारी भी वर्तमान महाराजाधिराजके पूर्वजको उनकी विद्वत्ता और सज्जनताके उपलक्ष्यमें अकबरसे मिली थी।

'हिन्दू प्रजाजनोंको शिक्षाका प्रोत्साहन देनेके लिए उसने (शेरशाहने) जागीरें दी थीं जिनका प्रबन्ध भी प्रजा ही करती थी। इसी उदार नीतिके कारण सभी जातियों और धर्मोंके लोगोंको वह प्रिय था।'†

कुछ अन्य उदाहरणोंका भी, जो मुझे डाक्टर सैयद महमूदसे प्राप्त हुए हैं यहाँ उल्लेख किया जा सकता है—

काश्मीरका सुलतान जैनुल आबदीन अमरनाथ और शारदादेवीके मन्दिरका दर्शन करने जाया करता था और तीर्थयात्रियोंके आरामके लिए वहाँ धर्मशालाएँ बनवायी थीं।

---

* अतुलानन्द चक्रवर्ती—'कॉल इट पालिटिक्स', पृष्ठ ४४

† ईश्वरीप्रसाद—'हिस्टरी आव मुसलिम रूल इन इण्डिया', पृष्ठ ३३९।

सन् १७८० में हरद्वारपर नजीबाबादके पठानोंका शासन था। नवाबने यहाँ हिन्दू तीर्थयात्रियोंके आरामके लिए बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ बनवा दी थीं जो आज भी मौजूद हैं और हिन्दुओंके अधिकारमें हैं।

सन् १५८८ में गुरु अर्जुनदेवने अमृतसरमें एक तालाब खुदवाया और उसी साल प्रार्थना मन्दिर बनवानेका विचार किया। इस हर मन्दिरकी नींव एक मुसलमान फकीरने जिसका नाम मियाँ पीर या बालापीर था, रखी थी (सरदार उधम सिंहकृत 'हिस्टरी आव दि दरबार आव अमृतसर)।

आलमगीरके शासनकालके प्रसिद्ध इतिहास लेखक बटालाके मुंशी सुजान-रायने अपनी 'खुलासतुल तवारीख' नामक पुस्तकमें देपालीवाल नामक ग्रामका उल्लेख किया है जो कालानूरके पास है। यहाँ शम्शुद्दीनका मकबरा है जिसका बहुतसे लोग दर्शन करने जाया करते हैं। उसने लिखा है कि 'हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंके लोगोंकी शाह शम्शुद्दीनके प्रति बड़ी भक्ति है, लेकिन दीपाली नामक हिन्दूकी भक्ति अन्य हिन्दुओं और मुसलमानोंसे अधिक सिद्ध हुई। शाह दरयायीकी मृत्युके बाद मुसलमान न होते हुए भी दीपाली हिन्दू मुसलमान दोनों जातियोंकी रायसे मकबरेका संरक्षक और निरीक्षक नियुक्त किया गया।...कुछ वर्ष पहले मुसलमानोंने हिन्दू निरीक्षकको पृथक् करा देनेका प्रयत्न किया, यहाँतक कि इसके लिए धार्मिक कारण भी रखे गये, पर आलमगीरी हुकू-मतने इस प्रयत्नको सफल नहीं होने दिया। आलमगीरके शासनके तीसरे वर्षमें, यह पुस्तक लिखते समय हिन्दू ही उस मकबरेके प्रबन्धक हैं।

हैदराबाद (दक्षिण)में इस समय भी एक मशहूर बुजुर्ग (पीर) के दरगाहका संरक्षक (मुतवल्ली) एक ब्राह्मण-परिवार है। निजामने दरगाहको एक बड़ी जागीर दे दी है और जनता भी भेंट पूजा चढ़ाती है। मुसलमानोंने हिन्दू मुतवल्लीको हटानेकी कोशिश की पर निजामने इसे स्वीकार नहीं किया।

आज भी हैदराबाद स्थित सीताराम मन्दिर और माहोर (आदिलाबाद) के एक अन्य मन्दिरको निजामकी ओरसे वृत्ति मिली हुई है जिसकी वार्षिक

आय ५० या ६० हजार है। नन्दोरके सिख गुरुद्वारेको निजामकी ओरसे मिली हुई जागीरकी वार्षिक आय २० हजार रुपया है।

अहमदशाह बहादुर गाजीने वृत्तिके सम्बन्धमें सन् ११६७ हिजरीमें फारसीमें कुछ सनद दी थी जो इस आशयकी थी—

'अकबराबाद' जिलेके अचनेरा कस्बेके जमींदारों और किसानोंको विदित हो कि १७ बीघे मुआफी (बेलगान) जमीन शीतलदास वैरागीको श्रीठाकुरजीके भोग और नैवेदके लिए पुण्यार्थ दी जाती है जिसमें इस जमीनकी आयसे उक्त वैरागी ठाकुरजीकी पूजा आदिका खर्च चला सके।

'अचनेरा बाजारके चौधरीको मालूम हो कि उसे ठाकुरजीके लिए २० भार (नाप) गल्ला देना चाहिए। उक्त वैरागी इससे वञ्चित न हो। ता० ३२ मजान, ११३९ फसली 'शहाबुद्दीन खाँकी ओरसे चिंचवादके प्रसिद्ध गणेश-मन्दिरके खर्चके लिए दी गयी जागीरका कौलनामा—

चिंचवाद, परगना पूनाके मूरत गोसाईंके नाम, जिसके सम्बन्धमें खान-इ-हिकमत निशानने सूचित किया है कि वह कौलनामा (दानपत्र) चाहता है, इसलिए लिखित दानपत्र दिया जा रहा है कि अपने आदमियों और सम्बन्धियोंके साथ ग्राममें रहे और वहाँकी भूमिको उर्वरा और उन्नत बनाये। खुदा आजमके रहमसे वह किसी मुसीबतमें न पड़े या उसे नुकसान न पहुँचे इसलिए कबूलियत नामा लिखा गया—ता० १२ जकाद; १३२६ हिजरी।

इलाहाबादकी ऐसी ही जागीरोंके सम्बन्धमें दो फरमान हैं। इनमेंसे एक प्रसिद्ध महेश्वरनाथके मन्दिरके पुजारियोंको औरङ्गजेबकी ओरसे लिखा गया है।

औरङ्गजेबने ग्राम बस्ती, जिला बनारसके गिरिधर वल्द जगजीवन और महेशपुर, परगना हवेलीके जदुमिश्र, एवं पण्डित बलभद्र मिश्रको, जो सबके सब पुजारी थे, जागीरें दी थीं।

औरङ्गजेबने मुलतानके तुतलामाईके मन्दिरके लिए, जो अब भी मौजूद हैं, कल्याणदासको १०० रुपया खर्च देना मंजूर किया था।—**मुलतान जिलेकी बन्दोबस्त रिपोर्ट**

सुलतान मुहम्मद मुरादबख्शने ११५३ हिजरीमें उज्जैनके भण्डारसे रोज चार सेर घी देना मंजूर किया था जिसमें महाकालके मन्दिरमें रोज रातको रोशनी की जा सके।

साधारण रूपसे कहा जा सकता है कि बहुतसे मुसलमान बादशाह और शासक विज्ञानके बहुत बड़े संरक्षक थे और केवल फारसी और अरबी नहीं बल्कि भारतीय साहित्य और विज्ञानके अध्ययनके लिए भी प्रोत्साहित किया। भारतमें विद्याकी उन्नतिके लिए उन्होंने जो कुछ किया है उसे संक्षेपमें भी दे सकना सम्भव नहीं है। 'सम्राट्के संरक्षणमें भिन्न भिन्न विषयोंके कई संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद फारसी और अरबीमें हुआ। इसके अलावा ऐसे कोड़ियों मुसलमान सरदार थे जिन्होंने स्वयं संस्कृतका अध्ययन किया और इसे अमित संरक्षण प्रदान किया। उनमेंसे बहुतोंने हिन्दुओंकी विद्या मुसलमानोंके लिए सुलभ बनानेके विचारसे संस्कृत ग्रन्थोंका भाषान्तर किया। हिन्दूछात्रोंके पाठ-क्रममें संस्कृत ग्रन्थ प्रायः रखे जाते थे। सारांश यह कि यथासम्भव हर तरहसे संस्कृतको प्रोत्साहन दिया जाता था। * डाक्टर जेम्स एच० कजिन्सने मुसल-मानी कालमें भारतकी शिक्षाके सम्बन्धमें लिखते हुए कहा है 'मुसलमान बादशाह और शाहजादे स्वयं विद्यार्थी बनने और बौद्धिक रुचिके विषयोंमें हिन्दू संस्कृति भी सम्मिलित कर लेते थे। मुसलमानी साहित्यिक शिक्षामें हिन्दू साहित्य बिना किसी प्रतिबन्धके वैसे ही मिल रहा था जैसे मुगल चित्रकला राजपूत चित्रकलामें मिलती जा रही थी। प्राचीन हिन्दू ग्रन्थोंका फारसीमें अनुवाद भी किया गया। परिणामतः फारसी संस्कृतिका हिन्दू संस्कृतिपर प्रभाव भी पड़ा

आज भी हिन्दूलोग मुसलमानोंकी ही तरह बहुत बड़ी संख्यामें मुसलमान फकीरोंके दरगाह या मजारपर या उर्समेलोंके अवसरपर सारे भारतसे अजमेर शरीफ जैसे स्थानपर और बिहार प्रान्तसे बिहार शरीफ, मनेर शरीफ और फुलवारी

---

* एस० एम० जाफर : एजुकेशन इन मुसलिम इण्डिया, पृष्ठ १५।
† वही—पृष्ठ १५ (७.६.१९३५ के ईस्टर्नटाइम्ससे उद्धृत)

शरीफ पहुँचा करते हैं ।.मुसलमान फकीरोंके साथ बहुतसे हिन्दुओंका बहुत कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा गुरु और चेले तथा आचार्य और शिष्यके बीच हुआ करता है ।

मुसलमानोंके मुहर्रमके त्योहारमें बहुसंख्यक हिन्दुओंके सम्मिलित होनेकी बात सारे उत्तर भारतमें सर्वत्र प्रसिद्ध है ही । कुछ ही काल पहले सम्मिलित होनेवाले हिन्दुओंकी संख्या शायद मुसलमानोंसे अधिक ही हुआ करती थी; यह सिर्फ इस कारणसे कि हिन्दू मुसलमानोंसे संख्यामें बहुत अधिक हैं । हिन्दूलोग सिर्फ जुलूसमें ही शामिल नहीं होते थे, बल्कि वे लोग भी मुहर्रम उसी तरह मनाते थे जिस तरह मुसलमानलोग अपने घरोंमें मातम और इबादतके दिनके रूपमें मनाते हैं—जब कि न तो कोई आनन्दोत्सव हो सकता था और न विवाह या गृहप्रवेश आदि जैसा कोई शुभ कार्य । बहुतसे हिन्दुओंका अपना निजी ताजिया या सीपर हुआ करती थी और हिन्दू लड़के हरी पोशाक और बिल्ला (जो बिहारमें बद्धी कहलाता है) पहने तथा पानीका मशक लिये हुए पूरे पैक और बहिश्ती बने नजर आते थे । हिन्दू अखाड़े मुसलमान अखाड़ोंको तेग और तलवार, गदका और लाठी तथा बहुतसे दूसरे हथियारोंके खेलोंमें नीचा दिखानेकी कोशिश किया करते थे । इससे भी बढ़कर बात यह थी कि अखाड़े हिन्दुओं और मुसलमानोंके अलग अलग न होकर प्रायः दोनोंके मिले हुए होते थे ।

बाजे-गाजेके शोरगुलके साथ मुहर्रमका जुलूस मसजिदके सामनेसे गुजरनेपर कोई आपत्ति नहीं की जाती थी, और मसजिदके सामने हिदुओंके गाने-बजानेपर जैसा सिर-फुड़ौवल या उससे भी भयङ्कर घटनाएँ आज हुआ करती हैं, पहले नहीं हुआ करती थीं । विचित्र बात तो यह है कि हिन्दू जुलूसोंके जिस बाजेपर कहीं-कहीं मुसलमानोंद्वारा आपत्ति की जाती है उसके बजानेवाले प्रायः पेशेवर मुसलमान ही हुआ करते हैं । इसी प्रकार वह गाय भी, जिसका बकरीदके अवसरपर वध किया जाना उन्हीं हिन्दुओंके भड़क उठनेका कारण हुआ करता है जो शहरों और विशेषकर छावनियोंमें मांस या चमड़ेके लिए रातदिन उसका

कत्ल किया जाना बर्दाश्त करते रहते हैं, गाय प्रायः किसी हिन्दूकी ही होती है जिसे वह पैसेके लोभवश किसी मुसलमानके हाथ, उसके खरीदनेका उद्देश्य जानते हुए बेच डालता है। दूसरी ओर बाबर और बादके मुसलमान शासकोंका उदाहरण है जिन्होंने अगर गोवधका बिलकुल निषेध न भी किया तो कमसे कम हिन्दुओं-की भावनाका आदर करनेके लिए गोवधसे विरत रहनेपर अवश्य जोर दिया। ऐसे बहुतसे सम्भ्रान्त मुसलमान परिवार हैं जो अपने पड़ोसी हिन्दुओंकी भावना-का विचार कर कभी गोमांसका व्यवहार ही नहीं करते। 'ऐसा जान पड़ता है कि ईदके मौकेपर गायका बध नहीं किया जाता था क्योंकि कहा गया है कि उस दिन (ईदके दिन) जो व्यक्ति समर्थ हो वह अपने घरमें बकरा हलाल करे और वह दिन एक बड़े त्योहारके रूपमें माने।'*

इस स्थलपर जहीरुद्दीन मुहम्मद बादशाह गाजी (बाबर) की शाहजादा नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँको—जिसे ईश्वर चिरायु करे—राज्यकी शक्तिवृद्धिके निमित्त लिखी गयी वसीयतको उद्धृत करना उपयुक्त होगा—

'प्रिय पुत्र, भारतके साम्राज्यमें अनेक धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्ति निवास करते हैं। ईश्वरको धन्यवाद है कि उन्होंने ऐसा साम्राज्य तुम्हें प्रदान किया। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपने हृदयसे ऐसी सभी भ्रामक धारणाएँ निकाल बाहर करो जो तुमने विभिन्न धर्मोंके प्रति बना रखी हों। प्रत्येक व्यक्तिके प्रति उसके धर्मानुकूल न्याय करो। गायकी कुर्बानी विशेष रूपसे बन्द कर दो। कारण, उसके रहते तुम भारतीय जनताके हृदयको नहीं जीत सकते। तुम्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे तुम्हारी प्रजा हृदयसे राजभक्त बन सके।

'किसी भी सम्प्रदायके मन्दिर और धर्म-स्थानको नष्ट न करो। शासनका नियम यही है। न्याय ऐसा करो जिससे प्रजा राजाके प्रति और राजा प्रजाके प्रति सन्तुष्ट रहे। इसलामका प्रचार जुल्मकी तलवारकी अपेक्षा दया और उदारताकी तलवारके सहारे अधिक व्यापक रूपमें हो सकता है।

* ईश्वरीप्रसाद—'ए शार्ट हिस्टरी आव मुसलिम रूल इन इण्डिया' पृष्ठ ७३८

'शीया और सुन्नियोंके धार्मिक मतभेदोंकी उपेक्षा करो अन्यथा इसलामकी कमजोरी प्रकट होगी।

'ऐसा प्रयत्न करो जिससे विभिन्न विश्वासोंवाली प्रजा उसी भाँति आपसमें मिलकर एक हो जाय, जिस भाँति मानवशरीरके भीतर चारो तत्व आपसमें मिलकर एक हो गये हैं और सारा राज्य विभिन्न मतभेदोंसे सर्वथा मुक्त हो जाय। प्रेम प्रसारक सौभाग्यवान तैमूरलङ्गके संस्मरणोंको सदैव अपने नेत्रोंके सम्मुख रखो ताकि तुम शासनके कार्योंमें दक्ष हो सको। १ जमादिउल अव्वल ९३५ हिजरी।' *

मुसलमानोंकी सहिष्णुताके कुछ उदाहरण, जो मुझे डाक्टर सैयद महमूद-द्वारा उपलब्ध हुए हैं, यहाँ दिये जा रहे हैं—

प्रसिद्ध पुर्तगीज इतिहासज्ञ फरी सौजाने 'दक्खिनकी हालात'में लिखा है कि 'हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेकी सेवा किया करते थे और मुसलमान राजा हिन्दुओंको उच्च और सम्मानित पदोंपर नियुक्त किया करते थे। अर्थात् उस समय हिन्दुओंके विरुद्ध कोई भेदभाव न था। वे बिना किसी बाधाके अपने धार्मिक कृत्य और उत्सव किया करते थे। मुसलमान हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाओंके प्रति परम आदर प्रदर्शित किया करते थे।

औरङ्गजेबने शाहजहाँ और उनके मन्त्रियोंसे कितने ही योग्य हिन्दुओंकी नियुक्तिके लिए सिफारिश की थी। जैसे, इलिचपुरकी दीवानीका पद रिक्त होनेपर उन्होंने रामकरण नामके एक राजपूत अफसरके नामकी सिफारिश की परन्तु शाहजहाँने कुछ कारणोंसे यह सिफारिश स्वीकार नहीं की। औरङ्गजेबने उन्हें दुबारा लिखा कि इस पदके लिए इनसे उपयुक्त व्यक्ति मिलना असम्भव है। रुकात आलमगीरी, भाग १, पृष्ठ ११४। रुकात आलमगीरी तथा अदबे आलमगीरीमें इस प्रकारकी सिफारिशोंके कितने ही उदाहरण मिल सकते हैं।

---

* 'सर्चलाइट'के ३०।५।१९२६ के अंकमें प्रकाशित बाबरकी वसीयतका अनुवाद, जो कि कोल्हापुरके राजाराम कालेजके प्रिंसिपल डाक्टर बालकृष्णन्‌के पास सुरक्षित है।

सर अलफ्रेड लायलने 'एशियाटिक स्टडीज' में पृष्ठ २८९ पर लिखा है कि 'किन्तु उनमें (मुसलमान शासकोंमें) भारतवासियोंका मत परिवर्तन करानेकी भावनाका नाम भी न था यहाँतक कि उच्चपदस्थ मुसलमानोंके लिए यह आवश्यक भी न था कि उनका धार्मिक विश्वास ठीक वैसा ही हो जैसा कि शासकोंका था।'

आमतौरसे लोगोंकी यह धारणा है कि औरङ्गजेबने हिन्दुओंको जबरन मुसलमान बनाया, किन्तु निम्नलिखित एक अद्‌भुत उदाहरणसे उनके रुखका पता चल जायगा—'शाहजहाँने पुनः पुनः आज्ञा उल्लंघन करनेके अपराधमें बन्धेराके राजा इन्द्रमणिको कैद कर रखा था। औरङ्गजेब जब दक्षिणके सूबेदार नियुक्त हुए तो उन्होंने उनकी रिहाईके लिए शाहजहाँसे जोरदार सिफारिश की किन्तु शाहजहाँ इन्द्रमणिपर इतने नाराज थे कि उन्होंने औरङ्गजेबकी सिफारिश अस्वीकार कर दी और उन्हें लिखा कि इन्द्रमणिने पुनः पुनः ऐसे ही कार्य किये हैं जिनसे मैं क्रुद्ध होऊँ किन्तु यदि वह मुसलमान बनना स्वीकार कर ले तो उसकी रिहाई हो सकती है। औरङ्गजेबने इसका तीव्र विरोध किया और शाहजहाँको लिखा कि यह शर्त अव्यवहार्य अबुद्धिमत्तापूर्ण और दूरदर्शिता-शून्य है। उन्हें यदि छोड़ना है तो उन्हीं शर्तोंपर उन्हें छोड़ देना चाहिए जो शर्तें वे स्वयं स्वीकार करें। इस विषयमें औरङ्गजेबने प्रधानमन्त्री शफाउल्ला खाँको जो पत्र लिखा था वह 'अदबेआलमगीरी'में देखा जा सकता है।

ख—सामाजि जीवन

हिन्दुओं और मुसलमानोंने एक दूसरेके सामाजिक जीवन तथा रीति-रिवाजों-पर जो प्रभाव डाला वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह प्रभाव मानव-जीवनके जन्म, विवाह और मृत्यु इन तीन परम महत्वपूर्ण अवसरोंपर प्रचलित रीति-रिवाजों और उत्सवोंसे भली भाँति ज्ञात हो सकता है। यहाँ मैं थोड़ेसे ऐसे रीति-रिवाजोंका वर्णन कर रहा हूँ जो बिहारके मध्यम श्रेणीके अनेक हिन्दुओं और मुसलमानोंमें लगभग समान रूपसे प्रचलित हैं।

घरोंमें बच्चेके जन्मपर गीत गानेकी आम प्रथा है। ये गीत 'सोहर' कहलाते हैं। आसपास मुहल्लोंकी तमाम स्त्रियाँ एकत्र होकर ये गीत गाती हैं और अन्य उत्सवमें सम्मिलित होती हैं। जच्चाके कमरेके द्वारपर भूतप्रेतादिसे रक्षाके निमित्त आग जलती रहती है तथा लोहेका एक टुकड़ा, मुठियासीज नामक काँटेदार वृक्षकी डाल तथा ऐसी ही अन्य वस्तुएँ रख दी जाती हैं। जन्मके छठे दिन 'छठी' मनायी जाती है। उस दिन माता और बच्चेको स्नान कराया जाता है। बच्चेको गोदमें लेकर माता आकाशकी ओर देखती है तथा तारोंको गिनती है। बीसवें दिन 'बिस्तौरी' और पचासवें दिन 'छिल्ला' उत्सव मनाया जाता है। बच्चेके जन्मदिनसे लेकर 'छठी' तक जच्चा अपवित्र समझी जाती है और उसे अन्य व्यक्तियोंका भोजन स्पर्श करनेकी मनाही रहती है। कट्टरपन्थी इसलाम धर्ममें घरोंमें भूतप्रेतादिके घूमनेकी और स्पर्श करनेसे भोजनकी अपवित्रताकी भावनाका कोई स्थान नहीं है। ये दोनों भावनाएँ उसके लिए विदेशी हैं। वही बात जन्मके उपरान्त किसी निश्चित दिनपर बच्चेके स्नानके सम्बन्धमें भी है। परन्तु मुसलमान गृहस्थोंके यहाँ भी ये प्रथाएँ हिन्दुओंकी भाँति ही प्रचलित हैं और वे इन्हें इसी भाँति मनाते हैं।

बच्चा जिन बालोंके साथ जन्म लेता है उनका क्षौर कराना भी हिन्दुओं और मुसलमानोंके यहाँ महत्वपूर्ण कृत्य समझा जाता है। हिन्दुओंके यहाँ इसे 'मुण्डन' कहते हैं और मुसलमानोंके यहाँ 'अकीका'। सम्भव है इसका कोई धार्मिक महत्व हो परन्तु इसके मनाये जानेकी पद्धतिमें अद्भुत साम्य है।

इसलाममें विवाह कानूनी दृष्टिसे एक ठेका समझा जाता है। दूल्हा और दुलहिन पति और पत्नीके रूपमें रहना स्वीकार कर लेते हैं और अन्य ठेकोंकी भाँति इस ठेकेपर भी लोगोंकी गवाही होती है तथा स्वीकृतिके पूर्व विचार किया जाता है। यह ठेका रद्द भी किया जा सकता है किन्तु उस स्थितिमें क्षति पूर्त्ति करनी होती है। विवाहके अवसरपर ही यह निश्चित कर दिया जाता है कि क्षति पूर्त्तिके निमित्त कितनी रकम देनी पड़ेगी। विवाह सम्बन्ध भंग न होनेतक यह रकम नहीं देनी पड़ती। विवाहोत्सवका एक महत्त्वपूर्ण

अङ्ग और है। वह है गवाहोंके सम्मुख वर-वधू—दोनों पक्षके लोगोंमें समझौता। इसमें विशेष विलम्ब नहीं लगता और चन्द मिनटोंमें ही सारी कारर-वाई पूरी हो जाती है। 'निकाह'—बस इतना ही है। इसको यथावसर 'शादी' के नामसे मनाये जानेवाले उत्सवसे पृथक् कर सकते हैं।

हिन्दुओंके यहाँ विवाह एक पवित्र संस्कार समझा जाता है। सिद्धान्ततः वह अविच्छेद्य है। उस समय जो प्रतिज्ञा की जाती है वह धार्मिक प्रतिज्ञा है और उसके साक्षी केवल मनुष्य ही नहीं, सूर्य और चन्द्र, अग्नि और पृथिवी, जल और पाषाण भी रहते हैं जिनका अस्तित्व मानवके अनन्तमें एकाकार होनेके उपरान्त भी बना रहता है। विधिवत् करनेपर इस संस्कारमें बड़ा विलम्ब लगता है। इससे ऐसा जान पड़ेगा कि दोनोंकी विवाह-पद्धतिमें मूलतः अन्तर है। किन्तु व्यवहारतः जहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपनी-अपनी धार्मिक रीतिसे मूल कृत्य सम्पन्न करते हैं वहाँ अन्य पद्धतियाँ, जो धार्मिक दृष्टिसे आवश्यक नहीं हैं, अनेक अंशोंमें एक दूसरेसे मिलती-जुलती हैं। विवाहका धूम-धड़क्का और बारातका जुलूस, दावतें और उत्सव, महिलाओंद्वारा इस अवसरपर गाये जानेवाले गीत, उपहार, मनोविनोद, हँसी मजाक आदिमें पूर्ण साम्य है। इसलाममें धूम-धड़क्केकी मनाही की गयी है, हिन्दू धर्ममें न तो उसका आदेश ही है और न मनाही; पर आज दोनों सम्प्रदायोंमें विवाहके अवसरपर होनेवाले उत्सवको देखकर उसमें भेद करना कठिन है।

इसका विस्तृत विवरण दे देना अनुचित न होगा।

विवाहके अवसरपर बिहारके मुसलमानोंमें जो प्रथाएँ, रीति-रिवाज और उत्सव प्रचलित हैं उनपर हिन्दुओंकी प्रथाओं, रीति-रिवाजों और उत्सवका भारी प्रभाव पड़ा है। ऊपर लिखा जा चुका है कि मुसलमानी विवाहमें 'निकाह' परम आवश्यक संस्कार है। उसका उत्सववाला अंश 'शादी' कहलाता है पर प्रायः दोनों साथ ही साथ होते हैं। किन्तु कभी-कभी 'निकाह' और 'शादी' साथ-साथ न होकर भिन्न-भिन्न स्थानों और अवसरोंपर होते हैं। शादीके अवसरपर वरकी हैसियतके अनुरूप गाजेबाजे और धूमधड़क्केसे उसकी बारात वधूके यहाँ जाती है। वहाँ

वह साधारणतः श्वसुरके मकानमें नहीं, प्रत्युत अन्यत्र और प्रायः बाहर तम्बुओं और डेरोंमें ठहरायी जाती है। बारातकी बिदाईके पूर्व वर और वधू दोनोंके यहाँ कुछ रस्में अदा की जाती हैं। एक रस्म 'रतजगा'के नामसे प्रसिद्ध है। इसमें स्त्रियाँ सारी रात जागती रहती हैं और गुलगुला तैयार करती हैं। दूसरे दिन 'मँडवा'की रस्म होती है। इसमें मकानके भीतरी आँगनमें ऊँचे बाँसोंपर एक तम्बू ताना जाता है। तीसरे दिन 'कन्दूरी'की रस्म होती है। इसमें भोजन पकाकर मृत व्यक्तियोंके नामपर बाँटा जाता है। केवल सैयद स्त्रियोंको ही यह भोजन लेने और खानेका अधिकार है। चौथे दिन बारात रवाना होती है और वधूके यहाँ पहुँचती है। विवाहके कुछ दिन पूर्वसे वधूको मायूँ या माँजा करना पड़ता है। उस समय घरके भीतर ही रहना होता है और घरकी कुछ चुनी हुई स्त्रियाँ ही उससे मिलने पाती हैं। प्रतिदिन उसे उबटन लगाया जाता है तथा वह केवल विवाहके दिन ही बाहर निकलती है।

हिन्दुओंमें विवाहसे दो एक दिन पूर्व किसी शुभ दिनपर 'मण्डप' या 'मँड़वा' गाड़ा जाता है। एक विशेष पूजा होती है जिसमें पितृ और पूर्वजोंका आवाहन किया जाता है और उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे नवदम्पतिको आशीर्वाद देकर इस मङ्गल समारोहको सफल बनायें। कन्याका तेल चढ़ता है, उबटन होता है। यह परम महत्त्वपूर्ण संस्कार समझा जाता है। कहा ही गया है कि 'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार!' विवाहके कई दिन पहलेसे कन्या सबसे अलग रखी जाती है। इन दिनों वह स्नान भी नहीं करने पाती। इन्हीं सब कारणोंसे वह अत्यधिक मैली कुचैली और दुर्बल दिखाई पड़ती है। विवाहके दो एक दिन पूर्व समारोह पूर्वक उसे स्नान कराया जाता है। ब्राह्मण-भोजन तो हिन्दुओंके यहाँ सामान्य बात है। ऐसे अवसरोंपर उसका आयोजन रहता ही है। हाथी, घोड़ों, आजकल मोटरकारों और रात्रिके समय गैसबत्ती, रोशनी, बाजा आदि वस्तुओंसे सजी हुई बारातको देखकर यह पहचानना कठिन होता है कि यह बारात किसी हिन्दूकी है अथवा मुसलमानकी। मुसलमानोंकी भाँति ही हिन्दुओंकी बारात भी किसी दूसरेके मकान अथवा तम्बू रावटियोंमें

टिकायी जाती है। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि कन्याके पिताके घरमें इतना स्थान प्रायः नहीं होता कि वह सारी बारातको अपने घर टिका सके। हिन्दू हो या मुसलमान सबके यहाँ यही होता है।

बिहारके हिन्दुओंमें बारात कन्याके मकानपर पहुँचती है। वहाँ कन्याके परिवारकी स्त्रियाँ वरका स्वागत करती हैं, उसपर जल और अक्षत छिड़कती हैं, उसके माथेपर तिलक लगाती हैं और उसकी आरती उतारती हैं। कन्याका पिता भी वरका स्वागत करता है तथा कुछ मुद्रा आदि उसे भेंट करता है। आगत सज्जनोंका भी स्वागत होता है और उन्हें हलका जलपान कराया जाता है। इसके उपरान्त बारात जनवासे लौट जाती है। इसे 'परछावन' कहते हैं। इसके बाद ही कन्यापक्षके लोग, जिनके साथ कुछ स्त्रियाँ जल और भोजनकी सामग्री लिये रहती हैं, जनवासेमें पहुँचते हैं और बारातको भोजनके लिए बाकायदे आमन्त्रित करते हैं और वरके बुजुर्गोंको कुछ भेंट दी जाती है। यह 'धुरचक' कहलाता है।

इसके कुछ ही देर बाद बारात कन्याके मकानपर पहुँचती है। वरका बड़ा भाई एक विशेष रूपसे सजायी पेटीमें, जो देखनेमें मन्दिर जैसी लगती है कन्याके लिए वस्त्र, आभूषण, फल मेवा, इत्र आदि लेकर मण्डपमें पहुँचता है और वहाँपर बैठी कन्याको ये सब वस्तुएँ भेंट करता है। केवल यही एक ऐसा अवसर है जब ऐसा समझा जाता है वरका बड़ा भाई कन्याको देखता अथवा स्पर्श करता है। इसे 'कन्या निरीक्षण' कहते हैं। इसके बाद ही विवाहकी पद्धति आरम्भ होती है और वर-वधू मण्डपमें लाये जाते हैं। वधू उन वस्त्रोंको पहनकर मण्डपमें आती है जो वरकी ओरसे भेंट किये जाते हैं और वर उन वस्त्रोंको पहनकर आता है जो कन्या पक्षकी ओरसे उसे भेंट किये जाते हैं। ईश्वरकी आराधनाके उपरान्त कन्याके मातापिता विधिवत् कन्याको वरके हाथोंमें समर्पण करते हैं। दोनों पक्षके कुछ निकट सम्बन्धी वहाँ उपस्थित रहते हैं। बिहारमें पर्देका प्राबल्य होनेके कारण इस अवसरपर वरपक्षके केवल वे ही व्यक्ति मण्डपमें रहने पाते हैं जिनका कार्यवश वहाँ रहना अनिवार्य होता

है, कारण, मण्डपस्थलमें कन्याके घरकी स्त्रियाँ उपस्थित रहती हैं। बाराती आदि तो विवाहके साक्षी माने ही जाते हैं, ईश्वर, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, . पृथिवी, पत्थर आदि भी साक्षी माने जाते हैं। इन सबसे यह आशा रखी जाती है कि वर-वधू दोनोंको आशीर्वाद देंगे। वर-वधू दोनों ही कुछ मन्त्रोंका उच्चारण करते हैं जिनमें एक दूसरेके प्रति ईमानदार और विश्वस्त होनेका वचन दिया जाता है। इसके उपरान्त वर-वधू अग्निकी परिक्रमा करते हैं और वधूके मस्तकमें वरके सिन्दूरदान करनेके उपरान्त संस्कार पूर्ण होता है। इसे 'सिन्दूरदान' कहते हैं। सिन्दूर महिलाओंके सौभाग्यका चिह्न है और वे उस समयतक उसे धारण करती हैं जबतक पति जीवित रहता है।

मुसलमानोंमें बारात आनेके उपरान्त 'बरी' की प्रथा है। इसमें बारातवाले वस्त्र, तेल, मिठाई, फूल आदि लेकर बाजे-गाजेके साथ कन्याके मकानकी ओर रवाना होते हैं। ये लोग एक टोकरी जिसे 'सुहागपुरा' कहते हैं, लेकर आगे-आगे चलते हैं। यह टोकरी हिन्दुओंकी टोकरीको ही भाँति होती है और इसमें फल, मिठाई, मसाले, रंगा सूत, चावल आदि सामग्री रहती है। कन्या पक्ष-वालोंको जब ये वस्तुएँ मिल जाती हैं तो ये वरके लिए अपनी ओरसे वस्त्र आदि जिसे 'खिलअत' कहते हैं, भेंट करते हैं। वर इन वस्त्रोंको पहन लेता है। तब, यदि पहलेसे नहीं हुआ रहता है तो, 'निकाह' होता है। हिन्दुओंमें जिस भाँति वर वधूके मस्तकमें सिन्दूर दान करता है उसी भाँति उनके यहाँ वर वधूके मस्तकमें चन्दन लेप करता है जिसे कि 'माँगभरी' कहते हैं। इस अवसरपर समयानुकूल कविता पढ़ी जाती है और गीत गाये जाते हैं। हिन्दुओंमें भी 'धुरचक' और 'कन्या निरीक्षण' के अवसरपर कविता पाठ होता है और लड़के आपसमें पद्यप्रतियोगिता करते हैं। विवाहके सभी अवसरोंपर हिन्दुओंके यहाँ भी और मुसलमानोंके यहाँ भी, स्त्रियाँ उपयुक्त गीत गाती हैं। ये गीत ध्वनि और आशयमें एक दूसरेसे पूर्णतः मिलते हैं।

बारात कन्याके यहाँ प्रायः एक दिन ठहरकर वापस लौट पड़ती है। दूसरे दिन वरको मण्डपस्थलमें ले जाते हैं और वहाँपर कुछ रस्में अदा की जाती हैं।

इनमें स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। धार्मिक महत्व न होनेपर भी ये रीति-रिवाज प्रचलित हैं और स्थान-स्थानपर इनमें कुछ भेद है। हिन्दुओंमें वरको उबटन लगानेकी प्रथा है। वह उबटन लगवाना केवल तभी स्वीकार करता है जब उसे कुछ प्राप्ति होती है। सायंकाल स्त्रियाँ वरको वधूके कमरेमें ले जाती हैं। वहाँपर 'कोहबर' होता है। बारातके रवाना होनेके पूर्व 'मुँहदेखी' होती है। उसमें वरवधू पास पास बैठे रहते हैं और ऐसा मान लिया जाता है कि वरके सम्बन्धी वधूका मुख देखकर उसे कुछ भेंट देते हैं। सबसे अन्तमें 'बिदाई' होती है। इस बीचमें कन्यापक्षवाले बारातवालोंको भोजन कराते हैं। मुसलमानोंमें भी वरको मण्डपस्थलमें ले जाते हैं और वहाँ 'रूनुमाई' की प्रथा पूरी की जाती है। इसमें वर-वधू दर्पणमें एक दूसरेका मुख देखते हैं। वर-वधूकी बिदाईके अवसरपर हिन्दुओंमें भी और मुसलमानोंमें भी वरको अनेक वस्तुएँ भेंट की जाती हैं। इनमें पहनने ओढ़नेके वस्त्र, बर्तन तथा घर गृहस्थीके उपयोगकी अनेक वस्तुएँ रहती हैं। वधूके लिए पालकी या वैसी ही कोई अन्य सवारी रहती है। हिन्दुओंमें वरको साधारणतः एक गाय तो भेंट की ही जाती है। जो लोग सम्पन्न हैं वे घोड़ा, हाथी और आजकल तो मोटरकार भी भेंट करते हैं।

मुसलमानोंमें वधूको सीधे ही वरके मकानपर नहीं ले जाते बल्कि उसे 'दरगाह' जैसे किसी पवित्र स्थानपर ठहराते हैं। वहाँपर वरके घरकी स्त्रियाँ जल और आमके वृक्षकी डालियाँ लेकर आती हैं और कुछ रस्में पूरी करती हैं। वरके मकानपर आनेपर वरका बहनोई उसकी सवारी रोकता है और उस समय-तक उसे घरमें प्रविष्ट नहीं होने देता जबतक उसे कुछ दक्षिणा नहीं मिल जाती। हिन्दुओंमें भी वरके बहनोईको इसी भाँति पालकी रोकनेपर कुछ प्राप्ति होती है और वर-वधूको मन्दिर अथवा 'काली-स्थान' जैसे किसी पवित्र स्थानपर परिक्रमाके लिए ले जाते हैं।

इस भाँति हम देखते हैं कि हिन्दू और मुसलमान—दोनोंके यहाँ एकसे रीति-रिवाज होते हैं। और मजेकी बात यह है कि इसलाममें ऐसे रीति-रिवाज

का कोई विधान नहीं है और इनमेंसे अनेक रस्में कट्टर और दकियानूसी मुसलमानोंकी दृष्टिमें धर्मके विरुद्ध भी हो सकती हैं।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने अपने धर्मके अनुसार मृतकोंका अन्तिम संस्कार करते हैं। मुसलमानोंमें मुर्दा दफनानेके पहले प्रार्थना की जाती है। इसके उपरान्त मृतात्माके हितके लिए तीसरे दिन (तीजा) अथवा चौथे दिन (चहारुमपर) और फिर दसवें दिन (दसवाँ) और चालीसवें दिन (चहेलुमपर) भी प्रार्थना की जाती है। मैं नहीं जानता कि इस्लामने मृत्युके उपरान्त इन निश्चित दिनोंपर मृतकके लिए प्रार्थना करनेकी आज्ञा दी है अथवा नहीं परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओंके यहाँ भी दूसरे, सातवें, दसवें अथवा तेरहवें या तीसवें दिन ऐसा ही संस्कार होता है। वे लोग भी उस दिन मृतात्माके लिए जल और पिण्ड भेंट करते हैं, दरिद्रनारायणोंको भोजन कराते हैं तथा भिक्षा वितरण करते हैं।

हिन्दूधर्ममें ऐसा माना जाता है कि केवल जीवनकालमें ही नहीं, मृत्युके उपरान्त भी विवाह विच्छेदकी अनुमति नहीं है। अतः विधवाका पुनर्विवाह नहीं हो सकता। इस्लाममें ऐसी बात नहीं और वहाँ तो स्वयं पैगम्बरने विधवा विवाहका आदर्श उपस्थित किया है। फिर भी हिन्दू वातावरण और रीतिरिवाजोंने मुसलमानोंपर इतना अधिक प्रभाव डाला है कि उत्तर भारतके आदरणीय मुसलमान परिवारोंमें, धार्मिक अथवा सामाजिक निषेध न होनेपर भी किसी विधवाका पुनर्विवाह आदरको दृष्टिसे नहीं देखा जाता।

हिन्दुओंकी जातिकी प्रथाने भी भारतीय मुसलमानोंको प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ा। मुसलमानोंमें जाति-भेद प्रदर्शित करनेके लिए सैयद, शेख, पठान, मलिक, मोमीन, मन्सूर, रायन, कसाब, राकी, हज्जाम, धोबी तथा अन्य कितने ही नाम लिये जा सकते हैं। इनमें कुछ जातियाँ तो पेशोंके अनुरूप हैं और कुछ जन्म और वंशानुक्रमसे हैं। विधवाओंके पुनर्विवाहकी भाँति ही, धार्मिक और स्वाभाविक निषेध न होनेपर भी, विवाहके मामलेमें भी प्रायः यही देखा जाता है कि अपनी जाति या वर्गके भीतर ही लोग विवाह करते हैं। इसमें

अपवाद कम ही देखनेमें आते हैं। पर बात विवाहतक ही नहीं इनके निकट सम्पर्कमें रहकर कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि ये जाति अथवा वर्ग बहुत हदतक आगे बढ़ गये हैं और इनमें भी लगभग वैसी ही पार्थक्यकी भावना उत्पन्न हो गयी है जैसी हिन्दुओंमें स्पष्ट रूपसे देखी जाती है। जैसे, मुसलमानोंमें एक मुसलमान भङ्गीका स्थान वैसा ही समझा जाता है जैसा हिन्दुओंमें एक हिन्दू भङ्गीका। इस्लाममें ऐसे किसी भेद भावकी बात नहीं है। यह आसपासके वातावरणका प्रभाव है जिसके कारण भारतके मुसलमानोंमें भी यह बात आ गयी है।

इस सम्बन्धमें यह बता देना आवश्यक है कि असंख्य मुसलमान हिन्दू धर्मसे परिवर्तित होकर इस्लाममें पहुँचे हैं। इतना अधिक समय बीत जानेपर भी वे अब भी अपने पुराने हिन्दू रीतिरिवाजोंको मानते चले आ रहे हैं। उदाहरण स्वरूप 'मलकाना' राजपूतोंको ले लीजिये। लगभग २० वर्ष पूर्व उन्हें पुनः हिन्दूधर्ममें लेनेके प्रयत्नमें अत्यधिक रक्तपात हुआ था। वे आज भी ऐसी अनेक रस्में मनाते हैं जो उस समय मनाया करते थे जब वे हिन्दू थे। निस्सन्देह मुसलमानोंमें ऐसी अनेक जातियाँ हैं जिन्होंने इसी भाँति अपनी पुरानी प्रथाओंका त्याग नहीं किया है।

इस बातको सभी जानते हैं कि मुसलमानोंके अनेक वर्ग अभी हालतक उत्तराधिकारके उन्हीं नियमों और कानूनोंका पालन किया करते थे जिन्हें वे इस्लाम स्वीकार करनेके पूर्व मानते थे यद्यपि इस सम्बन्धमें इस्लामी कानून कुछ और है। सिन्ध, गुजरात और बम्बईमें खोजा, कच्छी, मेमन और बोहरा बड़े धनी हैं। केवल भारतके अन्य भागोंमें ही नहीं इनलोगोंका व्यापार दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, अरब, ईरान, मलाया आदि देशोंमें भी है। इनमेंसे अनेक व्यक्ति १९३७ तक अनेक हिन्दू प्रथाएँ ही नहीं, उत्तराधिकारके हिन्दू नियम भी मानते रहे हैं। इसी भाँति बलूचियों तथा कुछ पञ्जाबी मुसलमानोंमें उनके अपने कानून और नियम प्रचलित हैं। मोपले 'मरुमक्काथय्यम्' कानून मानते हैं। सन् १९३७ में ही एक ऐसा कानून बना जिसके अनुसार शरियत मुसल-

मानोंपर लागू हुई और तबसे किसी विरोधी रीति-रिवाजके लिए उसमें स्थान नहीं रहा।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओंने मुसलमानोंके साथ बैठकर भोजन करना कभी स्वीकार नहीं किया। किन्तु सभी हिन्दू भी तो एक दूसरेके साथ बैठकर भोजन नहीं करते। ये रूढ़ियाँ आज भी हैं और केवल हिन्दुओं और मुसलमानों-के बीच ही नहीं, हिन्दुओंकी विभिन्न जातियों, उपजातियोंके भीतर वर्तमान हैं। न तो कोई ब्राह्मण राजपूतके साथ बैठकर भोजन करता है न कोई राजपूत किसी वैश्य या कायस्थके साथ। ब्राह्मणोंमें भी शाकद्वीपी ब्राह्मण सरयूपारीणके साथ भोजन नहीं करते और न दक्षिणी ब्राह्मण किसी बङ्गाली अथवा मैथिल ब्राह्मणके साथ। सभी सरयूपारीण ब्राह्मण एक दूसरेके साथ बैठकर भोजन नहीं करते और न श्रीवास्तव कायस्थ किसी अम्बष्ठ अथवा कर्ण कायस्थके साथ भोजन करते हैं। यदि कोई गैर हिन्दू इन रूढ़ियोंकी तहमें प्रविष्ट होना चाहे तो वह पूर्णतः चकित हुए बिना न रहेगा। केवल जातियोंमें ही ये रूढ़ियाँ सीमित नहीं हैं अपितु विभिन्न प्रकारके भोजनों तथा पकानेके ढङ्गमें भी भेद पड़ जाता है। बिहारमें घीमें तली रोटी यदि अन्य जातिके व्यक्तिद्वारा छू जाय तब भी वह खा ली जाती है परन्तु केवल आगपर पकायी हुई रोटी नहीं खायी जाती। किन्तु बङ्गालमें ऐसा नहीं है। कुछ तरकारियाँ यदि बिना नमक डाले पकायी जायँ तो खायी जा सकती हैं, नमक पड़ जानेपर नहीं। इस सम्बन्धमें विभिन्न प्रान्तों, जातियों और वस्तुओंमें अन्तर रहता है। जो व्यक्ति ऐसे समाजमें उत्पन्न और और बढ़ा पनपा नहीं है वह इसके भेद-उपभेदों और उनके वास्तविक तथ्योंको, यदि वस्तुतः उनके भीतर कोई तत्व निहित है तो, नहीं समझ सकता। इसीसे यदि कोई राजपूत किसी कायस्थका अथवा कोई कायस्थ किसी राजपूतका स्पर्श किया हुआ भोजन करनेसे इनकार कर देता है तो उसे इसमें अपमानका कोई बोध नहीं होता। सब इसे स्वाभाविक समझते हैं अतः इससे उनमें अपमान अथवा हीनताकी भावनाका उदय नहीं होता। अभी हालतक कथित दलितवर्गके लोग ऐसी बातोंमें किसी प्रकारकी कटुता अथवा घृणाका

बोध नहीं करते रहे हैं। उपर्युक्त बातें साधारण हिन्दू समाजमें प्रचलित हैं, नवशिक्षितों अथवा ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज जैसी सुधारक संस्थाओं उनके सम्मेलनों अथवा महात्मा गान्धीके आन्दोलनसे प्रभावित लोगोंमें नहीं। इन शिक्षित अथवा सुधरे विचारवालोंने अपने जीवनसे ऐसी कितनी धार्मिक रूढ़ियोंको निकाल बाहर किया है और कुछ लोग ऊपरसे इनका व्यवहार करते हुए भी हृदयसे न तो इन्हें स्वीकार करते हैं और न कोई महत्त्व ही देते हैं।

हिन्दुओं और उनकी जातिगत भावनाओके सम्पर्कमें रहनेवाले मुसलमान इन धार्मिक रूढ़ियोंकी बात भली भाँति समझते हैं। वे ऐसी बातोंका विरोध नहीं करते। कारण वे जानते हैं कि ऐसी रूढ़ियाँ किसी हीनता अथवा उच्चता-की भावनाके वशीभूत होकर व्यवहृत नहीं होतीं अपितु पुरातनकालसे प्रथाके रूपमें चलती आ रही हैं इसीलिए अब भी व्यववृत हो रही हैं। इसी कारण वे हिन्दुओंके यहाँ विवाह और जन्म आदिके उत्सवके समय आमन्त्रित होनेपर उसमें प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होते हैं और यही हाल मुसलमानोंके यहाँ है। ऐसे अवसरोंपर आमन्त्रित होनेपर हिन्दू भी उनके यहाँ प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होते हैं। स्वतन्त्र और मैत्रीपूर्ण सामाजिक सम्बन्धके मार्गमें भोजन कभी भी बाधक नहीं हुआ है। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरेकी जातिगत भावनाओंका आदर करते हुए भी एक दूसरेको खिलाते पिलाते रहे हैं। यह बात भी मैं साधारण मुसलिम समाजके सम्बन्धमें कह रहा हूँ, शिक्षित तथा आधु-निक विचारवाले मुसलमानोंके सम्बन्धमें नहीं। उपर्युक्त बातोंका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं जाति प्रथाका औचित्य सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ अथवा उसकी बुराइयोंको कम करके दिखानेके लिए प्रयत्नशील हूँ। मैंने केवल वास्तविकता दिखानेका प्रयत्न किया है। अब समय बदल गया है और उसके साथ-साथ लोगोंके विचारों, भावों और रुखों में भी परिवर्तन हो गया है। अतः जहाँ इस बातकी आवश्यकता है कि ये विभिन्न जातिभेद यथा-शीघ्र मिटाये जायँ, विशेषतः इसलिए भी कि अनेक हिन्दू और मुसलमान इनका विरोध कर उठे है, वहाँ इन बातोंको अत्यधिक महत्व देना भी अवांछ-

नीय है। यह कहना गलत है कि दोनों सम्प्रदायोंमें इसी कारण प्रेम, सद्भाव और सौहार्द्र उत्पन्न नहीं होता। भूतकालमें भी ऐसी बात न थी और आज भी ऐसी नहीं है।

प्रायः सभी प्रान्तोंमें फिर चाहे वे मुसलिम बहुमतवाले प्रान्त हों चाहे हिन्दू बहुमतवाले, ऐसे असंख्य ग्राम हैं जहाँ हिन्दू और मुसलमान साथ साथ रहते हैं। ऐसे गाँवोंके सम्बन्धमें यह बात सभी जानते हैं कि वहाँ हिन्दू और मुसलमानोंमें सच्ची मैत्री और पड़ोसीपनका भाव रहता है और सबलोग आपसमें गाँवके रिश्तेके अनुसार एक दूसरेको भाई, चाचा, काका आदि कहकर पुकारते हैं। अनेक नाम ऐसे हैं जो हिन्दुओंके यहाँ भी रखे जाते हैं, मुसलमानोंके यहाँ भी, विशेषतः नीची श्रेणीके लोगोंमें। हिन्दुओंके अनेक नाम मुसलमानोंने रख छोड़े हैं और मुसलमानोंके अनेक नाम हिन्दुओंने। व्यक्तिगत नामोंतक ही यह बात सीमित नहीं, गाँवों, नगरों, तालाबों तथा ऐसी सब वस्तुओंका जिनका कि कोई नाम हो सकता है, कोई न कोई हिन्दुआना या मुसलमानी अथवा आधा हिन्दु-आना, आधा मुसलमानी नाम रख लिया गया है। इससे कोई मतलब नहीं कि गाँवमें हिन्दुओंकी आबादी है या मुसलमानोंकी या दोनोंकी अथवा गाँवपर हिन्दुओंका अधिकार है या मुसलमानोंका।

पुराना ग्रामीण जीवन क्रमशः नष्ट होता जा रहा है। मेरा जन्म बिहारके एक गाँवमें हुआ। वहींपर मेरा लालनपालन हुआ और अब भी मैंने ग्रामसे किनाराकशी नहीं की है। अतः मैं अपने आरम्भिक और युवाकालके अनुभवके बलपर ग्रामोंके उस समयके साधारण जीवनका वर्णन कर रहा हूँ जिसे अधिक समय नहीं बीता और जिसके चिह्न आज भी पाये जाते हैं। उस समय प्रत्येक ग्राम अनेक मामलोंमें अधिक या कम मात्रामें आत्मनिर्भर था। उसकी अपनी जमीन थी जिसे गाँववाले ही जोतते थे। उसकी अपनी गोचरभूमि थी और उसके अपने ही मजदूर और कारीगर तथा विभिन्न पेशेवाले लोग थे। इस भाँति किसी भी साधारण गाँवमें हमें किसान और मजदूर, जमींदार और ब्राह्मण, और अनेक स्थानोंमें हिन्दू और मुसलमान एक साथ रहते दिखाई पड़ते थे। अनेक गाँवोंमें

उनके अपने बढ़ई और लुहार नाई और धोबी, कुम्हार और चुड़िहार (मनिहार) तथा मक्का, जौ, मटर, चना तथा सत्तू आदि भूजनेवाले भड़भूँजे होते थे। उनके अपने मेहतर, भङ्गी, डोम, चमार, भी होते थे। ग्रामोंके सामाजिक तथा आर्थिक जीवनमें इन सबका अपना महत्व और उपयोग था और इन सबको फसल तैयार होनेपर प्रत्येक किसान इनके कार्य और सेवाका पुरस्कार प्रायः गल्लेके रूपमें दिया करता था। शादी-विवाह, जन्म-मृत्यु आदिके अवसरोंपर इन लोगोंको विशेष कार्य करना पड़ता था जिसके लिए उन्हें उनकी सेवाका उपयोग करनेवाले अपनी हैसियतके अनुरूप विशेष पुरस्कार दिया करते थे। इनमेंसे यदि कुछ व्यक्ति मुसलमान होते तो वे भी अपने हिन्दू भाइयोंके समान ही कार्य करते और इसका वैसा ही पुरस्कार पाते। जैसे, हिन्दुओंके प्रायः सभी कृत्योंमें नाईका विशेष कार्य रहता है। चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह तथा प्रायः प्रत्येक संस्कारमें क्षौर तथा अन्य कार्योंके लिए उसकी आवश्यकता पड़ती है। मृतक संस्कारमें क्षौर अत्यन्त आवश्यक कृत्य समझा जाता है उसमें तथा श्राद्ध-तर्पण और पिण्डदान आदिमें नाईका कार्य पड़ता है। अनेक ग्रामोंमें हिन्दू नहीं उनके स्थानपर मुसलमान नाई ये सभी कृत्य कराते हैं। वे केवल खाद्य-पदार्थ और जल नहीं देते। यह सारा सेवाकार्य लेनेमें न तो हिन्दुओंको आपत्ति होती है कि यह हमारे धर्म अथवा प्रथाके प्रतिकूल है और न मुसलमान नाई ही ये सब धार्मिक ढङ्गके सेवाकृत्य करनेमें यह सोचते हैं कि ये हमारे इस्लामके प्रतिकूल हैं। प्रत्येक सधवा चूड़ियाँ पहनती है और वे उसके सौभाग्यका चिह्न समझी जाती हैं। विवाह तथा अन्य शुभ अवसरोंपर चूड़ियाँ पहनाने और बदलनेवाले प्रायः मुसलमान ही होते हैं। उनकी स्त्रियाँ चूड़ियाँ पहनानेके लिए कठोर पर्देवाली सम्पन्न हिन्दू परिवारकी स्त्रियोंमें भी जाती हैं और इसपर कोई आपत्ति नहीं की जाती। इसी भाँति धोबी और भङ्गी भी साधारण और विशेष अवसरोंपर अपना कार्य करते रहते हैं। इस बातका कोई विचार नहीं किया जाता कि वे हिन्दू हैं या मुसलमान। इसी भाँति माली केवल विशेष अवसरोंपर ही नहीं सभी धार्मिक अवसरों और दैनिक पूजाके लिए पुष्प देता है।

उसके विषयमें भी यह कभी नहीं सोचा जाता कि वह हिन्दू है या मुसलमान। न तो हिन्दुओंको ही अपने देवतापर चढ़ानेके लिए मुसलमान मालीसे पुष्प लेनेमें आपत्ति होती है और न मुसलमान मालीको ही पुष्प देनेमें आपत्ति होती है कि वे मन्दिरमें मूर्तिके ऊपर चढ़ेंगे अथवा अन्य धार्मिक कृत्योंमें उनका उपयोग होगा। ये सब बातें सैकड़ों वर्षोंसे चलती आ रही हैं। इनसे स्पष्ट है कि पहले दोनों सम्प्रदायोंमें अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। ये सब बातें उसीकी उपज हैं।

पोशाक

मनुष्यकी पोशाकपर सबसे अधिक प्रभाव उसके निवास-स्थानके जलवायुका पड़ता है। इसलिए भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी पोशाकमें अगर अन्तर पड़े तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। पहननेवालोंकी आर्थिक स्थिति भी इस अन्तरका एक बड़ा कारण है। समाजके निम्नवर्गीय तथा निर्धन लोगों और उसी प्रकारके उच्चवर्गके लोगोंकी पोशाकमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता। अन्तर तो वस्तुतः धनियों और निर्धनोंके बीच ही विशेष रूपसे हुआ करता है। पण्डित मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह या पण्डित जवाहरलाल नेहरू या बिहार प्रान्तीय हिन्दू सभाके अध्यक्ष कुमार गंगा-नन्दसिंहकी और लीगके प्रकाश नवाब मुहम्मद इस्माईल या चौधरी खलीकुज्जमा या कायदे आज़मकी भी हिन्दुस्तानी पोशाकमें किसी विदेशीको साधारणतः कोई अन्तर नहीं जान पड़ेगा। इसी प्रकार सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर या सरदार मङ्गलसिंह जो सिख हैं, और मौलाना जफरअली या मौलाना अबुलकलाम आजाद की पोशाकमें भी, सिखकी पगड़ीके सिवा, उसे कोई विशेष अन्तर नहीं मालूम होगा। अगर वह बिहार, बंगाल, पंजाब या युक्तप्रान्तके किसी ग्राममें जाय तो वह मुसलमानको जिस पोशाकमें खेतीका काम करते हुए देखेगा उससे उसी काममें लगे हुए वहाँके किसी हिन्दूका अन्तर नहीं कर सकता। मैं फैज टोपीकी बात नहीं चलाता जो भारतीय नहीं हैं और जिसे कुछ ही दिनसे मुसलमान, विशेषकर शिक्षित मुसलमान तुर्कोंकी देखादेखी पहनने लगे हैं, पर स्वयं तुर्कलोग

छोड़ चुके हैं। पायजामा हिन्दुओंसे ज्यादा मुसलमान पहनते हैं और कुछ स्थानोंमें यह उनकी खास पोशाक कहा जा सकता है; पर पायजामा पहननेवाले हिन्दुओंकी संख्या भी कम नहीं है। अधिकांश मुसलमान भी इसे नहीं पहनते। धोती,जिसका नाम भी सस्कृतसे निकला है, किसी न किसी रूपमें भारतके अधिकांश मुसलमानोंद्वारा काममें लायी जाती है। कोई भी व्यक्ति जिसने ग्रामोंको देखा है और नगर तथा ग्राम दोनों जगहोंके, विशेषकर ग्रामके मुसलमानोंके सम्पर्कमें रह चुका है, इस बातको अवश्य स्वीकार करेगा।

शारीरिक शृङ्गारकी एक ही जैसी वस्तुएँ पर्दा होते हुए भी 'जनाने'में प्रविष्ट हो गयी हैं। बहुतसे गहने हिन्दू और मुसलमान दोनोंके यहाँ समान रूपसे पहने जाते हैं और बहुतसे गहने तो ऐसे भी हैं जिनके हिन्दू या मुसलमानी नाम, हिन्दू या मुसलमान चाहे जिसके भी उपयोगमें वे आते हों, ज्योंके त्यों बने हुए हैं। इसी प्रकार साड़ी सारे भारतमें औरतोंका सर्वाधिक सामान्य वस्त्र है। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंकी स्त्रियाँ पायजामा पहनती हैं। जहाँ स्त्रियाँ पायजामा पहनती हैं, जैसे पश्चिमोत्तर प्रदेशमें, वहाँ केवल मुसलमान ही नहीं बल्कि सिख और हिन्दू स्त्रियाँ भी पायजामा ही पहनती हैं। पहाड़ोंपर कड़ी ठण्ढ होनेके कारण सभी लोग पायजामा ही पहनते हैं।

पर्दा

भारतका भ्रमण करनेवाले विदेशीका ध्यान एक विशेष सामाजिक प्रथापर अवश्य जायगा। यह प्रथा पर्देकी है जिसे कहीं-कहीं 'गोशा' भी कहते हैं। यह शुद्ध मुसलमानी प्रथा है, हालाँ कि भारतमें इसकी विधि स्वतन्त्र रूपसे विकसित हुई है। मैंने सुना है कि इस्लामकी शरीअतके मुताबिक स्त्रियोंका घरसे बाहर जाना मना नहीं है, सिर्फ मुँहको और अङ्गोंकी तरह बुरकेसे ढँक लेना जरूरी है। भारतमें उन्हें साधारणतः बाहर नहीं निकलने दिया जाता ; पर यह उन्हीं परिवारोंमें सम्भव है जिनकी आर्थिक स्थिति ऐसी है कि घरके अन्दर रहकर काम चलाया जा सके ; जो लोग गरीब हैं उन्हें तरह-तरहके कामोंसे लाचार होकर बाहर जाना ही पड़ता है।

प्राचीनकालमें हिन्दुओंमें पर्देकी चाल नहीं थी और न इसके लिए किसी तरहका प्रोत्साहन था। संस्कृत ग्रन्थोंमें स्त्रियोंके सम्बन्धके ऐसे प्रसङ्ग भरे पड़े हैं जिनमें उनके बाहर आने और हाथ बँटा सकने योग्य पतिके सारे कामोंमें योग देनेका उल्लेख मिलता है। पर्देकी वर्तमान प्रथा मुसलमानोंसे आयी है और जो स्थान मुसलमानोंके प्रभावमें विशेषरूपसे रहे हैं वहाँ इस प्रथाका पालन बड़ी कड़ाईसे किया जाता है। दक्षिणमें, जिसपर मुसलमानोंका प्रभाव उत्तर भारतकी तरह विशेष रूपसे नहीं पड़ सका, कुछ ऐसे वर्गोंको छोड़कर जो मुसलमान शासकोंकी नकल किया करते थे, यह प्रथा प्रचलित नहीं है। मुसलमानों-की अपेक्षा हिन्दुओंमें आज पर्दा-विरोधी सुधार ज्यादा तेजीसे चल रहा है, क्योंकि इस्लाममें तो यह विधि विहित है पर हिन्दूधर्ममें इसका अभाव है।

ऊपर जो विचार प्रकट किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि दोनों समुदायोंने एक दूसरेको बहुत प्रभावित किया है और ऐसे धार्मिक भेदोंके बावजूद जिनके कारण उनका सामाजिक जीवन बिलकुल भिन्न प्रकारका बन गया है, वे शान्ति और सद्भावपूर्वक साथ-साथ रहे। फिर भी यह सत्य है कि दोनों न तो कभी मिलकर एक हुए और न एक दूसरेको आत्मसात् करनेमें समर्थ हो सका। ऐसा हो सकनेकी आशा भी नहीं की जा सकती थी, क्योंकि इस्लाम विदेशी धर्म होने और अनुयायियोंके जीवनका नियमन और नियन्त्रण करनेके लिए सर्वथा भिन्न आधारपर बना विधान होनेके कारण उसका हिन्दू धर्मको अपनेमें मिला सकना या स्वयं उसमें मिल जाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। हिन्दू साहित्य, दर्शन और धर्म बहुत उन्नत हैं और लाखों-करोड़ों आदमी उन्हें मानते और उनका आदर करते हैं। विरोधमें जितने भी नये मत उठ खड़े हुए हिन्दू धर्मने सबको आत्मसात् कर लिया। रिसडेविड्सने हिन्दू धर्म और बौद्ध मतका सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए कहा है—'विचार और भाषणकी स्वतन्त्रता जितनी बौद्ध मतमें है उतनी और किसी मतमें नहीं।* यह बात वेदों और उपनिषदोंके आरम्भिक

* रिसडेविड्स—'बुद्धिस्ट इण्डिया', पृष्ठ २५८

कालसे ही चली आ रही है और यही विभिन्न विचारों और दर्शनोंकी उत्पत्तिका कारण है। इसीलिए मत-सम्बन्धी कोई ऐसा निश्चित नियम नहीं है जिसे कोई हिन्दू माननेके लिए बाध्य हो। हाँ, कुछ ऐसे व्यक्तिगत और सामाजिक नियमोंके पालनपर जोर दिया जाता है जिनका रूप देशकालके अनुसार बदलता रहता है। इस प्रकार हिन्दुओंमें सामाजिक सुधारोंके लिए बहुत अधिक गुञ्जाइश रहती है। इसके इस लचीलेपनके कारण हिन्दू समाज केवल अपनेको बदलती हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनानेमें ही नहीं समर्थ हुआ बल्कि ऐसे बहुतोंको पचा जानेमें भी समर्थ हुआ जिनका दार्शनिक और सामाजिक आधार पुराना नहीं था। परिस्थितिके अनुकूल बना लेनेकी इसकी सामाजिक शक्ति और विचार-स्वातन्त्र्यसे, जिससे विरोधमें उठे हुए बौद्ध मत जैसे नये मतके प्रवर्तकोंको भी देवत्व प्रदान करनेमें हिचक नहीं होती थी, इसे बहुत सहायता मिली है। बुद्ध एक अवतार मान लिये गये, हालाँ कि ग्रन्थोंसे ऐसे बहुतसे प्रसङ्ग उद्‌धृत किये जा सकते हैं जिनमें बुद्धकी निन्दा की गयी है। यह उस सङ्घर्षका परिचायक है जो बौद्ध मतको आत्मसात् करनेके समयमें चल रहा था। आज बौद्ध मत—उसका दर्शन और व्यवहार नियम—हिन्दू धर्ममें इस प्रकार अन्तर्भूत हो गया है कि उसके जन्मस्थानमें ही कोई बौद्ध नहीं रह गया है। वस्तुतः बौद्ध मत हिन्दू धर्मकी ही एक शाखा है और विचार तथा अभिव्यञ्जनकी दृष्टिसे इसका आधार भी हिन्दू ही है। इस कारण भारतमें तो यह बड़ी सरलतासे हिन्दू धर्ममें मिल गया, पर अन्य देशोंमें जहाँ दूसरे किसी धर्म या दर्शनद्वारा इसके आत्मसात् किये जानेका अवसर नहीं था, यह फूलता फलता रहा। ऐसे आधारवाला हिन्दू धर्म यदि इस्लामको आत्मसात् नहीं कर सका या स्वयं उसमें नहीं मिल सका, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। मेरा विश्वास है, दोनोंका साथ-साथ बने रहना और बढ़ना दोनोंके लिए हितकर ही हुआ है। साथ-साथ रहते समयकी विस्मृतिके गर्तमें गड़ी पुरानी घटनाओं और वृत्तान्तोंको खोद-खोदकर निकालने और दोनोंका पार्थक्य सिद्ध करने तथा उनमें प्रतिस्पर्धा और द्वेषका भाव जाग्रत् करनेसे, मेरी समझमें, किसीको लाभ नहीं पहुँच सकेगा।

इससे कहीं अधिक लाभदायक और सम्मानजनक यह तथ्य स्वीकार कर लेना है कि सदियोंसे दोनों सद्भावपूर्वक मिल-जुलकर रहे हैं, और इससे भी बढ़कर यह कि भविष्यमें इस साथसे पिण्ड छुड़ानेका दूसरा कोई उपाय भी नहीं है।

इस अंशका अन्त दो प्रोफेसरोंके मतके उद्धरणके साथ करना अच्छा होगा—एक तो डाक्टर ताराचन्दका जो हिन्दू हैं और जिनका मत प्रायः उद्धृत किया गया है, और दूसरा श्री सलादुद्दीन खुदाबख्शका जो मुसलमान हैं और कलकत्ता विश्वविद्यालयमें कानून और इस्लामके इतिहासके अध्यापक हैं।

डाक्टर ताराचन्द लिखते हैं—

"भारतीय जीवनके भिन्न-भिन्न अङ्गोंपर मुसलमानोंका जितना अधिक प्रभाव पड़ा है उसका उल्लेख कर सकना कठिन है। पर यह प्रभाव रीति-रिवाज, पारिवारिक जीवनकी छोटी-मोटी बातों, सङ्गीत, पोशाक, पाक-विधि, विवाह, त्योहार और मेले, मराठा, राजपूत और सिख राजाओंके दरबारी तरीकों-पर जितना स्पष्ट और प्रत्यक्ष देख पड़ता है उतना अन्यत्र नहीं देख पड़ता। बाबरके समयमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका आचार-विचार आपसमें इतना मिलता था कि उनके अजीब 'हिन्दुस्तानी तरीके' पर उसका ध्यान गये बिना नहीं रह सका। उसके वंशजोंने इस पैतृक वस्तुको इतना अलंकृत और सम्पन्न बना दिया कि भारत उनसे मिले उत्तराधिकारपर गर्व कर सकता है।"*

श्री सलादुद्दीन खुदाबख्श कहते हैं—

"हम प्रायः सुना करते हैं कि मुसलमान हिन्दुओंसे वैसे ही भिन्न हैं जैसे आर्योंसे समेटिक। उनके जीवनके आधारमें ही गहरा अन्तर है, उनके स्वभाव, मनोवृत्ति, सामाजिक प्रथाओं और जातीय रूपमें अन्तर है और ये अन्तर इतने मौलिक और व्यापक हैं कि दोनोंका आपसमें मिल सकना नितान्त असम्भव

---

* ताराचन्द—'इन्फ्लुएन्स आव इस्लाम आन इण्डियन कल्चर', पृष्ठ १४१-१४२।

है, एक ऐसा स्वप्न है जो कभी कार्यका रूप ग्रहण नहीं कर सकता। यह दलील कभी टिक सकेगी, इसका मुझे जरा भी निश्चय नहीं; माना कि मुसलमान बाहरसे विजेताके रूपमें आये जो हिन्दुओंसे वैसे ही भिन्न थे जैसे हम दोनोंसे अंग्रेज भिन्न हैं, पर हम यह कभी नहीं भूल सकते कि वे सदियोंसे साथ ही रहते आये हैं, यहाँके लोगोंमें मिलते रहे हैं, एकने दूसरेको प्रभावित किया है, उन्होंने यहाँकी महिलाओंसे विवाह किया है, स्थानीय रीति-रिवाज अपनाया है और यहाँकी विशेषताओंको भी ग्रहण करते रहे हैं। इसका सबसे अधिक निर्भ्रान्त प्रमाण विवाह-संस्कारमें जो पूर्णतः हिन्दुओंका है, और स्त्री-समाजमें पाया जाता है—जैसे सिन्दूरका चिह्न जो विवाहित होनेका सूचक है, विधवाओंके भोजनाच्छादनपर प्रतिबन्ध, विधवा-विवाहको अमान्य ही नहीं बल्कि अपराध समझना और 'जनाने' की तफसीलकी हजारों बातें। ये सब बातें इन दोनों सम्प्रदायोंके जिनमें भारतके लोग विभक्त हैं, केवल बाहरी सम्बन्धको नहीं व्यक्त करतीं। इसका स्पष्टतर प्रमाण भाषाकी एकता और पोशाककी समानता है। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि बहुतसे ही नहीं बल्कि अधिकांश मुसलमान पहलेके हिन्दू ही हैं। यह कपोल कल्पना नहीं बल्कि निश्चित बात है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर प्रतिक्रिया होती रही है जिससे सामाजिक प्रथाएँ तो प्रभावित हुईं ही, एकके धर्मपर दूसरेके धर्मका रङ्ग भी चढ़ा। यह हिन्दू और मुसलमान—दोनों धाराओंके मिलनका स्पष्ट उदाहरण है जो मुसलमानोंकी विजयके बादसे भारतमें प्रवाहित होती रही है।"* इस सुन्दर ताने-बानेको लेकर अनगिनत हिन्दू और मुसलमान नर-नारियोंने, जानकर या अनजाने, हमारे सामाजिक जीवनके जिस कोमल और भव्य पटका सदियोंमें निर्माण किया है वह क्या इसलिए कि वह नासमझ राजनीतिके निर्दय और अविवेकी हाथोंमें पड़कर टुकडे टुकड़े हो जाय?

---

* 'सम एमिनेण्ट बिहार कण्टेम्पोरेरीज़में डाक्टर सच्चिदानन्दसिंहद्वारा उद्धृत, पृष्ठ १८५-८६

ग—भाषा

आजकल उत्तर भारतमें जो भाषा बोली जाती है—उसे चाहे जिस नामसे भी पुकारिये—यदि इसे हिन्दू और मुसलमानोंके संयुक्त प्रयासका फल न भी कहें तो भी इतना तो निश्चित है कि उसपर दोनोंका स्पष्ट प्रभाव है। इसका उद्‌गम स्थान तो निश्चित ही संस्कृत और उसकी उपशाखायें पाली तथा प्राकृत हैं जो संस्कृतके बाद उस समय प्रचलित हुईं जब संस्कृत जनसाधारणकी भाषा नहीं रह गयी। मुस्लिम आक्रमणकारियोंकी भाषा उनकी जाति-विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न थी। इस भाषापर अरबी और फारसीका प्रभाव बहुत अधिक था। मुस्लिम शासनकालमें फारसी अदालती भाषा बनी। ऊँची श्रेणीके हिन्दुओंने भी इस भाषाको अपनाया। खासकर उन लोगोंने जिनका दरबारों और राजके कामसे ज्यादा सम्बन्ध था। लेकिन यह भाषा जनसाधारणकी भाषा कभी नहीं बन सकी। भारतके अधिक मुसलमान जन्मना हिन्दू थे। इसलिए उस युगके अधिकांश मुसलमानोंकी भाषा भी फारसी नहीं थी। इसीसे एक ऐसी भाषाकी आवश्यकता प्रतीत हुई जिसका प्रयोग विदेशी मुसलमान शासक और भारतीयों—हिन्दू और मुसलमान दोनों—के बीच किया जा सके। इस तरहकी भाषाके निर्माणमें दोनोंने हाथ बँटाया। अमीर खुसरोके जीवनकालमें ही इस भाषाने इतनी उन्नति कर ली थी कि उसका प्रयोग उन्होंने अपनी कविताओंमें किया और वे कविताएँ आज भी लोकप्रिय हैं। हिन्दी और उर्दूके इस युगके हिमायती भी इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि दोनोंको यदि भिन्न-भिन्न भाषा मान लिया जाय तो भी दोनों भाषाओंके साहित्यके विकासमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंने हाथ बँटाया। धार्मिक कृत्योंके लिए हिन्दुओंका झुकाव संस्कृतकी ओर और मुसलमानोंका अरबी और फारसीकी ओर था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि भाषाके गठनको ज्योंका त्यों रखकर दोनों—हिन्दू और मुसलमानों—ने संस्कृत, अरबी तथा फारसी भाषाके शब्दोंको अपनाया। वह गठन जो भाषाका सच्चा स्वरूप है आज भी हिन्दी और उर्दू भाषामें एकसा ही है। भेद केवल शब्दोंका है। उत्तर भारतमें आज भी दोनों जातियोंमें एक ही भाषा बोली और समझी

जाती है—यद्यपि दोनों भाषाओंके विद्वान अपने लेखोंमें अधिकांश संस्कृत, अरबी या फारसीके ही शब्दोंका प्रयोग करते हैं। यह दुर्भाग्यकी बात है कि भाषाके प्रश्नको लेकर भी विवाद खड़ा हो गया है जो वास्तवमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी समान रूपसे विरासत है।

अमीर खुसरोंके कालसे आजतक हिन्दीभाषा तथा उसके साहित्यके विकासमें मुसलमानोंने जो बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत की है उसे न तो हिन्दीके हिमायती भूल ही सकते हैं और न उसकी उपेक्षा ही कर सकते हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी-द्वारा सम्पादित कविता-कौमुदीमें हिन्दीके मुसलमान कवियोंकी कविताओंका जो संग्रह दिया गया है, उसे देखनेसे ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। उन मुसलमान कवियोंने हिन्दीके नामसे पुकारी जानेवाली भाषाका ही केवल प्रयोग नहीं किया है बल्कि अपनी कविताओंका विषय भी पूर्णतया हिन्दी रखा है। हिन्दुओंके साहित्यके आधार अधिकतर सीताराम और राधाकृष्ण हैं। गोरखपुरके गीता प्रेसने इस तरहकी कविताओंका संग्रह पाँच जिल्दोंमें प्रकाशित किया है। उनमें-से एक जिल्दमें केवल मुसलमान कवियोंका संग्रह है। इन कविताओंको पढ़कर किसी भी भक्तकी भक्तिभावनाको पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सकता है। गिरिधरदास-की कुण्डलियाकी भाँति रहीमके दोहोंका उत्तर भारतमें घर घर आदर है। कबीर-की चर्चा पहले हो चुकी है। वह उन दार्शनिक भक्तोंमें थे जिन्होंने अपने पदों-द्वारा वेदान्तकी दुर्गम शिक्षाका प्रचार जनसाधारणमें किया और वेदान्तके कठिन सूत्रोंको साधारण जनताके समझने योग्य बनाया। जिस दुरुह ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए योगीजन एकान्त जङ्गलोंमें और पहाड़ोंपर कठोर तपस्या करते थे उसका प्रचार उन्होंने साधारण झोपड़ियोंमें किया। भक्तिमार्गके प्रचारके लिए जो काम तुलसीदासने उत्तर भारतमें तथा महाप्रभु चैतन्यने बङ्गाल और उड़ीसामें किया वही काम योग और वेदान्तके प्रचारके लिए कबीरने उत्तर भारतमें किया।

इसी तरह उर्दू भाषाको समृद्ध बनानेमें हिन्दुओंके प्रयासकी कौन उपेक्षा कर सकता है? और इस तथ्यको कैसे अस्वीकार किया जा सकता है कि

आजकल भी उर्दू भाषा और साहित्यमें रुचि रखनेवालोंमें हिन्दुओंकी संख्या पर्याप्त है। इसलिए भाषाके प्रश्नको हिन्दू मुस्लिम सङ्घर्षका आधार-पृष्ठ बनाना ऐतिहासिक तथ्यको अस्वीकार करना ही नहीं है बल्कि जीवनकी दैनिक घटनाओंकी ओरसे आँखें बन्द कर लेना है।

"हिन्दी तथा उर्दू भाषाके विकासके लिए तो मुसलमान शासकोंने यत्न किया ही साथ ही प्रान्तीय भाषाओंको भी उन्होंने प्रोत्साहन दिया। प्रान्तीय भाषाओंपर मुसलमान शासकोंका यह ऋण है। "उत्तरमें हिन्दी, पच्छिममें मराठी और पूर्वमें बङ्गालीने साहित्यिक भाषाका रूप ग्रहण किया। इनके विकासका श्रेय हिन्दू और मुसलमान दोनोंको बराबर है। इसके बाद भाषाके सम्बन्धमें एक नयी प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। मुसलमानोंने तुर्की और फारसी भाषाका त्यागकर हिन्दुओंकी बोलचालकी भाषा अपनायी। अपनी आवश्यकताके अनुसार सङ्गीत और वास्तुकलाकी भाँति उसने भाषाका रूप भी बदल दिया। इस तरह एक नयी भाषा उत्पन्न हो गयी जिसे उर्दू कहते हैं। हिन्दू और मुसलमानोंने इसे समान रूपसे अपनाया। इससे एक अद्भुत बात यह पैदा हुई कि हिन्दी भाषाका प्रयोग एक प्रकारके साहित्यके लिए हुआ और उर्दूका प्रयोग दूसरे प्रकारके लिए। इस तरह जब हिन्दू और मुसलमानोंकी साहित्यिक प्रवृत्ति एक तरफ झुकी तब उन्होंने हिन्दीका प्रयोग किया और जब वह प्रवृत्ति दूसरी तरफ झुकी तब उर्दूका प्रयोग किया।......हिन्दीपर मुसलमानोंका प्रभाव गहरा था जिसका प्रत्यक्ष दर्शन शब्दकोष, व्याकरण, मुहावरा, वाक्य और शैलीमें होता है। वही बात मराठी, बङ्गला, और उससे भी ज्यादा पञ्जाबी और सिन्धीमें दिखाई पड़ती है।"*

बङ्गालके मुसलमान शासकोंका ध्यान केवल मुसलमानोंमें शिक्षाका प्रचार करनेकी ओर नहीं था। उन्होंने शिक्षाके प्रचारको नयी धारामें बहानेका यत्न किया जो बङ्गला भाषा-भाषियोंके लिए विशेष महत्वपूर्ण है। बङ्गालियोंको इस

---

* ताराचन्द—इन्फ्लुएंस आव इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर : पृ० १३९-४०

बातसे विस्मय होगा कि उनकी भाषाके विकासका श्रेय मुसलमानोंको ही है। मुसलमानोंके प्रयाससे ही बङ्गलाभाषा साहित्यिक भाषा बनी है। बङ्गालके मुसलमान शासकोंका ही ध्यान पहलेपहल रामायण और महाभारतकी ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इन ग्रन्थोंका अनुवाद बङ्गलाभाषामें कराया। महाभारतका बङ्गला अनुवाद पहलेपहल बङ्गालके नाजिरशाह (१२८२–१३८५) ने कराया। वह बङ्गलाभाषाके बहुत बड़े हिमायती थे। मैथिल-कोकिल विद्यापतिने अपना एक गीत उन्हें समर्पित कर उनका नाम अमर कर दिया है। अभी यह निर्णय नहीं हो सका है कि रामायणका बङ्गला अनुवाद करनेके लिए कीर्तिबासको बङ्गालके किसी मुसलमान शासकने नियुक्त किया था अथवा हिन्दू राजा कंसनारायणने। यदि हिन्दू राजावाली बात ही स्वीकार कर ली जाय तो भी यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि उस हिन्दू राजाको मुसलमान शासकोंकी प्रवृत्तिसे प्रेरणा मिली।...सम्राट् हुसेनशाह बङ्गलाभाषाके कट्टर संरक्षक थे। उन्होंने भागवतका अनुवाद बङ्गलाभाषामें करनेके लिए मलधर बसुको नियुक्त किया था। हुसेनशाहके सेनापति परगलखाँ और उनके पुत्र छुतीखाँने महाभारतके एक अंशका बङ्गलामें अनुवाद कराकर अपनेको अमर बना लिया।"*

भाषाके प्रश्नका अध्ययन दूसरे पहलूसे भी करना होगा। जहाँतक दो राष्ट्रके सिद्धान्तका प्रश्न है, बँटवाराके हिमायतियोंको इससे भी सहायता नहीं मिलती। भाषाका भेद स्थान स्थानमें पाया जाता है, जाति जातिमें नहीं। बंगालमें रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी भाषा बंगाली है। इसी तरह गुजरातकी भाषा गुजराती, पंजाबकी पंजाबी और उत्तर भारतकी भाषा है हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी—चाहे जो भी नाम इसे दिया जाय। यह क्षेत्र पंजाबसे बङ्गालतक, हिमालयकी तराईसे मध्य तथा दक्षिण भारतके मराठी तथा तेलगू बोलनेवालोंके प्रान्ततक फैला हुआ है। ये भाषाएँ दक्षिण भारतकी तेलगू

---

* एन० एन० ला—प्रोमोशन आव लर्निङ्ग इन इण्डिया ड्यूरिङ्ग मोहम्मदन रूल पृ० १०७–११०

तामिल, कनारी तथा मलयालम भाषाओंसे एकदम भिन्न हैं। इनके अपने शब्द और बोलियाँ हैं जिनका प्रयोग जनसाधारणमें होता है। भारतके किसी भी भागमें जनसंख्याके आधारपर ऐसा कोई बँटवारा नहीं है जो धार्मिक विश्वासके अनुसार भाषाका प्रयोग करता हो। भाषाका प्रयोग सम्प्रदाय या धर्मके अनुसार न होकर प्रदेशके अनुसार है। यदि हिन्दुस्तानके उत्तर पूर्वी प्रदेशमें—जहाँ मुसलमान अधिक बसते हैं—मुसलमान और गैरमुसलमानोंकी भाषा बङ्गाली है पञ्जाबके हिन्दू, मुसलमान और सिक्खोंकी समान भाषा पञ्जाबी है, उत्तर पश्चिमके चार-पाँच प्रदेशके निवासियोंकी—जिन्हें उत्तर पश्चिमके क्षेत्रमें शामिल करनेका यत्न किया जाता है—कोई भी एक समान भाषा नहीं है, पश्तो, सिन्धी और बलूची भाषा पंजाबी भाषासे उतनी ही भिन्न है जितनी हिन्दी भाषा बङ्गाली भाषासे अथवा पश्तो भाषा सिन्धी या काश्मीरी भाषासे ; इसलिए यदि भाषाको राष्ट्रीयताका आधार माना जाय, तब तो बङ्गालके हिन्दू और मुसलमानोंकी एक ही राष्ट्रीयता होगी क्योंकि दोनोंकी एक ही समान भाषा बंगाली है। इसी आधारपर पञ्जाबी, सिन्धी, पठान, और बलूची एक राष्ट्र नहीं हो सकते क्योंकि इनकी भाषामें परस्पर उतना ही अन्तर है जितना कि बँगला भाषासे है।

हिन्दुओंके धार्मिक साहित्यपर संस्कृतका तथा मुसलमानोंके धार्मिक साहित्यपर अरबीका प्रभाव है। ये ही इनके उद्‌गमस्रोत हैं। बङ्गाल, तामिल तथा सिन्धके हिन्दू समान रूपसे धार्मिक कार्योंमें संस्कृतसे ही प्रभावित होते हैं। इसी तरह पञ्जाब, पूरब तथा दक्षिण भारतके मुसलमान धार्मिक कार्योंके लिए अरबीकी ओर आकृष्ट होते हैं। जहाँ धार्मिक मामलोंमें भिन्न भिन्न प्रान्तोंके हिन्दू संस्कृतकी ओर और मुसलमान अरबीकी ओर दौड़ते हैं वहाँ दैनिक प्रयोगके लिए प्रत्येक प्रान्तके हिन्दू मुसलमानोंकी अपनी समान भाषा है जिनमें बहुतोंका साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। समान भाषाके इस प्रयोगमें धर्म किसी तरहकी बाधा नहीं उपस्थित करता। यह प्रान्तीय भाषा तथा प्रदेशके हिसाबसे भिन्न भिन्न है।

अगर हिन्दी हिन्दुओंकी और उर्दू मुसलमानोंकी दो भिन्न भाषा मान ली जाय और यदि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्रोंमें भारतका बँटवारा कर दिया जाय

जिसमें प्रत्येक राष्ट्रको अपने कल्याणकी दृष्टिसे अपने विकासकी स्वतन्त्रता रहे—केवल उन संरक्षणोंको स्वीकार करना पड़े जो अल्पसंख्यक समुदाय तथा उनकी भाषाके लिए निर्धारित किया जाय, तो उर्दू किसी भी मुसलिम क्षेत्रकी भाषा नहीं रहेगी। ऐसी हालतमें उर्दूका भविष्य कितना उज्ज्वल होगा ? तब उसे या तो किसीपर जबरदस्ती लादना पड़ेगा या वह अजनबी भाषाकी भाँति पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रमें पाली-पोषी जायगी क्योंकि दोनोंमें किसी भी प्रदेशकी बोली जानेवाली भाषा वह नहीं रहेगी, अथवा मध्य क्षेत्रमें वह अल्पसंख्यकोंकी भाषाके रूपमें रहेगी क्योंकि इस क्षेत्रमें गैर-मुसलमानोंका बहुमत होगा और उनकी यह अपनी भाषा नहीं होगी।

यदि हिन्दी और उर्दूको दो भाषा मान भी लिया जाय तब उन्हें अपने अपने दायरेमें स्वतन्त्र रूपसे फूलने फलने और विकसित होने दिया जाय और समान भाषाको स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय जिसमें न तो संस्कृत और न अरबी या फारसी शब्दोंकी भरमार हो और जो समस्त देशकी राष्ट्रभाषाके रूपमें फूले और फले।

घ—कला

कलाओंमें सबसे मुख्य हैं—वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकारी, संगीत तथा नृत्यकला। संस्कृत तथा कतिपय अन्य प्रान्तीय साहित्यकी भाँति मुसलमानोंके आगमनसे पहले ही यहाँ ये उन्नत दशामें थीं। इसलिए यह आशङ्का नहीं उत्पन्न हो सकती थी कि मुसलमानोंकी कलाएँ इन्हें अपनेमें हजम कर लेंगी और यही हुआ भी। जहाँतक सम्भव था दोनों एक दूसरेमें घुलमिल गयीं और उत्तर भारतकी भाषाकी भाँति एक नये रूपमें प्रकट हुईं। किसी किसी दिशामें तो मुस्लिमकलापर इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

भारतीय इतिहासमें हिन्दू तथा बुद्धयुगकी वास्तुकला और मुस्लिमयुगकी वास्तुकलामें बहुत अन्तर है। लेकिन उन्हें देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये भारतके लिए एकदम नयी चीज़ें हैं जो बाहरसे लाकर यहाँ स्थापित कर दी गयी हैं। यह बात कल्पनासे बाहरकी है कि ताजके निर्माणमें हिन्दू कारीगरोंका कोई हाथ नहीं था और उसी प्रकार मुस्लिम शासनकालमें हिन्दुओंके जो मन्दिर बने

उनमें मुसलमान कारीगरोंका कोई हाथ नहीं था। इस युगमें तो उत्तरी भारतके हिन्दुओंके मकान ही नहीं बल्कि मन्दिरोंके निर्माणमें भी मुसलमान कारीगरोंका हाथ रहता है। मुस्लिम युगकी अनेक उत्तम इमारतोंके निर्माण और उनके विशिष्ट रूपोंमें वास्तुकलाके विशेषज्ञोंको हिन्दू और मुसलमान कलाविदोंका संयुक्त हाथ स्पष्ट दिखाई देता है।

"मुसलमानोंने उस युगमें धार्मिक, प्रबन्धीय तथा सैनिक कामोंके लिए जो इमारतें बनवायीं वे सब शुद्ध मुस्लिम-सिरो, मिस्र, फारस तथा मध्य एशियाके आदर्शपर नहीं बनी थीं, और न उस युगकी हिन्दू इमारतें और मन्दिर ही शुद्ध हिन्दू आदर्शपर बने थे। मुस्लिम तथा हिन्दू वास्तुकलाके शुद्ध रूपमें अनेक परिवर्तन हुए। कारीगरी, सजावट तथा साधारण रूप तो हिन्दू वास्तुकलाका रहा किन्तु गुम्बज, मीनार, दीवारोंकी सादगी एवं भीतरी विस्तार मुस्लिम वास्तुकलासे लिया गया। तेरहवीं सदीके बादसे जो भी हिन्दू या मुसलमानोंकी इमारतें बनी हैं, दोनोंका कलात्मक रूप एकसा है यद्यपि उद्देश्य और प्रयोगकी दृष्टिसे उनमें भेदभाव अवश्य रखा गया है। धार्मिक विशेषता तथा स्थानीय परम्पराके अनुसार उनका ढाँचा भिन्न-भिन्न प्रकारका है।

"फरगुसनके समस्त हिन्दू-मुस्लिम शिक्षा-भवनोंकी शैली—दिल्ली, अजमेर, आगरा, गौर, मालवा, गुजरात, जौनपुर तथा बीजापुरमें—चाहे वहाँके शासक अरब, पठान, तुर्क, फारसी, मङ्गोल अथवा भारतीय जो भी रहे हों, मसजिदों, कब्रों तथा महलोंके गुम्बजोंके रूप और निर्माण तथा हिन्दू आदर्श जो उनके ऊपर प्रतिबिम्बित हैं, मेहराब जो हिन्दू मन्दिरोंको भव्य बनाते हैं तथा जिन्हें हिन्दू वास्तुकलाका रूप दिया गया है, उनकी बनावट और सजावटके नमूने—ये सब स्पष्ट रूपसे प्रकट करते हैं कि भारतीय कारीगरोंने मुस्लिम वास्तुकलाको अपनानेमें जरा भी सङ्कोच नहीं किया। हिन्दू वास्तुकलाकी मौलिकताको कायम रखते हुए उन्होंने मुस्लिम वास्तुकलाकी मनमानी नकल की।* हैवेलने अपनी पुस्तकमें भारतीय कलापर इतने विस्तारके साथ प्रकाश डाला है कि इस

* हैवेल–इण्डियन आर्किटेक्चर : पृष्ठ १०१

सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।''* अठारहवीं सदीमें शैलीका यह प्रभाव समस्त भारतपर पड़ा, नैपालतक इससे अछूता बचा न रह सका।† उन्नीसवीं सदीके महल, मसजिद और मन्दिर—चाहे वे पश्चिममें जामनगरमें पूरब कलकत्तेमें बने हों, पञ्जाबमें सिक्खोंद्वारा अथवा मध्यप्रदेशमें जैनियोंद्वारा बनवाये गये हों, सबपर हिन्दू-मुसलिम संयुक्त वास्तुकलाकी छाप है।‡ "भारतकी स्मारक इमारतोंमें ही इस संयुक्त हिन्दू-मुसलिम शैलीने प्रधानता नहीं पायी बल्कि साधारण उपयोगके भवनों, मकानों, सड़कों, घाटों—सभी जगह इसीके दर्शन होते हैं।"¶ हिन्दुओंके निवास-भवनोंका रूप वही है जो मुसलमानोंके। दोनोंकी निर्माणकलामें किसी तरहका भेद नहीं है। हाँ, जलवायुके ख्यालसे भिन्न भिन्न प्रान्तोंके मकानोंमें भिन्नता अवश्य पायी जाती है।

मूर्तिकला

हिन्दू मूर्तिपूजक हैं। हिन्दू मन्दिरोंमें मूर्तियों और प्रतिमाओंकी स्थापना देवताके लिए होती है। इस कारण हिन्दुस्तानमें मूर्तिनिर्माणकला बहुत उन्नत दशामें थी। इस्लामधर्म मूर्ति और प्रतिमाकी स्थापना और उसकी पूजाका निषेध करता है इसलिए इस कलाका विकास मुसलिम देशोंमें नहीं हो सका। इसलिए भारतीय मूर्तिनिर्माण-कलापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सका, यद्यपि फारसके राजाओंका अनुकरण कर भारतके मुसलमान शासकोंने—विशेषकर मुगल सम्राटोंने अपने महलोंको सजानेमें मूर्तिनिर्माण-कलाविदों तथा चित्रकारोंकी सहायतासे

चित्रकारी

मनुष्योंके आकारका चित्र तथा सङ्गीत—विशेषकर वाद्य-सङ्गीत-कला तथा नृत्यकलाको इस्लाम $ प्रोत्साहित नहीं करता यद्यपि उसकी निन्दा भी नहीं

---

*ताराचन्द—इन्फ्लूएंस आव इस्लाम आन इण्डियन कलचर पृष्ठ, २४३-२४४

† वही, पृष्ठ २५५। ‡ वही, पृष्ठ २५६। ¶ वही, पृ० २५७।

$ एस० एम० जाफर – कलचरल आस्पेक्ट आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृष्ठ ११०

करता। चित्रकला और सङ्गीतकलामें हिन्दू-मुसलिम कलाका सबसे अधिक सम्मिश्रण हुआ है यद्यपि इनके प्रति इस्लाम उदासीन था। "भारतके आरम्भिक मुसलमान शासकोंने अन्यकलाओंकी भाँति चित्रणकलाको प्रोत्साहन नहीं दिया। इसका एकमात्र कारण यह था कि इनका सम्बन्ध मूर्ति पूजासे था जिसका इस्लाम धर्ममें निषेध है। एकाध उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि मुसलमान शासकों और सरदारोंने प्रचलित परिपाटी तोड़कर इस कलाको अपनाया था। इसका एक कारण यह भी है कि हिन्दुओंमें इस कलाका बहुत अधिक प्रचार था और उनमेंसे बहुतोंने इस्लामधर्म ग्रहण किया था पर अपनी कलाप्रियताको वे नहीं त्याग सके। इससे यह सहजमें माना जा सकता है कि उस युगके मुसलमान शासक इस कलाके वैसे कट्टर विरोधी नहीं थे, जैसा कि चित्रित किया जाता है। इन नये मुसलमानोंमेंसे बहुतोंने तथा इनकी सन्ततिने अपनी इस कलाप्रियताको अवश्य कायम रखा और फारसके विचारोंसे प्रभावित जो मुसलमान बाहरसे आये उन्होंने भी इसमें अपनी प्रवृत्ति और रुचि दिखलायी होगी, यद्यपि उतनी तत्परतासे नहीं, जितनी तत्परता उस युगके हिन्दुओंमें थी। इन सब बातोंसे इतना तो स्पष्ट है कि शासकवर्ग इस कलाके प्रति भले ही उदासीन रहा हो पर जनसाधारणने इसे बहुत कुछ अपनाया था।"

"मुगलकालमें ये बातें सर्वथा भिन्न थीं। कलाके बारेमें उनके अपने विचार थे और उन्होंने भिन्न भिन्न क्षेत्रोंमें उसे अपनाया और उत्साहित किया। बाबरके पूर्वज—तिमूर जातिके लोग—चित्रण-कलामें दक्ष थे। अपने पूर्वजोंके संग्रहालयसे बाबर अपने साथ चित्रण-कलाके उत्तम नमूने ले आया था। इन चित्रोंको मुगल सम्राट् अपनी सबसे प्रिय तथा मूल्यवान् वस्तु समझते थे और उन्हें इसका गर्व था।* मुसलमानोंके आगमन कालके पहलेकी हिन्दू, जैन

---

* एस०एम० जाफर—कल्चरल आस्पेक्ट आफ मुस्लिमरूल इन इण्डिया पृष्ठ १२५-६

तथा बौद्ध आदि भारतीय चित्रकारी अपनी स्वतन्त्र विशेषता रखती हैं। वास्तविकताकी कल्पना जो उन्हें प्रेरणा प्रदान करती है और जो उनकी चित्रण कलाकी विशेषता है, उनकी अपनी चीज है। वे उस संस्कृतिके कलात्मक रूप हैं जिसका जन्म जातीय विश्लेषणके अनुभवोंसे हुआ है। ये विश्लेषण हर्ष-विषाद, सुख-दुख, सफलता-असफलता, इहलोक-परलोक, राग-विराग, आसक्ति-विरक्ति, आकांक्षा, लीनता, व्यसन, सन्तोष, तथा शान्ति आदि विरोधी भावनाओंमें समता स्थापित करनेके प्रतीक हैं।······अजन्ताकी चित्रकारी ही प्राचीन भारतकी चित्रकारीका एकमात्र नमूना बची रह गयी है। ईसाके पहले साहित्यिक ग्रन्थों—विनय पिटक, महाभारत, रामायण, शकुन्तला आदिमें विद्वानोंने कलाकी चर्चा पायी है। प्राचीनकालकी चित्रण-कलाके अवशेष चिह्न आज भी अनेक गुफाओंमें विद्यमान हैं। लेकिन प्राचीन युगकी चित्रण कलाकी पूर्णता तथा उसकी व्यापकताका पूरा ज्ञान तो एकमात्र अजन्ताकी चित्रकारीसे होता है। चट्टानोंको खोदकर जो मन्दिर बना है उसकी दीवारें और छतें उस युगकी चित्रकारीसे भरी पड़ी हैं। ईसाकी प्रथम छठी सदीमें ये बनायी गयी थीं। कलाकी इस पिपासाको शान्त करनेके लिए न जाने कितने धनिकोंकी सम्पत्ति इसमें लगायी गयी होगी।"*

बाबरके भारत विजयके समय बिहजाद अपने यशके शिखरपर था। उसकी शैली आदर्श मानी जाती थी। कलाके पारखी, बाबर और उसके साथी तथा उसके बाद हुमायूँ जब अपने पलायनके बाद फारससे भारत वापस आये तब अन्य चगताई सरदारोंने बिहजादकी शैलीको भारतीय चित्रकारोंके सामने आदर्श स्वरूप रखा ताकि ये लोग उसीका अनुकरण करें। इस प्रकार बिहजाद और उसकी शैली भारतीय चित्रकारोंका आदर्श बन गयी और अजन्ताकी चित्रकारी-पर तिमूर चित्रण कलाकी छाप पड़ी। इस कलाकी विशेषता व्यक्तित्वके स्पष्ट प्रद-

---

* ताराचन्द—इन्फ्लुएन्स आव इस्लाम आन इण्डियन कल्चर पृ० २५८-२५९

र्शनमें है। यह कला जमात या भीडके चित्रणमें रुचि नहीं रखती। सम्मिश्रणकी ओर इसकी विशेष रुचि नहीं। वस्तुका स्पष्ट विवेचन और व्यक्तीकरण इसकी विशेषता है। व्यक्ति-विशेषके अङ्ग-प्रत्यङ्गको व्यक्त करना इस कलाका विशेष अङ्ग है। साङ्गोपाङ्ग जीवनको व्यक्त करनेकी ओर यह विशेष प्रेरणा प्रदान करती है और इस प्रेरणाको वह चित्रमें पूरी तरह व्यक्त करनेका प्रयास करती है।* "अजन्ताके समान यहाँ भी रेखाएँ ही व्यक्त करनेके लिए आधार हैं। तो भी दोनोंमें कितना अधिक अन्तर है।......इन चित्रोंके निर्माणमें जो तत्व सम्मिलित किये जाते हैं, वे उनसे एकदम भिन्न हैं, जिनका दर्शन अजन्तामें होता है।† मुगल सम्राटोंकी देखरेख और प्रोत्साहनसे दोनों कलाओंके सम्मिश्रणसे एक नयी शैलीका उदय हुआ। अजन्ताकी चित्रकारीपर समरकन्द और हेरादके आदर्शोंका रङ्ग अनेक रूपोंमें चढ़ा। प्राचीनकालकी सजधजपर नया रूप चढ़ाया गया। जीवनको व्यक्त करनेके प्राचीन स्वतन्त्र और सहज तरीके उस सीमाके अन्दर बाँधे गये जो रूपको स्पष्ट और पूर्णताके साथ व्यक्त करनेवाले थे। इसका परिणाम यह हुआ कि चित्रकलाकी दोनों शैलियोंको अपनी मौलिकता और विशेषताका अंशतः त्याग करना पड़ा। लेकिन इस सम्मिश्रणसे जो नयी शैली प्रतिष्ठित हुई वह कहीं अधिक मर्यादापूर्ण थी और रंगों तथा रेखाओंका उसमें प्राचुर्य था।

इस नयी शैलीका विकास तेजीसे हुआ। सम्भवतः बाबरने आगरामें भारतके हिन्दू और मुसलमान कलाविदोंमें तिमूरकलाका प्रचार किया।......इस कालकी प्रारम्भिक अवस्थामें भी—जिसे क्लार्कने हुमायूँकाल कहा है—भारतीय भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।......आगे चलकर अकबरके दरबारके कलाविदोंको इसी कलाकी शिक्षा मिली होगी। इन कलाविदोंकी शिक्षा आदि सम्भवतः उन चार मुसलमान कलाविदोंद्वारा हुई होगी जिनकी चर्चा अबुल फजलने की है। ये हैं—फरूख कलमक, शिराजके अब्बास समद, तब्रीजके मीर

* वही पृष्ठ २६५-२६६ † वही पृष्ठ २६८

सैयदअली तथा मिस्किन। हिन्दू शागिर्द सम्भवतः चित्रकार थे जो परम्परागत शैलीमें निष्णात थे और उनकी ख्याति इतनी ज्यादा थी कि सम्राट्के दरबारमें उन्हें बुलाया जा सके। उन्हें सिर्फ अपनी प्रवृत्ति बदलकर इस नयी शैलीके अनुसार चित्रकारी करनी थी जो इनके प्रभुओंको पसन्द थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अकबरके शासनकालमें ही हिन्दू मुसलमानकी यह नवीन शैली इतनी विकसित हो गयी। दसवन्त, बसावन, केशोलाल, मुकुन्द, माधो, जगन्नाथ, महेस, खेमकरण, तारा, सेनवाला, हरिवंश तथा रामके नाम तो आइन-ए-अकबरीमें दर्ज हैं। उस समयके चित्रोंमें अन्य अनेक हिन्दुओंके नाम भी पाये जाते हैं। खुदाबख्श पुस्तकालय, बाँकीपुरमें जो हस्तलिखित पुस्तकें हैं उनके चित्रोंमें तुलसीदास, सुरजन, सूरदास, इस्सर, शङ्कर, रमेश, बनवाली, नन्द, नन्हा, जगजीवन, धर्मदास, नारायण, चतरमन, सूरज, देवजीव, सरन, गङ्गासिंह, पारस, धन्ना तथा भीम आदिके नाम मिलते हैं। कई चित्रोंमें इन चित्रकारोंका निवास-स्थान भी दिया हुआ है। उससे प्रकट होता है कि अधिकांश चित्रकार ग्वालियर, गुजरात और काश्मीरके थे। इससे यह स्पष्ट है कि मध्ययुगमें हिन्दू संस्कृतिके ये ही प्रधान केन्द्र थे, हिन्दू कलापर अजन्ताकी ही छाप थी, मुगलकला पूर्णतः मध्यएशिया तथा फारसकी शैलीकी अनुयायी नहीं थी बल्कि नयी प्रेरणासे युक्त पुरानी शैली ही उद्भूत थी"।*

"इस हिन्दू-मुसलमान शैलीपर एक ओर तो अजन्ताकी चित्रकलाका प्रभाव पड़ रहा था और दूसरी ओर समरकन्द और हेरातकी चित्रणकलाका। लेकिन इसकी कुछ ऐसी भी शाखाएँ थीं जिनका झुकाव एक या दूसरीकी तरफ बहुत ज्यादा था और इसका परिणाम यह हुआ कि बीचकी अन्य अनेक शैलियाँ निकल आयीं। जैसे, जैपुरकी राजपूत और पहाड़ी शैली काँगड़ा तथा हिमालय पहाड़ियोंकी हिन्दू शैली। इन शैलियोंका झुकाव प्राचीन हिन्दू शैलीकी तरफ अधिक था। इसके विपरीत दक्खिन, लखनऊ, काश्मीर, पटना आदिके चित्र-

---

*ताराचन्द इन्फ्लूएंस आव इस्लाम आन इण्डियन कल्चर पृ० २६८-७१

कारोंका झुकाव मुस्लिम शैलीकी ओर था। सिख चित्रकारोंकी प्रवृत्ति दोनोंके बीचकी थी। ये सब उप-शैलियाँ हैं। इनका उद्गम स्रोत वही शैली है जो उस समय दिल्ली और आगराके दरबारमें प्रचलित थी"।*

पटनाके श्री पी० सी० मानुकके पास भारतीय चित्रोंका बहुत ही सुन्दर संग्रह है और वह स्वयं भी चित्रणकलाके बारीक पारखी हैं। भारतीय चित्रण-कलाके सम्बन्धमें अपने विचारोंको प्रकट करते हुए आपने मुगल शासनकालकी चित्रणकलाके विकासका परिचय इस प्रकार दिया है :—"इस्लाम धर्मके सूत्रोंके अनुसार मनुष्य अथवा किसी भी जीवित वस्तुका चित्रण करना 'हराम' या पाप समझा जाता था। पैगम्बर मूसाने लिखा है—"तू इस तरहका चित्र नहीं बनवायेगा जो मानव रूपको स्पष्ट व्यक्त करे। यद्यपि फारसके सुधारवादी शाह अब्बास तथा उदारचेता मुगल सम्राटोंकी छत्रछायामें इन कानूनोंको भङ्ग किया गया और उस समयके चित्रकारोंने ऐसे सुन्दर चित्र तैयार किये, जिन्हें देखकर आँखें तृप्त हो जाती हैं किन्तु उनसे आत्माको सन्तोष नहीं होता। लेकिन उनके हिन्दू शिष्योंके मार्गमें इस तरहकी कोई बाधा नहीं थी। क्योंकि हिन्दुओंके देवी और देवता मूर्तमान माने जाते हैं और उनकी प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं। यही कारण है कि हिन्दू चित्रकारोंके चित्रोंमें सजीवता बहुत अधिक पायी जाती है और उन्हें देखकर आत्मा अधिक तृप्त होती है। उत्तम कोटिकी कलाकी यही परख है। यह स्मरण रखना चाहिए कि कला और धर्मका सदियोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और यूरोपके चतुर चित्रकारोंने यूनान और रोमको प्राचीन वृत्तान्तोंसे धार्मिक अथवा अर्द्ध धार्मिक विषयोंपर ही सुन्दर चित्र बनाये हैं"।†

संगीत

आधुनिक भारतीय संगीतकलापर भी इस्लामका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा

---

*ताराचन्द इन्फ्लूएंस आव इस्लाम आन इण्डियन कल्चर पृ० २७२

† सर्चलाइट—अनिवर्सरी नम्बर १९२६ पृ० १५

है और उससे प्रोत्साहन भी मिला है। भारतीय संगीतकला मुसलमानोंके आगमनके पहलेसे ही उन्नत दशामें थी। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मुसलमानोंने इसे विकसित और उन्नत किया। यह हिन्दू और मुसलमान दोनोंके प्रयासका फल है जिसकी पृष्ठभूमि हिन्दू हैं और जिसकी सजावटमें दोनोंका सम्मिश्रण है। यदि विभिन्न वाद्ययन्त्रोंकी उत्पत्तिका इतिहास खोजा जाय तो यही प्रकट होगा कि उनका वर्तमान रूप हिन्दू तथा मुसलमानोंके संयुक्त प्रयासका फल है कहीं कहीं तो मुसलमानोंका प्रयास बहुत अधिक दिखाई पड़ेगा। कुछ यन्त्रोंके तो वे आविष्कारक ही पाये जायँगे। इसी प्रकार वर्तमान राग-रागिणियोंके विकासमें भी मुसलमान संगीतज्ञोंका विशेष हाथ है।

'इस्लाम धर्मके आरम्भिक युगमें चित्रणकलाकी भाँति संगीतकला भी पीछे रह गयी। यद्यपि इसका भी वही कारण नहीं है जो चित्रणकलाका है। संगीतका प्रभाव मानव मस्तिष्कपर इतना अधिक पड़ता है कि वह उसे दूसरे कामोंके लिए बेकार बना देता है। इसके इस व्यापक आकर्षणके कारण आरम्भिक युगमें इस्लामसे इसे प्रोत्साहन नहीं मिला। यह सब होते हुए भी मानव प्रकृति बलवती प्रतीत हुई और चित्रणकलाकी भाँति संगीतकलाका भी धीरे धीरे प्रचार होने लगा, यद्यपि उत्साहके साथ नहीं। ईरानमें संगीतकलाका प्रचार बहुत अधिक था। ईरानियोंके साथ इस्लामका संसर्ग होनेसे इसपर सूफियोंका प्रभाव पड़ा। सूफी (मुस्लिम रहस्यवादी) सम्प्रदायके लोग संगीतको आत्मोन्नति और मानसिक विकासका साधन मानते हैं। इससे संगीतकलाकी ओर मुसलमानोंकी प्रवृत्तिमें बहुत अधिक परिवर्तन हुआ और उन्होंने अपनी उदासीन प्रवृत्ति उसमें लगा दी। भारतमें बस जानेके बाद मुसलमानोंने देखा कि यहाँके हिन्दुओंके सामाजिक तथा धार्मिक जीवनमें संगीतका बहुत अधिक प्रभाव है। इसका भी उनपर असर पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि मसजिदोंमें नमाज तो उसी सादगीके साथ होता रहा लेकिन अन्य मुसलमानी उत्सवोंके अवसरोंपर संगीत और बाजेका भरपूर उपयोग होने लगा। सूफी सम्प्रदायके लोग संगीतके प्रेमी थे। फलस्वरूप जहाँ-तहाँ अर्ध धार्मिक जलसे होने लगे।

इन जलसोंमें कौवालोंद्वारा कौवाली नामक धार्मिक गीत गाये जाते थे" ।*

"कहनेका मतलब यह है कि मुस्लिम भारतमें संगीतकलाका उससे कहीं ज्यादा प्रचार था जितना हमलोग समझते हैं । इसकी प्रसिद्धिका एक कारण यह हो सकता है कि भारतीय मुसमानोंमें अधिकांश वे मुसमान थे जो पहले हिन्दू थे या जिनके पुरखे हिन्दू थे। इस्लाम धर्म ग्रहण करनेके बाद भी वे लोग अपनी प्रिय वस्तु संगीतका त्याग नहीं करना चाहते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि संगीतकलाका प्रवेश मुसलमानोंमें हो गया और उसकी ख्याति वहाँ भी बढ़ी । यहाँ यह भी लिख देना उचित प्रतीत होता है कि अन्य सूक्ष्म कलाओंकी भाँति संगीतकलाने भी हिन्दू और मुसलमानोंके बीच मेल-मिलापका नया रास्ता खोल दिया । परस्पर आदान-प्रदान और मेल-मिलापका यह काम मुसलमानोंके आगमनकालसे ही आरम्भ हुआ और एक दूसरेके पास जो समृद्धि थी, उसका परस्पर आदान-प्रदान कर दोनोंने अपनेको समृद्ध बनाया † ।

"सम्राट्ने भी सङ्गीतकलाको प्रोत्साहित किया । उनके शासन-कालमें उस कलाकी अत्यधिक उन्नति हुई । इनके दरबारमें संगीतकलाके अनेक विद्वान रहते थे—हिन्दू, ईरानी, तूरानी, काश्मीरी, इनमें पुरुष और महिलाएँ दोनों थीं ।......विश्वविख्यात संगीतज्ञ मियाँ तानसेन—जो हिन्दूसे मुसलमान हो गये थे—अकबरके दरबारके गवैया थे । इनकी ग्वालियर-स्थित कब्र भारतीय संगीतज्ञोंका तीर्थक्षेत्र बन गयी है । इसी युगमें प्रसिद्ध गवैया हरिदास हुए थे । ये तानसेन और रामदासके गुरु थे । रामदास लखनऊके निवासी थे और दूसरे तानसेनके नामसे प्रसिद्ध थे । कहा जाता है कि खानखानाने उन्हें एकबार एक लाखकी थैली भेंट की थी । अकबरके दरबारमें सङ्गीत-कला उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गयी थी । सङ्गीत विद्या तथा भिन्न-भिन्न राग-रागिणियों,

---

* एस० एम० जाफर—कल्चरल आस्पेक्ट ऑव मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ० १५५-५६

† वही पृ० १६४-६५ ।

जिनमेंसे कुछको प्रयोगके अभावमें लोग भूल गये हैं—तथा वाद्य-यन्त्रोंका बहुत अधिक आदर होता था। सङ्गीतकलाके क्षेत्रमें हिन्दू और मुसलमानोंके बीच बहुत अधिक आदान-प्रदान हुआ है। एकमें जो उत्तम गुण था उसे दूसरेने निःसङ्कोच ग्रहण किया और इस तरह अपनेको समृद्ध बनाया। सम्मिश्रणकी यह परिपाटी अकबरके युगकी कोई नयी परिपाटी नहीं थी बल्कि पुराने जमानेसे यह इसी तरह चली आ रही थी। मुसलमानोंके आगमनकालके बादसे ही भारतीय संगीतकलाके इतिहासका यह नया अध्याय आरम्भ होता है। जिससे यह प्रकट होता है कि दोनों जातियोंके बीच सामाजिक और राजनीतिक मेल-मिलाप तथा आदान-प्रदान जारी था। उदाहरणके लिए 'ख्याल' को ले लीजिये। इसके आविष्कर्ता जौनपुरके सुल्तान हुसेन शर्की माने जाते हैं। 'ख्याल' वर्तमान भारतीय सङ्गीतकलाका प्रधान अङ्ग माना जाता है। इसी तरह 'ध्रुपद' मुस्लिम सङ्गीतकलाका अङ्ग बन गया है। प्राचीन कालसे लेकर आधुनिक विशृङ्खलित युगतक भारतीय सङ्गीतकला इस तरहके सम्मिश्रणका प्रबल प्रमाण है।...केवल सम्राटों तथा प्रान्तके शासकोंने ही इस उत्तम कलाको प्रोत्साहन नहीं दिया बल्कि सरदारोंने भी इसके द्वारा अपना मनबहलाव किया*। "सम्राट् शाहजहाँ सङ्गीतकलाके बड़े प्रेमी थे। वह खुद भी अच्छे गवैया थे। उनके दरबारके दो प्रसिद्ध गवैये रामदास और महापात्तर थे।"†

यदि सङ्गीतकलाके विशेषज्ञोंकी नामावली तैयार की जाय तो जनसंख्याके अनुपातसे मुसलमानोंका नाम कहीं ज्यादा निकलेगा और जिस अनुपातमें उन्हें केन्द्रीय सभाओंमें प्रतिनिधित्व दिया जा रहा है उससे भी अधिक होगा। यदि उन सङ्गीत सम्मेलनोंकी जाँच पड़ताल की जाय जिनका आयोजन सङ्गीतकलाके

---

* एन० एन० ला० प्रोमोशन आव लर्निंग इन इण्डिया ड्यूरिङ्ग मुहम्मदन रूल पृ० १५५-५८।

† वही पृ० १८३।

लब्धप्रतिष्ठ विद्वानोंने किया है और जिनमें हिन्दुस्तानके प्रायः सभी सङ्गीतज्ञोंको निमन्त्रित किया गया है—तो सबसे अनुदार व्यक्तिको भी यह निःसङ्कोच स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दू मुस्लिम सङ्गीतकलाओंके सम्मिश्रणसे जिस सांस्कृतिक कलाका उद्गम हुआ है वह हर तरहसे भारतीय है, साम्प्रदायिकताकी उसमें गन्धतक नहीं है।

हिन्दू और मुसलमानोंके इस आदान-प्रदानके प्रयासका उल्लेख करते हुए मि० एस० एम० जाफरने लिखा है :—

"जो मुसलमान भारतमें आये उन्होंने इसे अपना घर बना लिया और इसीमें घुल मिल गये। हिन्दुओंके इस आदिनिवासमें अनवरत लड़ते झगड़ते रहकर बस जाना उनके लिए सम्भव नहीं था। साथ साथ रहनेसे मेल मिलाप होने लगा और एक दूसरेको समझने लगे। समयकी प्रगतिके साथ उन्होंने वह बीचका रास्ता निकाल लिया जिससे दोनों मित्रकी भाँति रह सकें। फारसी संस्कृतिकी रूढ़िसे उन्होंने एक नयी भाषा तैयार कर ली और वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम समान संस्कृतिने अपना पुराना ढर्रा त्याग दिया और इस नये स्रोत उर्दूका सहारा लिया। इस सम्मिश्रणसे जिस संस्कृतिका प्रवेश हुआ वह न तो पूर्णतया हिन्दू संस्कृति थी और न मुस्लिम बल्कि दोनोंका सम्मिलित रूप थी। मुसलमान राजाओं और सरदारोंने हिन्दू साहित्यकला, विज्ञान तथा दर्शनको प्रोत्साहन दिया और अपने साहित्य तथा कलाका द्वार बिना किसी भेदभावके सबके लिए खोल दिया। सन्तों और फकीरोंकी तरह उनलोगोंने भी अपने दायरेमें हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेकी ओर ध्यान दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों जातियाँ एक दूसरेसे घुल मिल गयीं। इसलिए यदि हिन्दुओंने मुसलमानोंके मजारोंपर शिरनी चढ़ायी, भाग्यकी परीक्षाके लिए कुरानकी सहायता ली, विघ्नोंसे त्राण पानेके लिए कुरान रखे और मुसलमानोंके उत्सव मनाये तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। क्योंकि मुसलमानोंका भी वही व्यवहार हिन्दू-ग्रन्थों तथा देवी-देवताओंके प्रति था। ...मुसलमानोंकी अधिक संख्या हिन्दू वंशोंसे थी, इसलिए उनके सामाजिक विचार और रीति-रिवाजोंमें

किसी तरहके परिवर्तन नहीं हुए—यद्यपि उनमें अनेक हेरफेर हो गये। उन्होंने अपना धर्म अवश्य छोड़ दिया था लेकिन अपनी पुरानी चाल-ढाल, रीतिरिवाज, रस्म, रहन-सहन और मनोरञ्जनके साधनोंको पूर्ववत् कायम रखा। धर्मपरिवतनसे उनके उस वातावरणमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं हुआ जो उनके सामाजिक-विचार, अन्धविश्वास तथा जातीय प्रथामें पूरी तरह व्याप्त था।"*

'संस्कृति' शब्द बहुत ही जटिल है। राष्ट्र शब्दकी भाँति उसकी कोई निर्दिष्ट परिभाषा नहीं हो सकती। तो भी किसी एक संस्कृतिमें उत्पन्न व्यक्ति दूसरी संस्कृतिसे अपनी भिन्नता व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। एक ही संस्कृतिमें उपजातियाँ हो सकती हैं जो एक दूसरेसे भिन्न होते हुए भी एक ही संस्कृतिके अङ्ग हो सकती ह।

कोई भी संस्कृति जिसका निर्माण भिन्न भिन्न, अथवा विरोधी सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य उपकरणोंके सम्मिश्रणसे हुआ हो, इस तरहके दलों या उप-जातियोंसे युक्त रहेगी ही, यह अनिवार्य है। लेकिन इस आधारपर यह नहीं कहा जा सकता कि इन समस्त उपदलों या उपजातियोंको एक सूत्रमें बाँध रखनेवाली उस सर्वव्यापी संस्कृतिका कोई अस्तित्व नहीं है। जब हम एक संस्कृतिसे दूसरी संस्कृतिकी तुलना करना चाहते हैं तब यही उचित है कि दोनों संस्कृतियोंकी उपजातियोंको एक दूसरेसे तुलना न कर उस सर्वव्यापी संस्कृतिकी ही एक दूसरेसे तुलना करें जो उन उपदलों या उपजातियोंके ऊपर विद्यमान है। एक दूसरेसे भिन्न होते हुए भी उनमें बहुतसी समानताएँ पायी जायँगी जिनसे अन्य संस्कृतियोंसे उसका भेद स्पष्ट हो जायगा। भारतवर्षके हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और पारसी अनेक बातोंमें एक दूसरेसे भिन्न हैं तो भी उनमें अनेक बातें समान रूपसे पायी जाती हैं जो उन्हें किसी विदेशी-यूरोपीयसे पृथक् करती हैं। जो लोग इस तथ्यको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं उन्हें

*** एस० एम० जाफर—सम कल्चरल आस्पेक्ट्स आव मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृष्ठ २०६–७।**

विभिन्न ब्रिटिश उपनिवेशोंमें बसे हुए भारतीयोंकी स्थितिका अध्ययन करना चाहिए। वहाँ उन्हें इस बातका अकाट्य प्रमाण मिल जायगा कि भारतके हिन्दू और मुसलमानोंकी दो भिन्न संस्कृतियाँ नहीं हैं। दक्षिण अफ्रिका,आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा केनियामें रहनेवाले यूरोपियनोंकी दृष्टिमें प्रत्येक भारतीय—चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी या ईसाई हो—वह जीव है जिसे इस तरह दबाकर रखना है ताकि वह यूरोपीय संस्कृतिको दूषित न कर सके और उनके रहन-सहनकी विशिष्टताको नीचे न गिरा सके। यह हीन व्यवहार केवल भारतवासियोंके साथ नहीं है जो गुलामदेशके रहनेवाले हैं। चीनी—जो आजाद देशके रहनेवाले हैं और जापानी——जिन्हें इस युद्धके पहले आदरके साथ देखा जाता था उन देशोंके यूरोपियनोंद्वारा इसी तरहके व्यवहारोंका शिकार थे। इस भेदभावका कारण यूरोप और एशियाकी संस्कृतिकी विभिन्नता है। इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि अनेक तरहके भेदभावोंके रहते हुए भी भारतके हिन्दू और मुसलमानोंने एक संयुक्त संस्कृतिका जन्म दिया जो हर तरहसे भारतीय है और किसी भी भारतीयको किसी भी विदेशीसे अलग कर देती है चाहे वह पूर्व या पश्चिमसे आया हो चाहे वह प्राचीन दुनिया या वर्तमान दुनियाके किसी भी महाद्वीप या देशका निवासी हो। युद्ध और शान्तिमें सदियोंसे साथ साथ और हिलमिलकर काम करनेके कारण इससे भिन्न कोई दूसरी बात हो भी नहीं सकती थी।

यदि आमके दो पौधे एक साथ बाँध दिये जायँ या एक पौधा आमकी किसी डारसे बाँध दिया जाय तो इसका परिणाम यह होता है कि इस तरह जो नया पेड़ तैयार होता है उससे पुराने पेड़की अपेक्षा अच्छा फल पैदा होता है। इसलिए उसे काटकर अलग करनेका प्रयास गलत और क्रूर है और साथ ही यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि इतने समयके बाद ऐसा करना सम्भव भी नहीं है क्योंकि समयकी गतिके साथ इस नये पेड़ने अनेक तूफानोंके झटके बर्दाश्त किये और शक्तिशाली बन गया। यदि इस तरहके प्रयासको सफलता मिली तो इससे दोनोंकी घोर क्षति होगी। दोनों कमजोर हो जायँगे और हर तरफसे उनपर आक्रमणका खतरा उपस्थित हो जायगा।

च—एक देश

भारत विस्तृत देश है। उत्तरमें हिमालय-शृङ्खलासे लेकर दक्खिनमें कटिबन्ध रेखातक फैला हुआ है। इसलिए जलवायुकी विभिन्नता तथा शारीरिक गठनमें अन्तर होना स्वाभाविक है। इसके साथ ही साथ प्रायः चार हजार फुटका समुद्री किनारा है जो समुद्रसे कटकर विषम हो गया है। इस देशमें राजपूताना और सिन्धके समान मरु-प्रदेश भी हैं और बङ्गाल तथा आसामके समान हरे-भरे प्रान्त भी हैं। आसामके उत्तर-पूर्वी भाग तथा पश्चिमी घाटके दक्षिण-पश्चिमी भागके समान प्रदेश भी हैं जहाँ अत्यधिक वर्षा होती है तथा राजपूताना, सिन्ध और आन्ध्रके कुछ हिस्सोंके समान प्रदेश भी हैं जहाँ अति अल्प वर्षा होती है। इसी तरह ऐसे भी प्रान्त हैं जहाँ अत्यधिक सर्दी तथा गर्मी पड़ती है जैसे, पंजाब तथा सीमाप्रान्त, और ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ न तो गर्मी पड़ती है और न सर्दी ही, जैसे दक्षिणके समुद्रा किनारेके प्रदेश। लेकिन जलवायु तथा इन अनेक विभिन्नताओंका कोई भी असर यहाँके निवासियोंके धार्मिक विश्वासपर नहीं पड़ा है और न इससे किसी तरहका भेदभाव ही पैदा हुआ है। उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी प्रदेशोंके जलवायुमे बहुत अधिक अन्तर है, लेकिन साथ ही दोनों प्रदेशोंमें मुस्लिम जन-संख्या इतनी अधिक है कि इसीको आधार मानकर साम्प्रदायिक बँटवारेकी माँग पेश की जाती है।

जलवायु तथा इस तरहकी अन्य विभिन्नताओंका असर विभिन्न प्रान्तोंके निवासियोंकी पोशाक, गृहनिर्माण रीति-रिवाज तथा रहन-सहनपर अवश्य पड़ा है। इस तरहके भेदभावके रहते हुए भी भारत अखण्ड है और प्रकृतिने इसे स्वाभाविक प्रतिबन्धों—जैसे ऊँचे ऊँचे पहाड़ और समुद्र—द्वारा अन्य देशोंसे अलग रखना ही उचित समझा है। प्रत्येक आक्रमणकारी, विजता या सम्राट्ने—चाहे वह हिन्दू शासनकाल या मुसलमान शासनकालमें हुआ हो—इ भूमि-भागके प्रत्येक प्रान्तपर अपना शासन फैलानेका यत्न किया है। प्रत्येक शासकने इस बातका यत्न किया कि यदि शासनके अन्दर नहीं तो प्रभुत्वके अधीन तो यह

समूचा देश अवश्य आ जाय। उत्तर पश्चिमी सीमाके एक कोनेमें सदा ऐसा भूमिभाग रहा है जो उस युगमें कभी भी किसीके अधीन नहीं रहा। कुछ कालके लिए किसी भारतीय अथवा विदेशीका शासन उसपर भले ही हो जाता रहा हो। भारतको अपने अधीन करनेके लिए ब्रिटिश सरकारने भी उसी पुरानी नीतिको अपनाया। आजके प्रान्तोंके समान उस युगमें छोटे छोटे राज्य थे जो आपसमें लड़ा करते थे। लेकिन किसी भी शासक, राजा या नवाबने कभी यह कल्पना नहीं की कि वह इस देशका निवासी नहीं है अथवा किसी भी प्रकार वह विदेशी है या चीन, बर्मा, अरब अथवा तुर्किस्तानका रहनेवाला है। सन्ध्या सरीखे नित्यकर्मके एक संकल्पके लिए जिस मन्त्रका प्रतिदिन पाठ किया जाता है उसमें अखण्ड भारतकी ही पूर्ण कल्पना है और जलपात्रमें सिन्धु, गङ्गा तथा कावेरी आदि नदियोंका आवाहन किया जाता है। यह बात उसी समयतक सीमित नहीं थी जब इस देशपर हिन्दू चक्रवर्ती सम्राटोंका शासन था बल्कि उस युगमें भी जब यहाँ मुसलमान बादशाह राज्य करते थे अथवा जब दिल्लीके तख्तपर मुसलमानोंका राज्य था और भिन्न भिन्न प्रदेशोंका राज्य छोटे छोटे स्वतन्त्र राजाओंके हाथमें था। आज जब समूचे भारतपर ब्रिटिश झण्डा फहरा रहा है तब भी उसी मन्त्रका उच्चारण होता है। हिन्दुओंके चार प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं जिन्हें धाम कहते हैं। इन चारों धामोंकी यात्रा करना प्रत्येक हिन्दू अपना सबसे बड़ा धार्मिक कृत्य मानता है। ये धाम भारतके दक्षिणी विन्दुपर रामेश्वर उत्तरमें हिमालयकी १५००० फुट ऊँची चोटीपर बदरिकाश्रम, पूर्वी किनारेपर उड़ीसामें जगन्नाथ और पश्चिमी किनारेपर काठियावाड़में द्वारका हैं। यह किसी भी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि चाहे देशपर किसी जातिका शासन क्यों न रहा हो, भारत कितने भी छोटे-मोटे राज्योंमें विभक्त क्यों न रहा हो, लेकिन यहाँके हिदुओंने कभी इसकी खण्डताकी कल्पनातक नहीं की और मुसलमान तथा ब्रिटिश शासकोंने भी हिन्दुओंकी उसी परम्पराको पूर्णतः स्वीकार किया है।

दूसरी तरफ दो राष्ट्रीयताके सिद्धान्तकी इस घोषणाके पहले आधुनिक कालतक इस देशके मुसलमान निवासियोंने भी कभी यह कल्पना नहीं की कि भारतका कोई भी भाग इससे भिन्न या अलग है। किसी भी मुसलमान-विजेता या शासकने इस देशके किसी भी अंशको अपनी मातृभूमि या जन्म-भूमिमें मिलानेकी कल्पना नहीं की। जो समर्थ था वह यहाँ बस गया और जिस प्रदेशके निवासी उसकी अधीनता स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे, उन्हें अपने अधीन करनेका यत्न किया। सीमाके पास इस तरहका भूमिभाग था जो कभी एक तथा कभी दूसरी सीमामें समा जाता था, इस बातका प्रमाण नहीं हो सकता कि ऊपर जो बातें कहीं गयी हैं वे गलत हैं।

मुसलमानी शासनकालकी बात यदि छोड़ दी जाय तो भी ब्रिटिश शासन-कालमें ही ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्योंतकके मुसलमानोंने भारतके किसी भी भूभागको इससे अलग नहीं माना है। इसे खण्ड करनेकी आवाज एकदम नयी है। मुस्लिमलीग—जो उत्तर-पश्चिमी और पूर्वी प्रदेशको स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें स्थापित कराना चाहती है—वह भी इन प्रदेशोंको भारतसे बाहर मानती है या भारतका एक अङ्ग मानती है, यह मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। जहाँतक मुझे मालूम है एकमात्र श्री सी० रहमतअली——जो पाकिस्तान राष्ट्रीय आन्दोलनके विधायक अध्यक्ष हैं—ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है:—"भारतकी दैशिक इकाईको स्वीकार करनेका अर्थ होगा मिल्लतके गलेमें भारतीयताका क्रूर जुआ बाँध देना।" उन्होंने मुसलमानोंसे कहा है कि——"हमलोगोंको भारतसे हर तरहका नाता तोड़कर रहना होगा, भारतीयतासे मिल्लतकी रक्षा करनी होगी और 'पैन इस्लामिका'का समर्थन करना होगा*।"'अखिल भारतीय मुस्लिमलीग'नामसे भी उन्हें चिढ़ है क्योंकि उसके साथ 'भारतीय' शब्द लगा है और 'इस तरह भारतीयताके विरुद्ध हमारी युद्ध-घोषणाको वह खोखला साबित कर देता है।'

---

* दी मिल्लत आव इस्लाम एण्ड दि :मेनास आव इण्डियनिज्म—एक पत्र जो श्री० सी० रहमतअलीने पाकिस्तान नेशनल आन्दोलनकी सुप्रीम कौंसिलके पास भेजा था। पृष्ठ ७

"उसमें 'भारतीयता'की गन्ध जाती है और इस तरह 'मिल्लत' भारतीयताका अङ्ग बन जाता है। नामोंके असर और प्रभावको किसी भी तरह लघु नहीं समझना चाहिए। ये व्यक्त चिह्न हैं और धारण करनेवालेके व्यक्तित्वको स्पष्ट करते हैं। इतना ही नहीं, ये ऐसे चारित्रिक चिह्न हैं जिनसे प्रोत्साहन मिलता है......इस भूलका हमलोगोंको बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है। इसने हमारी राष्ट्रीयताको हलका बना दिया है और हमलोगोंको भारतीय। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि 'भारतीय' शब्द में किसी तरहकी कमी है। वह उसी तरह आदरणीय है जिस तरह कोई दूसरा नाम। असल बात यह है कि हमलोग भारतीय नहीं हैं इसलिए हमारे किसी विधानमें 'भारतीय' शब्दका रहना हमारी हीनताका द्योतक है"।* इस तथ्यको समझलेनेके बाद श्री रहमतअलीने "१९३२में उत्तर पश्चिमके पाँच मुस्लिम प्रधान प्रदेशोंको पाकिस्तानकी संज्ञा दी। १९३७में उन्होंने बङ्गाल, आसामको बङ्ग-ए-इस्लाम और हैदराबाद—दक्खिनको 'उस्मानिस्तान' नाम दिया। इन तीनों प्रदेशोंको वे मिलीगढ़ मानते हैं जो अकारण या मनमाने ढङ्गसे विभिन्न राष्ट्रीयतायुक्त उपमहाद्वीप भारतमें मिला लिया गया है।"† इस तरह हम देखते हैं कि १९३३ से श्री रहमतअली तथा पाकिस्तान राष्ट्रीय आन्दोलनद्वारा भारत एक उपमहाद्वीप माना जाने लगा है जिसमें भिन्न भिन्न देश शामिल हैं। किसी दूसरी महत्वपूर्ण संस्था या व्यक्तिने उनकी इस उक्तिको स्वीकार किया है या नहीं, मुझे नहीं मालूम! शासनकी सुविधाके लिए देशोंका बँटवारा हो सकता है, लेकिन मुझे एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिला है जहाँ इस तरह किसी भी देशका निर्माण हुआ हो। यूरोपमें जब कभी किसी देशके टुकड़े करनेके इस तरहके प्रयास हुए हैं तब उसका परिणाम अनवरत घृणा, द्वेष और जातीय युद्ध हुआ है। वर्तमान विश्व-नाशकारी युद्ध भी इसी तरहके प्रयासका कुफल है। इससे हमलोगोंको शिक्षा और चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए।

---

* वही पृष्ठ १५। † वही पृष्ठ १ तथा १६।

छ—एक इतिहास

नवीं सदीमें मुहम्मद बिन कासिम सिन्धके किनारेपर उतरा था। यहींसे हिन्दुस्थानपर मुसलमानोंका आक्रमण आरम्भ होता है। यह चढ़ाई १८वीं सदी-तक जाती रही। आखिरी चढ़ाई अहमदशाह अब्दालीकी हुई थी। निश्चय रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि ८ या ९ सौ वर्षोंकी यह लगातार चढ़ाई केवल धार्मिक दृष्टिकोणसे की गयी थी अर्थात् धार्मिक जोशमें आकर केवल इस्लाम धर्मको फैलानेके लिए यह चढ़ाई थी। ये चढ़ाइयाँ भी अन्य साधारण चढ़ाइयोंकी भाँति अर्थलोलुपता और भौतिक लाभकी दृष्टिसे की गयी थीं, धार्मिक जोशकी मात्राका इनमें सर्वथा अभाव था। आरम्भमें इन चढ़ाइयोंका मुकाबला केवल हिन्दुओंने किया क्योंकि उस समयतक ये ही इस देशके निवासी थे। इसलिए वे आरम्भिक लड़ाइयाँ हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ही हुईं। लेकिन आरम्भिक कालसे ही इन मुसलमान आक्रमणकारियोंकी अभिलाषा यहाँ बस जानेकी थी। ग्यारहवीं सदीमें शहाबुद्दीन गोरीकी चढ़ाई इस देशपर हुई थी। इसके बाद जितने भी मुसलमानोंने इस देशपर चढ़ाई की—चाहे वे पठान रहे हों, अथवा तातार, तुर्क, मुगल या अफगान जो भी हिन्दुस्थानके बाहरसे आये, सबने हिन्दुस्थानमें किसी न किसी भागपर अपना प्रभुत्व कायम किया और अवसर पाकर उसका विस्तार किया। ज्यों ज्यों उनके राज्यका विस्तार होता गया त्यों त्यों उनकी राजधानी दिल्लीसे समूचे राज्यका प्रबन्ध करना कठिन होता गया और सुदूर देशोंके शासनके लिए उन्हें शासक (गवर्नर) नियुक्त करने पड़े। इन शासकोंने केन्द्रीय शासन (साम्राज्य) की कमजोरियोंसे सदा लाभ उठाया और मौका पाते ही अपने अपने प्रान्तोंमें अपना स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिया। इसलिए मुसलमानी शासनकी लम्बी अवधिमें हमें दो तरहकी लड़ाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। आरम्भमें तो मुसलमानों-को अपने राज्यके विस्तारके लिए युद्ध करने पड़े और युद्ध मुख्यतः हिन्दुओंके साथ हुए क्योंकि जिन राज्योंको ये मुसलमान विजेता अपने अधीन करना चाहते थे उनपर हिन्दुओंका शासन था, लेकिन थोड़े ही कालके भीतर स्वतन्त्र

मुसलमान राष्ट्र हिन्दुस्थानमें कायम हो गया था और दिल्लीके मुसलमान सम्राट्को जितने युद्ध करने पड़े अथवा जितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं उनमेंसे अधिकांश हिन्दुओंके मुकाबले नहीं थीं बल्कि मुसलान राजाओं अथवा अपने उन शासकोंके खिलाफ थीं जिन्होंने विद्रोह खड़ा कर अपनेको स्वतन्त्र बना लिया था। इन युद्धों और चढ़ाइयोंमें हिन्दू सैनिकोंने दोनों पक्षोंकी ओरसे युद्ध किया। गोरीके बाद जितने भी मुसलमान विजेता उत्तर पश्चिमसे आये सबको भारतके किसी न किसी मुस्लिम राज्यपर ही चढ़ाई करनी पड़ी और दिल्लीके किसी न किसी मुसलमान शासकको ही परास्त करना पड़ा। उन्होंने ऐसा ही किया भी। चगेजखाँ और तैमूरकी चढ़ाई किसी हिन्दू सम्राट्के ऊपर नहीं थी बल्कि दिल्लीके मुसलमान बादशाहोंके ऊपर थी और उन्होंने ही इन चढ़ाइयोंका सामना भी किया था। मुगल साम्राज्य स्थापित करनेके लिए बाबरको किसी हिन्दू सम्राट्से युद्ध नहीं करना पड़ा था, बल्कि मुसलमान सम्राट् इब्राहिमलोदीको पानीपतके मैदानमें हराकर उसने इस देशपर अपना पैर जमाया। मेवाड़के राणा सांगाके साथ बाबरका जो युद्ध हुआ था उसमें राणाकी तरफसे केवल राजपूत ही नहीं लड़े थे बल्कि मेवातका हसनखाँ और सिकन्दरलोदीका लड़का मुहम्मदलोदीने भी राणाका साथ दिया था क्योंकि राणाने उसे दिल्लीका सम्राट स्वीकार किया था। हिन्दू और मुसलमानोंकी इस संयुक्त सेनाको १५२७ ई०में खनवाके मैदानमें हरानेके बाद ही दिल्लीमें बाबरके साम्राज्यकी जड़ जम सकी।

पठान मुसलमान शासक शेरशाहने ही बाबरके पुत्र हुमायूँसे राज्य छीन लिया था और शेरशाहकी मृत्युके बाद जब इसपर फिर मुगलोंका प्रभुत्व कायम हुआ तब हुमायूँके पुत्र अकबरको अपने साम्राज्यकी नींव दृढ़ करनेके लिए मुसलमान शासकोंसे ही मोर्चा लेना पड़ा था। अकबरसे लेकर औरङ्गजेबतक मुगल साम्राज्यका इतिहास विद्रोही मुसलमान शासकोंको दबाने तथा स्वतन्त्र मुसलमान राज्यको जीतकर साम्राज्यमें मिलानेके वृत्तान्तोंसे भरा पड़ा है। इतिहास साक्षी है कि औरङ्गजेबको दक्खिनके स्वतन्त्र मुसलमान राज्य बीजापुर और गोलकुण्डाको परास्त करनेके लिए कई वर्षतक दक्खिनमें रहना पड़ा और अन्तमें

वह उधर ही मर भी गया। मुगल सम्राटोंकी तरफसे इन चढ़ाइयोंका सेना-पतित्व अकबरके शासनकालमें मानसिंह और भगवानदास तथा औरंगजेबके शासनकालमें जसवन्तसिंह और जयसिंहने किया था। इन चढ़ाइयोंमें उन्होंने केवल मुसलमान शासकोंको ही परास्त नहीं किया बल्कि उन हिन्दू राजाओंको भी तहस नहस कर डाला जो स्वतन्त्र शासन कर रहे थे। इससे यह स्पष्ट है कि मुसलमान शासनकी उस लम्बी अवधिमें भारतपर जो चढ़ाइयाँ हुई और हिन्दु-स्तानमें जो युद्ध हुए, सबका एकमात्र उद्देश्य अर्थलोलुपता और भौतिक लाभ था जो प्रायः सभी चढ़ाइयों और युद्धोंके कारण हुआ करते हैं अर्थात् आकांक्षा साम्राज्यके लिए स्पर्धा, और साम्राज्यविस्तारका लोभ तथा साम्राज्य कायमकर वह ख्याति और यश प्राप्त करना जो इनके वरदान माने जाते हैं।

तेरहवीं सदीके आरम्भसे लेकर—जब १२०६ में कुतुबुद्दीन ऐबकने हिन्दु-स्तानमें मुसलमानी सलतनत कायम की—१८वीं सदीके अन्ततक, जब कि ब्रिटिश शासनने अपनी नींव मजबूत कर ली थी—इन ६०० वर्षोंका हिन्दु-भारतवर्षका इतिहास हिन्दू और मुसलमानोंके बीच परस्पर सङ्घर्ष और अनवरत युद्धका इतिहास नहीं है। न तो यह उपयुक्त स्थान है और न यहाँ इसकी गुञ्जाइश है कि विस्तृतरूपसे यह दिखलाया जाय कि ये लड़ाइयाँ हिन्दू और मुसलमानोंके बीच उतनी ज्यादा नहीं लड़ी गयीं जितनी ज्यादा दो मुसलमान राज्योंके बीच लड़ी गयी थीं। यहाँ केवल इनका दिग्दर्शनमात्र कराया जा सकता है।

इस कालको दो हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है। एक वह जब दिल्लीके सिंहासनपर सुलतानोंका आधिपत्य था और दूसरा मुगलोंका शासनकाल। प्रथम कालमें भारतमें मुसलमानोंका राज्य ही स्थापित नहीं हुआ बल्कि हिमालयकी तराईसे लेकर रामेश्वरम्‌तक और पश्चिमी सीमासे लेकर उड़ीसा और बङ्गालके पूर्वी किनारेतक उसका फैलाव भी हुआ और साथ ही साथ अनेक छोटे छोटे स्वतन्त्र और अर्ध स्वतन्त्र मुसलमान राज्य भी कायम होते गये। समय समयपर दिल्लीके सिंहासनपर भी भिन्न भिन्न मुसलमान वंशोंका शासन कायम होता रहा।

दिल्लीके सुलतानोंका अधिकांश समय हिन्दुओंको परास्त कर साम्राज्यके विस्तारमें ही नहीं बीतता था बल्कि उन्हें अपने अधीनस्थ मुसलमान शासकोंके विद्रोहको भी दबाना पड़ता था। जो मुसलमान शासक स्वतन्त्र हो जाते थे उन्हें हटाकर उनके राज्यको साम्राज्यमें पुनः मिलाने तथा कभी कभी आक्रमणोंसे अपनी रक्षामें भी वे व्यस्त रहते थे। ११९३ और १५२६ के बीच दिल्लीके सिंहासन पर ३५ सुलतान आरूढ़ हुए जो ५ भिन्न भिन्न वंशके थे। ये सभी बादशाह मुसलमान थे; प्रत्येक इस्लाम धर्मको मानता था और प्रत्येकको किसी मुसलमान वंशने ही पदच्युत किया। जो ३५ सुलतान दिल्लीके सिंहासनपर बैठे उनमेंसे १९ अर्थात् अधिकांश जानसे मारे गये या कत्ल कर दिये गये। इन्हें हिन्दुओंने नहीं, बल्कि मुसलमानोंने ही कत्ल किया था।

जो स्वतन्त्र या अर्धस्वतन्त्र मुसलमान राज्य इस कालमें स्थापित हुए थे उनमेंसे कुछ ये हैं—बङ्गाल, गुजरात, जौनपुर, मालवा, खानदेश, बहमनी राज्य—जो आगे चलकर बरार, बिहार, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा नामक पाँच राज्योंमें बँट गया। इनमेंसे प्रत्येक राज्यका अलग अलग स्वतन्त्र इतिहास है अर्थात् पड़ोसी मुसलमान राज्यों तथा दिल्लीके राजाके साथ संघर्षका इतिहास। कभी कभी उन हिन्दू राजाओंके साथ भी उनकी मुठभेड़ हो जाया करती थी जो उस समय भारतके किसी भागके शासक थ।

भारतके मुसलमान शासकोंपर समय समयपर उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्तकी ओरसे बाहरी मुसलमान विजेताओंकी चढ़ाइयाँ भी होती रहीं। इन चढ़ाइयोंका ताला इतना अधिक बध गया था कि अलाउद्दीनके समयसे तो उस तरफकी चढ़ाइयोंको रोकनेके लिए एक तरहकी किलेबन्दी करनी पड़ी थी।

सन् १५२६में बाबरने पानीपतके मैदानमें इब्राहिमलोदीको हराकर भारतमें मुगल साम्राज्यकी नींव डाली। लेकिन दिल्लीका सिंहासन उसके उत्तराधिकारियोंके लिए कभी गुलाबकी सेज नहीं बन सका। उसके बेटे हुमायूँ-को अपने ही भाई कामरानसे युद्ध करना पड़ा जो काबुल और कन्धारके राज्यसे सन्तुष्ट न होकर लाहोरपर चढ़ आया और समस्त पञ्जाबको अपने अधीन

कर लिया। हुमायूँको अपने अन्य दो भाइयों—हिन्दल और मिर्जा अस्करीसे भी संग्राम करना पड़ा था। हिन्दल लड़ाईमें मारा गया और कामरान कैद कर लिया तथा उसकी दोनों आखें निकाल ली गयीं। अस्करी भी कैद कर लिया गया और कामरानकी तरह उसे भी मक्का भेज दिया गया।

उत्तर भारतमें अपनी स्थिति कायम रखनेके लिए हुमायूँको अनवरत युद्ध करना पड़ा था। उसे गुजरातके बहादुरशाहपर चढ़ाई करनी पड़ी लेकिन शेरखाँके विद्रोहके कारण वह गुजरातको अपने अधीन नहीं कर सका। शेरखाँ बिहारका एक अफगानी सरदार था। इसने हुमायूँको हराकर दिल्लीका सिंहासन छीन लिया। हुमायूँ वर्षोंतक मारा मारा फिरता रहा और फारसके शाहसे उसे सहायताकी भीख माँगनी पड़ी।

शेरशाहके बाद उसका बेटा सलीमशाह गद्दीपर बैठा। अफगान सरदार उसकी हुकूमत माननेके लिए तैयार नहीं थे। कितनोंको उसने कैद कर लिया और कितने ही मौतके घाट उतारे गये। पंजाबके शासकने विद्रोह किया। उसका दमन किया गया। वह भागकर काश्मीर चला गया और वहीं मार-डाला गया।

सलीमशाहके बाद उसका बेटा फिरोजखाँ गद्दीपर बैठा। इसे उसके मामा मुबारिजखाँने मरवा डाला और मुहम्मदशाहके नामसे खुद गद्दीपर बैठा। उसके राज्यका प्रबन्ध हेमू नामक हिन्दू करता था। सरदारोंने बगावतका झण्डा खड़ा किया और इब्राहिम सूरने दिल्ली तथा आगरेपर कब्जा कर लिया। इब्राहिम सूरको सिकन्दर सूरने मार भगाया। हुमायूँ चुपचाप अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था। भारतकी इस अस्तव्यस्त दशासे उसने लाभ उठाया। सेना लेकर चढ़ आया और सरहिन्दके मैदानमें सिकन्दर सूरको हराकर १५५५ में पुनः अपने साम्राज्यको प्राप्त किया लेकिन थोड़े ही दिन बाद मर गया।

हुमायूँका बेटा अकबर सिंहासनपर बैठा। काबुल हिन्दुस्तानका मातहत राज्य समझा जाता था। इसका शासक अकबरका छोटा भाई महमूद हकीम बनाया गया। उस समय अकबरकी उम्र छोटी थी। राज्यकी देखभालका काम

वैरमखाँ करते थे। इस समय मुगल साम्राज्यपर पहली विपत्ति सूर राजाओंद्वारा आयी। उसके अमात्य (प्रधान मन्त्री) हेमूने दिल्लीपर चढ़ाई कर दी और मुगल सेनापति फरीदबेगको हरा दिया। इस आयोजनके फलस्वरूप बैरमखाँने उसे मरवा डाला। इस विजयके बाद हेमूने विक्रमादित्यकी उपाधि ग्रहण की और साम्राज्य स्थापित करनेके यत्नमें लग गया। पानीपतके मैदानमें बैरमखाँने उसे हराकर कैद कर लिया और मार डाला। इसके बाद ही सिकन्दर सूरने आत्मसमर्पण कर दिया और इस तरह १५५६में सूरवंशका अन्त हुआ।

बैरमखाँकी अधीनतासे अकबर अधीर हो उठा। इस काममें उसकी माँ, हमीदा बेगम, तथा उसकी धाय महम अंका और उसके बेटे आदमखाँने उसे बहुत प्रोत्साहित किया। १५६० ई०में अकबरने बैरमखाँको अलग कर दिया। वैरमखाँ मक्काके लिए रवाना हुआ। लेकिन अकबरके मनमें यह शंका बनी रही कि कहीं वह विद्रोह न खड़ा करे। इसलिए उसे जल्दी रवाना कर देनेके लिए अकबरने पीरमुहम्मदको सेना लेकर भेजा। इससे चिढ़कर उसने विद्रोह खड़ा कर दिया और पञ्जाबकी तरफ बढ़ा। अकबरने उसका पीछा किया। अन्तमें उसने आत्मसमर्पण कर दिया और उसकी पिछली सेवाओंका ख्याल कर उसे मक्का जाने दिया गया। गुजरातके पास पाटनमें उसके किसी दुश्मनने उसे मार डाला।

अकबरके सेनापति पीरमुहम्मद और आदमखाँने मालवापर चढ़ाई की और वहाँके मुसलमान शासकको बड़ी क्रूरता और निर्दयतासे दबाकर उसका राज्य छीन लिया। अकबरको इन विद्रोहोंका दमन करना पड़ा था:—

(१) अब्दुल्लाखाँ उजबेग पीरमुहम्मदकी जगह मालवाका शासक बनाया गया था। उसने मालवामें विद्रोह कर दिया।

(२) खाँ जमनने जौनपुरमें बगावत की।

(३) उजबेगोंसे प्रोत्साहित होकर अकबरके भाई मिर्जा हकीमने सिंहासन छीन लेना चाहा था। अकबर पञ्जाबकी तरफ बढ़ा। मिर्जा तेजीसे पीछे हटने

लगे। खाँ जमन लड़ाईमें मारे गये। मिर्जा गिरफ्तार कर लिये गये और उनका सिर उतार लिया गया। अन्य बलवाई भी बड़ी क्रूरतासे दबाये गये।

१५७३ ई० में अकबरने मुजफ्फरशाहसे गुजरातको छीनकर अपने साम्राज्यमें मिला लिया। अकबरके इतिहासमें यह महत्वपूर्ण घटना है।

शेरशाहके शासनकालमें बङ्गाल अफगान सरदारोंके अधीन था। १५६४में बिहारके सुलेमानखाँने गौरपर कब्जा किया और दोनों प्रान्तोंके शासक बन गये। उसके बाद उसका बेटा बयाजिद शासक बना। उसके वजीरोंने उसे मार डाला और उसके छोटे भाई दाऊदको गद्दीपर बिठाया। दाऊदने जमनिया-के किलेपर कब्जा कर लिया। इससे वह सम्राट्का कोप-भाजन बन गया। अकबरने अपने सेनापति मुनीमखाँको लेकर उसपर खुद चढ़ाई कर दी। १५७६ ई० में दाऊद लड़ाईमें मारा गया। इस तरह बङ्गाल और बिहार मुगल साम्राज्यमें मिला लिये गये। इसके बाद १५९२ ई० में उड़ीसा भी मिला लिया गया।

मुजफ्फरखाँ तुरबती बङ्गालका शासक बनाया गया। लगानबन्दीमें उसकी क्रूरता और बेईमानियोंसे स्थानीय सरदार भड़क उठे। धार्मिक सहनशीलता "सुलह-कुन" के कारण अकबर अपनी धार्मिक नीतिके लिए बदनाम हो गये थे। इससे लाभ उठाकर चिढ़े हुए उल्माओंने जौनपुरके काजीके नेतृत्वमें इस आशयका फतवा निकाल दिया कि सम्राट्के विरुद्ध हथियार उठाना जायज है। चगतायियोंका एक महत्वपूर्ण फिरका बाबाखाँके अधीन गौरपर चढ़ आया। अकबरने राजा टोडरमल (हिन्दू) को उसे दबानेके लिए भेजा। मुजफ्फरखाँ मारा गया और सारे बङ्गाल तथा बिहारपर बलवाइयोंका कब्जा हो गया। बड़ी कठिनाईसे इस विद्रोहका शमन किया गया।

हकीमने पुनः पञ्जाबपर चढ़ाई कर दी। लेकिन अकबरने उसे हरा दिया। १५८५ में उसकी मृत्युके बाद काबुलको दिल्लीमें मिला लिया गया और वहाँका शासन-भार राजा मानसिंह (हिन्दू) को सौंपा गया। सीमाप्रान्तके फिरके भी दबा दिये गये। काश्मीरके मुसलमान बादशाहको जबर्दस्ती दबाया गया और

काश्मीरको मुगल साम्राज्यमें मिला लिया गया और मिर्जा जानीसे सिन्ध छीन लिया गया। १५९५में कन्धार भी मिला लिया गया।

समस्त उत्तरी भारत और अफगान प्रदेशपर अपनी सुदृढ़ प्रभुता स्थापित कर अकबर दक्खिनकी तरफ मुड़ा। पहली चढ़ाई अहमदनगरपर हुई। वहाँकी गद्दीपर बुरहान निजामशाहकी बहन चाँदबीबी थी। उसने बीरताके साथ मुगलोंका सामना किया। अन्तमें वह हार गयी और १६०० ई० में अहमदनगरका पतन हुआ। इसके बाद बुरहानपुरपर चढ़ाई की गयी और १६०१में खानदेशके शासक मीरान बहादुरसे असीरगढ़ जीत लिया गया।

दक्खिनके लिए प्रस्थान करते समय अकबरने राजधानीका भार अपने पुत्र सलीमको दिया था और उसे हिदायत कर दी गयी थी कि राजा मानसिंह तथा शाह कुलीखाँको लेकर वह मेवाड़पर चढ़ाई कर दे। लेकिन शाहजादाने विद्रोह खड़ा किया और स्वतन्त्र बन गया। अकबर फौरन दक्खिनसे वापस आया। सलीमने इलाहाबादमें स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिया था। लेकिन बादमें उसने अकबरसे क्षमा माँग ली और पिता-पुत्रमें मेल हो गया। इसके बाद सरदारोंने षड्यन्त्र किया कि सलीमको पदच्युत कर उसके छोटे बेटे खुसरोको गद्दीका उत्तराधिकारी बनाया जाय। लेकिन षड्यन्त्र सफल नहीं हुआ और अकबरके मरनेपर १६०५ में जहाँगीरके नामसे सलीम गद्दीपर बैठा।

राजसिंहासनपर बैठते ही जहाँगीरको अपने ही बेटे खुसरोके षड्यन्त्रका मुकाबला करना पड़ा। वह आगरासे निकल भागा और कतिपय सरदारोंको मिलाकर बगावतका झण्डा खड़ा किया। उसे हराकर गिरफ्तार किया गया और हथकड़ी तथा बेड़ियोंके साथ सम्राट्के पास लाया गया। कैदमें डाल दिया गया और उसके सहायकोंको कड़ी सजाएँ दी गयीं। उसके आकर्षक व्यक्तित्वने पुनः षड्यन्त्रका बीजारोपण किया और सम्राट्की हत्या कर उसे सम्राट् बनानेका गुप्त आयोजन होने लगा। लेकिन षड्यन्त्रका भण्डा फूट गया। खुसरोकी आँखें निकाल ली गयीं और उसे कालकोठरीमें डाल दिया गया। १६१६ ई० में उसे उसके जानी दुश्मन आसफखाँके हवाले कर दिया

गया। आसफखाँने खुसरोको उसके प्रतिद्वन्दी शाहजहाँके सुपुर्द कर दिया, जिसने उसे १६२२ ई० में मरवा डाला। उसकी हत्यासे जहाँगीरको बड़ा सदमा पहुँचा और वह इलाहाबादमें दफनाया गया। वह स्थान आज भी खुसरोबागके नामसे मशहूर है। शाहजहाँका दूसरा प्रतिद्वन्दी और शत्रु शहरयार था। यह नूरजहाँका दामाद होता था। शाहजहाँने खुद अपने पिताके खिलाफ बगावत की और १६२२से अपने पिताकी मृत्युतक बागी बना रहा। वर्षों-तक इधर उधर भटकनेके बाद अन्तमें उसने आत्म-समर्पण किया और अपनी नेकनीयतीके सबूतमें अपने दो बेटों दारा और औरङ्गजेबको दरबारमें जमानतके तौरपर रखना पड़ा। जहाँगीरकी मृत्युके बाद शहरयारने सिंहासन पानेके लिए यत्न किया लेकिन असफल रहा। वह कैद कर लिया गया और उसकी आँखें निकाल ली गयीं। इस तरह अपने ससुर आसफखाँकी सहायतासे अपने प्रतिद्वन्दियोंको मौतके घाट उतारकर शाहजहाँ सम्राट बना। आसफखाँने क्रूरताके साथ राजवंशके शाहजादोंकी हत्या करवायी। कितनी बेगमोंने तो आत्महत्या कर ली। जहाँगीरको भी बङ्गालमें अपने अफगान सरदारोंके विद्रोहका दमन करना पड़ा था और अपने सरदार महाबतखाँसे ही युद्ध करना पड़ा था जिसने एकबार जहाँगीर और नूरजहाँ दोनोंको कैद कर लिया था। शाहजहाँका पहला नाम शाहजादा खुर्रम था। दक्खिनके मुसलमानी राज्योंको परास्त करनेपर उसके पिताने उसे शाहजहाँकी उपाधि दी थी। हिन्दू राजाओंके खिलाफ जहाँगीरकी केवल दो चढ़ाइयाँ हुई थीं। पहली चढ़ाई १६२० में काँगड़ापर और दूसरी चढ़ाई मेवाड़पर। मेवाड़के राजा अकबरके समयसे ही मुगल साम्राज्यका मुकाबला करते आ रहे थे। जहाँगीरने उन्हें अपने अधीन किया लेकिन वे इसी समय कन्धार साम्राज्यसे निकलकर फारसवालोंके कब्जेमें चले गये।

सिंहासनपर बैठते ही शाहजहाँको अपने बुन्देला सरदारोंके विद्रोहका मुका-बला करना पड़ा। वे तो दबा दिये गये लेकिन १६२९ में दक्खिनके सूबेदार खाँजहाँ लोदीने विद्रोह कर दिया। अन्तमें वह भी परास्त किया गया और अपने सौ साथियोंके साथ वह सूलीपर चढ़ा दिया गया।

१५९९ ई० में अकबरने खानदेश और १६००में अहमदनगर जीतकर मुगल साम्राज्यमें मिला लिया था। लेकिन अहमदनगरपर वास्तविक अधिकार कभी भी स्थापित नहीं हुआ था। मलिक अम्बरके प्रभावके कारण जहाँगीरके शासनकालमें भी उस दिशामें कोई प्रगति नहीं हुई थी। शाहजहाँकी विजय स्थायी नहीं रह सकी और दक्खिनके सुलतान पूरी तरह दबाये नहीं जा सके थे। १६३३में अहमदनगर सदाके लिए साम्राज्यमें मिला लिया गया। लेकिन बीजापुर और गोलकुण्डा अक्षत बने हुए थे। बीजापुरके सुलतानकी सहायतासे शाहजीने निजामशाहीके एक बालकको अहमदनगरकी गद्दीपर बिठाया था। इससे सम्राट् बिगड़ खड़े हुए और उन्होंने उनके खिलाफ फौजें भेजीं। गोल-कुण्डाके सुलतान परास्त किये गये। इसी समय बीजापुरने भी सम्राट्की अधी-नता स्वीकार कर ली। इसके बाद औरङ्गजेब दक्खिनका सूबेदार बनाया गया। यह शान्ति स्थायी नहीं रह सकी। कुछ ही वर्षोंके बाद इनपर पुनः चढ़ाइयाँ करनी पड़ीं। बिहारपर कब्जा कर लिया गया। गुलबर्गामें बीजापुरको परास्त किया गया और १६५८ के घेरेके बाद कल्यानीका किला अधीन कर लिया गया। राजनीतिक कारणोंके अलावा दक्खिनके दोनों सुलतान शिया थे इसलिए भी उन्हें दबाना सुन्नी सम्राट्का बहुत बड़ा कर्तव्य था।

जहाँगीरके शासनकालमें ही फारसवालोंने कन्धार दखल कर लिया था। शाहजहाँके शासनकालमें उसे प्राप्त करनेके लिए बार बार कोशिशे की गयीं। १६३९में कन्धारके शासकको अपने ही शाहपर सन्देह हुआ। उनकी नीयत-पर सन्देह कर उसने दिल्लीके सम्राट्के पास सन्देश भेजा। तुरत सेना भेजी गयी और १६३९ में बिना किसी प्रयासके कन्धारपर कब्जा हो गया। लेकिन फारसवाले चुप नहीं रहे। उनका प्रयास जारी था और १६४९ में उन्होंने कन्धार पुनः छीन लिया। दिल्लीके सम्राट्की तरफसे लगातार धावे किये गये। अनेक बार कन्धारपर घेरा डाला गया। इस चढ़ाईमें प्रायः १२ करोड़ रुपये खर्च पड़े, तो भी सम्राट्को सफलता नहीं मिली।

शाहजहाँने बल्ख और बदख्शाँको भी जीत लेनेका प्रयास किया। शाहजादा मुरादके अधीन बहुत बड़ी सेना रवाना की गयी। बोखाराके शासक नाज मुहम्मदखाँ और उसके विद्रोही बेटेके परस्पर कलहसे लाभ उठाकर मुराद १६४६ में बिना रोक टोक बल्खमें प्रवेश कर गया। नाज मुहम्मद भाग गया। मुराद वहाँसे हिन्दुस्तानके लिए लौट पड़ा और औरङ्गजेबके नेतृत्वमें दूसरी चढ़ाईका आयोजन करना पड़ा। आरम्भमें कहीं जमकर लड़ाई नहीं हुई। लेकिन जब राजपूत और मुगलोंने गोली दागना शुरू किया तो उजबगलोग मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए और विजयी औरङ्गजेबने बल्खमें प्रवेश किया। राजपूत सरदार मधुसिंह हाड़ाको बल्खका शासक बनाकर औरङ्गजेब आगे बढ़ा। उसे पग पगपर बुरी तरह मुसीबतोंका सामना करना पड़ा और अन्तमें पीछे हटना पड़ा। मार्गमें उसकी सेनाको घोर मुसीबतोंका सामना करना पड़ा और जो राजपूत पीछे छोड़ दिये गये थे वे अन्न और पनाहके अभावमें मर गये। यहाँ चढ़ाई बुरी तरह असफल रही और इसमें साम्राज्यके प्रायः ४ करोड़ रुपये खर्च हुए।

सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ बीमार पड़ा। अफवाह फैल गयी कि सम्राटका स्वर्गवास हो गया। जनतामें अशान्ति फैल गयी और राजगद्दीके लिए युद्ध छिड़ गया। यह सभी जानते हैं कि अपने पिताकी गद्दी प्राप्त करनेके लिए औरङ्गजेबको अपने भाइयों दारा, शुजा और मुरादके खूनसे अपना हाथ रँगना पड़ा था। यह लिखा जा चुका है कि उसे बीजापुर और गोलकुण्डाके खिलाफ अनवरत युद्ध करने पड़े थे और २५० सालके अनवरत प्रयासके बाद दोनों राज्य दिल्लीमें मिलाये गये थे। यदि औरङ्गजेबके युद्धोंमें हिन्दू सहायक थे तो "शिवाजीकी सेनामें भी अनेकों मुसलमान अफसर थे। सिद्दी हुलाल तथा नूरखाँ आदि अनेक मुसलमान तो ऊँचे ऊँचे पदोंपर थे। शिवाजीकी नौ-सेनामें सिद्दी सम्बल, सिद्दी मिस्री और दौलतखाँ तीन मुसलमान अफसर थे।*

मैंने इतना लम्बा चौड़ा ऐतिहासिक विवरण केवल यह दिखलानेके लिए नहीं दिया है कि उस समयके हिन्दुस्तानके मुसलमान बादशाह आपसमें लड़नेके सिवा और कुछ नहीं करते थे। उन्होंने और भी बहुतसे काम किये हैं।

---

* अशोक तथा पटवर्धन—कम्यूनल ट्रैंगिल पृ० १८

उन्होंने उस साम्राज्यको प्रौढ़ बनाया जो प्रतिष्ठाकी चरम सीमापर जा पहुँचा। उन्होंने कलाको प्रोत्साहन दिया और अपने अनवरत प्रयाससे उन्होंने ऐसे राज को जन्म दिया जिसे हम हिन्दुस्तानका राष्ट्रीय राज कह सकते हैं। उस समयके राष्ट्रीय राजोंका यही रूप था। मैंने यह विवरण यह दिखलानेके लिए दिया है कि उस समयके मुसलमान बादशाह हिन्दुओंपर चढ़ाई करनेकी अपेक्षा मुसलमानोंपर चढ़ाई करनेमें अधिक व्यस्त रहे। कुछ लेखकोंका यह प्रतिपादन करना सरासर गलत है कि ६०० सालके उस दीर्घकालीन युगमें मुसलमान शासक हिन्दुओंसे ही उलझे रहे और उन्हें दबानेमें ही सतत लगे रहे। ऐसा लिखकर वे घृणा और द्वेषकी विरासत छोड़ गये हैं जो किसी भी प्रकार भुलाया या मिटाया नहीं जा सकता।

आधुनिक युगमें ब्रिटिश सेनामें भारतीय सिपाही देशसे बाहर ब्रिटिश साम्राज्यके लिए लड़नेके निमित्त चीन, मलाया, बर्मा, अरब, फारस, अफगानिस्तान, मिस्र, तुर्की, सिरेनैका, त्रिपोली तथा यूरोपतकमें भेजे गये हैं। तुर्की साम्राज्यको विध्वंस करनेके लिए मुसलमान सैनिक काममें लगाये गये थे। जिन देशोंके विरुद्ध उन्होंने युद्ध किया उसके शासक मुसलमान हैं, यह बात यदि उनके दिलमें कभी नहीं आयी तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। हिन्दुस्तानके बाहर भी इस्लामका इतिहास इस तरहके उदाहरणोंसे भरा पड़ा है जहाँ मुसलमानोंने मुसलमानोंके विरुद्ध युद्ध किया है और एक मुसलमान बादशाहने दूसरे मुसलमान बादशाहपर चढ़ाई की, उसे परास्त किया और उसके देशको जीत लिया।

पैगम्बरका आदेश है कि मुसलमानको मुसलमानकी हत्या नहीं करनी चाहिए। उनके जीवनकालमें ही ऐसे अवसर आये थे जब युद्धके मैदानमें ही किसी व्यक्तिने अपनेको मुसलमान घोषित कर दिया और यह प्रश्न उठा कि जिस व्यक्तिने इस तरह अपनेको मुसलमान तो घोषित कर दिया लेकिन जिसकी ईमानदारी और नेकनीयतीका कोई सबूत नहीं है, ऐसे व्यक्तिको लड़ाईमें मार डालना चाहिए या उसकी रक्षा करनी चाहिए, तब उन्होंने स्पष्ट निर्णय किया था कि अपनेको मुसलमान कह देने मात्रसे ही वह अच्छा है, उसकी रक्षा होनी चाहिए।

लेकिन उनके अवसानके बाद ही उनके इस आदेशको साधारण मुसलमान ही नहीं बल्कि वे लोग भी भूल गये जो उनके सीधे सम्पर्कमें थे जिनसे उनकी घनिष्ठता थी। हजरत उसमान जो तीसरे खलीफा ही नहीं बल्कि पैगम्बरके निकटस्थ सम्बन्धी थे—क्योंकि पैगम्बरकी दो लड़कियोंकी शादी उनके साथ हुई थी—विद्रोही मुसलमानोंद्वारा ही मारे गये। हजरतअली पैगम्बरके चचेरे भाई और दामाद भी थे। इन्हें पैगम्बरकी विधवा पत्नी आयशा बेगमसे युद्ध करना पड़ा था और हजरत उसमानकी तरह वे भी मुसलमानोंद्वारा ही मारे गये। हजरत अलीके बेटे उन मुसलमानोंद्वारा मारे गये जिन्होंने यजीदको खलीफा बनाना चाहा। पैगम्बरकी मृत्युके चन्द साल बाद ही यह हालत हो गयी थी और खासकर उनलोगोंकी जिन्हें आदिम मुसलमान कहा जा सकता है—क्योंकि हजरतअली पहले युवक थे जिन्होंने स्वयं पैगम्बरोंसे इस्लाम धर्म ग्रहण किया था और उनके आजीवन साथी रहे। तब यह समझना आसान है कि बादके मुसलमान भी आपसमें लड़ भिड़ सकते थे।

आरम्भिक युद्धोंमें शायद नहीं, लेकिन बादके युद्धों और चढ़ाइयोंमें तो निश्चय ही इस्लामके विस्तार, प्रचार और रक्षाके लिए रक्तपात नहीं किये गये थे–यद्यपि ये युद्ध हिन्दुस्तानके मुकाबलेमें या हिन्दुस्तानमें ही लड़े गये। विजय और शान्तिके बाद प्रत्येक राजा और सम्राट् उस समयकी अवस्थाके अनुसार राज्यके प्रबन्धमें लग गया। यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि इस्लामका प्रभाव राजा और प्रजा दोनोंपर पड़ा। लेकिन यह कहना कि उस समयके शासकोंका उद्देश्य हिन्दुस्तानसे बाहर और हिन्दुस्तानमें भी—इस्लाम-का प्रचार और उसकी रक्षा थी, एकदम गलत है। हिन्दुस्तानके मुसलमान शासक ही क्या समस्त मुस्लिम जनताने ही इसे एक टापू समझ लिया था जो दिन प्रतिदिन पानीसे निकलकर आकारमें बढ़ता जाता था। विजेता या आक्र-मणकारीके रूपमें जो मुसलमान हिन्दुस्तानमें आये थे अन्य मुसलमानोंकी अपेक्षा कहीं कम थे। मुसलमानोंकी वर्तमान जनसंख्यामें अधिकांश वे हिन्दू तथा उनकी सन्तान हैं जिन्होंने समय समयपर इस्लाम धर्म ग्रहण किया।

जब हम लड़ाईके मामलोंमें दोनों जातियोंमें इस तरहका सद्भाव और भाई चारेका व्यवहार देखते हैं तब तो शासनके काममें और दैनिक जीवनके व्यवहारमें इससे कहीं ज्यादा सद्भाव और विश्वासकी आशा की जा सकती है और इतिहासमें इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

"मुसलमान शासकोंके लिए हिन्दुओंको नौकर रखना अनिवार्य था। गजनीके महमूदकी सेनामें असंख्यों हिन्दू सिपाही थे जिन्होंने उसके लिए मध्य एशियामें युद्ध किया था और उसके हिन्दू सेनापति तिलकने उसके मुसलमान सेनापति नियाल्टगीनके विद्रोहका दमन किया था। जब कुतुबुद्दीन ऐबकने हिन्दुस्तानमें बसनेका निश्चय किया तब हिन्दू कार्यकर्ताओंको रखनेके अलावा उसके पास दूसरा कोई चारा नहीं था क्योंकि नागरिक शासनका उन्हें भी पूर्ण ज्ञान था और उनकी सहायता बिना न तो वह शासनका कार्य कर सकता था और न एक पैसा मालगुजारी ही वसूल कर सकता था। कोई भी मुसलमान शासक हिन्दुस्तानके बाहरसे अपने साथ कारीगर, हिसाबिया और किरानी लेकर नहीं आया था। उनकी विशाल अट्टालिकाओंके निर्माता हिन्दू ही थे जिन्होंने अपनी प्राचीनकलाको नया रूप दिया, उनके सिक्कोंको हिन्दू सोनारोंने ढाला, और उनके हिसाब-किताबका काम हिन्दू अफसरोंने ही किया। ब्राह्मण धर्माधिकारियोंने हिन्दू विधानके प्रयोगमें उनका पथ-प्रदर्शन किया और हिन्दू ज्योतिषियोंने साधारण कामोंमें उनकी सहायता की।" ❀ इब्राहिम आदिलशाह, प्रथम (१५३४-५७ ई०) के शासनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सरकारी सब हिसाब-किताब फारसीमें न लिखा जाकर हिन्दीमें लिखा जाने लगा था और इस पदपर अनेक ब्राह्मण नियुक्त किये गये थे, जिनका प्रभाव बहुत ज्यादा बढ़ गया था। यूसुफ आदिलशाहके शासनमें भी माल मुहकमेके अनेक प्रधान पदोंपर हिन्दू ही थे।"⁂

❀ ताराचन्द—इन्फुलएन्स आव इस्लाम आन इण्डियन कल्चर पृ० १३६-७।

⁂ एन०एन०ला० प्रोमोशन आव लर्निंग इन इण्डिया ड्यूरिंग मुहमदन रूल पृ० ९३।

"सुलतान मुहम्मद तुगलककी सेवामें भी अनेक हिन्दू थे। माल मुहकमेका सबसे बड़ा अफसर रतन नामका हिन्दू ही था। अकबरके सुविख्यात मालमन्त्री राजा टोडरमलने शासनमें अनेक उपयोगी परिवर्तन किये और वह साम्राज्यके सबसे बड़े प्रतिष्ठित पदाधिकारी समझे जाते थे। औरङ्गजेबके मालमन्त्री रघुनाथ भी हिन्दू ही थे। *

आजकल भी देशी राजोंमें बिना किसी भेद भावके हिन्दू और मुसलमान दोनों बडे बड़े पदोंपर नियुक्त किये जाते हैं। हैदराबादके महाराज सर किशन प्रसाद और मैसूर (इस समय जैपुर) के मिर्जा सर मुहम्मद इस्माइलकी चर्चा ही इसके लिए पर्याप्त है।

सन् १८५७ का विद्रोह हिन्दू और मुसलमानोंका संयुक्त प्रयास था। इसीसे दोनों ही दिल्लीके नाममात्रके बादशाह बहादुरशाहके झण्डेके नीचे आ जुटे थे। यदि वह विद्रोह सफल हुआ होता तो बहादुरशाहका साम्राज्य फिर दृढ़ हो गया होता। विद्रोहके विफल होनेका भी वही फल हुआ अर्थात् बहादुरशाह गिरफ्तार कर देशसे निकाल दिये गये और मुगल साम्राज्यका रहासहा नाम भी इतिहाससे लुप्त हो गया।

१८५७ के विद्रोहके बाद ब्रिटिश सरकारने मुसलमानोंपर घोर अत्याचार आरम्भ किया। उलेमाओंने दिलसे ब्रिटिश शासनको स्वीकार नहीं किया। हिन्दुस्तानके इतिहासके साथ इतनी लम्बी अवधितक इतना प्रभावपूर्ण सम्पर्क होनेके बाद इस तरहका विदेशी हस्तक्षेप उन्हें असह्य था। जुलियन हक्सलेके-शब्दोंमें "राष्ट्रीय विकासके प्रयासमें इतने बड़े पैमानेपर विदेशी हस्तक्षेपका यह अनूठा उदाहरण है। † और यदि भारतीय राष्ट्रके जन्म देनेमें इससे प्रोत्साहन मिला तो आश्चर्यकी कोई बात नहीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूपसे इस भारतीय राष्ट्रकी सत्ताके समर्थक थे यद्यपि दोनोंके धार्मिक विश्वास भिन्न थे

*** मेहता और पटवर्धन—दी कम्यूनल ट्रैंगिल पृ० १९।**

† जूलियन हक्सले—रेस इन यूरोप पृ० ३।

और दोनोंके अनुयायी पर्याप्त थे। सर सैयद अहमदखाँ–जिन्हें मुसलमानोंको कांग्रेससे अलग रखनेका सारा श्रेय दिया जाता है आरम्भमें इसी विचारके थे। वे हिन्दू और मुसलमानोंको किसी सुन्दरीकी आँखें मानते थे और यही कहते थे कि एकको क्षति पहुँचाये बिना दूसरेको क्षति नहीं पहुँचायी जा सकती। जिन मुसलमानोंका भारतीय राष्ट्रीय महासभा (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) से सम्बन्ध रहा है उन मुसलमानोंके भाषणोंसे अवतरण देना अनावश्यक है।

हिन्दुस्तानके चन्द प्रसिद्ध मुसलमानोंके भाषणोंसे अवतरण देकर दो राष्ट्रके सिद्धान्तके इस विवादको मैं खतम कर देना चाहता हूँ। सबसे पहले मैं सर सैयद अहमद खाँके भाषणोंसे दो अवतरण देना चाहता हूँ। उसके बाद दो जीवित मुसलमानोंके भाषणोंसे अवतरण दूँगा। १८८५ ई० में गुरुदासपुरकी एक सभामें भाषण करते हुए आपने कहा था :—

"प्राचीन कालसे राष्ट्र शब्दका प्रयोग एक ही देशके निवासियोंके लिए होता आया है—यद्यपि उनमें अपना अनेक विशेषताएँ एक दूसरेसे भिन्न होती हैं। हिन्दू और मुसलमान भाइयो ! क्या आपलोग हिन्दुस्तानके अलावा किसी अन्य देशमें बसते हैं ? क्या आप एक ही भूमिपर नहीं बसते और उसीमें जलाये आर दफनाये नहीं जाते ? क्या आपलोग वही भूमि नहीं जोतते और उसीपर नहीं चलते फिरते ? स्मरण रखिये कि हिन्दू और मुसलमान शब्द केवल दो भिन्न धर्मोंके द्योतक हैं तथा इस भूमिपर बसनेवाली प्रत्येक जाति—हिन्दू, मुसलमान और ईसाई—एक ही राष्ट्रके हैं। इस तरह सभी भिन्न भिन्न फिरके एक ही राष्ट्र माने जायँगे। इसलिए देशके कल्याणके लिए सबको संघटित होना चाहिए। इसीमें सबका कल्याण है" ।*

दूसरे अवसरपर लाहोरमें उन्होंने उसी सम्बन्धमें कहा था :—

"राष्ट्र शब्दमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हैं। मेरी समझमें इस शब्दका दूसरा अर्थ नहीं हो सकता। मेरे लिए यह विचार करना आवश्यक

* रेजौल करीम खाँ "लिखित" पाकिस्तान इग्जामिण्डमें उधृत पृ० ११७

नहीं है कि उनका धार्मिक विश्वास क्या है क्योंकि उसका कोई महत्व मेरी दृष्टिमें नहीं है। हमारे लिए सबसे ज्यादा महत्वकी बात यही है कि हमलोग एक ही देशके रहनेवाले हैं, एक ही शासनके अधीन रहते हैं, बरकतोंके स्रोत दोनोंके लिए समान हैं और अकालोंकी पीड़ा दोनोंको समान रूपसे सहनी पड़ती है। इन कारणोंसे यहाँ बसनेवाली दोनों जातियोंको मैं एक ही नामसे पुकारता हूँ और वह नाम है "हिन्दू" अर्थात् हिन्दुस्तानके निवासी। व्यवस्थापक सभाके सदस्यकी हैसियतसे मैं इस राष्ट्रके कल्याणके लिए सदा यत्नशील रहता था।"† (इण्डियन नेशन बिल्डर्स—सर सैयद अहमद खाँ पृ० ४१-४२)

श्रीयुत अतुलानन्द चक्रवर्ती लिखित "हिन्दू ऐंड मुसलमान आव इण्डिया" नामक पुस्तककी भूमिकामें असाधारण इतिहासज्ञ सर शफात अहमदखाँ हिन्दुस्तानके सामाजिक और सांस्कृतिक विकासका विहंगावलोकन करनेके बाद निम्नलिखित निर्णयपर पहुँचे हैं:—"हमलोगोंके राष्ट्रीय जीवनके हर एक पहलूमें दोनों जातियोंके बीच जितना साधारणतः लोग समझते हैं उससे कहीं ज्यादा मेल और एकता थी। हिन्दुस्तानका सांस्कृतिक इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि विचारोंका आदान-प्रदान और भावोंकी एकता दोनों जातियोंके जनसमुदाय और उच्चवर्गमें समान रूपसे थी और भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस राष्ट्रीय एकताका जो आभास मिलता है उसका दर्शन एशियाके किसी अन्य राष्ट्रमें नहीं पाया जाता। इस सद्भावने जनसाधारण और कुलीन वर्गकी मनोवृत्ति और विचारधाराको ही पुनीत नहीं बनाया बल्कि राष्ट्रके समस्त जीवनमें व्याप्त होकर उसे निर्मल बना दिया। हमलोगोंके राजनीतिक मतभेद चाहे जो कुछ भी हों—और मैं उन्हें किसी भी तरह कम करके नहीं प्रकट करना चाहता—एक बात निश्चित है कि बौद्धिक क्षेत्र, जीवनकी परम्परा, रहन-सहन, तथा विचारधारामें दोनों जातियोंके बीच एकताकी सुदृढ़ परम्परा है जो प्रायः हजार वर्षोंके उथल-

---

† रेजौल करीमखाँ लिखित पाकिस्तान इग्जामिंडमें उद्धृत पृ० ११७

पुथलकी आँच और सर्दीमें तपकर निकली है। यह अमर और अविनाशी है।"* आगे चलकर उन्होंने फिर लिखा है—'यह तो महज अदूरदर्शिता है जो सामाजिक वातावरणको राजनीतिक रूप देकर किसी राष्ट्रकी कमजोरियोंको राजनीतिक असन्तोषका रूप देना चाहती है। उसे अपनी विचारधाराका सुधार हिन्दू तथा मुसलमानोंकी संस्कृतिके अध्ययनसे कर लेना चाहिए और उन शक्तियोंका मनोयोग पूर्वक अध्ययन करना चाहिए जिन्होंने हमारे उज्वल अतीतके दिनोंमें हमारी विचारधारा और हमारी आकाङ्क्षाओंका निर्माण किया है'।†

सर सुलतान अहमदने भी इसी तरहकी जोरदार भाषामें अपना विचार प्रकट किया है :—हिन्दू मुसलमानोंके बीचका वर्तमान मतभेद दोनों जातियोंके बीचके ऐतिहासिक भ्रातृभावपर पानी फेरना चाहता है जो भ्रातृभाव मुगलकालसे आरम्भ होकर सदियोंतक कायम रहा है। इस बातपर ध्यान नहीं दिया जाता कि हिन्दुस्तानको छिन्न-भिन्न करनेका तात्पर्य होगा उस ऐतिहासिक रचनात्मक कार्यको ध्वंस करना जो इस देशमें मुसलमान शासनकी विशेषता है। हिन्दुस्तानके वर्तमान निवासी अपने पूर्वजोंसे अधिक ज्ञानवान अवश्य हैं लेकिन उनके भावोंका चित्र उस पटपर ही अङ्कित होता है जिसका आधार आर्य-सार सेनीय एकता है। अतीतकालके भारतीय नेता और विचारवानोंने दोनों धर्मोंके बीच एकता स्थापित करनेका प्रयास किया। शाहजादा दाराशिकोहने दोनोंकी तुलना दो नदियों—मजमा, अलबहरीन—से की है। कबीर और नानकने दोनोंको मिलाकर एक स्रोतमें बहानेका यत्न किया और अपनी उपासनाओंमें दयानिधि अल्ला और राम दोनोंको साथ ही स्मरण किया है। हिन्दू और मुसलमान कलाविदोंने दोनों कलाओंका मिश्रित रूप ही उपस्थित करनेका यत्न किया जिसने हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी इच्छाकी पूर्ति की और जिससे दोनोंको समानरूपसे सन्तोष हुआ। आनन्द और सौन्दर्यके समान आधार खोज निकाले गये।

---

* अतुलानन्द चक्रवर्ती-हिन्दूज एण्ड मुसलमान्स आव इण्डिया पृ० १९–२०

† वही ,, ,, पृष्ठ १६

इतिहासने अपने हाथोंसे जिस वाटिकाको इस तरह सजाया उसे ही आजकलके हिन्दुस्तानी नष्ट करनेपर तुले हुए हैं। इतिहासके उस मर्मको समझनेमें असमर्थ होनेके कारण वे उसे बुरा बतलाते हैं।

खेद तो इस बातसे होता है कि दोनों जातियोंके बीच इतनी अधिक समानता होते हुए भी हिन्दू मुसलमान एकता टुकड़े टुकड़े होने जा रही है। हम-लोगोंका कर्तव्य था कि एकताके इन आधारोंकी सहायतासे हम मेलजोलको और भी बढ़ाते और पुष्ट करते। सङ्गीत, साहित्य, चित्रणकला, वास्तुकलामें ही दोनों जातियोंकी एकताका पुश्तैनी दर्शन नहीं होता बल्कि दोनों जातियोंने युद्धके मैदानोंमें अगल बगल रहकर युद्ध कर राजनीतिक एकता भी स्थापित की थी। सामाजिक जीवनमें भी दोनों जातियोंकी परम्परा और आचरण एक दूसरेसे पूरी तरह सम्बद्ध थे। सम्राट् बाबरके युगमें ही दोना जातियोंके रहन-सहनमें समानता दृष्टिगोचर होने लगी थी जिसका नाम सम्राट्ने 'हिन्दुस्तानी तौरतरीका' रख दिया था। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंके रहन-सहनका सम्मिश्रण था। इसके बाद ही उर्दू भाषाका उदय हुआ। सैनिकोंकी भाषाके रूपमें इसका आविर्भाव हुआ। धार्मिक विश्वास—जो उस समय सबसे प्रिय माना जाता था—पर भी एक दूसरेका प्रभाव पड़ रहा था। मुसलमानोंने हिन्दू जनसाधारणके धार्मिक विश्वासपर नया रङ्ग चढ़ाया और उसे नया दृष्टिकोण प्रदान किया। उसी तरह मुसलमान धर्मपर भी भारतीय रङ्ग चढ़ गया। दोनों धर्मोंके कट्टर-पन्थियोंने इस परिवर्तनको मजेमें समझ लिया था।

"*हिन्दुस्तानके मुसलमान उसी मिट्टीकी सन्तान बन गये। गजनवी साम्राज्य-से दिल्लीकी सलतनतको अलग करके सुल्तान कुतुबुद्दीनने इसका अन्तिम फैसला कर दिया। उसने स्पष्ट शब्दोंमें अङ्कित कर दिया था कि मुसलमान बादशाहको अपनी प्रजामें किसी तरहका भेदभाव नहीं रखना चाहिए उन्हें सभी धर्मोंको समानरूपसे देखना चाहिए। किसीपर कृपा और किसीपर कोपकी वर्षा नहीं करनी चाहिए। बाबरका यादनामा और अबुल फजलका आइन-ए-अकबरी पढ़नेसे साफ प्रकट हो जाता है कि उनके हृदयोंमें हिन्दुस्तानके प्रति मातृभूमिका-*

सा प्रेम किस तरह उदय हुआ। मुगल साम्राज्यके जन्मदाता बाबरने लिखा है— हिन्दुस्तानमें सुखके साधन बहुत ही कम हैं। लेकिन सम्राट् अकबरके राजगद्दी-पर बैठनेके समयतक इन आगन्तुकोंकी विचारधारामें घोर परिवर्तन हो गया था। इनके इतिहासज्ञोंपर भारतके सौन्दर्यका गहरा प्रभाव पड़ा है। क्योंकि अपने देशके प्रति उत्कट प्रेमके कारण उनके हृदयमें जो व्यवधान पैदा हो गया था उसके लिए उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें क्षमा माँगी है।*

---

*सुलतान अहमद—ए ट्रीटो बिटवीन इण्डिया एण्ड यूनाइटेड किंगडम पृ० ६०—६१

द्वितीय भाग

साम्प्रदायिक त्रिभुज

१

प्रवेश

यह देखा जा चुका है कि मुसलमान शासकों, कलाकारों, फकीरों तथा अन्य लोगोंने किस प्रकार हिन्दू संस्कृति ग्रहण करनेके निमित्त समान रूपसे लगातार प्रयत्न किया। हिन्दुओंके पक्षमें भी यह आदान-प्रदानकी क्रिया उल्लेखनीय मात्रामें चलती रही। यद्यपि दोनों आपसमें मिलकर एक नहीं हुए फिर भी सम्बन्ध और सामान्य हितके विषय बहुत बढ़ गये और समय पाकर एक विशेष संस्कृति, जिसे हिन्दुस्तानी संस्कृति कह सकते हैं, विकसित हो गयी। राजनीतिक दृष्टिसे इसका अवश्यम्भावी परिणाम एक राष्ट्रका—आधुनिक अर्थमें—निर्माण था और यह भारतमें अंग्रेजी शासन स्थापित हो जानेपर विशेष रूपसे हुआ है जिसकी हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रजा हो गये। हमने प्रामाणिक मुसलिम मत उद्धृत कर यह दिखलाया है कि हिन्दुओंकी ही तरह मुसलमान भी हिन्दू और मुसलमान दोनोंको एक ही राष्ट्रके अंग मानते थे। पर साथ ही हम यह भी जानते हैं कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग और उसके प्रवक्ता समान रूपसे जोरदार शब्दोंमें आज कह रहे हैं कि मुसलमान हिन्दुओंसे पृथक् एक राष्ट्र हैं। इस बाह्य रूपान्तरकी क्या व्याख्या हो सकती है? इसका उत्तर देनेके लिए कुछ ऐतिहासिक विषयोंकी छानबीन करना आवश्यक है।

मुसलमान विजेताओंका रुख साधारणतः सहिष्णुताका ही रहा है और कुछ लोगोंके धर्मान्धता-प्रदर्शनके बावजूद भी यह मजेमें कहा जा सकता है कि आरम्भसे ही हिन्दुओंके साथ अच्छा बर्ताव करनेका सतत प्रयत्न किया गया। उस कालकी एक घटनाका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। ब्राह्मणाबादके लोगोंने जब उसपर कब्जा करनेवाले मुहम्मद-बिन कासिमसे पूजा आदिके

विषयमें स्वतन्त्र कर देनेकी प्रार्थना की तो उसने इराकके गवर्नर हजाजको इस सम्बन्धमें लिखा। उसने उत्तर दिया—'चूँकि उन्होंने (हिन्दुओंने) अधीनता स्वीकार कर खलीफाको कर देना स्वीकार कर लिया है इसलिए उनसे और किसी बातके लिए कुछ कहना ठीक नहीं। वे अब हमारे संरक्षणमें आ गये हैं और हम उनके जानमालपर किसी तरह अपना हाथ नहीं बढ़ा सकते। उनको अपने देवताओंकी पूजा करनेकी अनुमति दी जाती है। किसी व्यक्तिको उसके धर्माचरणसे रोका या विरत नहीं किया जा सकता। वे अपने घरोंमें जैसे चाहें रह सकते हैं।'* यह पैगम्बरके उपदेशों और उस सिद्धान्तके अनुकूल था जिसके अनुसार खलीफालोग, जो अधीन होकर जज़िया देना स्वीकार करनेवाले गैर-मुसलमानोंके साथ इस प्रकारका बर्ताव करते थे, अनुशासित हुआ करते थे।

मुसलमान धर्माचार्य क्या आवश्यक और उचित समझते हैं, इसका कुछ विचार न कर शासकलोग शीघ्र ही अपनी स्वतन्त्र नीति बरतने लग गये, और इस प्रकार उन्होंने राजको धर्मसे स्वतन्त्र कर लिया। अलाउद्दीन खिलजी, जिसका साम्राज्य उत्तर और दक्षिण सारे भारतमें फैला हुआ था, राजके विषयोंमें उलेमाके हस्तक्षेपोंका कट्टर विरोधी था। वह कहा करता कि कानून शासककी इच्छापर निर्भर है, नबीके कानूनसे उसका कोई वास्ता नहीं। वह दण्ड देनेके शासकके विशेषाधिकारका पक्षपाती था और काजीके आम कानूनके खिलाफ घोषित करनेपर भी वह बेईमान और दुराचारी अफसरोंके लिए अंगभंगका दण्ड न्याय्य मानता था। उसने शासकके कर्तव्यकी व्याख्या करते हुए काजीसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा था—'विद्रोह रोकनेके विचारसे, जिसमें हजारोंकी जानें जाती हैं, मैं वही आदेश देता हूँ जो मुझे राजके लिए कल्याणकारी और लोगोंके लिए हितकर जान पड़ता है। लोग मेरी आज्ञाओंपर ध्यान नहीं देते और उनका अनादर तथा अवमानना करते हैं। उनसे आज्ञा-

*ईश्वरीप्रसाद—'शार्ट हिस्टरी आव मुस्लिम रूल इन इण्डिया', पृ० ४६

का पालन करानेके लिए मुझे लाचार होकर कड़ाईसे काम लेना पड़ता है। मेरी आज्ञा वैध होती है या अवैध, इसका मुझे ज्ञान नहीं। मुझे जो बात राजके लिए कल्याणकारी और संकटकालके लिए उपयुक्त जान पड़ती है वही मैं करनेको आज्ञा देता हूँ। कयामतके दिन मेरा क्या होगा, इसका मुझे पता नहीं।'* यही वह बात है जिसका उदार स्वेच्छाचारी शासकोंने बराबर दावा किया है और जो उनके द्वारा भिन्न भिन्न धर्मों और रीति-रिवाजोंवाले प्रजाजनोंके शासकके और धर्म-विशेषके अनुयायीके रूपमें किये जानेवाले कर्तव्योंका पार्थक्य पूर्णतः स्पष्ट कर देती है।

बाबरके जिस इच्छा-पत्रका विस्तृत उद्धरण पहले दिया गया है उसमें उल्लिखित आदेशोंका मुगलसम्राटोंने पालन किया और इसका परिणाम यह हुआ कि उनके साम्राज्यका बहुत विस्तार हो गया। इस मार्गका परित्याग करनेपर जो स्थिति उत्पन्न हुई उसने साम्राज्यको अन्ततः छिन्न-भिन्न कर दिया। हिन्दुओंकी भावनाके प्रति जो आदरभाव दिखलाया जाता था उसपर विदेशियोंकी भी दृष्टि पड़ी है। "ऐसा जान पड़ता है कि ईदके अवसरपर गायकी कुर्बानी नहीं की जाती थी क्योंकि कहा जाता है कि 'उस दिन (ईदके दिन) जो समर्थ हो वह अपने घरमें बकरेकी कुर्बानी करे और यह दिन एक बड़े त्योहारके रूपमें मनाये।" † इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि दोनों समुदाय एक साथ मेल-जोलसे रहे, हालाँ कि वे कभी न तो आपसमें मिलकर एक हो सके और न एकका दूसरेमें अन्तर्भाव हुआ।

श्री एफ० के० खाँ दुर्रानीने संक्षेपमें परिस्थितिका जो विवरण दिया है उसका यहाँ विस्तृत उद्धरण दे देना मैं अच्छा समझता हूँ।

"पुराकालीन हिन्दुओंका कोई राष्ट्र नहीं था। वे समुदाय या सिर्फ एक दलके रूपमें थे।"

---

* ईश्वरीप्रसाद 'शार्ट हिस्टरी आव मुस्लिम रूल इन इण्डिया', पृष्ठ १२६.

† वही–पृष्ठ ६९८ (पेलसर्टका पृष्ठ ७४ से उद्धरण)

"भारतके मुसलमान भी इससे अच्छे रूपमें न थे। पर इस्लामने अपने प्रवर्त्तकके जीवन-कालमें ही राजका रूप ग्रहण कर लिया था। इसका सुनिश्चित धर्मशास्त्र (राजशास्त्र) है। मैं तो यह कहूँगा कि स्वयं इस्लाम ही राजशास्त्र है। इस्लामी राज एक तरहसे जनतन्त्र है जिसे बनाये रखनेका दायित्व प्रत्येक मुसलमानपर है। उमर आजमका कहना है—'संघटित समाजके अभावमें इस्लामका अस्तित्व नहीं माना जा सकता (ला इस्लाम इल्ला ब-जमायतहू)।' दैव दुर्विपाकसे यह इस्लामी राज बहुत दिनोंतक कायम न रह सका। उमैया और अब्बासी खलीफा लोगोंने इसका अन्त कर इसे मुल्क या वंशानुगत स्वेच्छाचारी राजतन्त्रमें परिणत कर दिया।"*

"मुसलमानोंद्वारा भारतकी विजयके समयतक सारे संसारके मुसलमानोंमें यह मत मान्य हो चुका था कि धर्मका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन व्यक्तियोंने भारतको जीता वे किसी मुसलमानी राजके राष्ट्रीय सैनिक नहीं बल्कि एक साम्राज्यके स्वेच्छाचारी शासकके भाड़ेके सैनिक थे। भारतमें जिस राजकी उन्होंने स्थापना की वह कोई राष्ट्रीय मुसलमानी राज नहीं था बल्कि एक स्वेच्छाचारी शासक और उसके पिट्ठुओंके लाभके लिए अधिकारमें रखा गया शोषणका एक साधन मात्र था। भारतका मुसलमानी साम्राज्य सिर्फ इस अर्थमें मुसलमानी था कि उसका सम्राट् मुसलमान था। भारतमें मुसलमानोंके सारे शासनकालमें उनमें राष्ट्रत्वके भावका कभी विकास ही नहीं हुआ। उनकी साम्राज्यनीति आदिसे अन्ततक इस भावके विकासमें बाधक ही रही।"†

"इस प्रकार यहाँ हिन्दू और मुसलमान दो समुदाय थे जो एक स्वेच्छातन्त्रीय साम्राज्यकी अधीनतामें साथ-साथ रहते थे और दोनों ही राष्ट्रीय भावना या राष्ट्रीय महत्वाकांक्षासे सर्वथा वञ्चित थे। हिन्दुओं और मुसलमानोंकी धार्मिक भावनाओं, विश्वासों और कृत्योंकी पारस्परिक सामञ्जस्य-हीनताके सम्बन्धमें

---

* एस० के० खाँ दुर्रानी—'दि मीनिंग आव पाकिस्तान', पृष्ठ ३४-३५

† एस० के० खाँ दुर्रानी 'दि मीनिंग आव पाकिस्तान', पृष्ठ ३५-३६

बहुत कुछ लिखा गया है,...फिर भी इन सब बातोंके बावजूद उनके धर्मोंमें कोई ऐसी चीज है जिससे दोनों जातियाँ सद्भावपूर्वक कई सदियोंतक साथ-साथ रहीं और यदि उनके दिमागसे वे सब बातें निकल जायँ जो उन्होंने ब्रिटिश शासनमें सीखीं या जिनसे वे प्रभावित हुए हैं और उनमें वही धार्मिक मनोवृत्ति उत्पन्न की जा सके जिससे एक सदी पूर्वके उनके पूर्वज अनुप्राणित थे, तो वे पुनः नेक पड़ोसियों और एक ही राजके नागरिकोंकी तरह सद्भावपूर्वक साथ-साथ योग्य स्थितिमें हो जायँगे। वह चीज सहिष्णुताकी भावना है जो दोनों धर्मोंमें भरी गयी थी।"*

२

भेदनीतिका प्रयोग

फूट पैदाकर शासन करनेकी नीति बहुत पुरानी है और सभी युगोंके विजेताओंने सर्वत्र इसका सहारा लिया है। विदेशी शासनकी वैधता स्वीकार कर लेनेपर यदि शासक इसका सहारा लेता है तो वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए यदि अंग्रेज अन्य विदेशी विजेताओंसे ऊँचे नहीं उठ सके और मांस्टुअर्ट एल्फिस्टनकी इस सम्मतिका पालन करते रहे कि 'भेदनीतिद्वारा शासन, पुराना रोमन मन्त्र है और यही हमारा भी होगा', तो इसके लिए वे दोषी नहीं कहे जायँगे। कुढ़न तो पैदा होती है उनके पवित्रताके इस ढोंगसे कि भारतमें हम जो कुछ करते हैं उच्च आदर्शवाद और परोपकारकी भावनासे प्रेरित होकर ही करते हैं। अपरिहार्य जान पड़नेवाला हिन्दुओं और मुसलमानोंका यह पारस्परिक भेद-भाव बहुलांशमें जान-बूझकर प्रयुक्त की गयी इसी भेदनीतिका परिणाम है। ईस्टइण्डिया कम्पनीके दिनोंमें जब अंग्रेजलोग शासकके रूपमें

---

* वही पृष्ठ ३६–३७।

यहाँ जम ही रहे थे तभी इस नीतिका प्रयोग आरम्भ हो गया था और यही नीति अब भी काम करती जा रही है जो भूतपूर्व भारत-सचिव श्री एल. एस. एमरी और भारत सरकारसे सम्बद्ध उच्च-पदस्थ अंग्रेजोंके हालके वक्तव्योंसे बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। यही वह बात है जिसके कारण उस पुरानी मनोवृत्तिका पुनर्निर्माण बहुत कठिन हो गया है जो हिन्दुओं और मुसलमानोंको अच्छे पड़ोसियों और एक ही राजके नागरिकोंकी तरह मिलजुलकर रहने योग्य बना सकती थी।

इस प्रकार भारतकी साम्प्रदायिक समस्या हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी समस्या नहीं है जिसे ये चाहें तो अपने इच्छानुसार हल कर सकें। इसमें एक तीसरा पक्ष और कई बातोंके विचारसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष भी है और वह है ब्रिटिश सरकार। यही साम्प्रदायिक समस्या हमारे सामने प्रस्तुत है जिसे 'साम्प्रदायिक त्रिकोण'का अर्थ व्यञ्जक नाम प्रदान किया गया है। हिन्दू और मुसलमान इस त्रिकोणकी दो भुजाएँ हैं और ब्रिटिश सरकार इसका आधार है। आधारकी लम्बाईमें वृद्धि होनेके साथ साथ दोनों भुजाओंके बीचका कोण भी बढ़ता गया है। मुगल साम्राज्यके पतनकालमें स्वतन्त्र बने हुए शासकोंके पारस्परिक कलह और सङ्घर्षसे उत्पन्न अशान्तिकी स्थितिमें जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतमें अपने साम्राज्यकी नींव डाल रही थी उस समय कम्पनीकी ओरसे भारतमें नियुक्त गवर्नरोंकी मौलिक नीतिका अभिप्राय इन कलहों और सङ्घर्षोंसे लाभ उठाना और अंग्रेजोंके विरुद्ध भारतीयोंको परस्पर मिलनेसे रोकना था। कम्पनीके अफसरोंके उद्देश्योंमें एक था मराठोंको-निजाम और कर्नाटकके नवाबको और बादमें हैदराबाद और टीपू सुलतानको आपसमें मिलनेसे रोकना। डब्ल्यू एम० टारेंसका कहना है 'मालकमके शब्दोंमें यदि हिन्दुस्तानके ही लोगोंने सहायता न की होती तो वह कभी विजित न हुआ होता। पहले निजाम आरकाटके विरुद्ध और आरकाट निजामके विरुद्ध और फिर मराठे मुसलमानोंके विरुद्ध और अफगान हिन्दुओंके विरुद्ध भिड़ाये गये।*

---

* डब्ल्यू एम० टारेंस—'इम्पायर इन एशिया'। पृष्ठ १९

मराठा दरबारमें अंग्रेजोंकी दुरभिसन्धि ही बहुलांशमें मराठोंके पारस्परिक भेदका कारण थी। मराठा इतिहासमें दो ही केन्द्रीय व्यक्ति हैं जो मराठा साम्राज्यके उत्थान और पतनके कारण हुए। शिवाजीके साहस और प्रतिभाने साम्राज्यकी नींव डाली और रघुनाथरावकी दुरभिसन्धिने उसे पतनके गड्ढेमें ढकेला।'*

ग्रैण्ट डफने लिखा है—'घरमें फूट पैदा कर या चाहे जिस उपायसे हो सके, मराठोंका हैदर या निजामअलीसे मिलना रोकनेके लिए बम्बई सरकारने श्री मास्टिनको पूना भेजा।'† उन्होंने राघोबाकी सहायता की जो उनके हाथका खिलौना बन गया था और निजाम तथा हैदरअलीके विरुद्ध उससे युद्ध छिड़वा दिया जिससे मराठा साम्राज्यको कोई लाभ नहीं हुआ। नाना फड़नवीसको शीघ्र ही पता चल गया कि राघोबा बम्बई सरकारके हाथोंका खिलौना बन गया है और यदि वह पेशवाके पदपर बना रहा तो मराठा साम्राज्यका अन्त दूर नहीं है। नाना फड़नवीस तथा अन्य मन्त्रियोंको अपने विरुद्ध देखकर राघोबा भागकर गुजरात चला गया और बम्बई कौंसिल तथा उसके अध्यक्षसे सहायताके लिए प्रार्थना की जिसके लिए वे पहलेसे ही तैयार बैठे थे, क्योंकि वे मराठा साम्राज्यको निर्बल कर पश्चिमी तट और विशेषकर सालसिट टापू तथा बसीन प्रायद्वीपकी प्राप्तिद्वारा कम्पनीको फायदा पहुँचाना चाहते थे।

यह नीति बरतते समय हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच धर्मके आधारपर कोई भेद नहीं किया गया और जिस प्रकार हिन्दू मुसलमानोंके और मुसलमान हिन्दुओंके भी विरुद्ध खड़े किये गये ठीक उसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दुओं और मुसलमानोंके विरुद्ध समान रूपसे खड़े किये गये। उद्देश्य था एककी सहायतासे दूसरेको पराभूत कर पहलेके साथ भी फिर वही बर्ताव करना। इसका ज्वलन्त उदाहरण वारेन हेस्टिंग्सके कालमें रुहेलोंके साथ किया गया बर्ताव है। रुहेले अवधके वजीरके राज्यकी सीमापर बसे हुए थे। उनका शासन उन्हींके सरदारों

---

* बी० डी० बसु—'राइज आव क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया', पृ० २०९

† ग्रैण्ट डफ—'हिस्टरी आव दि मरहट्टाज', पृ० ३४०

और मजिस्ट्रेटोंद्वारा होता था, पर उन्हें साधारणसे अधिक ही स्वतन्त्रता प्राप्त थी और इसके फलस्वरूप वे अन्य समुदायोंकी अपेक्षा समृद्ध भी अधिक थे। वे स्विस लोगोंकी तरह शान्तिमय कलाकौशलमें अध्यवसाय पूर्वक लगे रहते थे। उनका देश अवध और मराठोंके नवविजित प्रदेशके बीच पड़ता था। मराठे वजीरके राज्यमें लूट-पाट मचानेके लिए रुहेलोंके देशसे होकर जाना चाहते थे और इसके लिए वे जो शर्तें पेश कर रहे थे वे रुहेलोंके हकमें बड़े फायदेकी थी, पर उन्होंने उन शर्तोंको अस्वीकार कर मराठोंके हमलेका खतरा स्वयं अपने सर उठाना पसन्द किया क्योंकि अंग्रेजोंके कहने और आश्वासन देनेपर उनमें और वजीरमें परस्पर मैत्रीकी सन्धि हुई थी। मराठोंके भगा दिये जानेपर रुहेलोंका देश मिला लेनेके लिए गवर्नर-जनरलने वजीरके साथ मिलकर गुप्त अभिसन्धि की। हेस्टिंग्सने वजीरको अपने राज्यमें सहायक सेना रखनेको प्रस्तुत किया। कहा गया कि वह बाहरी शत्रुओंसे उसकी रक्षा करेगी पर उसके अफसर और सेनापति कम्पनीके होंगे। इसके बदलेमें वजीरने एक बँधी रकम देना स्वीकार किया जो कम्पनीके लिए लाभ और मालगुजारीका एक अच्छा साधन थी। लाभकी मात्रा बढ़ानेके विचारसे रुहेलखण्डकी बिक्रीकी बात भी आपसमें तै कर ली गयी। सूबेदार और गवर्नर-जनरलके बीच एक गुप्त सन्धि हुई जिसके अनुसार कम्पनीने ४० लाख रुपया और लड़ाईका सारा खर्च लेनेकी शर्तपर बहाना मिलते ही अवधकी सेनाके साथ रुहेलोंको पराभूत कर उनका देश वजीरके राज्यमें सम्मिलित करनेकी बात स्वीकार की।* बहाने बनाकर रुहेलोंपर आक्रमण कर दिया गया। रुहेलोंने वीरतापूर्वक सामना किया पर वे पराभूत हो गये। "विजयजन्य अधिकारोंका जैसा अमानुषिक दुरुपयोग इस समय किया गया वैसा शायद ही कभी हुआ हो। 'रुहेला नामधारी प्रत्येक व्यक्तिको या तो तलवारके घाट उतरना पड़ा या फिर देशका परित्याग करके ही अपनी जान बचानी पड़ी।' लेकिन यह बात सन्धिके बाहर नहीं थी, क्योंकि हेस्टिंग्सके अपने ही

---

* डब्ल्यू० एम टारेंस कृत—'इम्पायर इन एशिया' पृष्ठ १००-१से संकलित।

पत्रोंसे यह मालूम होता है कि सन्धिकी शर्तोंमें ही यह बात स्पष्टतः स्वीकार की गयी थी कि अगर आवश्यक प्रतीत हुआ तो रुहेलोंका अन्त कर दिया जायगा।' भाषा स्वयं उसकी ही है।''* टारेंसके अनुसार, इसके फलस्वरूप हेस्टिंग्सने पत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए बीस हजार पौंड तो अपनी जेबमें डाले और चार लाख पौंडकी रकम सरकारी खजानेमें पहुँची।

शीघ्र ही नवाब वजीरकी भी बारी आ पहुँची। रुपयेकी माँग होनेपर नवाबने अपनी निर्धनता प्रकट की। इस सम्बन्धमें बातचीत चलने लगी; जिसके फलस्वरूप लखनऊका खजाना बिना खाली किये ही कलकत्ताका खजाना भरनेका स्मरणीय उपाय ढूँढ़ निकाला गया। लार्ड मेकालेके शब्दोंमें 'उपाय यह था कि गवर्नर-जनरल और नवाब वजीर दोनों मिलकर किसी तीसरेको लूटें। और यह तीसरा जिसे लूटनेका निश्चय किया गया स्वयं लुटेरोंमेंसे ही एक की माताके अतिरिक्त और कोई नहीं था।'† जिन व्यक्तियोंको उन्होंने लूटा वे भूतपूर्व वजीरकी माता और विधवा थीं जिनके पास बहुत बड़ा खजाना होनेका अनुमान किया गया था। इस लूटमें बारह लाख पौंडकी रकम हाथ लगी।

हेस्टिंग्सने 'हिन्दुस्तानके राजाओंको सहायक सेनाके नामसे अंग्रेज सैनिकों-की स्थायी सेना किरायेपर देनेकी प्रथा चलायी और इसके द्वारा उनमेंसे प्रत्येक-की सत्ता और स्वतन्त्रताका अन्त कर देनेका एक साधन प्रस्तुत कर दिया। हेस्टिंग्सने स्वीकार किया है कि अवधमें यह सेना रखनेका उद्देश्य देशी राज्यको अधीन राज्यके रूपमें परिणत करना था। उसके सहयोगीने अपने शिकारके साथ ही अपना भी अन्त कितनी शीघ्रतासे कर दिया, बादकी घटनासे यह बिलकुल स्पष्ट हो गया।'‡

एक भारतीय नरेशके विरुद्ध दूसरेको खड़ा करने और फिर उसे भी परा-जित करनेकी ब्रिटिश नीति किस प्रकार काममें लायी जाती रही, इसके और उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह नीति केवल भारततक ही

* वही पृष्ठ १०२। † वही, पृष्ठ ११६। ‡ वही, पृष्ठ १०१।

सीमित नहीं रही है, बल्कि अन्यत्र भी उसी सत्यानासी प्रभावके साथ बरती गयी है।

उन्नीसवीं सदीके आरम्भतक केवल मुगल साम्राज्यकी ही शक्ति पूर्णतः छिन्न भिन्न नहीं की गयी बल्कि वे स्वतन्त्र राज्य भी जो मुगल साम्राज्यके विध्वंसके फल स्वरूप कायम हुए थे, या तो पूर्णतः नष्ट कर दिये गये या इस प्रकार निःशक्त कर दिये गये कि ईस्ट इंडिया कम्पनी सारे देशमें प्रभु सत्ताके रूपमें रह गयी। कुछ देशी राज्योंकी स्वतन्त्रता—वास्तविक या अवास्तविक—फिर भी शेष रह गयी थी। जबतक उनका अन्त नहीं हुआ तबतक यही नीति प्रयोगमें लायी जाती रही। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दीका प्रथम चरण पूरा होते होते मराठा साम्राज्यका सफाया हो गया और जिन मराठा सरदारोंको शासकके रूपमें देशमें रहने दिया गया उनका राज्य करद राज्यके रूपमें परिणत हो गया था। अवधका राज्य नाममात्रके लिए अब भी स्वतन्त्र बना हुआ था, पर उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं रह गयी थी कि वह अंग्रेजोंके हमलेका सामना कर सकता। यह हमला कुछ दिनोंके बाद हुआ और अवध भी अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। टीपू सुलतान पहले ही पराभूतकर मार डाला गया था और उसका राज्य भी ले लिया गया था। सिखोंने पञ्जाब और पश्चिमोत्तरमें अपना राज्य स्थापित कर लिया था और वे भी सन्देहकी ही दृष्टिसे देखे जा रहे थे। मुगल सम्राट् केवल नामका सम्राट् रह गया था और देशका कोई बड़ा भूभाग उसके शासनमें नहीं रह गया था।

———

३

वहाबी आन्दोलन

यद्यपि देशमें मुसलमानोंका पद बड़ी शक्तिके रूपमें नहीं रह गया था, फिर भी उनके प्रति वक्र दृष्टि नहीं थी। उनमें कुछ ऐसे व्यक्ति उठ खड़

हुए जिनमें सुधारका मजहबी जोश भरा हुआ था। उन्होंने इस्लामके आदर्शोंसे भ्रष्ट होनेको ही राजनीतिक शक्तिके ह्रासका कारण ठहराया और उन रीति-रिवाजोंको छोड़कर जो इस्लामद्वारा अनुमोदित न होनेपर भी समय पाकर चल पड़े थे, इस्लामके आरम्भिक उपदेशोंकी ओर पुनः लौटनेपर जोर दिया। इन्हीं आरम्भिक सुधारकोंमें फरीदपुर जिले (बंगाल) के बहादुरपुरके मौलवी शरीअतुल्लाह थे जिन्होंने अरबमें बीस वर्ष रहनेके बाद भारत लौटनेपर बीसवीं सदीके प्रथम दशाब्दमें 'फ़ैजी' नामक एक सम्प्रदाय कायम किया। उनका पुत्र दुधू मियाँ उनका उत्तराधिकारी हुआ और किसानोंमें अपना आन्दोलन केवल धार्मिक सुधारके लिए ही नहीं बल्कि जमींदारोंके अत्याचारसे उनकी रक्षा करनेके विचारसे भी चलाता रहा।

कुछ वर्ष बाद 'रायबरेलीके सैयद अहमदने एक आन्दोलन आरम्भ किया जिसकी शाखाएँ सारे देशमें फैली हुई थीं और जिसने उन्नीसवीं सदीके पूर्वार्द्धमें बहुत कुछ कार्य किया। उनका जन्म रायबरेलीमें और शिक्षा दिल्लीमें हुई थी। वे अपनी विद्वत्ताके लिए ही नहीं बल्कि साधुताके लिए भी बहुत प्रसिद्ध थे। उस समयके बहुतसे विद्वान् उलेमा उनको अपना नेता मानने लगे और उन्होंने मदिरा-पान तथा वेश्या-गमन जैसी सामाजिक बुराइयोंके विरुद्ध जोरोंसे आन्दोलन किया। उन्होंने अपने शिष्यों और कार्य-कर्त्ताओंको सूदूरवर्ती स्थानों जैसे हैदराबाद और उसके दक्षिण तथा बंगाल भेजा। सिखोंके विरुद्ध जिनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि मुसलमानोंको धार्मिक कृत्य करनेसे रोकने और मसजिदोंको दूसरे कामोंमें लाया करते थे, वे जेहादके केन्द्र हो गये। उन्होंने उनके राजको दारुल-हर्ब करार दिया और उनके विरुद्ध जेहादका नेतृत्व करनेका निश्चय किया। यद्यपि मराठोंने अपना शासन स्थापित कर लिया था, फिर भी उन्होंने मुसलमानोंके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं किया; उनको अपना धार्मिक कृत्य करने दिया और मुसलमान काजियोंको भी काम करते रहने दिया। मुसलमानोंने उनके राजको तथा राजपूतोंके राजको दारुल इस्लाम ही जैसा समझा, दारुल-हर्ब नहीं। सैयद अहमद बरेलवीने सिखोंके

विरुद्ध जेहादकी तैयारी की और इसके लिए धन-जन एकत्र करनेको अपने शिष्योंको सारे देशमें भेजा। स्वयं उन्हें भी युद्धका कुछ अनुभव था। उन्होंने इस प्रकार एकत्र की गयी सेनाका नेतृत्व अपने हाथमें लिया। ब्रिटिश अधिकारियोंको इस सारी तैयारीकी खबर बराबर दी जाती रही, पर उन्होंने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया। क्योंकि यह तैयारी सिखोंके विरुद्ध की गयी थी जिनकी शक्ति वे गवारा तो कर लेते थे पर उनपर उनकी कृपादृष्टि नहीं थी। सर सैयद अहमदने इस तैयारीके सम्बन्धमें लिखा है—

'इन दिनों मुसलमानलोग मुसलमान जनतासे सिखोंके विरुद्ध जेहाद करनेके लिए खुलेआम कहा करते थे। सिखोंके विरुद्ध जेहाद करनेके लिए हजारों सशस्त्र मुसलमान और अपार युद्ध-सामग्री एकत्र की गयी। जब कमिश्नर और मजिस्ट्रेटको इसकी सूचना दी गयी तब उन्होंने सरकारको इसकी इत्तिला दी। सरकारने उनको साफ-साफ लिख दिया कि वे इसमें हस्तक्षेप न करें। जब दिल्लीके एक महाजनने जेहादियोंकी कुछ रकम गड़बड़ कर दी तब दिल्लीके कमिश्नर विलियम फ्रेजरने उनको इसकी डिक्री दी और वह रकम वसूल करके सीमाप्रान्त भेज दी गयी' * मुहम्मद जाफर साहबने 'सवानात अहमदिया' (पृष्ठ १२९)में लिखा है—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकार (ब्रिटिश सरकार) अगर सैयद साहबके विरुद्ध होती तो सैयद साहबको हिन्दुस्तानसे कोई मदद ही न पहुँची होती।' † परिणाम यह हुआ कि सैयद अहमद सिन्ध और बोलनघाटी होते हुए अपनी फौजके साथ अफगानिस्तान पहुँचे और तब खैबर घाटीसे होकर १८२४ में पंजाबपर आक्रमण किया। युद्ध अल्पाधिक सफलताके साथ १८३० तक चलता रहा जब कि उन्होंने पेशावरपर कब्जा किया। सुलतान मुहम्मद खाँ जो सिखोंकी ओरसे गवर्नर था, उसकी भक्तिकी शपथ ग्रहण

---

* ८ सितम्बर १८७१ के 'इन्स्टीट्यूट गजट' में प्रकाशित सर सैयद अहमदके लेखसे एम० तुफायल अहमदद्वारा 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल'में उद्धृत, पृष्ठ १०२

† वही पृष्ठ १०३

करनेपर अपने पदपर रहने दिया गया और मौलवी मजहरअलीकी काजीके पदपर नियुक्ति हुई। इस प्रकार वे सीमाप्रान्तके मुसलमानोंको धार्मिक स्वतन्त्रता दिलानेमें कृतकार्य हुए। पर सुलतान मुहम्मदखाँ और काजी मजहरअलीके बीच पुराना झगड़ा चला आ रहा था। सैयद अहमदके पेशावरसे हटनेपर सुलतान मुहम्मदने खुले दरबारमें काजी मजहरअलीका काम तमाम करा दिया। स्थानीय नेताओंके साथ षड्यन्त्र कर उसने उन व्यक्तियोंको भी मरवा डाला जिन्हें सैयद अहमदने कलक्टरके पदपर नियुक्त किया था। इस बातसे सैयद अहमदको इतना धक्का पहुँचा कि वे १८३० के अन्तिम भागमें अपने कुछ अनुयायियोंके साथ पेशावर छोड़कर चले आये और बादमें ४५ वर्षकी अवस्थामें एक युद्धमें काम आये। हालाँ कि उनकी मृत्युके बाद उनकी सेना तितर-बितर हो गयी, फिर भी जेहादीलोगोंने सीमाप्रान्तकी स्वातघाटीके सित्तान नामक स्थानमें अपना सदर मुकाम बना लिया और वहींसे हिन्दुस्तानसे मिली सहायताके बलपर युद्ध चलाते रहे। पंजाबपर कब्जा होनेके समयतक ब्रिटिश सरकार इसकी ओरसे आँख मूँदे रही जो सर विलियम हण्टरकी 'इण्डियन मुसलमानस्' नामक पुस्तकके निम्नलिखित अवतरणसे बिलकुल स्पष्ट है "पंजाब मिलाये जानेके पहले वे हिन्दू पड़ोसियोंमें बेहिसाब लूटमार मचाया करते और ब्रिटिश जिलोंसे प्रतिवर्ष धर्मान्ध मुसलमानोंकी फौजमें भर्ती किया करते थे। हमलोगोंने धर्मान्धोंके इस उपनिवेशमें अपने उन प्रजाजनोंको एकत्र होनेसे रोकनेपर ध्यान नहीं दिया जो सिखोंपर जो विभिन्न जातियोंका समूह है और कभी हमारे मित्र रहते हैं और कभी शत्रु, अपना सारा क्रोध ठण्ढा करते हैं। एक अंग्रजने जिसके पश्चिमोत्तर प्रान्तमें नीलकी कोठियाँ हैं, मुझे बतलाया है कि उसके यहाँ नौकरी करनेवाले सारे धार्मिक विचारके मुसलमान सित्तान पड़ावके लिए अपने वेतनसे एक निश्चित अंश निकाला करते थे। अधिक साहसिकलोग इन धर्मोन्मत्त नेताओंके नेतृत्वमें अल्पाधिक समयके लिए लड़ने भी जाया करते थे। जिस तरह हिन्दू ओवरसियर अपने पूर्वजोंके वार्षिक श्राद्धके लिए जबतब अवकाशके लिए कहा करते थे उसी प्रकार मुसलमान कर्मचारी

१८३०से १८४६ तक जेहादियोंके साथ मिलकर काम करना अपना धार्मिक कर्तव्य बतलाकर कुछ महीनोंके अवकाशके लिए प्रार्थना करनेके आदी हो गये थे।'* सर विलियम हण्टरने आगे कहा है 'पंजाबके मिला लिये जानेपर धर्मान्धताका जोश, जो पहले सिखोंपर ठण्ढा किया जाता था, अब उनके उत्तराधिकारियोंपर उतारा जाने लगा। सित्तान दलकी दृष्टिमें हिन्दू और अंग्रेज एक-से काफिर थे और इस कारण बध किये जानेके लायक थे। सिख सीमाप्रान्तकी जिस अव्यवस्थाकी ओरसे हम आँख मूँद लिया करते थे या कमसे कम उदासीनता दिखलाते थे वही हमलोगोंको कड़वे उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त हुई।'† उनके शिष्य देशके भिन्न-भिन्न भागों और एक दूसरेसे बहुत दूर स्थानों—जैसे बङ्गालमें राजशाही, बिहारमें पटना और पंजाबके सीमान्त—में राजद्रोहका प्रचार करते देखे गये। 'इस अवधिमें इन धर्मान्धोंने सीमाप्रान्तीय जातियोंको बराबर अंग्रेजोंका कट्टर शत्रु बनाये रखा। सिर्फ इसी बातसे इसका पूरा ज्ञान हो जायगा कि १८५०–५७ के बीच सीमाप्रान्तीय अशान्तिको दबानेके लिए अलग-अलग १६ बार धावा करना पड़ा जिसमें ३३,००० सैनिकोंने भाग लिया और १८५९–६३के बीच अभियानोंकी संख्या बढ़कर २० हो गयी जिनमें अस्थायी सहायकों और पुलिसके अलावा ६०,००० सैनिकोंने भाग लिया।'‡ 'मुजाहिदों'के कार्योंका विस्तृत उल्लेख करना अनावश्यक है, सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि सैयद अहमद बरेलवीके शिष्य बराबर जेहादियोंकी सहायता करते रहे। मौलवी विलायतअली और मौलवी इनायतअली जो उनके प्रधान शिष्योंमें थे और भाई-भाई थे, पटनाके थे। पञ्जाबपर अधिकार कर लिये जानेपर अंग्रेजोंने मुजाहिदोंको हिन्दुस्तान

---

* डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर कृत 'इण्डियन मुसलमान्स', पृष्ठ २० से एम० तुफायल अहमदद्वारा 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल'में उद्धृत, पृष्ठ ११०।

† डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर—'इण्डियन मुसलमान्स', पृष्ठ २१–२२।

‡ वही—पृष्ठ २४।

वापस आनेके लिए बाध्य किया। मौलवी विलायतअली भी अपने अनुयायियोंके साथ पटना चले आये। मौलवी विलायतअलीको कुछ वर्ष सीमाप्रान्त न जानेकी प्रतिज्ञा भी करनी पड़ी। अवधि समाप्त हो जानेपर उन्होंने तथा उनके भाईने अपनी सारी सम्पत्ति बेच डाली और सित्तानकी हिजरत की। इस प्रकार उन्होंने हिजरतका आन्दोलन आरम्भ किया जो बहुत दिनोंतक चलता रहा। १८५७ के विद्रोहके बाद इस आन्दोलनको काफी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। १८६४ में जब अंग्रेजोंने सीमाप्रान्तमें अपनी अग्रगामी नीति आरम्भ की तब सीमाप्रान्तमें भारतके लोगोंका सम्बन्ध-विच्छेद आवश्यक हो गया। १८६४ और १८७० के बीच भारतीयोंके विरुद्ध पाँच बड़े-बड़े मुकदमे चलाये गये जिनके प्रमुख अभियुक्तोंमें पटना-परिवारके लोग और कुछ उनके शिष्य भी थे। अभियोग यह था कि उन्होंने सीमाप्रान्तके कुछ सम्बन्धियोंके साथ पत्र-व्यवहार जारी रखा और धनसे उनकी सहायता की। उनमेंसे कुछको फाँसीकी सजा हो गयी, पर बादमें घटाकर आजीवन कालेपानीकी कर दी। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि इन लोगोंने जो कुछ किया था वह उससे बढ़कर या बुरा नहीं था जिससे सरकारने १८२४ से सिर्फ आँख ही नहीं मूँद रखी थी बल्कि मुजाहिदोंकी ओरसे हुण्डियाँ वसूल कर और रकमें सीमाप्रान्त भेजकर उन्हें प्रोत्साहन भी दिया था। सैयद मुहम्मद बरेलवीद्वारा प्रवर्तित और उनके शिष्योंद्वारा चलाया गया यह आन्दोलन 'वहाबी' आन्दोलनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाबियोंने सामाजिक और धार्मिक सुधार सम्बन्धी उपदेशोंमें जेहादके महान् सिद्धान्तका भी प्रचार किया। भारत ईसाई अंग्रेजोंके शासनाधीन हो जानेके कारण दारुल-हर्ब बन गया जिसके विरुद्ध जेहाद करना लाजिमी था। इस सम्प्रदायके साहित्यमें सम्पूर्ण प्रत्येक संस्कृतात्माके लिए जेहाद प्रथम कर्तव्यके रूपमें वर्णित है।'* जेहाद असम्भव होनेपर दूसरा मार्ग हिजरतका था। वहाबी आन्दोलनद्वारा उत्पन्न परिस्थितिका सामना

---

* डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर—'दि इण्डियन मुसलमान्स', पृ० ६४-५

सरकारने दो उपायोंसे साथ-साथ किया : एक ओर तो सरकारके चलाये हुए संगीन मुकदमोंने वहाबियोंका संघटन भंग कर दिया और दूसरी ओर उनके उपदेशोंके विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया गया और जेहादके विरुद्ध फतवे प्राप्त कर उनका वितरण किया गया। सर विलियम हण्टरने लिखा है—'भारतमें हमारे लिए बड़ी दुःखद स्थिति यह रही है कि अच्छे आदमी हमारे पक्षमें नहीं हैं।...और, यह कोई छोटी बात नहीं है कि अब पुरानी शत्रुता लाजिमी नहीं रह गयी है।'* यह सारी कथा 'फूट डालकर शासन करने'की नीतिको परिचायक है। जबतक सिखलोग अंग्रेजोंके लिए काँटेके रूपमें रहे तबतक मुसलमानोंको उनके विरुद्ध जेहादका प्रोत्साहन दिया गया और जब सिखोंको पराजित कर पञ्जाब मिला लिया गया तब जेहादीलोग ब्रिटिश सरकारके विद्रोही करार दिये गये, उनको आजीवन कालेपानीकी सजा दी गयी और उनका सारा संघटन भंग कर दिया गया।

——

४

सर सैयदके आरम्भिक दिन

१८५७ का विद्रोह उन कारणोंका परिणाम था जो सुदीर्घकालसे सक्रिय और पुंजीभूत होते आ रहे थे। यहाँ इसके कारणोंपर विचार करने या इसकी गतिविधिका अनुसरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, एक बात निश्चित है। वह यह कि हिन्दू और मुसलमान दोनों इसमें सम्मिलित हुए और दोनों दिल्ली-सम्राट्के झण्डेके नीचे आ गये। दोनोंको बहुत बड़ी क्षति पहुँची, पर अंग्रेजोंका रुख मुसलमानोंके प्रति अधिक शत्रुतापूर्ण था जिनसे उन्होंने देशका एक बहुत बड़ा भाग जीता था। लार्ड एलेनबराने

* डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर—'दि इण्डियन मुसलमान्स', पृष्ठ १४४।

१८४८ में लिखा था—'दशमांशकी शत्रुता निश्चित होनेकी स्थितिमें शेष नौ अंशोंका, जो विश्वस्त हैं, उत्साहपूर्ण समर्थन प्राप्त न करना मेरी समझमें बड़ी मूर्खता है। मैं इस विश्वासकी उपेक्षा नहीं कर सकता कि इस जाति (मुसलमान) की हमारे प्रति मौलिक शत्रुता है और इसलिए हमारी नीति हिन्दुओंको अपने पक्षमें लानेकी होनी चाहिए।'* यह नीति पूर्णरूपसे सफल नहीं हुई क्योंकि १८५७ के विद्रोहमें हिन्दुओंने जिस उत्साहसे भाग लिया वह मुसलमानोंसे किसी प्रकार कम न था, किन्तु अनुभव प्राप्त कर लेनेपर भी शासकोंकी इस नीतिके प्रति विश्वास नहीं गया जो निम्न लिखित उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है—

'लार्ड एलेनबराने तो लार्ड कैनिङ्गपर दोषारोप किया ही, उसके अतिरिक्त कलकत्तानिवासी यूरोपियनोंने भी अधिकारिवर्गसे लार्ड कैनिङ्गको वापस बुला लेनेका अनुरोध किया। उन्होंने लार्ड कैनिङ्गपर यह आरोप किया कि सिपाही-विद्रोहके बाद भारतमें मुसलमानोंके विरुद्ध यूरोपियन समुदायने जो माँग की थी उसका उसने समर्थन नहीं किया'।† यह विरोध विलायत पहुँचा और इसका असर भी हुआ जैसा कि सर विलियम हण्टरने लिखा है—'विद्रोहके बाद अंग्रेज मुसलमानोंके प्रति अपने वास्तविक शत्रुके रूपमें बर्ताव करने लगे'।‡ ऐसा कसकर उनसे बदला लिया गया कि बहुतसे समृद्ध और शक्ति-सम्पन्न परिवार बर्बाद हो गये। सरकारके सभी विभागोंमें उन्हें नीचे गिरानेकी निश्चित नीति बरती गयी। मुसलमान केवल देशके नागरिक शासन-कार्यमें सर्वोच्च पदोंपर नहीं थे बल्कि सेनामें भी उनका प्राधान्य था। दो कारणोंने एक साथ मिलकर उनको पहलेमें प्रधानतासे वञ्चित किया। एक तो ब्रिटिश सरकारकी नीति उनके विरुद्ध कार्य कर रही थी और दूसरी यह कि स्वयं मुसलमानोंके ही रुखने इसे और पुष्ट कर दिया क्योंकि वे दुःखद अनुभवोंके बाद खिन्न हो अलग पड़े

* अतुलानन्द चक्रवर्ती 'द्वारा काल टु पालिटिक्स' में उद्धृत, पृष्ठ ३५।

† डब्ल्यू० डब्ल्यू हण्टर दि इण्डियन मुसलमान्स' पृष्ठ १४७।

‡ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,।

रहे और अंग्रेजी शिक्षासे, जो आरम्भ हो गयी थी, उन्होंने लाभ नहीं उठाया जिसके अभावमें सरकारी पद प्राप्त करना अधिकाधिक कठिन हो गया था। सन् १८७० के आसपास, विशेषकर सर डब्ल्यू डब्ल्यू·हण्टरकी पुस्तक जिसका हवाला ऊपर दिया गया है, प्रकाशित होनेके बाद सरकारकी नीतिमें परिवर्तन हुआ। उन्होंने अपनी पुस्तकका अन्त करते हुए कहा है—'पूर्वके अध्यायोंसे दो महान् तथ्योंका प्रतिपादन होता है—एक तो सीमाप्रान्तमें विद्रोहियोंका स्थायी पड़ाव और दूसरा साम्राज्यके अन्दर चिरकालागत षड्यन्त्र। ब्रिटिश सरकार खड्गहस्त विद्रोहियोंसे सुलहकी बातचीत नहीं चला सकती। जिन लोगोंने शस्त्रका सहारा लिया है उनका अन्त शस्त्रसे ही होगा।···लेकिन इस अप्रियताके प्रति दृढ़ रहते हुए भी यह देखना आवश्यक है कि असन्तोषका कोई उचित कारण न रह जाय। यह कार्य केवल बुराईका चिरकालागत भाव निकाल देनेसे हो सकता है जो ब्रिटिश शासनमें मुसलमानोंके मनमें जम गया है।'*

इसके अनन्तर उन्होंने विस्तार पूर्वक यह उल्लेख किया है कि किस प्रकार मुसलमानों, विशेषकर बङ्गाली मुसलमानोंका ब्रिटिश शासनमें दमन किया गया, किस प्रकार वे अधिकार और पदसे वञ्चित किये गये, किस प्रकार वे कङ्गाल बना दिये गये, किस प्रकार उनकी शिक्षाकी उपेक्षा की गयी और किस प्रकार उनकी शिक्षा-संस्थाएँ नष्ट-भ्रष्ट की गयीं। अन्तमें उन्होंने उनके प्रति न्याय करते, विशेषकर उनके लिए शिक्षाप्रणालीकी आवश्यकता बतलाते हुए कहा है 'हमें मुसलमान युवकोंको अपनी योजनाके अनुसार शिक्षित बनाना चाहिए। उनके धर्म और धार्मिक शिक्षा प्राप्त करनेकी प्रक्रियामें बिना किसी प्रकारका हस्तक्षेप किये उनमें धर्मके प्रति उतनी सचाई भले ही न रहने दें, पर उनकी धर्मान्धता अवश्य ही कम कर सकेंगे। इस प्रकार मुसलमानोंकी नयी पीढ़ीको हम उस मार्गपर चलानेमें समर्थ हो सकेंगे जिसपर हिन्दुओंको जो संसारमें सबसे

---

* डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर 'दि इण्डियन मुसलमान्स', पृ० १५।

कट्टर जाति है, चलाकर सहिष्णुताकी वर्तमान स्थितिमें कुछ ही दिन पहले ला चुके हैं ।'* यह सरकारकी नीतिमें होनेवाले परिवर्तनका सूचक था ।

१८५७ के विद्रोहके पहले अंग्रेजोंकी भारतीय सेना सभी प्रकारके लोगोंसे बनी हुई थी—उसमें हिन्दू और मुसलमान, सिख और पूरबिया सभी मिले हुए थे । १८५७ वाले इसके सर्वसामान्य प्रयत्नसे, जो विदेशी शासकोंके विरुद्ध बढ़ती हुई राष्ट्रीय एकताका परिणाम था, उनकी आँख खुल गयी और बादमें जो नीति अपनायी गयी उसका लक्ष्य इसी दृढ़ताको भङ्ग करना था । सर जान लारेंसने लिखा है 'विद्रोह-पूर्ण सेनाके दोषोंमें जो सबसे बुरा था और जो हमारे लिए सबसे भयङ्कर प्रमाणित हुआ वह था बङ्गाल सेनाका भ्रातृभाव और एकजातीयता । यह दोष यूरोपीय और देशी जातियोंकी मुकाबलेकी सेनाएँ रखकर दूर किया जा सकता है ।'†

परिणाम यह हुआ कि जाति, सम्प्रदाय और वर्णगत भेदोंके आधारपर सेनाका इस प्रकार पुनस्सङ्घटन किया गया कि सैनिकोंके दल अपनी जाति या सम्प्रदायके प्रति भक्तिभाव रखते हुए विशेषताओं और प्रभावोंका आपसमें सन्तु-लन बनाये रख सकें । चूँकि बङ्गाल-सेनाने, जो विशेषतः आधुनिक बिहार और बङ्गालके लोगोंसे बनी हुई थी, १८५७ के विद्रोहमें प्रमुख भाग लिया था और नव-विजित पञ्जाबने अंग्रेजोंको सङ्कटसे पार किया था इसलिए जो नयी सेना बनी उसमें पहले (बिहार और युक्तप्रान्तवाले) उत्तरोत्तर कम कर दिये गये और पञ्जाबवालोंकी प्रधानता बढ़ा दी गयी । यह बात सेनामें लिये गये देशके भिन्न-भिन्न भागोंके लोगोंकी प्रतिशत संख्याकी नीचेकी तालिकासे जो 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित श्री चौधरीके लेखोंसे डाक्टर अम्बेडकरद्वारा उद्धृत की गयी है, बिलकुल स्पष्ट हो जायगी ।

---

* डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर 'दि इण्डियन मुसलमान्स', पृ० २१४ ।

† मेहता और पटवर्धनद्वारा 'कम्यूनल ट्रिएंगिल'में उद्धृत, पृष्ठ ५४ ।

वर्ष	पूर्वोत्तर भारत पञ्जाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और काश्मीर	नेपाल गढ़वाल कमायूँ	पर्वोत्तर भारत युक्तप्रान्त और बिहार	दक्षिण भारत	बर्मा
१८५६	१० से कम	नगण्य	९० से कम नहीं	–	–
१८५८	४७	६	४७	–	–
१८८३	४८	१७	३५	–	–
१८९३	५३	२४	२३	–	–
१९०५	४७	१५	२२	१६	–
१९१९	४६	१४.८	२५.५	१.२	१.७
१९३०	५८.५	२२	१०	५.५	३

कहा जाता है कि कुछ वर्ग ऐसे हैं जिनमें यौद्धिक प्रवृत्ति पायी जाती है और कुछमें नहीं पायी जाती। पश्चिमोत्तर भारतकी जातियाँ और समुदाय यौद्धिक प्रवृत्तिवाले समझे जाते हैं और युक्तप्रान्त तथा बिहारके लोग इस श्रेणीमें नहीं गिने जाते। यह बात भुला दी जाती है कि इस दूसरे वर्ग (बिहार और युक्तप्रान्त) के लोगोंसे संघटित सेनाने ही अंग्रेजोंके लिए पञ्जाब और सीमाप्रान्तको जीता था और १८५८ से बरती जानेवाली निश्चित नीतिके ही फलस्वरूप वे यौद्धिक गुणोंसे वंचित किये गये थे। १८५७ के बादकी नीतिका तात्कालिक उद्देश्य युक्तप्रान्त और बिहारके लोगोंका अधिकाधिक बहिष्कार कर उनका स्थान सिखों, गुरखों और गढ़वालियोंको देना था।

विद्रोहियोंने १८५७में स्वयं सर सैयद अहमदको क्षति-ग्रस्त किया और सर सैयदने भी उनके विरुद्ध अंग्रेजोंको सहायता दी। मुसलमानोंकी तबाहीसे उनको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने यह भी देखा कि अंग्रेजी शिक्षा न मिलनेके कारण वे नौकरियोंसे भी वंचित रह जाते हैं। वे राष्ट्रीय विचारके

थे और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंको एक ही राष्ट्रके सदस्य मानते थे जिसे वे हिन्दू राष्ट्र कहते, क्योंकि दोनों हिन्दुस्तानके निवासी थे। इसलिए पहले उनके लेख और भाषण राष्ट्रवादीके-से होते थे और हिन्दू और मुसलमान दोनों उन्हें राष्ट्रीय नेता मानते थे; फिर भी उनका ध्यान मुसलमानोंकी स्थिति उन्नत करने विशेषकर शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रस्तुत करनेकी ओर अधिक था। नौकरी करते समय वे जिन स्थानोंमें रखे गये वहाँ उन्होंने स्कूल स्थापित करनेमें सहायता दी जिनमेंसे कुछ स्कूल अब भी बने हुए हैं। उनका यह भी विश्वास था कि ब्रिटिश शासनसे भारतीयोंका हित होगा और उसमें जो त्रुटियाँ या दोष हों उन्हें दूर करनेके लिए उनकी ओर शासकोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। इस सम्बन्धमें उनके विचार उस समयके अन्य राजनीतिक नेताओं-जैसे ही थे जिनमें वे लोग भी शामिल थे जिन्होंने कांग्रेसकी स्थापनामें सहायता की थी। सर सैयदकी राजनीतिक आकांक्षाएँ इन्हींकी सी थीं। उनका कहना था कि सरकारी नौकरी, सामाजिक सम्पर्क, राजनीतिक या वैधानिक अधिकारोंके सम्बन्धमें जाति या रंगके कारण यूरोपियनों और भारतीयोंमें कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। इसी विचारसे प्रेरित हो उन्होंने वाइसरायकी कौंसिलके सदस्यकी हैसियतसे इल्बर्ट बिलका तो समर्थन किया पर आगरा-दरबारके अवसरपर वे दरबारसे बाहर चले गये क्योंकि अंग्रेजोंके बैठनेके लिए कुर्सियाँ चबूतरेके ऊपर और भारतीयोंके लिए नीचे रखी गयी थीं। उन्होंने साइंटिफिक सोसायटी (विज्ञानसमिति) की स्थापना की जिसके हिन्दू, मुसलमान और यूरोपियन सदस्य बने और जिसमें निबन्ध पढ़े जाते थे। उन्होंने तहज़ीबुल अखबार' में लिखा था—

'कोई भी राष्ट्र तबतक प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं पा सकता जबतक वह शासक जातिकी समानता नहीं प्राप्त करता और अपने ही देशकी सरकारमें भाग नहीं लेता। दूसरे राष्ट्र हिन्दुओं या मुसलमानोंका उनके क्लर्क बनने या इसी प्रकारके छोटे-मोटे पदोंपर रहनेपर कभी सम्मान नहीं कर सकते बल्कि वह सरकार

भी जो अपनी प्रजाका उचित सम्मान नहीं करती, आदरकी दृष्टिसे नहीं देखी जा सकती। आदर तो तभी प्राप्त किया जा सकता है जब हमारे देशवासी शासक जातिके समकक्ष पदोंपर प्रतिष्ठित हों। सरकारने सचाई, विश्वास और न्यायके साथ प्रत्येक देशके प्रजाजनोंको समानपद प्राप्त करनेका अवसर दिया है, पर भारतीयोंके लिए तरह-तरहकी कठिनाइयाँ और बाधाएँ खड़ी कर रखी हैं। हमलोगोंको दृढ़ निश्चय और अध्यवसायके साथ कार्य करते जाना चाहिए और किसी संकटमें पड़ जानेकी आशंकासे पीछे नहीं रहना चाहिए।'*

सन् १८५३ में जब लोकल सेल्फ गवर्नमेंट बिल (स्थानीय स्वायत्त शासन बिल) कौंसिलमें पेश था उस समय उन्होंने यह सुझाव रखा कि चूँकि भारतमें विभिन्न धर्मों और रीति रिवाजोंको माननेवाले लोग हैं इसलिए बोर्डकी कुछ जगहें नामजदगीसे पूरी की जायँ, और यह निश्चय हुआ कि एक तिहाई जगहें इस प्रकार पूरी की जायँ, जिसमें वे लोग जो विशेष वर्गोंके स्वार्थोंका प्रतिनिधित्व करते हैं न चुने जानेपर सरकारद्वारा मनोनीत किये जा सकें। ध्यान देनेकी बात यह है कि उन्होंने मुसलमानोंके लिए जगहें सुरक्षित रखने या उनके लिए पृथक् निर्वाचनकी माँग नहीं की। वस्तुतः वे ऐसी माँग कर भी नहीं सकते थे क्योंकि वे हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक ही राष्ट्रके सदस्य मानते थे जैसा कि उनकी निम्नलिखित बातोंसे स्पष्ट है—

'राष्ट्र (कौम) शब्द उन लोगोंके लिए प्रयुक्त होता है जो किसी देशके अधिवासी हैं।······यह स्मरण रहे कि हिन्दू और मुसलमान धार्मिक शब्द हैं। इस देशमें बसनेके कारण हिन्दू मुसलमान और ईसाई भी एक ही राष्ट्रके सदस्य हैं। जब ये सभी समुदाय एक ही राष्ट्रके हैं तब जिन चीजोंसे देशको, जो सबका सामान्य देश है, लाभ होता है उनसे सबको लाभ होना चाहिए।

---

* तुफायल अहमदद्वारा 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल'में उद्धृत, पृष्ठ २८१-२

अब वह समय नहीं रहा जब केवल धर्म-भेदके कारण एक ही देशके अधिवासी दो भिन्न राष्ट्र माने जायँ।' *

एक दूसरे अवसरपर उन्होंने कहा था 'जिस प्रकार आर्यलोग हिन्दू कहलाते हैं उसी प्रकार मुसलमान भी हिन्दू ही अर्थात् हिन्दुस्तानके निवासी हैं।'†

पञ्जाबके हिन्दुओंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था 'जिस हिन्दू शब्दका आपलोगोंने प्रयोग किया है वह मेरी समझमें ठीक नहीं है। हिन्दुस्तानका प्रत्येक निवासी अपनेको हिन्दू कह सकता है। मुझे खेद है कि आपलोग मुझे हिन्दू नहीं समझते हालाँ कि मैं भी हिन्दुस्तानका ही निवासी हूँ।'‡

इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं यदि हिन्दुओंने उन्हें मुसलमानोंसे कम अपना नेता नहीं माना; कोई आश्चर्य नहीं यदि उन्होंने सिविल सर्विसकी युगपत् परीक्षाओंके सम्बन्धमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके व्याख्यानके लिए १८८४ में एक सभाका आयोजन कर स्वयं उसका सभापतित्व किया; कोई आश्चर्य नहीं यदि वे बंगालियोंके जो राष्ट्रीय आन्दोलनका पथ-प्रदर्शन कर रहे थे, प्रशंसक रहे।

५

अलीगढ़ कालेजके यूरोपियन प्रिंसिपल और वहाँकी राजनीति

यह मनोरञ्जक और साथ ही उलझनमें डालनेवाला प्रश्न है कि इस प्रकारके विचार रखनेवाला व्यक्ति मुसलमानोंको राष्ट्रीय आन्दोलनसे, जो १८८५ में

---

* 'मजमुआ-इ-लेक्चर्स 'सर सैयद अहमद', पृष्ठ १६७ से तुफायल अहमद द्वारा 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तक़बल'में उद्धृत, पृष्ठ २८३

† 'सैयदकी आखरी मोजामीन'से उसीमें उद्धृत, पृष्ठ ५५

‡ सर सैयदके 'सफरनामा पञ्जाब'से उसीमें उद्धृत, पृष्ठ १३९

सिविल सर्विसके एक यूरोपीय सदस्य श्री ए० सी० ह्यूमकी सहायतासे स्थापित राष्ट्रीय महासभाके रूपमें व्यक्त हुआ, पृथक् रहनेकी राय कैसे दे सका। इसका उत्तर उस प्रभावमें ढूँढ़ना पड़ेगा जो अलीगढ़ कालेजके अंग्रेज प्रिंसिपलोंने प्राप्त कर लिया था। बादमें १५-२० वर्षोंका मुसलमानी राजनीतिका इतिहास इन्हीं धूर्त अंग्रेजोंका इतिहास है जो बीच-बीचमें कुछ अन्तरके साथ यह खाई तैयार करते गये जो तबसे बराबर चौड़ी ही होती गयी है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, सर सैयद अहमद मुसलमानोंको अंग्रेजी शिक्षा दिलानेके लिए बहुत इच्छुक थे। उन्होंने १८७५ में एक स्कूल स्थापित किया जो क्रमशः बढ़कर पहले महम्मदन एंग्लो ओरिएण्टल कालेज और फिर, अलीगढ़की मुस्लिम यूनिवर्सिटी बन गया। श्री बेक १८८३ में इसके प्रिन्सिपल नियुक्त हुए और १८९९ में अपनी मृत्युके समयतक उसी पदपर बने रहे। वे बहुत अच्छे अवसरपर आये। अंग्रेजी शिक्षाके साथ ही, जिसका हिन्दुओंमें काफी प्रसार हो चुका था, स्वतन्त्रता और जनतन्त्रके विचार भी आये जिनकी भाषणोंमें अभिव्यक्ति भी होने लगी थी। राष्ट्रवाद शीघ्रतापूर्वक बढ़ता जा रहा था। अंग्रेजलोग अब अनुभव करने लगे थे कि बढ़ते हुए राष्ट्रवादके प्रतिरोधके रूपमें मुसलमानोंको, जो तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखे जा रहे थे, अपनी ओर लाकर अपने संरक्षणमें कर लेना चाहिए। श्री बेकने धर्मप्रचारकके उत्साहसे इस नीतिको कार्यान्वित किया। 'उन्होंने सर सैयदको राष्ट्रवादसे विलग करने, उनके राजनीतिक झुकावको ब्रिटिश लिबरलोंकी ओरसे हटाकर कंजरवेटिवोंकी ओर करने और सरकारके साथ मुसलमानोंका पुनः मेल करानेका अध्यवसायपूर्वक प्रयत्न किया। उन्हें अपने इस प्रयत्नमें अभूतपूर्व सफलता हुई।* उन्होंने पहले-पहल जो काम किये उनमें एक था इन्स्टीट्यूट गजटपर, जो वर्षोंसे सर सैयद अहमदद्वारा सञ्चालित हो रहा था, सम्पादकीय नियन्त्रण प्राप्त करना। उनसे पहले आये हुए यूरोपीय प्रोफेसर कालेजके छात्रोंसे नहीं मिलते थे, पर श्री बेक

---

* **मेहता और पटवर्धन 'कम्यूनल ट्रिएंगिल', पृष्ठ ५८।**

मुसलमान छात्रोंसे बेरोकटोक मिलने लगे और उनमें बहुत प्रिय हो गये। दूसरे अंग्रेज प्रोफेसरोंने उनसे संकेत पाकर कालेजमें भिन्न भिन्न सङ्गठन और कार्य आरम्भ किये। उनके प्रभावके कारण जिलेके अधिकारी लोग भी कालेजके कार्यों और खेलोंमें इस प्रकार सम्मिलित होने लगे कि सन् १८८८ में प्रान्तके छोटे लाट सर आकलैण्डने कालेजके छात्रोंकी तुलना इग्लैण्डके सार्वजनिक विद्यालयों और विश्वविद्यालयोंके छात्रोंसे की। सर सैयद अहमदखाँ अंग्रेजोंके रहन-सहनके बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने वहाँके छात्रोंके रहन-सहनका जो स्तर रखनेकी कोशिश की वह उनके सहयोगियों और समर्थकोंकी समझमें भारत जैसे निर्धन देशके लिए बहुत व्ययसाध्य था। पर यही बात यूरोपीय प्रिंसिपल और प्रोफेसरोंके सरकारी क्षेत्रोंमें प्रभाव और सरकारी नीतिमें परिवर्तनके साथ मिलकर अलीगढ़ कालेजके छात्रोंको सरकारी पद और नौकरियाँ दिलानेमें सहायक हुई। सर सैयद अहमदपर इन सब बातोंका असर होना अनिवार्य था।

कहने भरके लिए तो इन्स्टीट्यूट गजटके सम्पादक अब भी सर सैयद अहमद ही थे, पर श्री बेकके सम्पादकीय नियन्त्रणमें उसकी नीति परिवर्तित हो गयी। उन दिनों सर सैयद बंगालियोंके बहुत बड़े प्रशंसक थे, 'उस समयतक सर सैयदपर बंगालियोंकी सचाईकी गहरी छाप थी। उनका खयाल था कि उन्हींके कारण शिक्षाकी उन्नति हुई है और देशमें स्वतन्त्रता तथा देशभक्तिके आदेशका प्रचार हुआ है।'* श्री बेकने इन्स्टीट्यूट गजटके सम्पादकीय स्तम्भोंमें बंगालियों और उनके आन्दोलनके विरुद्ध लेख लिखना आरम्भ कर दिया जिन्हें सर सैयदके लेख समझकर बंगालियोंने सर सैयदकी आलोचना शुरू कर दी।† इसी मौकेपर जब कि श्री बेक बंगालियोंके विरुद्ध वातावरण तैयार करनेमें सफल हो चुके थे, १८८५ के दिसम्बरमें बम्बईमें श्री डब्ल्यू. सी. बनर्जीकी, जो

* तुफायल अहमद 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल' पृष्ठ २९१
† वही— " " २९२

बंगाली थे, अध्यक्षतामें भारतीय राष्ट्रीय महासभाका पहला अधिवेशन हुआ।

कांग्रेसके उद्देश्योंमें ऐसी कोई बात नहीं थी जिसपर किसी भारतीयको आपत्ति हो सकती। पहले अधिवेशनमें जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये उनमें भारत-सचिवकी कौंसिलके सदस्योंके निर्वाचन, प्रान्तीय व्यवस्थापक कौंसिलके निर्वाचित सदस्योंकी संख्या-वृद्धि, पञ्जाब और युक्तप्रान्तमें ऐसी ही कौंसिलें कायम करने, इंग्लैण्ड और भारतमें साथ ही साथ सिविल सर्विसकी परीक्षा लेने, सैनिक व्ययमें वृद्धि न करने और अपर बर्माको न मिलानेकी माँग की गयी थी। सिविल सर्विसकी साथ-साथ परीक्षा लेने और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंकी वृद्धिके प्रश्नोंपर १८८४ में अलीगढ़की एक सार्वजनिक सभामें, जिसका आयोजन और सभापतित्व सर सैयदने किया था, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भाषणमें अपने विचार प्रकट कर चुके थे। भारतके गोरे पत्रोंने जिनमें श्री बेकके लेख प्रकाशित हुआ करते थे, इसका विरोध किया। उस समय तो सर सैयद अहमदने कुछ नहीं कहा, पर १८८६ के दिसम्बरमें, महम्मदन एजूकेशनल कांग्रेस की स्थापनाके समय, जो बादमें मुस्लिम एजुकेशनल कान्फरेंसके नामसे विख्यात हुई, उन्होंने कहा कि मैं उन लोगोंसे सहमत नहीं हूँ जो यह खयाल करते हैं कि राजनीतिक विषयोंकी बहसके जरिये मुसलमानलोग उन्नति कर सकेंगे। मेरे विचारसे तो उनकी उन्नति सिर्फ शिक्षाके द्वारा हो सकती है।

कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन दिसम्बर, १८८६ में श्री दादाभाई नौरोजीकी अध्यक्षतामें कलकत्तामें हुआ। इसमें जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये उनमें जूरीद्वारा अभियोगोंका विचार कराने, शासन और न्यायके कार्योंको पृथक् करने और सभा-सम्बन्धी कार्योंके लिए स्वयंसेवक भर्ती करनेकी माँग की गयी। प्रथम दोनों अधिवेशनोंमें जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो मुसलमानोंके हितोंके विरुद्ध हो। सिविल सर्विसकी परीक्षाएँ युगपत् रखनेका समर्थन स्वयं सर सैयदने किया था। शासन और न्यायके पार्थक्यकी माँग मुसलमानी शासनमें व्यवहारमें आनेवाले नियमके अनुकूल ही थी जिसमें

यह पार्थक्य प्रचलित भी था। ये दोनों कार्य कम्पनीके समयमें एकमें मिला दिये गये और कुछ दिन अलग-अलग रखकर १८५७ के विद्रोहके बाद फिर मिला दिये गये। लेजिस्लेटिव कौंसिलोंमें निर्वाचित सदस्योंकी संख्या-वृद्धि और जिन प्रान्तोंमें कौंसिल नहीं थी उनमें स्थापित करनेकी माँगका समर्थन वे आरम्भिक दिनोंमें ही कर चुके थे हालाँ कि १८८३ में उन्होंने चुनावके तरीकेके सम्बन्धमें अवश्य अपना मतभेद प्रकट किया था। इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं था जिससे सर सैयद अहमद कांग्रेसका विरोध करते। लेकिन कुछ अधिकारी लोगों-की दृष्टिमें कांग्रेस-आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन था और जो बात उनके दिल-में, विशेषकर श्री बेकद्वारा बिठायी गयी उसके प्रभावमें प्रवाहित होनेसे वे अपने को रोक न सके। उन्हें सुझाया गया कि मुसलमानोंकी शिक्षा अभी उस दरजे-तक नहीं पहुँची है कि उनके वैधानिक आन्दोलनतक ही सीमित रहनेका विश्वास किया जा सके, अगर वे उत्तेजित हो गये तो उनका असन्तोष उसी रूपमें व्यक्त हो सकता है जिस रूपमें १८५७ में हुआ था। उन्हें इसका पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मुसलमानोंका राजनीतिक आन्दोलनमें भाग लेना उनके लिए हानिकारक होगा। श्री ए० ओ० ह्यूमने सर सैयद अहमदको एक खुली चिट्ठी लिखी थी जो १२ दिसम्बर १८८७ के इन्स्टीच्यूट गजटमें सर सैयदके उत्तरके साथ प्रकाशित भी हुई थी।

कांग्रेसका तीसरा अधिवेशन दिसम्बर १८८७ में श्री बदरुद्दीन तैयबजीकी अध्यक्षतामें मद्रासमें हुआ और बहुसंख्यक मुसलमान इसमें सम्मिलित हुए। सरकारके उच्च पदाधिकारियोंने अभी दुश्मनीका रुख अख्तियार नहीं किया था और मद्रासके गवर्नरने कांग्रेसके प्रतिनिधियोंको दावत भी दी। कांग्रेसके प्रस्तावोंमें भारतीयोंको सेनामें कमीशनके पदोंपर नियुक्त करने, भारतमें सैनिक कालेज स्थापित करने, शस्त्र-विधानका संशोधन करने एक हजारसे कमकी वार्षिक आय करसे बरी करने और कला-कौशलकी शिक्षाको प्रोत्साहन देनेकी माँग की गयी। लगभग कांग्रेस-अधिवेशनके ही समय लखनऊमें महम्मदन

एजुकेशनल कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। और इसीके बाद एक सार्वजनिक सभामें सर सैयद अहमदने पहली बार कांग्रेसके विरोधमें भाषण किया। आश्चर्यकी बात है कि वही सर सैयद अहमद जो बराबर भारतीयों और अंग्रेजोंकी समानताके लिए आग्रह करते रहे कैसे यहाँतक बढ़ गये कि व्यवस्थापिका सभाओंके सदस्योंकी चुनावद्वारा नियुक्ति न करनेपर जोर देने लगे। उनका कहना था कि इससे साधारण श्रेणीके लोग भी निर्वाचित हो जा सकेंगे जो वाइसरायद्वारा 'मेरे माननीय सहयोगी' शब्दोंद्वारा सम्बोधित किये जानेके सर्वथा अयोग्य होंगे और जो बी० ए०, एम० ए० की डिगरीवाले तथा और प्रकारसे सर्वथा योग्य होते हुए भी सामाजिक भोजों या जलसोंमें ड्यूकों, अर्लों तथा अन्य रईसोंकी पंक्तिमें नहीं बिठाये जा सकते। इसलिए रईसोंको मनोनीत करनेके कारण सरकार दोषी नहीं ठहरायी जा सकती। सिविल सर्विसकी परीक्षा एक साथ रखनेका विरोध उन्होंने इस बिनापर किया कि इंग्लैडमें परीक्षा होनेपर रईस खानदानका या किसी दरजीका लड़का, कोई भी उसमें भले ही ले लिया जा सकता है और भारतमें इस बातका पता न होनेके कारण लोग इसे स्वीकार भी कर लेंगे। पर भारतके कुलीन लोग अपने ही समाजमें ऐसे निम्नवर्गके लोगोंसे शासित होना कभी स्वीकार न करेंगे जिनकी जड़-बुनियादसे वे परिचित हैं।

श्री बदरुद्दीन तैयबजीने सर सैयद अहमदको लिखा कि अगर मुसलमान प्रतिनिधि किसी विषयपर कांग्रेसद्वारा विचार करानेके विरुद्ध हों तो वह रोक दिया जायगा; पर सर सैयद अहमदने इसका यह उत्तर दिया कि कांग्रेस राजनीतिक संस्था है इसलिए ऐसा कोई राजनीतिक प्रश्न हो ही नहीं सकता जो मुसलमानोंके हितके विरुद्ध न हो। इस प्रकार हम देखते ह कि सर सैयद अहमदको गुमराह करने और उनका मत परिवर्तित करनेमें श्री बेकको पूरी सफलता प्राप्त हुई। यदि सर थियोडोर मारिसन अलीगढ़ कालेजके इतिहासमें यह लिखते हैं कि सर सैयद अहमदके भाषणके फलस्वरूप मुसलमानोंने कांग्रेसका सर्वथा परित्याग कर दिया और भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाओंकी स्थापनाका

विरोध करने लगे, तो इसमें कोई विचित्रता नहीं है। मार्च, १८८८ में सर आकलैण्ड कालविनने अलीगढ़ कालेज देखा और मानपत्रके उत्तरमें संस्था और छात्रोंकी इतनी प्रशंसा की जितनी पहले किसीने नहीं की थी। दूसरे ही वर्ष अप्रैलमें सर सैयद अहमदने मेरठमें दूसरी बार कांग्रेसके विरोधमे भाषण किया। १८८८के दिसम्बरमें कांग्रेसका अधिवेशन इलाहाबादमें होनवाला था। सर आकलैण्ड कालविन तथा उनकी सरकारने इस अधिवेशनको रोकनेकी शक्तिभर कोशिश की पर इसके बावजूद भी अधिवेशन होकर ही रहा। लार्ड डफरिन, जिन्होंने कांग्रेसकी स्थापनाके लिए श्री ए० ओ० ह्यूमको प्रोत्साहित किया था, अब इसके विरुद्ध हो गये थे।

लगभग इसी समय-गोरक्षाका आन्दोलन चल पड़ा जिसका सरकारके समर्थक मुसलमानोंने लाभ भी उठाया। उन्होंने इलाहाबादमें एक सभा कर केवल गोरक्षाके ही विरुद्ध नहीं बल्कि मुसलमानोंके कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके विरुद्ध भी प्रस्ताव स्वीकार किया। कुछ लोगोंने मुसलमानोंके कांग्रेसमें सम्मिलित होनेके विरुद्ध एक फतवा भी निकाला। मौलवी अब्दुल कादिर लुधियानवीने इसके विरोधमें फतवा प्राप्तकर उन्हें लुधियाना, जालन्धर, होशियारपुर, कपूरथला, अमृतसर, दिल्ली, रामपुर, बरेली, मुरादाबाद, मदीनमनौरा तथा बगदाद शरीफके उलेमाके हस्ताक्षरसे प्रकाशित कराया। इन फतवोंपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें अधिकांश उस समयके मशहूर उलेमा और धर्मशास्त्री थे। फतवोंमें कहा गया था कि सांसारिक विषयोंमें मुसलमान हिन्दुओंके साथ मिलकर कांग्रेसमें काम कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो महान् व्यक्तित्ववाले सर सैयद अहमद कांग्रेसके विरोधी थे और दूसरी ओर सर्वश्री तैयबजी, अली मुहम्मद भीमजी और रहीमतुल्ला सयानीके नेतृत्वमें बम्बई और मद्रासके मुसलमान कांग्रेसके समर्थक थे और सभी प्रसिद्ध उलेमाओंने मुसलमानोंके कांग्रेसमें सम्मिलित होनेकी स्वीकृति भी दे दी थी।

१८८८ के अगस्तमें 'यूनाइटेड इंडियन पेट्रियाटिक असोसिएशन' की

अलीगढ़में स्थापना हुई जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मिलित हुए। असोसिएशनके उद्देश्य थे—(१) समाचार-पत्रोंके जरिये पार्लमेंटके सदस्यों और इंग्लैण्डवालोंको यह सूचित करना कि भारतके कुलीन मुसलमान और देशी नरेश कांग्रेसके साथ नहीं है और उसके मन्तव्योंका खण्डन करना। (२) पार्लमेंटके सदस्यों और इंगलैण्डवालोंको कांग्रेस-विरोधी हिन्दू और मुस्लिम संस्थाओंके मत अवगत कराना और (३) शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने तथा भारतमें ब्रिटिश शासन दृढ़ करनेमें सहायता प्रदान करना। यह सारी योजना श्री बेकके प्रयत्नोंका परिणाम थी। संस्थाके संचालनका भार श्री बेक और सर सैयद अहमदको सौंपा गया। असोसिएशनकी एक शाखा इंग्लैण्डमें श्री मारिसनके मकानमें खोली गयी। श्री बेकके मरनेपर यही मारिसन साहब अलीगढ़के प्रिन्सिपल बनाये गये। देशी नरेशोंको इस संस्थाका संरक्षक बनानेका निश्चय किया गया। कई बड़े-बड़े हिन्दू और मुसलमान जमींदार तथा कुछ यूरोपीय लोग भी असोसिएशनमें सम्मिलित हुए। राजा शिवप्रसादने 'अवध-तालुकेदार असोसिएशन' में यह प्रस्ताव रखा कि 'इंडियन लायल असोसिएशन' नामकी एक संस्था स्थापित की जाय और 'पेट्रियाटिक असोसिएशन' उसकी शाखाके रूपमें रहे। उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया कि देशी भाषाओंमें भाषण-लेखन रोक देनेके लिए सरकारसे प्रार्थना करनी चाहिए क्योंकि ये सङ्कट और विद्रोहके कारण हो सकते हैं। उद्देश्य था कांग्रेसको दबाना। सरकार, 'पेट्रियाटिक असोसिएशन' और राजा शिवप्रसाद जैसे व्यक्तियोंकी ओरसे विरोध होते हुए भी कांग्रेसके गत अधिवेशनके ६०७ प्रतिनिधियोंके मुकाबले इलाहाबाद-अधिवेशनमें १२४८ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और मुसलमान प्रतिनिधियोंने इस बातका स्पष्ट रूपसे निर्देश किया कि मुसलमान प्रतिनिधियोंकी संख्या-वृद्धि अलीगढ़के नेताओंके विरोधका परिणाम है। उल्लेखनीय बात यह है कि इलाहाबाद-अधिवेशनमें, जिसका इतना अधिक विरोध किया गया था, जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये उनमें सहिष्णुताका समर्थन, शिक्षापर अधिक व्यय और स्थायी

बन्दोबस्तका विस्तार करनेकी माँग की गयी और नमक-करका विरोध किया गया।

१८८९ में श्री ब्रेडलाने भारतमें लोकतन्त्रात्मक संस्थाएँ स्थापित करनेके उद्देश्यसे पार्लमेण्टमें एक बिल पेश किया। श्री बेकने इसके विरोधमें एक स्मरण-पत्र तैयार किया जिसमें कहा गया था कि लोक-तन्त्रात्मक संस्थाएँ भारतके अनुकूल नहीं पड़ेंगी क्योंकि वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकारके समुदाय बसे हुए हैं। उन्होंने स्मरणपत्रपर बहुत बड़ी संख्यामें हस्ताक्षर भी कराये थे जो अलीगढ़ कालेजके छात्रोंके दल भेजकर प्राप्त किये गये थे। उनका एक दल तो स्वयं बेकके नेतृत्वमें दिल्ली गया था। 'श्री बेक स्वयं जामा मसजिदके दरवाजेपर बैठ गये और छात्र उनके कहनेके मुताबिक नमाज पढ़नेके लिए अन्दर जानेवालोंसे यह कहकर हस्ताक्षर कराते गये कि हिन्दू गायकी कुर्बानी बन्द कराना चाहते हैं, इसीके विरोधमें यह दरख्वास्त सरकारके पास भेजी जा रही है। यह बात श्री विलायत हुसेन साहबने अलीगढ़के 'कान्फरेन्स गजट' में लिखी है। इस प्रकार २०,७३५ हस्ताक्षर प्राप्त कर यह विचित्र प्रार्थनापत्र १८९० में पार्लमेण्टमें पेश करनेके लिए इंग्लैण्ड भेजा गया।'*

'यूनाइटेड इण्डियन पेट्रियाटिक असोसिएशन' कुछ वर्षोंतक मुसलमानोंके नामपर कांग्रेसके विरोधका कार्य चलाता रहा, पर १८९३ में 'महम्मदन ऐंग्लो ओरिएण्टल डिफेंस असोसिएशन आव अपर इण्डिया' के नामसे एक नयी संस्था स्थापित हुई। इस असोसिएशनके उद्देश्य थे—(१) अंग्रेजों और भारत सरकारके सम्मुख मुसलमानोंका मत रखना और उनके राजनीतिक अधिकारोंकी रक्षा करना, (२) मुसलमानोंमें राजनीतिक आन्दोलनका प्रसार रोकना, और (३) ऐसे साधन काममें लाना जिनसे ब्रिटिश शासनके दृढ़ता प्राप्त करने, शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने और लोगोंमें राजभक्तिका भाव बढ़नेमें सहायता मिले। 'पेट्रियाटिक असोसिएशन' हिन्दू मुसलमान दोनोंकी संयुक्त संस्था-सी थी, पर श्री बेकको दोनोंका मिलकर ब्रिटिश शासनको बलप्रदान करना

* तुफायल अहमद 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल', पृष्ठ ३११-१२।

भी सह्य नहीं था, इसलिए उन्होंने 'डिफेंस असोसिशएन' की स्थापना करायी। इसमें मुसलमान अन्य भारतीय समुदायोंसे तो पृथक् कर दिये गये पर प्रतिगामी अंग्रेजोंके साथ मिला दिये गये और नाम भी 'डिफेंस असोसिएशन' (रक्षा-संघ) रखा गया। यह नाम 'एंग्लोइण्डियन डिफेंस असोसिएशन' के अनुकरणपर रखा गया जो १८८३ में लार्ड रिपनके विरुद्ध स्थापित किया गया था, पर कार्य पूरा हो जानेपर उसका अन्त हो गया था। श्री बेक इस नयी संस्थाके मन्त्री बनाये गये।

असोसिएशनके प्रथम अधिवेशनमें श्री बेकने अपने आरम्भिक भाषणमें बतलाया कि यद्यपि 'पेट्रियाटिक असोसिएशन' ने श्री ब्रेडलाके बिलके विरोधमें हस्ताक्षर प्राप्त किये थे, पर उसमें दो बहुत बड़े दोष थे—एक तो यह कि वह संस्था हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी संयुक्त संस्था थी और उसमें बहुतसी दूसरी संस्थाएँ भी सम्मिलित थीं; दूसरा यह कि उसके तत्त्वावधानमें सार्वजनिक सभाएँ हुआ करती थीं और इस प्रकार वह जनतामें अशान्ति उत्पन्न किया करती थी। 'डिफेंस असोसिएशन' मुसलमानोंका असोसिएशन होगा जिससे हिन्दूलोग बिलकुल अलग रखे जायँगे और यह न तो सार्वजनिक सभाएँ करेगा और न किसी तरहकी अशान्ति उत्पन्न करेगा। यह किसी दूसरी संस्था-को भी सम्मिलित नहीं करेगा। इसकी एक समिति होगी और इसका सारा कार्य साधारण सदस्योंके हाथमें न रखकर समितिके ही जिम्मे कर दिया जायगा। श्री बेकके इस आरम्भिक भाषणसे यह महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त जान पड़ता है—'गत कुछ वर्षोंसे देशमें दो आन्दोलन जोर पकड़ने जा रहे हैं—एक तो राष्ट्रीय महासभा है और दूसरा गोरक्षाका आन्दो-लन। इनमेंसे पहला तो सर्वथा अंग्रेजोंके विरुद्ध है और दूसरा मुसलमानोंके। राष्ट्रीय महासभाका उद्देश्य ब्रिटिश सरकारका राजनीतिक अधिकार हिन्दुओंके कुछ दलोंको हस्तान्तरित करना, शासक जातिको निर्बल करना, लोगोंको हथि-यार देना, सेनाको शक्तिहीन और इसपर होनेवाला व्यय कम करना है। इस उद्देश्यके प्रति मुसलमानोंकी कोई सहानुभूति नहीं हो सकती। गोरक्षा-आन्दो-

लनका उद्देश्य मुसलमानोंको गायकी कुर्बानी करने और अंग्रेज तथा मुसलमान दोनोंको खानेके लिए गोवध करनेसे रोकना है। गोवध रोकनेके लिए वे अपने विरोधियोंका बहिष्कार करते हैं जिसमें वे पेटकी ज्वालासे परेशान होकर उनकी अधीनता स्वीकार कर लें। बम्बई, आजमगढ़ आदि स्थानोंका भीषण दंगा इसीका परिणाम है। मुसलमान और अंग्रेज इन दोनों आन्दोलनोंके लक्ष्य बन गये हैं। अतः उनका विरोध करनेके लिए मुसलमानों और अंग्रेजोंका आपसमें मिल जाना आवश्यक है। लोक-तन्त्रात्मक संस्थाओंकी स्थापनाका विरोध होना चाहिए क्योंकि वे इस देशके अनुकूल नहीं हैं। इसलिए हमलोगोंको सच्ची राजभक्ति और कार्यमें एकता लानेके लिए प्रचार करना चाहिए।*

श्री ब्रेडलाके बिलके विरोधमें लगभग बीस हजार हस्ताक्षरोंके साथ श्री बेकके निवेदनपत्र भेजनेका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उन्होंने मुसलमानोंके हस्ताक्षरोंके साथ दूसरा निवेदनपत्र सिविल सर्विसकी परीक्षा युगपत् रखनेके विरोधमें भिजवाया। निवेदनपत्र में जो प्रार्थना की गयी थी उसके स्वीकार कर लिये जानेका समाचार मिलनेपर 'डिफेंस असोसिएशन'ने धन्यवादका प्रस्ताव स्वीकार किया और उसमें यह भी जोड़ दिया कि एक साथ परीक्षा रखना ब्रिटिश शासनके स्थायित्वमें बाधक सिद्ध होगा, सरकार कमजोर हो जायगी और धन-जनकी रक्षा करना कठिन हो जायगा जिसपर भारतकी नैतिक और भौतिक उन्नति निर्भर है।

श्री बेकने भारतमें प्रतियोगिताद्वारा नियुक्ति करनेका भी विरोध चलाया और यह सुझाया कि नौकरियोंके विषयमें मुसलमानोंको ब्रिटिश सरकारके प्रति भक्तिका ही भरोसा करना चाहिए। 'डिफेंस असोसिएशन' ने इंग्लैण्डमें भी प्रचार-कार्य चलाया और स्वयं श्री बेकने १८९५ में वहाँ एक व्याख्यान दिया जिसका प्रतिपाद्य विषय यह था कि मुसलमानों और अंग्रेजोंमें एका होना सम्भव है पर हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकता सम्भव नहीं है और पार्लमेण्टरी संस्थाएँ

---

* सैयद तुफायल अहमद—'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल' पृष्ठ ३१५।

भारतके लिए सर्वथा अनुपयुक्त होंगी; अगर उनकी स्थापना की गयी तो बहु-संख्यक हिन्दुओंके आगे अल्पसंख्यक मुसलमानोंका कोई वश न चल सकेगा। अपने इस व्याख्यानमें उन्होंने कभी तो मुसलमानोंकी पीठ ठोंकी और कभी उन्हें धमकी दी कि अगर मुसलमानोंने उचित कार्य नहीं किया और हिन्दुओं-की नीतिका अनुसरण करते गये तो इसका परिणाम बहुत भयङ्कर होगा।

इसी समय ब्रिटिश सरकार सीमाप्रान्तमें अग्रगामी नीति बरतनेका विचार कर रही थी और सैनिक व्यय भी बढ़ाना चाहती थी जिसका कांग्रेस विरोध कर रही थी। श्री बेकने 'डिफेंस असोसिएशन' की १८९६ की वार्षिक रिपोर्टमें इस बातपर जोर दिया कि सरकारके स्थायित्वके लिए जल और स्थल सेना और भी शक्तिशाली बनायी जानी चाहिए। सर सैयद अहमदने भी असोसिएशनमें इस आशयका एक प्रस्ताव पेश किया कि असोसिएशन सैनिक व्यय कम करनेके विरुद्ध है। प्रस्ताव उपस्थित करते हुए उन्होंने कहा कि मेरी समझमें अंग्रेज सैनिकों-की संख्या बहुत कम है और लार्ड डफरिनको एक अवसरपर मैंने अच्छी तरह समझा दिया था कि सीमाप्रान्तकी रक्षाके लिए सेना पर्याप्त नहीं।* इसके विरुद्ध कांग्रेसने सीमाप्रान्तमें सरकारकी अग्रगामी नीतिके विरोधमें प्रस्ताव स्वीकार किया और यह सुझाया कि सीमाप्रान्तके लोगोंके साथ मैत्रीकी नीति बरती जाय और स्वात घाटीपर किया जानेवाला अत्यधिक व्यय बन्द कर दिया जाय। ध्यान देनेकी बात यह है कि कांग्रेस तो सरकारकी अग्रगामी नीतिका विरोध कर रही थी जो सीमाप्रान्तके लोगोंकी, जो सबके सब मुसलमान थे, मृत्यु और बरबादीका कारण हो रही थी, पर 'डिफेंस असोसिएशन' इसके लिए सेना और व्यय बढ़ाने-की माँग कर रहा था।

इन सब बातोंने उन मुसलमानोंको, जो एक ओर तो सर सैयद अहमदके प्रति भक्ति-भावके कारण खिंच रहे थे और दूसरी ओर मुसलमानोंके वास्तविक हितके प्रति भक्तिसे, अपना दिल टटोलनेको विवश कर दिया; जैसा कि नवाब वका-

---

* तुफायल अहमद—'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल' पृष्ठ ३३०

रुल मुल्ककी निम्नाङ्कित पंक्तियोंसे, जो उन्होंने कुछ वर्ष बाद १९०७ में लिखी थीं, प्रकट होता है—'यह सब देखकर जिन लोगोंके मनमें सम्प्रदायके हितका ध्यान था उन्हें चिन्ता हुई और वे आपसमें पूछताछ करने लगे। अन्तमें कुछ संरक्षक सर सैयद अहमदकी, जिनका बहुत दिनोंतक कोई सानी नहीं होगा, शक्ति, प्रतिष्ठा और महत्ताके बावजूद इस परिणामपर पहुँचे कि हमें, अपने नेताके प्रति जो भाव है उसका विचार न कर, अपने सम्प्रदायके हितोंकी ओर ही दृष्टि रखनी चाहिए। लाहौरके 'पैसा अखबार'में एक लेखमाला प्रकाशित करानेका निश्चय किया गया। ये लेख किसी कल्पित नामसे न प्रकाशित कराकर नवाब मोहसिनुल-मुल्क, शमूशुल उलेमा मौलवी ख्वाजा अलताफहुसेन हाली जैसे व्यक्तियों-के और मेरे हस्ताक्षरसे प्रकाशित किये जानेवाले थे। इस लेखमालाका पहला लेख लिखकर मैंने नवाब मोहसिनुल-मुल्क बहादुर और शमूशुल उलेमा मौलवी हाली साहबके पास हस्ताक्षरके लिए भेजा जो उस समय सम्भवतः अलीगढ़में रहते थे। इसी समय अचानक सर सैयदके देहावसानका समाचार मिला। मैंने फौरन नवाब मोहसिनुल-मुल्कको लेख वापस कर देनेके लिए तार दे दिया, क्योंकि उनकी मृत्युके बाद उनकी अच्छाई और अनुपम गुणोंके अतिरिक्त और किसी बातका विचार ही नहीं रह गया था। चूँकि लेखमाला निकालनेका विचार छोड़ दिया गया था और मनमें शिकायतोंके लिए कोई स्थान भी नहीं रह गया था, इसलिए कालेजके हितकी दृष्टिसे मैं आज इन बातोंको प्रकट कर रहा हूँ।'*

१८९८ में सर सैयद अहमदकी मृत्युके बाद भी श्री बेकने अपनी नीति जारी रखी, पर दूसरे ही वर्ष सन् १८९९ में उनका भी देहान्त हो गया। इलाहाबाद हाईकोर्टके चीफ जस्टिस सर आर्थर स्ट्राचेके शब्दोंमें वे उन अंग्रेजोंमें थे जो संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें साम्राज्य-निर्माणके कार्यमें संलग्न हैं। वे अपने कर्तव्यका पालन करते हुए सैनिककी भाँति मरे हैं।'

---

* 'वाकर-इ-हयात', पृष्ठ ४२०से तुफायल अहमदद्वारा 'रोशन मुस्तकबल' में उद्धृत, पृष्ठ ३३४

श्री बेकके बाद श्री थियोडोर मारिसन कालेजके प्रिंसिपल बनाये गये। यहाँ यह स्मरण दिलाया जा सकता है कि मारिसन साहबके ही मकानमें इङ्गलैण्डमें 'पेट्रियाटिक असोसिएशन' की शाखा खोली गयी थी ; इसलिए श्री बेककी जगहपर इनका अलीगढ़ कालेजका प्रिंसिपल बनाया जाना ही नहीं बल्कि राज-नीतिमें प्रतिनिधित्व करना भी स्वाभाविक था। ऐसी घटनाएँ भी घटित हुईं जिन्होंने अलीगढ़ कालेजके अंग्रेज प्रिंसिपलोंको हिन्दुओंसे मुसलमानोंको पृथक् करनेके उनके कार्यमें सहायता दी। १९०० में युक्तप्रान्तीय सरकारने एक निश्चय प्रकाशित किया जिससे प्रान्तमें उर्दू-नागरीका आन्दोलन चल पड़ा। हिन्दुओंने कचहरियोंमें नागरी लिपिके प्रयोगकी अनुमति देनेके सरकारी विचारका समर्थन किया और मुसलमानोंने इसका विरोध किया। नागरी लिपिके प्रयोगके लिए हिन्दू कई वर्षोंसे आन्दोलन करते आ रहे थे पर सर सैयदके विरोधके कारण उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। १९०० में प्रान्तमें प्लेगका प्रकोप आरम्भ हुआ। सरकारने पृथक् रखनेका उपाय काममें लाना शुरू किया। इससे कुछ शहरोंमें दङ्गा हो गया जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्मिलित हुए। इसी प्रकारका दङ्गा कानपुरमें १ अप्रैल १९०० को हुआ जिससे सरकारको बड़ी परेशानी और चिन्ता हुई। इस घटनाके एक पक्षके भीतर ही कचहरियों और सरकारी दफ्तरोंमें नागरी लिपिके प्रयोगका निश्चय निकला। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमानोंमें सङ्घर्ष प्रारम्भ हो गया। इसके विरोधमें मई १९०० में नवाब छतारीके सभापतित्वमें अलीगढ़में एक सभा हुई। नवाब मोहसिनुल मुल्कने जोरदार भाषण किया और प्रस्ताव स्वीकार कर सरकारसे यह निश्चय वापस लेनेका अनुरोध किया गया। इससे सरकार सभापतिसे अप्रसन्न हो गयी और इन्होंने सभापतित्वसे इस्तीफा दे दिया। उनके बाद नवाब मोह-सिनुल-मुल्क सभापति हुए और उन्होंने इसपर कुछ व्याख्यान भी दिये। लेफ्टि-नेण्ट गवर्नर स्वयं अलीगढ़ गये, कालेजके संरक्षकोंसे मिले और उनसे कहा कि नवाब मोहसिनुल-मुल्क दोमेंसे एक अपने लिए चुन लें—या तो वे उर्दू कान्फरेंसके सभापतिके पदपर रहें या कालेजके मन्त्रीके पदपर। कालेजके मन्त्रीके पदपर रहते हुए

वे राजनीतिक आन्दोलनोंमें भाग नहीं ले सकते। कालेजके कामका महत्त्व समझकर संरक्षकोंके दबावसे उन्होंने उर्दू कान्फरेन्सके सभापतित्वसे इस्तीफा दे दिया। 'पेट्रियाटिक असोसिएशन' और 'डिफेन्स असोसिएशन' का कार्य कांग्रेस और भारतमें लोकतन्त्रात्मक संस्थाओंकी स्थापना, सिविल सर्विसकी एक ही समय परीक्षा रखने, सैनिक व्यय घटाने, नमक-कर उठा देने, शस्त्र-कानूनमें संशोधन करने आदिका विरोध करना था। यह सब राजनीतिक काम नहीं समझा गया। कालेजके मन्त्री सर सैयद अहमद ही नहीं बल्कि इसके प्रिंसिपल श्री बेकको भी यह सब कार्य करनेके लिए सरकारने अनुमति तो दी ही, प्रोत्साहन भी देती रही; किन्तु नवाब मोहसिनुल मुल्कको उर्दू कान्फरेंसका सभापति बने रहनेकी अनुमति नहीं दी गयी क्योंकि यह राजनीतिक कार्य समझा गया। कारण स्पष्ट है। पहला काम सरकारके अनुकूल पड़ता था, दूसरा नहीं।

श्री मारिसनने देखा कि नागरी लिपिके विरुद्ध छिड़ा हुआ मुसलमानोंका आन्दोलन दबानेमें कठिनाई होगी इसलिए उन्होंने उन्हें राय दी कि कोई भी राजनीतिक संस्था रखना वांछित नहीं है। उन्होंने लोक-तन्त्रात्मक संस्थाओंसे होनेवाला हानिकर प्रभाव उन्हें समझाया और उन्हें एक पत्रमें जो इन्स्टीट्यूट गजटमें १९०१ में प्रकाशित हुआ था, लिखा 'लोक-तन्त्रात्मक शासन अल्पसंख्यकोंको लकड़हारा और पनभरा बना डालेगा।'* उन्होंने अपनी यह धारणा भी प्रकट की कि मुसलमानोंकी कोई अलग संस्था रहना वांछनीय नहीं जान पड़ता क्योंकि सम्प्रदायके बड़े लोग सरकारकी अप्रसन्नताके भयसे इसमें सम्मिलित नहीं होंगे जिससे स्वयं मुसलमानोंमें ही मतभेद उत्पन्न हो जायगा। इसलिए उन्होंने अन्तमें उनको यही राय दी है कि मेरी समझमें राजनीतिक संस्था मुसलमानोंके हितकी दृष्टिसे लाभदायक न होकर हानिकर ही होगी, क्योंकि गत २० या २५ वर्षोंसे सरकार उनके लिए रिआयत करती आ रही है। अगर कांग्रेसकी तरह वे भी कोई संस्था स्थापित कर अधिकारोंकी माँग करने लगें

---

* तुफ़ायल अहमद 'मुसलमानोंका रोशन मुस्तकबल' पृष्ठ ३४९।

और पार्लमेंट एक कमीशन बिठा दे तो मुसलमानोंको उतना लाभ कभी न होगा जितना सर अन्थोनी मेकडानलके हाथमें अपना भाग्य सौंप देनेसे होगा।' † उन्होंने इस बातकी ओर भी ध्यान दिलाया कि अगर उन्होंने कोई राजनीतिक माँग की होती तो सरकारी अफसर मुसलमानोंको जो तरजीह देते रहे हैं वह बन्द कर दी गयी होती। इसलिए उन्होंने यह सुझाया कि मुसलमानोंके लिए योग्य व्यक्तियोंद्वारा सञ्चालित और राजनीतिक साहित्यसे सम्पन्न केवल एक समितिकी आवश्यकता है जो व्यवस्थापिका सभाके सदस्योंको परामर्श देती रहे। उन्होंने यह भी सुझाया कि मुसलमानोंको राजनीतिक प्रश्नोंकी अपेक्षा आर्थिक प्रश्नोंपर अधिक ध्यान देना चाहिए।

धन एकत्र न हो सकनेके कारण यह प्रस्ताव कभी कार्यरूपमें परिणत नहीं हो सका और मुसलमानोंमें चलनेवाला सारा राजनीतिक आन्दोलन, मौलवी तुफायल अहमदके शब्दोंमें, उस समय जमीनके अन्दर दफन हो गया।

नागरी-उर्दूके विवादमें, उसके राजनीतिक स्वरूपके कारण, सरकार कालेजके मन्त्रीके भाग लेनेके तो विरुद्ध थी पर कालेजके छात्रोंका राजनीतिक कार्योंमें उपयोग करनेमें उसे कोई हिचक नहीं हुई। उन दिनों रूस और इङ्गलैण्ड प्रतिद्वन्दी राष्ट्र थे और दोनों ही फारसको अपने-अपने पक्षमें लानेके लिए प्रयत्नशील थे। १९०२ में लार्ड कर्जनने फारसके कुछ छात्रोंको अलीगढ़ कालेजमें रखकर शिक्षा दिलाना वाञ्छनीय समझा। श्री मारिसनने कालेजका एक प्रतिनिधिमण्डल फारस भेजनेका प्रस्ताव किया। नवाब मोहसिनुल-मुल्कने कालेजकी ओरसे प्रतिनिधि मण्डलका व्यय देनेका विरोध किया, पर श्री मारिसनके जबर्दस्ती करनेपर उन्हें दब जाना पड़ा। आखिर प्रतिनिधि-मण्डल फारस गया और उस देशके उच्च घरानोंके कुछ लड़के आकर अलीगढ़ कालेजमें भरती भी हुए।

सभी मुसलमान श्री मारिसनका नेतृत्व स्वीकार करनेको तैयार नहीं थे। १९०१ में नवाब मोहसिनुल-मुल्कने 'महम्मदन पोलिटिकल आर्गेनाइजेशन'

---

† तुफायल अहमद—'रोशन मुस्तकबल', पृ० ३५०।

नामकी एक राजनीतिक संस्था स्थापित कर इसे सफल बनानेका यथाशक्ति प्रयत्न भी किया ; इसके उद्देश्य भी नरम ही थे, पर सरकारी अफसरोंके इसे स्वीकार न करनेसे सारा प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुआ। जब सरकारको मुसलमानोंकी एक राजनीतिक संस्थाकी आवश्यकता प्रतीत हुई तब कहीं जाकर एक संस्था स्थापित हुई और वह, जैसा कि शीघ्र ही देख पड़ेगा, सफलता-पूर्वक कार्य भी करने लगी।

——

६

पृथक् निर्वाचनका उद्गम

बंगाल प्रान्त सबसे पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनीके शासनाधीन हुआ था। अंग्रेजी शिक्षा भी सबसे पहले इसी प्रान्तमें आरम्भ हुई। बंगाली हिन्दुओंने इससे लाभ उठानेमें जरा भी विलम्ब नहीं किया। सरकारने, उस समय जो नीति बरती जाती थी उसके अनुसार, मुसलमानोंको जानबूझकर पीछे रोक रखा। हिन्दुओंने भिन्न-भिन्न विभागोंमें सरकारी नौकरियाँ ही नहीं प्राप्त कीं बल्कि बहुत बड़े सुधारक, वकील, चिकित्सक, वैज्ञानिक, वक्ता, लेखक और ऐसे मनुष्य उत्पन्न किये जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य-सरिताका पर्याप्त अवगाहन किया था और ब्रिटिश संस्थाओं, विशेषकर ब्रिटिश विधानके बहुत बड़े प्रशंसक हो गये थे। ऐसे समुदायसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह नीचेकी छोटी-छोटी सरकारी नौकरियोंसे बहुत दिनोंतक सन्तुष्ट रह सकेगा। बहुतोंके मनमें ब्रिटिश संस्थाओंके आदर्शपर प्रगतिशील संस्थाओंकी स्थापनाकी इच्छा बलवती होती जा रही थी। वे सारे देशके शिक्षितवर्गमें जागरण लानेके कार्यमें बहुत बड़े अंशमें सहायक हुए और भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापनाके भी बहुत कुछ वे ही कारण हुए जिसका प्रथम अधिवेशन एक बंगाली, श्री डब्ल्यू० सी० बनर्जीके सभापतित्वमें हुआ। वे स्वभावतः सभी प्रगतिशील विचारवाले व्यक्तियोंके आदर और प्रशंसाके

पात्र हो गये थे और जैसा कि पहले कहा चुका है, सर सैयद अहमदखाँ भी उन्हींमेंसे एक थे। पर इन्हीं कारणोंसे ब्रिटिश अफसर उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे, उनके प्रति यह घृणा या भय छिपाकर भी नहीं रखा गया। वे लोग कलकत्ता म्युनिसिपैलिटीके म्युनिसिपल कमिश्नरके पदपर काम करते हुए अपनी योग्यता और कर्तव्यनिष्ठाके कारण सर अन्थोनी मेकडानलके जो उस समय बंगालके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर थे, प्रशंसापात्र बन गये थे। प्रभुवत् आचरण करनेवाले लार्ड कर्जनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे बंगालियोंके इस बढ़ते हुए प्रभावको सहन कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने जो काम सबसे पहले किये उनमेंसे एक था निर्वाचित सदस्योंकी संख्या घटाकर कलकत्ता म्युनिसिपैलिटीपर वार करना। उसका अध्यक्ष भी अब कोई सरकारी अफसर ही होता। इस उपायसे म्युनिसिपैलिटी सरकारके नियन्त्रणमें आ गयी। प्रधान नगरपर जो सारे भारतका नहीं तो कमसे कम पूर्वोत्तर भारतका राष्ट्रवादका केन्द्र और स्रोत था, इस प्रकार वार किया जाना लोगोंको बहुत खला। इससे लार्ड कर्जनकी चिढ़ और बढ़ गयी और दिसम्बर १९०३ में उन्होंने चटगाँव और ढाका डिविजनोंको बङ्गालसे अलग कर आसाममें मिला देनेकी एक योजना बना डाली। इससे लोगोंमें बड़ी खलबली पैदा हुई। ढाकाके नवाब सलीमुल्ला खाँतक ने इसे 'जङ्गली व्यवस्था' करार दिया। लार्ड कर्जनके कलकत्ता विश्वविद्यालयके दीक्षान्त भाषणमें यह कहनेपर कि प्राच्य लोगोंमें सत्यके प्रति कोई आदरभाव नहीं होता, भारतीय लोकमतके साथ उनका संघर्ष और भी बढ़ गया। इसके विरुद्ध लोगोंने आवाज उठायी। लगातार विरोध होनेसे लार्ड कर्जनके क्रोधको मात्रा बढ़ती ही गयी। उन्होंने ढाकाकी यात्रामें वहाँकी एक सार्वजनिक सभामें मुसलमानोंसे कहा कि बङ्गालके विभाजनका उद्देश्य लेफ्टिनेण्ट गवर्नरका कार्य-भार ही नहीं घटाना है जिसके जिम्मे बङ्गाल प्रान्तमें इतना विस्तृत भूभाग है, बल्कि एक ऐसे प्रदेशका निर्माण भी करना है जिसमें मुसलमानोंका प्राधान्य रहे। इस भाषणसे बहुतसे मुसलमान उनके पक्षमें हो गये। ढाकाके नवाब सलीमुल्ला जो पहले विभाजन-योजनाके विरोधी

थे, इसके कट्टर समर्थकोंमें हो गये, हालाँ कि उनके भाई ख्वाजा अतीकुल्लाने इसका विरोध जारी ही रखा। श्री गुरुमुख निहालसिंहका कहना है कि ढाकाके नवाब सलीमुल्लाका समर्थन उन्हें लगभग एक लाख पौण्डका ऋण बहुत कम सूदपर विभाजनके बाद शीघ्र ही देकर प्राप्त किया गया।* हिन्दुओं और श्री ए० रसूल तथा ख्वाजा अतीकुल्लाके नेतृत्वमें बहुतसे मुसलमानोंके विरोध करनेपर भी प्रान्तका विभाजन कर दिया गया। सर हेनरी काटनके शब्दोंमें 'इस योजनाका उद्देश्य एकताको छिन्न-भिन्न कर दृढ़ताकी उस भावनाको भङ्ग करना था जो प्रान्तमें दृढ़ हो गयी थी। इसके मूलमें कोई शासन-सम्बन्धी कारण नहीं था। लार्ड कर्जनकी नीतिका मुख्य उद्देश्य बढ़ती हुई शक्तियोंको क्षीण कर देश-भक्तिके भावसे अनुप्राणित राजनीतिक प्रवृत्तियोंको नष्ट करना था।'† स्टेट्समैनके अनुसार इसका उद्देश्य 'पूर्वी बङ्गालमें मुसलमानोंकी शक्ति बढ़ाना था जिससे हिन्दुओंकी शक्तिकी वृद्धिकी रोक होनेकी आशा की जाती है।'‡

विभाजनके प्रश्नके सम्बन्धमें एक अत्यन्त कटु विवादके रूपमें लार्ड कर्जन अपनी विरासत छोड़ गये जिसमें बङ्गाली ही नहीं बल्कि देशके दूसरे भागोंके लोग भी सम्मिलित हो गये। प्रायः ऐसा होता है कि छोटे दिमागसे निकली हुई योजनाएँ उल्टा ही फल लाती हैं। भारतमें भी यही बात हुई। जो बात राजनीतिक जीवनको कुचलनेका उपाय समझी गयी थी वही बहुत बड़ी प्रेरणा सिद्ध हुई। विभाजन विरोधी आन्दोलनने सारे देशको इस प्रकार जाग्रत् कर दिया जैसा १८५७के बाद किसी घटनाने नहीं किया था।

लार्ड कर्जनका कार्यकाल समाप्त हो जानेपर १९०५ के नवम्बरमें जब लार्ड मिण्टोने वाइसरायका पद ग्रहण किया उस समय उनके सम्मुख बड़ी

---

* गुरुमुख निहालसिंह—'लैण्डमार्क इन इण्डियन कान्स्टिट्यूशनल एण्ड नेशनल डेवलप्मेण्ट', पृष्ठ ३१९।

† 'इण्डिया इन ट्रैन्जीशन' से मेहता और पटवर्धनद्वारा 'कम्यूनल ट्रिएंगल' में उद्धृत पृष्ठ ६४।

‡ वही पृष्ठ ६४।

गम्भीर स्थिति थी। कार्यभार ग्रहण करनेके कुछ ही महीने बाद उन्होंने श्री जॉन मार्लेको लिखा—'जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है...हमें मान लेना चाहिए और उसमें जो अच्छे हैं उनसे मैत्री कर लेनी चाहिए। फिर भी मुझे आशंका है कि आन्दोलनमें बहुत कुछ नितान्त द्रोहात्मक है और भविष्यके लिए खतरा है। मैं कोई ऐसी चीज सोच रहा हूँ जो कांग्रेसके उद्देश्यके मुकाबलेमें रखी जा सके। मेरा खयाल है कि इसका हल देशी नरेशोंकी कौंसिल या इस विचारके परिवर्द्धित रूपमें प्राप्त किया जा सकता है—केवल देशी-नरेशोंकी नहीं बल्कि कुछ अन्य बड़े लोगोंकी प्रिवी कौंसिल जैसी कोई चीज़ हो जिसका सालमें एक सप्ताह या एक पक्ष दिल्लीमें अधिवेशन हुआ करे। विचारका विषय और सञ्चालनविधि खूब सोच-समझकर निर्धारित हो, पर हमलोगोंका मत कांग्रेसवालोंके मतसे भिन्न होगा और यह उन लोगोंसे प्राप्त होगा जिनकी पहलेसे ही अच्छी सरकारमें गहरी दिलचस्पी है।'*

श्री मार्लेने ६ जूनको लार्ड मिण्टोको लिखा—"प्रत्येक व्यक्ति यह चेतावनी दे रहा है कि भारतमें एक नयी भावना बढ़ती और फैलती जा रही है। लारेन्स, शिरोल, सिडनी लो—सबके सब एक ही राग आलाप रहे हैं। आप एक ही भावनासे प्रेरित होकर शासन नहीं करते रह सकते। आपको कांग्रेस पार्टी और कांग्रेसके सिद्धान्तोंसे निपटना पड़ेगा, चाहे उनके विषयमें आप जो भी ख्याल करते हों। 'इस बातका निश्चय जानिये कि कुछ ही दिनोंमें मुसलमानलोग आपके विरुद्ध कांग्रेसजनोंसे मिल जायँगे' आदि आदि।"†

कांग्रेस और साधारणतः प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलनके मुकाबलेमें नरेशोंकी कौंसिल स्थापित करनेका विचार कार्यान्वित नहीं हो सका ; पर एक अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकर उपाय निकाला गया। लार्ड मिण्टोने अपनी कौंसिलकी सलाहसे एक ऐसी सुधार-योजनाकी रूपरेखा तैयार की जो कमसे कम भारतके

---

* लेडी मिण्टो—'इण्डिया, मिण्टो एण्ड मार्ले', पृ० २८-९

† वही ,, ,, पृ० ३०

नरम विचारवालोंको सन्तुष्ट कर सके। एक ओर तो योजना प्रस्तुत की गयी और दूसरी ओर मुसलमानोंको देशकी राजनीतिसे विरत करनेका प्रयत्न किया जाने लगा। मौल्वी सैयद तुफायल अहमद मंगलोरीने लिखा है—'३० जुलाई १९०६ को अलीगढ़के रईस नवाब हाजी मुहम्मद इस्माइल खाँ साहबने, जो नैनीतालमें थे और अफसरोंसे मिला-जुला करते थे, अलीगढ़ कालेजके मन्त्री नवाब मोहसिनुल-मुल्क बहादुरको इस आशयके एक आवेदनपत्रका मसविदा भेजा कि मुसलमानोंको भी अपने अधिकारोंकी माँग करनी चाहिए और साधारणतः शिक्षित मुसलमानोंने इधर ध्यान भी दिया। उन दिनों कालेजके प्रिंसिपल श्री आर्चबोल्ड लम्बी छुट्टीके कारण शिमलामें ठहरे हुए थे और वहाँके उच्च अधिकारियोंसे मिला करते थे। उन्होंने वाइसरायके प्राइवेट सेक्रेटरीसे प्रस्तावित प्रतिनिधि मण्डलके सम्बन्धमें बातचीत की। श्री आर्चबोल्डने नवाब मोहसिनुल-मुल्कसे बात करनेके बाद १० अगस्त १९०६ को वाइसरायको जो पत्र लिखा था वह छापकर प्रतिनिधि मण्डलके सदस्योंको बाँटा गया। इस पत्रके निम्नलिखित सारांशसे पता चल जायगा कि किस प्रकार अलीगढ़ कालेजके प्रिंसिपल राजनीतिक विषयोंमें मुसलमानोंका पथ-प्रदर्शन करते रहे और किस प्रकार वे अलीगढ़में सरकारके रेजिडेण्टका काम किया करते थे। पत्रका प्रत्येक शब्द सावधानीके साथ मनन करने योग्य है—

"कर्नल डनलप स्मिथ (वाइसरायके प्राइवेट सेक्रेटरी) ने मुझे लिखा है कि वाइसरायको मुसलमानोंके प्रतिनिधि मण्डलसे मिलना स्वीकार है और मुझे सूचित किया है कि इसके लिए नियमित रूपसे दरख्वास्त भेज दी जाय। इस सम्बन्धमें निम्नलिखित बातोंपर विचार करना आवश्यक है—

"पहला प्रश्न दरख्वास्त भेजनेका है। अगर मुसलमानोंके कुछ नेता, भले ही वे चुने न गये हों, उसपर हस्ताक्षर कर दें तो मेरी समझमें यह काफी होगा। दूसरा प्रश्न यह है कि प्रतिनिधि मण्डलमें कौन-कौन रहें। उसमें सभी प्रान्तोंके प्रतिनिधि होने चाहिए। तीसरा प्रश्न यह है कि आवेदनपत्रमें कौन-कौनसे विषय रखे जायँ। इस सम्बन्धमें मेरी राय यह है कि उसमें

राजभक्तिपर जोर दिया जाय, धन्यवाद दिया जाय और यह कहा जाय कि निर्धारित नीतिके अनुसार स्वशासनकी दिशामें अग्रसर होनेकी काररवाई की जा रही है जिससे भारतीय लोग अधिकारके पदोंपर पहुँच सकेंगे ; पर यह आशंका व्यक्त की जाय कि निर्वाचन-पद्धति प्रयोगमें लानेपर अल्पसंख्यक मुसलमानोंको क्षति पहुँचेगी और साथ ही यह आशा भी प्रकट की जाय कि धर्मके आधारपर नामजदगी या प्रतिनिधित्वकी पद्धति प्रयोगमें लाते समय मुसलमानोंके मतको उचित महत्व दिया जायगा। उसमें यह भी व्यक्त कर देना चाहिए कि भारत जैसे देशमें जमींदारोंके विचारोंको महत्व देना आवश्यक है।

"मेरा अपना मत तो यह है कि मुसलमानोंके लिए नामजदगीकी पद्धतिका समर्थन करना सबसे अधिक बुद्धिमानोकी बात होगी, क्योंकि निर्वाचन पद्धति चलानेका समय अभी नहीं आया है। इसके अलावा, अगर निर्वाचन पद्धति जारी की गयी तो उनके लिए अपना उचित भाग प्राप्त कर सकना बहुत कठिन होगा।

"पर उन सभी मामलोंमें मैं स्वय पर्देकी ओटमें ही रहना चाहता हूँ, यह सब कुछ आपकी ओरसे होना चाहिए। मुसलमानोंकी भलाईके लिए मैं कितना चिन्तित रहता हूँ, यह बात आपसे छिपी नहीं है ; मैं बड़ी खुशीसे आपलोगोंकी यथाशक्ति सहायता करूँगा। मैं आपके लिए आवेदनपत्रका मसविदा तैयार कर दूँगा। अगर यह मसविदा बम्बईमें तैयार किया जाय तो मैं उसे देख लूँगा क्योंकि आवेदनपत्र तैयार करनेकी कला मैं जानता हूँ। लेकिन, नवाब साहब. अगर आप थोड़े ही समयमें कोई बड़ा और प्रभावकर काम किया जाना चाहते हैं तो आपको शीघ्रता करनी चाहिए।" *

श्रीमती मिण्टोके शब्दोंमें, नवाब मोहसिनुल-मुल्कने इसके अनुसार ही मुसलमानोंका प्रतिनिधि मण्डल भेजनेकी सारी व्यवस्था की ! आवेदनपत्र तैयार कर लिया गया और आगाखाँके नेतृत्वमें १ अक्तूबर १९०६ को प्रतिनिधि

---

* मौलवी तुफायल अहमद—'रोशन मुस्तकबल', पृष्ठ ३६०-६१

मण्डल वाइसरायसे मिला। श्रीमती मिण्टोने उस तारीखके अपने रोजनामचेमें लिखा है—"यह दिन महत्वपूर्ण घटनाका था : किसीने तो इसे 'भारतीय इतिहासका एक नया युग' ही करार दे दिया। हमें भारतमें व्याप्त अशान्तिकी भावनाका और सभी वर्गों और मतोंके लोगोंमें फैले हुए असन्तोषका अच्छी तरह पता है। मुसलमानलोग जिनकी संख्या ६ करोड़ २० लाख है और जो बड़े राजभक्त रहे हैं, इसलिए चिढ़े हुए हैं कि उन्हें उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है और समझते हैं कि हिन्दुओंको तरजीह देकर कई प्रकारसे हमारी उपेक्षा की गयी है। हलचल मचानेवालोंको इस भावनाको उत्तेजन देनेकी बड़ी चिन्ता रही है और स्वभावतः उन्होंने इस बृहत् समुदायका सहयोग प्राप्त करनेकी यथाशक्ति चेष्टा भी की है। नयी पीढ़ीके लोग विचलित हो रहे थे और कांग्रेसके प्रमुख आन्दोलनकारियोंके साथ मिल जाना चाहते थे। चारो ओर यह चिल्लाहट मच रही थी कि राजभक्त मुसलमानोंका समर्थन नहीं किया जायगा आन्दोलनकारियोंकी माँगें आन्दोलनके जरिये पूरी कर दी जायँगी। मुसलमानोंने कोई कार्य आरम्भ करनेके पहले अपनी शिकायतोंका उल्लेख करते हुए वाइसरायको एक आवेदनपत्र देनेका निश्चय किया और आजका ही दिन मिलनेके लिए नियत किया गया। भारतके सभी भागोंसे लगभग ७० प्रतिनिधि यहाँ आये हुए हैं। आज प्रातःकाल बॉल-रूममें मिलनेका कार्य सम्पन्न हुआ। बगलके दरवाजेसे लड़कियोंके साथ कार्यवाही देखनेके लिए मैं अन्दर गयी तबतक मिण्टो अपने सहयोगियोंके साथ आगे बढ़े और मंचपर आसीन हो गये। आगाखाँ मुसलमानोंके खोजा सम्प्रदायके आध्यात्मिक गुरु हैं। वे अपनेको अलीका वंशज बतलाते हैं और बिना भूभागके ही उन्हें ईश्वरप्रदत्त शासनाधिकार प्राप्त है। वही यह सुन्दर आवेदनपत्र पढ़नेके लिए चुने गये थे जिसमें सारे कष्टों और आकांक्षाओंका उल्लेख किया गया है। मिण्टोंने तब अपना सुविचारित उत्तर पढ़ा—'आपका यह कहना अनुचित नहीं है कि 'यूरोपीय ढंगकी प्रतिनिधिमूलक संस्थाएँ भारतीयोंके लिए बिलकुल अजनबी होंगी या यहाँ उनका आरम्भ करते समय काफी सावधानी बरतने और सोचने-समझनेकी जरूरत

पड़ेगी। प्राच्य जातियोंकी परम्परागत प्रथाओं और अन्तःप्रवृत्तियोंके मध्य पाश्चात्य राजनीतिक यन्त्रको लाकर खड़ा कर देना मैं कभी पसन्द न करूँगा। मेरी समझमें आपलोगोंके आवेदनपत्रमें यह दावा है कि प्रतिनिधित्वकी किसी भी पद्धतिमें, चाहे उसका सम्बन्ध म्युनिसिपैलिटीसे, डिस्ट्रिक्टबोर्डसे अथवा व्यवस्थापिका सभासे हो, निर्वाचनका आधार रखा या बढ़ाया जाय तो मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व एक समुदायके रूपमें होना चाहिए। आपलोगोंका यह भी कहना है कि जिस प्रकारके निर्वाचक मण्डल इस सयय बने हैं उससे मुसलमान उम्मेद्वारके निर्वाचित किये जानेकी आशा नहीं है और अगर संयोगसे चुन भी लिया जाय तो उसे बहुमतके, जो उसके समुदायके विरुद्ध होगा, विचारोंकी वेदीपर अपने विचारोंका बलिदान कर देना पड़ेगा और वह अपने समुदायका कभी प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। आपलोगोंका यह दावा करना उचित ही है कि आपलोगोंके पदका मान न केवल संख्या-बलपर बल्कि समुदायके राजनीतिक महत्त्व साम्राज्यकी उसने जो सेवा की है उसके आधारपर भी होना चाहिए। मैं आपलोगोंसे पूर्णतः सहमत हूँ।......आपलोगोंकी ही तरह मेरा भी दृढ़ विश्वास है कि इस महादेशके भिन्न-भिन्न समुदायोंके विश्वासों और प्रथाओंका विचार न कर व्यक्तिगत मताधिकारके आधारपर जो भी निर्वाचन-मूलक प्रतिनिधि-संस्था बनायी जायगी उसका असफल होना निश्चित है।"*

श्रीमती मिण्टोने अपने रोजनामचेमें उसी दिनके विवरणमें आगे लिखा है—"आज सायंकाल मुझे एक अफसरका यह पत्र मिला है 'मैं आपको इस पत्रद्वारा यह सूचित कर देना आवश्यक समझता हूँ कि आज एक बहुत बड़ी घटना घटित हुई है। यह एक ऐसा राजनीतिज्ञता पूर्ण कार्य है जिसका भारत और भारतीय इतिहासपर बहुत दिनोंतक असर पड़ता रहेगा। यह काम ऐसा है जिससे ६ करोड़ २० लाख आदमी राजद्रोहात्मक श्रेणीमें जानेसे रोक दिये

---

* इण्डिया—मिण्टो एण्ड मार्ले', ४५-४७

गये हैं ।' ह्वाइटहालमें भी यह बहुत कुछ इसी दृष्टिसे देखा गया । सारी कार्य-वाहीका विवरण पानेपर श्री मार्लेने २६ अक्तूबरको मिण्टोको लिखा था—'आपने मुसलमानोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है वह सारा दिलचस्पीसे भरा हुआ है । खेद है कि मैं आपकी गार्डन पार्टीमें अलक्षित रूपसे इतस्ततः भ्रमण न कर सका होता ! सारा काम उतना ही अच्छा हुआ है जितना हो सकता था और निश्चित रूपसे इसने आपके पद और व्यक्तिगत अधिकारपर मुहर लगा दी है । आपके कार्यके जो अच्छे परिणाम निकलेंगे उनमें एक यह भी है कि इसने यहाँके आलोचक दलकी सारी योजना और चाल अस्त-व्यस्त कर दी है । कहनेका तात्पर्य यह कि अब ये लोग भारत सरकारको नौकरशाही बनाम जनताके रूपमें कभी प्रदर्शित न करेंगे । मुझे आशा है कि मेरे कट्टर रेडिकल मित्रगण भी अब अच्छी तरह समझने लगे हैं कि समस्या इसीकी तरह बिलकुल आसान नहीं है ।''*

लार्ड मिण्टोके जीवनी लेखक बुचनका कहना है 'इस भाषणने निश्चित रूपसे विद्रोहियोंके दलमें मुसलमानोंका प्रवेश रोक दिया जो आरम्भ होते हुए संकट-कालमें विचारसे इतना लाभदायक है कि उसका अन्दाजा नहीं किया जा सकता ।'† उसने इस भाषणका उल्लेख मुसलमानोंके अधिकारपत्रके रूपमें किया है ।

मौलवी तुफायल अहमदने लिखा है कि व्यवस्था इस प्रकारकी की गयी थी कि इङ्गलैण्डमें पत्रोंद्वारा प्रतिनिधि-मण्डलका खूब प्रचार हो सके । प्रतिनिधि-मण्डल १ अक्तूबर १९०६ को वाइसरायसे मिलनेवाला था और 'लन्दन टाइम्स' के उसी दिनके अङ्कमें एक लम्बा लेख निकला जिसमें मुसलमानोंकी बुद्धिमत्ताकी बहुत अधिक प्रशंसा की गयी थी । उसमें कहा गया था कि

---

* इण्डिया-मिण्टो-मार्ले', पृष्ठ ४७-४८ ।

† 'लार्ड मिण्टो', पृष्ठ २४४ से गुरुमुख निहालसिंहद्वारा 'लैण्डमार्क्स इन इण्डियन कन्स्टिट्यूशनल ऐण्ड नेशनल डेवलपमेण्ट' में उद्धृत, पृष्ठ ३८०

मुसलमान यूरोपीय ढङ्गकी प्रतिनिधित्व-मूलक कौंसिलोंपर कभी मुग्ध नहीं हुए ; भारतमें इङ्गलैण्ड-जैसा कोई एक राष्ट्र नहीं है ; वहाँ कई धर्म प्रचलित हैं, आदि आदि। और पत्रोंने भी इसी प्रकारके लेख निकाले। 'इन लेखोंसे प्रकट होता है कि अंग्रेजी पत्रोंको भारतीयोंके एक राष्ट्र होनेकी बातसे कितना उद्वेग और जलन होती थी, इसको छिन्न-भिन्न देखना उनके लिए कितनी प्रसन्नताकी बात होती और धर्मके आधारपर भारतीयोंको आपसमें लड़ाने और स्थायी शत्रुता उत्पन्न करनेमें उन्हें कितना गर्व होता था।* योजनाको कार्यान्वित करनेमें समय लगा और वाइसराय तथा भारतमन्त्रीके बीच बहुत लम्बा पत्र-व्यवहार चला। अन्तमें परिणाम यह हुआ कि मुसलमानोंके लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्र कायम हो गये।

७

मुस्लिम लीगकी स्थापना और लखनऊका समझौता

वाइसरायसे मुसलमानोंके प्रतिनिधि मण्डलके मिलनेके बाद शीघ्र ही अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी स्थापना हुई। ९ नवम्बर १९०६को नवाब सलीमुल्लाने एक गश्ती चिट्ठी निकालकर यह सुझाव रखा कि 'आल इण्डिया मुस्लिम कनफिडरेसी' नामकी एक संस्था स्थापित की जाय। अन्ततः दिसम्बरमें ढाकामें एक कान्फ-रेन्स हुई जिसमें सारे भारतके प्रतिनिधि और नेता सम्मिलित हुए। नवाब वकरुल-मुल्कने उसका सभापतित्व किया और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग स्थापित की गयी। नवाब वकरुल-मुल्क उसके मन्त्री और नवाब मोहसिनुल-मुल्क संयुक्त मन्त्री बनाये गये, पर दुर्भाग्यसे दूसरे महाशयका शीघ्र ही देहान्त हो गया। जो प्रस्ताव स्वीकार किये गये उनमेंसे एकके द्वारा बङ्ग-भङ्गका

---

* मौलवी तुफायल अहमद 'रोशन मुस्तकबल', पृष्ठ ३६३

समर्थन और बहिष्कार-आन्दोलनका विरोध किया गया। लन्दनके 'टाइम्स' ने लीगकी स्थापनाका स्वागत किया। आश्चर्यके साथ कहना पड़ता है कि हिन्दू महासभाकी स्थापना भी उसी वर्ष हुई। अधिकारिवर्गने जो कार्य किया था उसका उल्लेख श्री रैमजे मैकडानल्डने 'दि अवेकनिंग आव इण्डिया' में इस प्रकार किया है—'कुछ ऐंग्लो-इण्डियन अधिकारियोंने मुसलमान नेताओंको प्रेरणा दी, शिमला तथा लन्दनमें षड्यन्त्र रचते रहे और बुराई करनेकी नीयतसे जो पहलेसे ही उनके मनमें थी, उन्होंने मुसलमानोंके प्रति विशेष कृपा प्रदर्शित कर हिन्दू मुसलमान समुदायोंके बीच मतभेदका बीज बो दिया।*

मुस्लिम लीगका वार्षिक अधिवेशन होने लगा और प्रस्ताव स्वीकार कर बङ्गभङ्गका समर्थन तथा व्यवस्थापिका सभाओंके ही लिए नहीं, स्थानीय संस्थाओंके लिए भी पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बनाने और नौकरियोंमें ही नहीं प्रिवी-कौंसिलमें भी मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वकी माँग की जाने लगी। जनवरी १९१० में दिल्लीमें लीगका जो अधिवेशन हुआ उसके अध्यक्ष श्री आगाखाँ थे। उन्होंने मिले हुए सुधारोंपर सन्तोष प्रकट किया और यह चेतावनी भी दी कि इन सुधारोंका विरोध नहीं होना चाहिए अन्यथा सरकार उन्हें वापस ले लेगी। एक ऐसी भी घटना घटित हुई जिससे सरकारकी नीतिपर बहुत अधिक प्रकाश पड़ता है। पाठकोंको स्मरण होगा कि सर अन्थोनी मैकडानल्डके समयमें हिन्दू-उर्दूके झगड़ेमें प्रमुख भाग लेनेके कारण लेफ्टिनेण्ट गवर्नरने नवाब मोहसिनुल-मुल्कके साथ, जो अलीगढ़ कालेजके सेक्रेटरी थे, कड़ाई की थी और यह कहकर कि कालेजका सेक्रेटरी किसी राजनीतिक संस्थामें भाग नहीं ले सकता, उन्हें अंजुमने हिमायत उर्दू नामक संस्थाके सभापतित्वसे पृथक् होनेके लिए बाध्य किया। यही नहीं, उन्होंने यहाँतक आदेश दे दिया था कि सरकारी पत्रव्यवहारमें उनके नामके साथ नवाबकी उपाधि, जो निजामसे मिली थी, न जोड़ी जाय; फिर भी सरकारने उनके सेक्रेटरी बने रहते प्रतिनिधि मण्डल भेजनेका आयोजन करनेके

* मेहता और पटवर्धनद्वारा 'कम्यूनल ट्रिएंगिल' में उद्धृत पृ० ६६

कार्यपर या लीगके संयुक्त मन्त्रीका पद स्वीकार करनेपर कोई आपत्ति नहीं की। नवाब, मोहसिनुल-मुल्कके मरनेपर नवाब वकरुल-मुल्क कालेजके सेक्रेटरी बनाये गये जो ढाकावाली कान्फरेन्सके सभापति बनाये गये थे और उसमें लीगकी स्थापना होनेपर उसके मन्त्री बनाये गये। वे लीगमें बराबर भाग लेते रहे जिसका प्रधान कार्यालय अलीगढ़में रखा गया था और १९१० तक वहीं रहा। नवाब वकरुल-मुल्क और कालेजके अंग्रेज प्रिंसिपलमें कुछ अनबन हो गयी। गवर्नरने प्रिंसिपलका पक्ष लिया। नवाब वकरुल-मुल्कके पक्षके समर्थनमें मुस्लिम जनतामें कुछ खलबली मच गयी। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर अपना आदेश वापस लेनेके लिए बाध्य किये गये, पर वे हार माननेवाले जीव न थे और बदला लेकर ही छोड़ा। लीगका प्रधान कार्यालय आगाखाँने, जो उसके अध्यक्ष थे, अलीगढ़से हटाकर इस आशासे लखनऊमें रखा कि वह अलीगढ़के प्रभावसे बाहर हो जायगा। इस कार्यका अप्रत्याशित परिणाम यह हुआ कि लीगकी नीति कालेजके प्रिंसिपलोंके नियन्त्रणसे बाहर हो गयी।

दिसम्बर १९११ में दिल्ली-दरबारमें सम्राट्ने बंगालका विभाजन मंसूख करनेकी जो घोषणा की उससे बहुतसे मुसलमानोंको गहरा आघात पहुँचा और नवाब सलीमुल्लाके लिए तो वह इतनी हृदय-विदारक हुई कि मार्च १९१२ में लीगके कलकत्तावाले अधिवेशनका सभापतित्व करनेके बाद उन्होंने सभी सार्वजनिक कार्योंसे पृथक् होनेकी घोषणा कर दी और इसके कुछ ही दिन बाद इस लोकसे भी चल बसे।

कुछ अन्य घटनाएँ भी घटित हो रही थीं जिनका मुसलमानोंपर गहरा प्रभाव पड़ा। मौलवी शिबली नौमानी उस समयके सबसे बड़े मुसलमान विद्वानोंमें गिने जाते थे। उन्होंने उर्दूमें पैगम्बर और सर सैयद अहमदकी उच्चकोटिकी जीवनियाँ लिखी हैं। आजमगढ़की एकडेमीके वही संस्थापक थे जो उनकी मृत्युके बाद मौलाना सुलेमानके निरीक्षणमें बड़े ऐतिहासिक महत्वके ग्रन्थ प्रकाशित करती रही है। वे जीवन पर्यन्त सर सैयद अहमदके सहयोगी रहे, पर जीवनके अन्तिम दिनोंमें सर सैयदकी नीतिकी बुद्धिमत्ता और कांग्रेसके प्रति उनके रुखपर

उन्हें सन्देह होने लगा था। वे बराबर मुसलमानोंका ध्यान अधिकतर मौलिक प्रश्न—भारतकी स्वतन्त्रताकी ओर आकृष्ट करते और केवल कांग्रेसके आलोचक बने रहकर सन्तुष्ट न हो जानेकी राय देते रहे। लखनऊके मुस्लिम गजटके ९ अक्तूबर १९१७ के अंकमें प्रकाशित एक लेखमें उन्होंने मुस्लिम लीगकी राजनीति और नीतिपर विचार करनेके बाद लिखा है 'वृक्षकी पहचान उसके फलसे होती है। अगर हमारी राजनीतिमें गम्भीरता होती तो हममें संघर्षके लिए उमङ्ग और कष्ट तथा त्यागके लिए तत्पर रहनेकी भावना अवश्य जाग्रत् हुई होती।'*

साथ ही कुछ दूसरी घटनाएँ भी मुसलमानोंको विशेष रूपसे प्रभावित कर रही थीं। 'सुधरी हुई कौंसिलोंके अमलमें आनेसे, विभिन्न समुदायोंके स्वार्थकी अभिन्नता और सारे भारतीयोंकी तात्विक एकता प्रत्यक्ष होने लगी थी। सबसे बढ़कर दूरवर्त्ती देशों—विशेषकर तुर्की और फारसका राष्ट्रीय आन्दोलन इस देशके मुसलमान नवयुवकोंमें राष्ट्रीय भावनाका संचार कर रहा था। त्रिपोली और बालकन युद्धोंमें ग्रेट ब्रिटेनने जो नीति बरती उसने अंग्रेजोंकी कलई खोल दी और भारतीय मुसलमानोंको अंग्रेजोंकी मैत्रीका खोखलापन और बनावटीपन दिखला दिया। दूसरी ओर भारतके राष्ट्रीय पत्रोंने यूरोपीय राष्ट्रोंके दुर्व्यवहारके कारण हुए तुर्कीके दुःखमें जो भ्रातृत्वपूर्ण समवेदनाके भाव व्यक्त किये उन्होंने भी मुसलमानोंका मर्म स्पर्श किया।'† सन् १९१२ में डाक्टर एम० ए० अनसारी एक चिकित्सक दल संघटित कर तुर्की ले गये। 'जमींदार' के सम्पादक मौलान जफरअलीने स्वयं कुस्तुन्तुनिया जाकर वजीरको एक थैली भेंट की जो उन्होंने तुर्कीके नामपर जमा की थी। मौलाना अबुलकलाम आजादने 'अल्-हिलाल' नामक पत्र निकाला जो अपने राष्ट्रवाद, स्वतन्त्रता और

---

* तुफायल अहमद—'रोशन मुस्तकबल', पृष्ठ ३८९, तथा मेहता औ० पटवर्धन—''कम्यूनल ट्रिएंगिल', पृष्ठ ३०

† गुरुमुख निहालसिंह 'लैण्डमार्क्स इन इण्डियन कान्स्टिट्यूशनल ऐण्ड नेशनल डेवलपमेण्ट', पृष्ठ ४९०-१

त्यागके ऊँचे आदर्शों और ओजस्वी लेख-शैलीके कारण उर्दू पत्रोंमें सर्वाधिक प्रभावोत्पादक था। मौलाना मुहम्मदअली अंग्रेजीमें 'कामरेड' और उर्दूमें 'हमदर्द' निकाल रहे थे जिन्होंने राष्ट्रवादके प्रबल प्रवाहको बढ़ानेमें अच्छी सहायता दी। लीग भी इसके प्रभावसे बची न रह सकी और मार्च १९१३ में लखनऊवाले अधिवेशनमें, जिसके सभापति सर इब्राहीम रहीमुतुल्ला थे, इसने अपने विधानमें संशोधन किया। लीगका उद्देश्य ब्रिटिश सम्राट्के संरक्षणमें, और बातोंके साथ साथ वर्तमान शासन-प्रणालीमें व्यवस्थित सुधार, राष्ट्रीय एकता और भारतीयोंमें सार्वजनिक भावनाकी वृद्धि तथा उद्देश्य-प्रगतिके लिए अन्य समुदायोंके साथ सहयोगद्वारा वैध उपायोंसे स्वायत्त शासनकी प्राप्ति ठहराया गया। इस प्रकार लीगका उद्देश्य भी भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी बराबरीमें आ गया जिससे साम्प्रदायिक एकता और सामान्य कार्यके लिए, जो बादमें देख पड़ा, मार्ग प्रस्तुत हो गया।

अगस्त १९१४में प्रथम महासमर आरम्भ हुआ। भारतीयोंमें उत्तेजना फैली हुई थी और कुछ लोगोंने जिनमें मुसलमानोंका प्राधान्य था, भारतके लिए स्वतन्त्र जनतन्त्रकी एक साहसिक योजना बनायी। शेखुलहिन्द मौलाना महमूदुल हसन अपने सहयोगी मौलाना हुसेन अहमद नदवी और मौलवी अजीजगुलके साथ गिरफ्तार कर माल्टामें नजरबन्द कर दिये गये। मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना शौकतअली, मौलाना आजाद और मौलाना हसरत मोहानी तुर्कीके प्रति, जो मित्र राष्ट्रोंके विरुद्ध युद्धमें सम्मिलित हुआ था, सहानुभूति प्रदर्शित करने और अपने प्रकट राष्ट्रवादके कारण नजरबन्द कर लिये गये। दिसम्बर १९१५में लीग और कांग्रेस दोनोंने बम्बईमें अपना अपना अधिवेशन किया। पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू, महात्मा गान्धी आदि बहुतसे कांग्रेस-नेता लीगके अधिवेशनमें सम्मिलित हुए। आगाखाँने लीगके स्थायी सभापतिके पदसे इस्तीफा दे दिया। लीगने कांग्रेससे मिलकर भारतके लिए योजना बनानेके निमित्त एक समिति बनायी। दूसरे वर्ष भी लीग और कांग्रेसके अधिवेशन लखनऊमें एक ही समय और एक ही स्थानपर हुए।

बम्बई और लखनऊमें होनेवाले अधिवेशनोंके बीचकी अवधिमें समितिने योजना तैयार कर ली। ९ वर्ष पहले सूरतमें कांग्रेसके नरमदल और प्रगतिशील दलके बीच जो खाई पड़ गयी थी उसके पट जानेसे कांग्रेस अब बहुत सबल हो गयी थी इसलिए इस बारके अधिवेशनमें सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे नरमदली नेता ही नहीं बल्कि लोकमान्य तिलक भी सम्मिलित हुए। लीग और कांग्रेसमें एक समझौता हुआ जिसके अनुसार मुसलमानोंके लिए पृथक् निर्वाचन और पञ्जाब तथा बङ्गालके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंमें उनकी जनसंख्याके अनुपातसे बहुत अधिक प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया गया। समझौतेमें यह व्यवस्था भी रखी गयी कि केन्द्रीय या प्रान्तीय कौन्सिलमें एक या दूसरे सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी बिल उसके अंश या गैर-सरकारी सदस्यद्वारा रखे गये प्रस्तावपर अगर उस सम्प्रदायके तीन चतुर्थांश सदस्य विरोध करें तो विचार नहीं किया जा सकता। इस विषयके अलावा लीग और कांग्रेसने सुधारकी एक योजना बनायी और यह माँग रखी कि योजनामें उल्लिखित सुधार स्वीकार कर स्व-शासनकी दिशामें निश्चित कदम बढ़ाया जाय और साम्राज्यके पुनर्निर्माणमें भारतको अधीन राज्यके रूपमें न रखकर ब्रिटिश साम्राज्यके भीतर स्वशासित राज्योंकी श्रेणीमें रखा जाय। लीग अधिवेशनके अध्यक्ष श्री एम० ए० जिनाने और कांग्रेसकी ओरसे लोकमान्य तिलक सहित सभी नेताओंने समझौतेको स्वीकार किया। दूसरे प्रस्ताव भी कांग्रेसके प्रस्तावों जैसे ही थे और ऐसा जान पड़ा कि कांग्रेस और लीगके बीच आपसका समझौता हो गया।

इस प्रकार लीगने कांग्रेसके अपनाये हुए राजनीतिक कार्यक्रमको बड़े उत्साहके साथ स्वीकार किया। यह नयी भावना दूसरे अधिवेशनमें भी बनी रही जिसके अध्यक्ष मौलाना मुहम्मदअली चुने गये जो नजरबन्द थे। यह अधिवेशन भी पहले दो अधिवेशनोंकी तरह कांग्रेसके ही अधिवेशनके समय और स्थानपर १९१७ के दिसम्बरमें कलकत्तामें हुआ। महात्मा गान्धी और श्रीमती सरोजिनी नायडूने लीगके अधिवेशनमें जाकर और अलीबन्धुओंकी रिहाईके प्रस्तावका समर्थन कर कार्यवाहीमें भाग भी लिया।

८

खिलाफत आन्दोलन और उसके बाद

लीगका दूसरा अधिवेशन १९१८ के दिसम्बरमें दिल्लीमें हुआ। कांग्रेसका अधिवेशन भी वहीं हुआ। इस समयतक देश और संसारमें बहुतसी घटनाएँ घटित हो चुकी थीं। श्रीमांटेगू भारत आकर तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्डके साथ १९१७ के अगस्तमें उद्घोषित ब्रिटिश नीतिके अनुसार सुधारोंके सम्बन्धमें रिपोर्ट तैयार कर चुके थे। युद्धका अन्त हो चुका था जिसमें मित्र-पक्षकी जीत और जर्मनी तथा तुर्कीकी पराजय हुई थी। तुर्कीकी हारसे कुछ ऐसी समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं जिनका भारतके मुसलमानोंपर असर पड़ता था। युद्ध चलते समय अंग्रेज प्रवक्ताओंने यह आश्वासन दिया था कि युद्धके बाद तुर्कीके साथ अच्छा बर्ताव किया जायगा और ऐसी कोई बात नहीं की जायगी जिसका अरब और मेसोपोटामियाँके मुसलमानोंके पवित्र स्थानोंपर कोई बुरा असर पड़े। तुर्कीपर कौनसी शर्तें लादी जायँगी यह स्पष्ट न होते हुए भी अंग्रेजोंके शह देनेसे अरबमें कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके फलस्वरूप अरबोंने अपने कन्धेसे तुर्कीका जूआ उतार फेंका। इन घटनाओंके कारण मुसलमानोंमें बड़ी उत्तेजना फैल गयी। कानपुरके दङ्गेका कठोरतापूर्वक दमन और लीगके दिल्ली अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष डाक्टर एम० ए० अन्सारीका भाषण जब्त किया जाना मुसलमानोंकी भावनाको और भी भड़कानेवाला हुआ। भारतीय मुसलमानोंके राजनीतिक मञ्चपर उलेमा पुनः उपस्थित होकर उनके राजनीतिक आन्दोलनमें प्रमुख भाग लेने लग गये। लीगने भारतके लिए स्वभाग्यनिर्णयका सिद्धान्त काममें लानेकी माँग की।

खलीफा, उनके राज्य और अधिकारके सम्बन्धमें भारतीय मुसलमानोंसे जो वादे किये गये थे वे सबके सब सन्धि-प्रस्तावोंमें झूठे साबित हुए। खलीफाकी शक्ति क्षीण हो जानेके कारण इस्लामके सभी पवित्र स्थान

गैर मुसलमानोंके नियन्त्रणमें जाते जान पड़े। भारतका खिलाफत आन्दोलन मित्रराष्ट्रों विशेषकर अंग्रेजोंके प्रति विरोध और खलीफाका समर्थन करनेके लिए चलाया गया था। हिन्दुओंने महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें तन-मनसे खिलाफत आन्दोलनका समर्थन किया। ब्रिटिश सरकारकी तुर्की-विरोधी नीतिसे भारत-मन्त्री श्री मांटेगू भी भयभीत हो उठे और वाइसराय लार्ड रीडिंगने तारद्वारा कुस्तुन्तुनियाको खाली करने, पवित्र स्थानोंपर सुलतानका प्रभुत्व मानने और उत्तमान थ्रेस तथा स्मर्ना वापस करनेका आग्रह किया। समझौतेकी बातचीत चलते समय यह तार प्रकाशित कर दिया गया। जिससे श्री मांटेगूने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया। इससे भारतीय भावना उत्तरोत्तर कटु होती गयी। इस प्रश्नपर ध्यान केन्द्रित करनेके लिए केन्द्रीय खिलाफत समिति स्थापित कर सारे देशमें उसकी शाखाएँ खोली गयीं। उलेमाने मौलाना महमूदुल हसन शेखुल-हिन्दके नेतृत्वमें जमैयतुल-उलेमा-इ-हिन्दकी स्थापना की। एक प्रतिनिधिमण्डल अधिकारिवर्गसे मिलनेके लिए इंगलैण्ड भेजा गया जिसका एक उद्देश्य तो यह जतलाना था कि खिलाफतके पक्षमें भारतीय मुसलमानोंकी बड़ी प्रबल भावना है और दूसरा यह स्वीकार कराना था कि ऐसा कोई काम न किया जाय जिससे खिलाफतका अन्त हो जाय या उसका पद ऐसा घट जाय कि वह इस्लामके पवित्र स्थानोंकी रक्षा करने योग्य न रह जाय। प्रतिनिधिमण्डलकी असफलता और समझौतेकी बातचीतकी प्रगतिके साथ यह स्पष्ट होते जानेसे कि मित्र राष्ट्र अपने वचनके विरुद्ध, तुर्कीपर कड़ी शर्तें लादनेके अपने निश्चयसे हटनेवाले नहीं हैं, देशव्यापी उथल-पुथल दुर्निवार हो गयी। इस समयसे खिलाफत कान्फरेन्स और जमैयतुल-उलेमा-इ-हिन्दके मुसलमानोंकी सर्वाधिक क्रियाशील और प्रभावकारी संस्थाएँ बन गयीं और कुछ वर्षोंतक इन्हीं संस्थाओंने उनका नेतृत्व किया। लीगका अधिवेशन कांग्रेसके अधिवेशनके साथ-साथ होता गया और उक्त संस्थाओंका सभापतित्व हकीम अजमल खाँ, डाक्टर एम० ए० अनसारी, मौलाना हसरत मोहानी, अली-बन्धु जैसे प्रगतिशील राष्ट्रवादी मुसलमान करते रहे।

खिलाफत आन्दोलन समय पाकर उस आन्दोलनका सहवर्ती बन गया जो रौलट बिलके कारण सरकारके विरुद्ध चल रहा था। सभी सम्प्रदायोंद्वारा सारे देशमें इसका तीव्रतम विरोध हुआ जिसके कारणोंकी विशद चर्चा करना आवश्यक नहीं। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि रौलट बिल सर सिडनी रौलटकी अध्यक्षतामें बनी सेडीशन कमेटीकी रिपोर्टोंका परिणाम था और उसका उद्देश्य युद्धकी समाप्तिके कारण शीघ्र समाप्त होनेवाले भारतरक्षा कानूनकी कुछ हानिकर धाराओंको संशोधित रूपमें बनाये रखना था। इस बिलके विरुद्ध जो आन्दोलन छिड़ा उसने देशमें इतनी अधिक जागृति उत्पन्न कर दी जितनी कि अन्य किसी बातके द्वारा अभीतक सम्भव नहीं हुई थी। पंजाब, बम्बई प्रेसीडेन्सी, दिल्ली तथा कुछ अन्य स्थानोंमें दंगे हो गये। दमनचक्र बुरी भाँति चल पड़ा और अमृतसरमें जलियाँवालाबाग-काण्ड हुआ तथा उसके उपरान्त ही पंजाबमें मार्शल ला (फौजी कानून) जारी हो गया। 'मार्शल ला' के जमानेमें जो अत्याचार हुए उनका पता जनताको कुछ समय बाद ही लग सका, विशेषतः उस समय जब सरकारद्वारा नियुक्त हंटर कमेटीने जिसके अध्यक्ष लार्ड हण्टर थे, इन सब घटनाओंकी जाँच आरम्भ की। कांग्रेसने भी अपनी ओरसे पृथक् जाँच की। जब इन दोनों कमेटियोंकी रिपोर्टें प्रकाशित हुईं तो सारे देशमें घृणाकी एक तीव्र लहर दौड़ गयी। इधर यह था, उधर खिलाफतके प्रश्नको लेकर मुसलमानोंमें तीव्र विरोध उत्पन्न हो रहा था, अतः एक ओरसे कांग्रेसने और दूसरी ओरसे मुस्लिम संस्थाओंने सरकारका विरोध आरम्भ किया। दोनोंने संयुक्त मोरचा लेनेका निश्चय किया और दोनोंने असहयोगका सयुक्त कार्यक्रम निश्चित किया। जमैयतुल उलेमाने एक 'फतवा' जारी किया जिसपर मुसलमानोंके ९२५ प्रमुख धर्मगुरुओंके हस्ताक्षर थे। उस फतवामें अहिंसक असहयोगके कार्यक्रमकी स्वीकृति दी गयी थी। अनेक उलेमा जेलोंमें बन्द कर दिये गये। यह भावना इतनी तीव्र थी कि बहुसंख्यक मुसलमान 'हिजरत'को चल पड़े और उन्होंने अवर्णनीय कष्ट सहन किये।

कांग्रेसने सितम्बर १९२० में कलकत्ताके अपने विशेष अधिवेशनमें अहिंसक असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार किया जिसपर कि दिसम्बरमें नागपुरवाले उसके वार्षिक अधिवेशनने अपनी मुहर लगा दी। १९२१ का वर्ष अपार सक्रियता, सभी सम्प्रदायोंमें अभूतपूर्व सहयोग और पंजाब तथा खिलाफतके अन्यायसे मुक्ति पानेके निमित्त स्वराज्य पानेके लिए संयुक्त राजनीतिक उद्योगका वर्ष था। सविनय अवज्ञा और करबन्दीकी योजनाकी स्वीकृतिके पूर्व ही सभी सम्प्रदायोंके अनेक व्यक्ति जेलोंमें ठूँस दिये गये। वर्षान्तके पूर्व ही मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली, हुसेन अहमद, आजाद, देशबन्धु दास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय तथा कांग्रेस और खिलाफतके कितने ही प्रमुख नेता और कार्यकर्ता पकड़कर जेलोंमें डाल दिये गये। किन्तु अहमदाबादमें इन सभी संस्थाओंके वार्षिक अधिवेशन अत्यधिक उत्साहपूर्वक हुए। वहाँ करबन्दी और सविनय अवज्ञाका कार्यक्रम स्वीकृत हुआ। किन्तु इसके आरम्भ होनेके पूर्व ही चौराचौरीमें भीषण दंगा हो गया और आन्दोलन बन्द कर दिया गया। इसके बाद ही महात्मा गान्धी गिरफ्तार कर लिये गये। तथा उन्हें ६ वर्ष कैदकी सजा दी गयी और यह आन्दोलन सर्वथा शान्त हो गया। उसे पुनस्संघटित करनेके प्रयत्न भी किये गये पर वे सब असफल रहे।

दिसम्बर १९२१ में अहमदाबादमें मुस्लिम लीगका जो अधिवेशन हुआ वही अन्तिम अधिवेशन था जो एक ही समय और एक ही स्थानपर कांग्रेसके साथ-साथ हुआ। यद्यपि मौलाना हसरत मोहानी लीगके अध्यक्ष थे तथापि संस्थाके रूपमें लीगने यह प्रदर्शित किया कि वह कांग्रेस, खिलाफत कमेटी अथवा जमैयतुल उलेमाके साथ कदम-ब-कदम चलनेमें असमर्थ है। अन्य संस्थाओंने जिस भाँति सविनय अवज्ञाके पक्षमें प्रस्ताव स्वीकृत किया उस भाँति मुस्लिम लीगने नहीं किया। जो मुस्लिम लीग ७ वर्षसे कांग्रेसके समानान्तर चलती आ रही थी और जिसने अपने विधानमें भी परिवर्तन कर दिया था उसीने सविनय अवज्ञाकी स्वीकृति होते ही कांग्रेस, खिलाफत कमेटी तथा जमैय-तुल उलेमाके साथ अपना वार्षिक अधिवेशन करना बन्द कर दिया।

मौलवी सैयद तुफायल अहमद लिखते हैं—"अब प्रश्न यह है कि मुस्लिम लीग अपनी सहयोगिनी संस्थाओंसे पीछे क्यों पड़ गयी ? इसका उत्तर मौलाना शिबलीके इन शब्दोंमें निहित है—'शिमला प्रतिनिधिमण्डल लीगकी नींवका पहला पत्थर था। लीगका चाहे जो विधान बने शिमला प्रतिनिधिमण्डलकी भावना उसमें निहित रहेगी ही। लीगकी नींवका पहला पत्थर ही गलत रखा गया और इसलिए इस बुनियादपर चाहे जो इमारत खड़ी की जाय उसका टेढ़ा रहना अनिवार्य है। लीगकी राजनीतिका सार केवल यह है कि हिन्दुओं-को जो अधिकार और स्थान मिलें उनमें मुसलमानोंका भाग निश्चित कर दिया जाय। यह सच्ची राजनीति नहीं है। सच्ची राजनीति सरकारके सम्मुख जनताकी माँग उपस्थित करनेमें है और इस मानीमें राजनीति धर्मके समान ही शक्तिशाली है। इस शक्तिसे वंचित होनेके कारण मुस्लिम लीगका कोई भी सदस्य किसी त्यागके लिए प्रस्तुत नहीं हो सकता और वह अपने भीतर किसी उच्च आदर्श अथवा साहसका अनुभव नहीं करता।"*

उत्साहकी अग्नि अधिक समयतक धधकती न रह सकी और सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर देने तथा महात्मा गान्धीकी गिरफ्तारीसे लोगोंमें निराशा और शैथिल्य आ गया। अन्य संस्थाओंकी अपेक्षा मुस्लिम लीगपर इसका अधिक प्रभाव पड़ा और 'कोरम' पूरा न होनेके कारण उसे १९२३ में लखनऊवाला अपना अधिवेशन स्थगित कर देना पड़ा। १९२४, १९२५ और १९२६ के उसके अधिवेशनोंसे यह बात स्पष्ट होती गयी कि लीग और कांग्रेसके बीचकी खाई चौड़ी होती जा रही है।

१९२१ में जब कि हिन्दू मुसलमानोंका पारस्परिक सम्बन्ध अत्यधिक मैत्री-पूर्ण था और उस वर्ष मुसलमानोंने बकरीदके अवसरपर स्वयं ही अनेक स्थानों-पर गायकी कुर्बानी बन्द कर दी थी तथा खिलाफत आन्दोलनमें हिन्दुओंके भी सम्मिलित होनेके कारण हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य निश्चितसा प्रतीत होता था उसी

---

*मौलवी तुफायल अहमद : 'रोशन मुस्तकबल', पृष्ठ ४१०

समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हो गयीं जिनसे आपसमें दरार पड़ गयी। खिलाफत आन्दोलन मलाबार जिलेमें बड़े जोरपर था। वहाँपर मुसलमानोंकी भारी आबादी है। वे मोपला कहलाते हैं। अन्य स्थानोंके हिन्दू जिस भाँति खिलाफत आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये थे उसी भाँति वहाँके हिन्दू भी सम्मिलित हुए। अन्य स्थानोंमें अहिंसाकी जैसी शिक्षा दी गयी थी वैसी शिक्षा वहा न दी जा सकी। आन्दोलनने हिंसात्मक रूप ग्रहण कर लिया। मौलाना मुहम्मद-अली मलाबार जा रहे थे। यदि वे उस जिलेमें पहुँच पाते तो वे अवश्य ही स्थितिपर काबू करनेमें समर्थ होते, परन्तु सरकारने उन्हें मार्गमें ही गिरफ्तार कर लिया और अन्य नेताओंको भी वहाँ जानेसे रोक दिया। जनता अनियन्त्रित हो गयी और सरकारी दमनने, जैसा कि ऐसे अवसरोंपर होता है, अत्यन्त उग्र-रूप धारण कर लिया। यद्यपि कुछ हिन्दू नेताओंको भी मोपलोंकी भाँति कड़ा दण्ड दिया गया तथापि ऐसी खबरें मिलीं कि मोपलोंने हिन्दुओंपर बड़े अत्याचार किये। उनका सन्देह था कि हिन्दू सरकारी पक्षमें मिल गये हैं अथवा कमसे कम उनके पक्षमें तो नहीं ही हैं। कहते हैं कि उन्होंने जबरन अनेक व्यक्तियोंको मुसलमान बना लिया। इन सब बातोंसे हिन्दुओंमें, यहाँतक कि उत्तर-भारतके हिन्दुताओंमें भी, बड़ी कटुता उत्पन्न हुई। वे लोग ऐसी घटनाओंकी रिपोर्टोंसे, जो निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण थीं, प्रभावित होते रहे। परन्तु जबतक नेतागण, विशेषतः महात्मा गान्धी जेलसे बाहर रहे, तबतक स्थिति काबूमें बनी रही। स्वामी श्रद्धानन्द, जो कि असहयोग आन्दोलनके नेताओंमेंसे एक थे तथा जिन्होंने अपने साहसद्वारा मुसलमानोंका इतना अधिक विश्वास प्राप्त कर लिया था कि उन्होंने उन्हें दिल्लीकी जामा मसजिदमें भाषण करनेके लिए आमन्त्रित किया था, इन घटनाओंसे बुरी भाँति विचलित हो उठे और उन्होंने अपनी रिहाईके उपरान्त शुद्धि आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

स्वामी श्रद्धानन्दके शुद्धि आन्दोलनकी बड़ी आलोचना हुई है। आलोचकोंमें राष्ट्रीयतावादी भी हैं और मुसलमान भी। उस अवसरपर यह आन्दोलन उपयुक्त था अथवा नहीं, इस प्रश्नपर कोई चाहे जो कुछ कहे परन्तु यह समझना

बड़ा कठिन है कि ईसाई और मुसलमान ऐसे कार्यकी आलोचना क्यों करते हैं जब कि वे स्वयं हिन्दुओंको अपने धर्ममें दीक्षित करनेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। यदि हिन्दू भी गैरहिन्दुओंको अपने धर्ममें दीक्षित करनेका प्रयत्न करते हैं तो गैर-हिन्दुओंको, विशेषतः जो स्वयं ऐसा कर रहे हैं, इसपर आपत्ति करनेका अधिकार ही क्या है ? अन्य धर्मावलम्बियोंको यदि अपने धर्मका प्रचार करनेका अधिकार है तो हिन्दुओंको भी इसका अधिकार होना चाहिए। किन्तु मनुष्य सदैव तर्क अथवा न्याय और सत् असत् विवेकको भावनासे प्रभावित नहीं रहता। मुसलमानोंमें शुद्धि आन्दोलन तथा व्यक्तिगत रूपसे स्वामी श्रद्धानन्दके विरुद्ध तीव्र कटुताकी भावना उत्पन्न हो गयी जिसके फलस्वरूप एक मुसलमान हत्यारेने बादमें स्वामीजीकी हत्या कर ही डाली। मुसलमानोंने अपनी ओरसे तबलीग और तंजीम आन्दोलन आरम्भ कर दिये।

सन् १९२२ के अन्तमें मुलतानमें भीषण दंगा हुआ जिसमें हिन्दुओंके मन्दिर और पूजास्थल दूषित किये गये, अनेक हिन्दुओंकी हत्या कर दी गयी, अनेक हिन्दुओंके मकान लूट लिये गये तथा उनमें आग लगा दी गयी। देशके प्रायः सभी भागोंमें अगले कई वर्षतक जो अनेक साम्प्रदायिक दंगे होते रहे उनमें यह पहला था। इससे कांग्रेस तथा खिलाफतके सभी कार्यकर्ता तथा सभी राष्ट्रीयतावादी, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, बुरी भाँति विचलित हो उठे। उन्होंने इस प्रवाहको रोकनेकी पूरी चेष्टा की परन्तु वे असमर्थ रहे। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ शक्तियाँ इसके पीछे कार्य कर रही थीं। पाकिस्तानके कुछ प्रबल समर्थक कहते है कि हिन्दुओंकी ज्यादतियाँ ही इसके लिए दोषी हैं। कुछ लोगोंने तो यहाँतक कह डाला है कि हिन्दू नेताओंने ही वस्तुतः इस प्रकारके उपद्रवोंका संघटन किया था, कुछ नहीं तो कमसे कम इसीलिए कि हिन्दू मुसलमानोंका सामना करना सीखें, कारण, पहले तो वे मुसलमानोंके आगे भेड़ ही बने रहते थे। इस व्याख्यासे समस्या अत्यधिक सरल हो जाती है और पाकिस्तानके समर्थनका यह उत्तम क्रमबद्ध तर्क बन जाता है। वस्तुतः इसका कोई आधार नहीं है। यदि गत २० वर्षके साम्प्रदायिक उपद्रवोंके इतिहासका

जो क्षणिक उत्तेजनाके वशीभूत होकर कुछ कर बैठते हैं और बादमें उसके लिए पश्चात्ताप करते हैं। ऐसे लोगोंको बचानेमें न तो नैतिक दृष्टिसे ही कोई दोष है न अन्य ही किसी प्रकारसे; सो भी तब, जब ऐसा करनेसे तनातनी दूर होती है और चारों ओर बन्धुत्व और सद्भावकी पुनः स्थापना होती है। फिर भी लोग कहते हैं कि हिन्दूलोग अपने बचावके लिए ऐसी चाल चलते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जो लोग इस प्रकारके समझौतेका कोई प्रयत्न करते हैं वे किसी सम्प्रदाय-विशेषके सदस्योंके पक्षका समर्थन नहीं करते, प्रत्युत दोनोंके हितकी दृष्टिसे ऐसा प्रयत्न करते हैं। प्रायः ही तो ऐसे मुकदमोंमें दोनों सम्प्रदायोंके व्यक्तियोंपर दोनों ओरसे मुकदमे चलते हैं और इस प्रकारके समझौतेसे दोनों सम्प्रदायोंका हित होता है। ऐसे कुछ दंगोंके कारणोंकी जाँच-से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि सरकार यदि आरम्भसे ही मुस्तैदीसे काम करती तो दंगे ही न हो पाते और यदि होते भी तो बहुत शीघ्र उनका अन्त हो जाता और वे व्यापकरूप ग्रहण न कर पाते। बम्बईमें भारी दंगा हुआ जिसमें ८९ हिन्दू, ५४ मुसलमान, १ यूरोपियन और १ पारसीकी मृत्यु हुई और ६४३ व्यक्ति घायल हुए। उक्त दंगेकी जाँच बैठी और दंगा-जाँच-कमेटीने अपनी रिपोर्टमें लिखा—'हमारे मतसे इस तर्कमें पर्याप्त बल है कि पुलिस कमिश्नरका कर्तव्य था कि वे सेनाको और कुछ पहले बुला लेते। जो हो, हालके दंगोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी दंगेका आरम्भ होते ही पर्याप्त सेना बुला लेनी चाहिए और तत्काल कड़ी काररवाई आरम्भ कर देनी चाहिए।...'*

सन् १९३१ में कानपुरमें भीषण दङ्गा हो गया था। "कानपुरके दंगोंके जाँच-कमीशनकी रिपोर्टमें कहा गया है—एक गवाहने मेरे सम्मुख अपने बयानमें कहा कि 'यहाँपर ऐसी आम धारणा है कि दंगेको रोकनेके लिए स्थानीय अधिकारियोंने शीघ्र और कड़ी काररवाई इसलिए नहीं की कि वे कांग्रेस-कार्योंमें सहयोग देनेके कारण यहाँके व्यापारी वर्गसे चिढ़े हुए थे और वे

* के० बी० कृष्ण : 'दि प्राब्लेम ऑव माइनारिटीज', पृष्ठ २७२

यह दिखाना चाहते थे कि अधिकारियोंकी सहायताके बिना वे अपने जान-मालकी रक्षा नहीं कर सकते'। दंगेके समय पुलिसका ऐसा रवैया सर्वथा निन्द-नीय और अक्षम्य है। सभी श्रेणी और वर्गोंके गवाहोंने एक स्वरसे यह बात स्वीकार की कि पुलिसने दंगेकी विभिन्न घटनाओंके सम्बन्धमें तटस्थता और निष्क्रियता दिखायी, मानों उसे इन बातोंसे कोई मतलब ही न था। इन गवाहों-में यूरोपियन व्यापारी, सभी मतों और विचारोंके मुसलमान और हिन्दू, सैनिक अधिकारी अपर इण्डियन चेम्बर आव् कामर्सके मन्त्री, भारतीय ईसाई सम्प्र-दायके प्रतिनिधि तथा भारतीय अधिकारीतक थे। गवाहीमें कही गयी बातोंमें इन सबकी एक स्वरसे कही गयी इस बातकी उपेक्षा करना असम्भव है।...हमें इस बातमें भी लेशमात्र सन्देह नहीं कि दंगेके आरम्भिक तीन दिनोंमें पुलिसने अपने कर्तव्यपालनमें वह तत्परता नहीं दिखायी जो उसे दिखानी चाहिए थी।......अनेक गवाहोंने ऐसी भीषण घटनाओंके विवरण दिये हैं जो पुलिसकी आँखोंके सम्मुख घट रही थीं परन्तु पुलिस चुप बैठी तमाशा देख रही थी। अनेक गवाहोंने हमें बताया है तथा जिला मजिस्ट्रेटने भी अपने बयानमें कहा है कि पुलिसकी तटस्थता और निष्क्रियताकी उस समय शिकायतें की गयी थीं। खेदकी बात है कि ऐसी शिकायतोंकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।"*

९

त्रिभुजके आधारकी वृद्धि

दिसम्बर १९२६ में कांग्रेसके गोहाटी अधिवेशनके ठीक पूर्व दिल्लीमें एक धर्मान्ध मुसलमानने मुलाकातके बहाने जाकर रोगशय्यापर पड़े स्वामी

* के० बी० कृष्ण : 'दि प्राब्लेम आव माइनारिटीज', पृष्ठ २७२-२७३

श्रद्धानन्दकी निर्दयतापूर्वक हत्या कर डाली। इससे स्वभावतः सारे देशमें आतंककी एक लहर फैल गयी और लोग यह बात महसूस करने लगे कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच फैले हुए राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सभी प्रकारके मतभेद मिटानेका प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि १९२० में मांटेगू चेम्सफोर्ड सुधार जारी होनेपर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा खिलाफत कमेटीने कौंसिलोंका बहिष्कार कर दिया था और १९२० के चुनावमें कोई भाग नहीं लिया। १९२२ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द कर दिये जानेपर दोनों संस्थाओंके नेताओंमें मतभेद उत्पन्न हुआ जिसके फलस्वरूप बहिष्कार बन्द कर दिया गया तथा १९२३ के अन्तमें जो चुनाव हुआ तथा उसके बादके चुनावोंमें भी कांग्रेसजनोंने तथा खिलाफत आन्दोलनके कार्यकर्ताओंने भाग लिया। स्वराज्य पार्टी स्थापित हो गयी थी और असेम्बलियोंमें कांग्रेसकी ओरसे स्वराज्य पार्टी ही कांग्रेस कार्य कर रही थी। स्वराज्य पार्टी सुधारोंको कार्यान्वित करनेके पक्षमें न थी और वह असेम्बलियोंमें सरकारके साथ असहयोग करनेके पक्षमें थी। अतः केन्द्रीय असेम्बलीके कांग्रेसी सदस्योंने विधानमें परिवर्तनकी माँगका प्रस्ताव रखा और अर्थ बिल अस्वीकार कर दिया ताकि गवर्नर जनरल जो कुछ करें वह अपने विशेषाधिकारसे करें, असेम्बलीकी स्वीकृतिसे नहीं। असेम्बलीके अनेक गैर कांग्रेसी मुसलमान सदस्योंने भी इस कार्यमें कांग्रेसजनोंका साथ दिया। इससे स्पष्ट है कि देशमें तनातनी होते हुए भी केन्द्रीय असेम्बलीके हिन्दू और मुसलमान सदस्योंमें किसी अंशमें सहयोग था।

वैधानिक प्रश्नपर लेशमात्र भी आगे बढ़नेके किसी भी प्रस्तावका सरकार जान बूझकर विरोध कर रही थी। परन्तु यह बात महसूस की जाने लगी कि सरकारका यह विरोध अधिक समयतक नहीं चल सकता और किसी प्रकारके साम्प्रदायिक समझौतेके बिना कोई भी प्रगति सम्भव नहीं। अतः गोहाटी कांग्रेसने अपनी कार्यसमितिको यह अधिकार दिया कि वह हिन्दुओं और मुसलमानोंके पारस्परिक मतभेदको दूर करनेके लिए हिन्दू और मुसलमान नेताओंसे परामर्श

कर तत्काल कोई उपयुक्त कारवाई करे। राष्ट्रपति श्री श्रीनिवास अयंगरने हिन्दू और मुसलमान नेताओं तथा केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्योंकी कई आपसी बैठकें बुलायीं। मार्च १९२७ के अन्तमें दिल्लीमें कुछ मुसलमान नेताओंकी एक बैठक हुई और उसने मुसलमानोंकी ओरसे कुछ प्रस्ताव रखे। उन्होंने केन्द्रीय तथा सभी प्रान्तीय असेम्बलियोंके लिए संयुक्त निर्वाचनकी पद्धति स्वीकार कर ली, बशर्ते कि (१) सिन्ध एक पृथक् प्रान्त बनाया जाय, (२) सीमाप्रान्त तथा बिलोचिस्तानको अन्य प्रान्तोंके समान ही मान लिया जाय, (३) बङ्गाल और पञ्जाबमें मुस्लिम जनसंख्याके आधारपर ही मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व रहे और (४) केन्द्रीय असेम्बलीमें मुस्लिम प्रतिनिधित्व सदस्योंकी कुल संख्याके एक तिहाईसे कम न रहे।

मई और अक्तूबरमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी दो बैठकें हुईं जिनमें साररूपमें मुस्लिम प्रस्तावोंको स्वीकार करनेवाले प्रस्ताव स्वीकृत हुए। उनमें इस प्रश्नके धार्मिक और सामाजिक पहलूपर भी विचार किया गया था। कांग्रेसका अगला वार्षिक अधिवेशन मद्रासमें हुआ और उसमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके ढङ्गपर ही बना प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। एक अन्य प्रस्तावद्वारा उसने कांग्रेस कार्यसमितिको यह अधिकार दिया कि वह देशकी अन्य संस्थाओं-द्वारा नियुक्त इसी ढङ्गकी कमेटियोंसे परामर्श करके अधिकारोंके घोषणापत्रके आधारपर भारतके लिए स्वराज्य विधानका एक मसविदा तैयार करे और उसे भारतीय कांग्रेस कमेटी अन्य संस्थाओंके प्रतिनिधियों और नेताओं तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियोंके चुने हुए सदस्योंके एक विशेष सम्मेलनके सम्मुख विचार और स्वीकृतिके लिए उपस्थित करे। मुस्लिम लीगने उसी सप्ताह कलकत्तेमें अपना अधिवेशन किया और एक प्रस्तावद्वारा अपनी कौन्सिलको एक ऐसी उपसमिति नियुक्त करनेका अधिकार दिया जो भारतके लिए विधान प्रस्तुत करनेके लिए कांग्रेस कार्यसमिति तथा अन्य संस्थाओंसे परामर्श करे और कांग्रेस-द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय सम्मेलनमें सम्मिलित हो। उसने उपर्युक्त मुस्लिम प्रस्तावोंका पुनः समर्थन करते हुए इस बातपर जोर दिया कि मुसलमान पृथक्

निर्वाचन केवल तभी त्याग सकते हैं जब उनकी अन्य शर्तें स्वीकार कर ली जायँ। प्रस्तावमें मद्रास कांग्रेसका वह समझौता भी शामिल था जो आत्म-स्वातन्त्र्य, धार्मिक कानून, गौ तथा बाजेके प्रश्न और मत परिवर्तनके सम्बन्धमें हुआ था। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीगमें दो दल हो गये थे। एक कलकत्तेमें अपना अधिवेशन कर रहा था और दूसरा लाहौरमें, सर मियाँ मुहम्मद शफीकी अध्यक्षतामें। उपर्युक्त प्रस्ताव कलकत्ते-वाले अधिवेशनमें स्वीकृत हुए जिसके अध्यक्ष थे मौलवी मुहम्मद याकूब। श्रीमुहम्मदअली जिना इसके प्रमुख पथप्रदर्शक थे।

यहाँ उन थोड़ीसी बातोंका जिक्र करना अनुचित न होगा जिनके कारण लीगके एक दलमें और कांग्रेसमें पुनः एकता हो गयी थी और दूसरी ओर लीगमें ही फूट होकर दो दल हो गये थे। ऊपर कहा जा चुका है कि सरकार वैधानिक प्रगतिके सभी प्रस्तावोंका विरोध कर रही थी। उस समय लार्ड बर्कनहेड भारतमन्त्री थे। उन्होंने १० दिसम्बर १९२५ को तत्कालीन वाइसराय लार्ड रीडिंगको उस 'स्टेट्यूटरी कमीशन' की नियुक्तिकी तारीख बढ़ानेके सम्बन्धमें लिखा जिसका कि सुधारोंकी प्रगतिपर अपना मत प्रकट करनेके लिए सुधार लागू होनेके अधिकसे अधिक दस वर्षके अन्तमें नियुक्त करनेका १९२०के भारत शासन विधानमें आयोजन था। उन्होंने लिखा—

'अतः यदि आप कभी इस (स्टेच्यूटरी कमीशन) के द्वारा लाभदायक सौदा पटानेका अवसर देखें अथवा स्वराज्य पार्टीमें और अधिक फूट डालनेका मौका पायें तो मैं आपकी सलाहका स्वागत करूँगा......यदि ऐसी शीघ्रतासे आपको सौदा पटानेका अवसर मिले तो आप उसका यह विश्वास रखते हुए भरपूर उपयोग करें कि सरकार आपका हृदयसे समर्थन करेगी।'*

अस्तु १९२७ में इंग्लैण्डकी स्थितिके कारण वे विवश हो गये। "ब्रिटेनके भावी चुनावके लक्षण अच्छे न थे। मजदूर दलीय सरकार बननेकी सम्भावना

*** बर्कनहेड : 'दि लास्ट फेज'—श्री के० बी० कृष्णकी 'दि प्राब्लेम ऑव माइनारिटिज', पृ० ३०७ में उद्धृत।**

थी। वे नहीं चाहते थे कि १९२८ वाले कमीशनकी नियुक्तिमें मजदूर दलकी सरकारका कर्नल वेजउड और उनके साथियोंका,...थोड़ासा भी हाथ हो।...कारण, इससे तो 'स्वराज्य पार्टीमें और अधिक मतभेद उत्पन्न करनेकी' (बर्केनहेड : 'दि लास्ट फेज', पृष्ठ २५०-५१ में वर्णित) उनकी योजना ही उलट जायगी।"*

आपने नवम्बर १९२७ में 'स्टेच्यूटरी कमीशन'की नियुक्तिकी घोषणा की। कमीशनमें ७ सदस्य थे जिनमें सर जान साइमन उसके अध्यक्ष थे। उसमें भारतीय सदस्य एक भी न था। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभासे कहा गया था कि वह एक संयुक्त विशेष समिति नियुक्त करे जो कमीशनकी जाँचके लिए उसके सम्मुख अपने विचार उपस्थित करे। कमीशनमें एक भी भारतीय सदस्यके न रखे जानेकी बातको भारतीयोंने अपना घोर अपमान समझा और केवल कांग्रेस तथा खिलाफत कमेटीने ही उसका बहिष्कार करनेका निश्चय नहीं किया, अपितु अनेक मुसलमानोंने और यहाँतक कि लिबरल दलके व्यक्तियोंने भी ऐसा निश्चय किया, जिनके बारेमें ऐसा समझा जाता था कि राजनीतिक मामलोंमें उनके विचार बड़े उदार हैं और कांग्रेसके बहिष्कार करनेपर भी देशके विभिन्न राजनीतिक दलोंमें लिबरल दल ही ऐसा दल था जिसने मांटेगू चेम्स-फोर्ड सुधारोंको कार्यान्वित करनेकी चेष्टा की थी। अखिल भारतीय मुस्लिम-लीगमें साइमन कमीशनसे सहयोग करने तथा पृथक् निर्वाचनके प्रश्नपर मतभेद उत्पन्न हो गया था। लार्ड बर्केनहेड भारतके विभिन्न दलोंके बीच फूट डालनेके महत्वको भली भाँति समझते थे और "भारतमन्त्रीकी हैसियतसे उन्होंने वाइसराय लार्ड रीडिंगको अपनी यह सलाह भेजी कि 'जितना ही अधिक यह दिखाया जा सकेगा कि लोगोंमें मतभेद बहुत बढ़ा हुआ है तथा इसके कारण जनतामें अत्यधिक फूट फैली है उतना ही अधिक यह प्रदर्शित किया जा सकेगा कि हम और केवल हम ही सबमें मैत्री बनाये रह सकते

* अतुलानन्द चक्रवर्ती : 'काल टु पालिटिक्स' पृ० ५८

हैं' (बर्केनहेड : 'दि लास्ट फेज' पृष्ठ २४५-२४६)"* जब भारतमें कमीशनका बहिष्कार हुआ तो उन्होंने लार्ड अरविनको पुनः लिखा कि बहिष्कारका रुख मिटानेके लिए हम सदा ही अबहिष्कारी मुसलमानों, दलित वर्ग, व्यापारी वर्ग तथा ऐसे ही अन्य अनेक वर्गोंपर निर्भर रहते आये हैं। आपको और साइमनको इस दौरेके समय ही इस प्रश्नपर विचार करना चाहिए कि इस समय भेदभावकी इस दीवारमें दरार डालनेका प्रयत्न करना उपयुक्त होगा अथवा नहीं (बर्केनहेड : 'दि लास्ट फेज', पृष्ठ २५३)।"†

कुछ दिन बाद फरवरी १९२८ में उन्होंने वाइसरायको पुनः लिखा कि "मैं साइमनको सलाह दूँगा कि वे हर हालतमें ऐसे महत्वशाली व्यक्तियोंसे मिलें जो कि कमीशनका बहिष्कार नहीं कर रहे हैं, विशेषतः मुसलमानों और दलितवर्गके लोगोंसे। लोकप्रतिनिधि विशिष्ट मुसलमानोंसे उनकी जो मुलाकातें होंगी उनका मैं व्यापक प्रचार करूँगा। अब सारी नीति स्पष्ट है। विशाल हिन्दू जनताके मस्तिष्कमें यह भय उत्पन्न कर देता है कि कमीशनपर मुसलमान लोग हावी हो गये हैं, वह ऐसी रिपोर्ट दे सकता है जो हिन्दू हितोंके लिए पूर्णतः घातक हो और इस प्रकार मुसलमानोंका ठोस समर्थन प्राप्त करे तथा जिनाको निर्बल बनाकर एक ओर छोड़ दे।" (बर्केनहेड : 'दि लास्ट फेज', भाग २, पृष्ठ २५५)‡

तब इसपर आश्चर्य करनेकी आवश्यकता नहीं कि सर मुहम्मद शफीने लाहौरमें लीगकी एक पृथक् बैठक की जब कि श्री जिना 'वैध' लीगका पथ-प्रदर्शनके लिए निर्बल बनाकर अलग छोड़ दिये गये। लाहौरमें जिस समय शफी लीगकी बैठक हो रही थी उसी समय दिसम्बर १९२७ में श्री जिना कलकत्तेमें अपनी लीगकी बैठक कर रहे थे।

---

* अतुलानन्द चक्रवर्ती : 'काल इट पालिटिक्स' पृष्ठ ५७।

† वही पृष्ठ ५९

‡ के० बी० कृष्ण : 'दि प्राब्लेम ऑव माइनारिटीज़', पृष्ठ ३०८

साइमन कमीशनकी नियुक्तिद्वारा भारतीयोंका जो अपमान किया गया था और लार्ड बर्केनहेडने भारतवासियोंको सभी भारतीयोंके लिए ग्राह्य विधान बनानेकी जो चुनौती दी थी उसका परिणाम यह हुआ कि १९२८ के आरम्भमें कांग्रेस, अखिल भारतीय मुस्लिम लीग तथा अन्य संस्थाओंने मिलकर भारतके लिए एक विधान बनाया। उपर्युक्त प्रस्तावोंके अनुसार सर्वदलीय सम्मेलन हुआ। उसने विधान निर्माणका कार्य आगे बढ़ाया और तदुपरान्त यह कार्य एक कमेटीके सिपुर्द किया। पण्डित मोतीलाल नेहरू उक्त कमेटीके अध्यक्ष थे। उक्त कमेटीने 'नेहरू रिपोर्ट' तैयार की। लखनऊमें सर्वदलीय सम्मेलनकी बैठक हुई जिसमें उक्त रिपोर्ट कुछ संशोधनोंके साथ स्वीकृत हुई। दिसम्बर १९२८ में कलकत्तेमें सभी दलोंका एक संयुक्त अधिवेशन बुलाया गया जिसमें उक्त स्वीकृत रिपोर्ट पेश की गयी। इस बीच पर्देमें कुछ अन्य शक्तियाँ कार्य कर उठी थीं और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके प्रतिनिधियोंके साथ मतभेद उत्पन्न हो चला था। मतभेद मुख्यतः इन तीन बातोंपर अत्यधिक था—(१) केन्द्रीय असेम्बलीमें मुसलमान प्रतिनिधियोंकी संख्या एक तिहाईसे कम न हो। (२) नेहरू रिपोर्टमें प्रस्तावित बालिग मताधिकार स्वीकृत न होनेपर पञ्जाब और बंगालमें आबादीके अनुपातसे स्थान मिले और दस वर्षके उपरान्त उसमें हेरफेर न हों, (३) अवशिष्ट अधिकार प्रान्तोंमें रहें, केन्द्रमें नहीं। ये सारी बातें श्री जिनाने एक प्रस्तावके रूपमें अधिवेशनके सम्मुख उपस्थित कीं। इनपर इसी कार्यके लिए नियुक्त एक कमेटीमें बहुत देरतक विचार होता रहा परन्तु लोग किसी निर्णयपर न पहुँचे और अन्तमें अधिवेशनने इन्हें अस्वीकृत कर दिया। इसके बाद लोग व्यवहार्यतः अधिवेशनसे पृथक् हो गये और कलकत्तेमें होनेवाला उसका अधिवेशन इस स्थितिपर बादमें विचार करनेके लिए स्थगित कर दिया गया।

लीगका वह दल जिसने पिछले वर्ष लाहौरमें अपना अधिवेशन किया था, अबतक चुप नहीं बैठा था। उसने उस अधिवेशनमें कांग्रेसके मद्रासवाले अधिवेशनमें स्वीकृत प्रस्तावको अस्वीकार कर लाहौर अधिवेशनमें स्वीकृत सिद्धान्तोंके आधार-

पर अन्य संस्थाओंके सहयोगसे 'स्टेट्यूटरी कमीशन'के समक्ष उपस्थित करनेके निमित्त वैधानिक योजना तैयार करनेके लिए एक कमेटी नियुक्त कर दी थी। उसने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर अध्यक्षको यह अधिकार दिया कि वे मुसलमानोंके विभिन्न वर्गोंको एक सूत्रमें बाँधनेके उद्देश्यसे मुसलमानोंका एक गोलमेज सम्मेलन बुलायें। अतः ३१ दिसम्बर १९२८ को दिल्लीमें मुसलमानोंका एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया। आगाखाँसे, जो १९०५ में मुसलमानोंका एक प्रतिनिधिमण्डल लेकर लार्ड मिण्टोसे मिले थे, यह अनुरोध किया गया कि वे उक्त सम्मेलनकी अध्यक्षता स्वीकार कर लें। उन्होंने उक्त निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कलकत्तेमें जो सर्वदलीय अधिवेशन हुआ था उससे कुछ मुसलमानोंके हृदयमें अत्यन्त कटुताकी भावना उत्पन्न हो गयी थी। उनमेंसे कुछ व्यक्ति, जिनमें मौलाना मुहम्मदअली और मौलवी शफी दाउदी मुख्य थे, इस सम्मेलनमें सम्मिलित हुए। कलकत्तेवाली अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलनका निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया था। सम्मेलनने इस आशयका प्रस्ताव स्वीकृत किया कि (१) भारतीय स्थितिमें केवल संघ प्रणालीकी ही शासन पद्धति उपयुक्त हो सकती है जिसमें सभी सम्बद्ध इकाइयोंको ५ स्वशान और अवशिष्ट अधिकार रहें। केन्द्रीय सरकारका संयुक्त हितके केवल ऐसे मामलोंपर नियन्त्रण रहे जो कि विधान उसे विशेष रूपसे सौंपे। (२) किसी भी प्रान्तीय या केन्द्रीय असेम्बलीमें अन्तर्साम्प्रदायिक मामलोंपर, यदि प्रभावित सम्प्रदायके तीन चौथाई सदस्य उसका विरोध करें तो न तो कोई बिल, प्रस्ताव या संशोधन उपस्थित किया जाय और न वह स्वीकृत किया जाय। (३) असेम्बलियों तथा अन्य स्वायत्त संस्थाओंमें मुसलमानोंके प्रतिनिधि उनके पृथक् निर्वाचनकी पद्धतिद्वारा चुने हुए रहें। इस अधिकारसे उन्हें केवल तभी वञ्चित किया जाय जब वे स्वयं इसके लिए अपनी इच्छा प्रकट करें। केन्द्रीय और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलोंमें मुसलमानोंका अधिक प्रतिनिधित्व रहे। बहुमतवाले प्रान्तोंमें, प्रान्तीय कौन्सिलोंमें मुसलमानोंका जो बहुमत हो वह ज्योंका त्यों बना रहे और जहाँ वे अल्पसंख्यक हों वहाँ वर्तमान कानूनके अनुसार उनका जितना

प्रतिनिधित्व हो उसमें कोई कमी न की जाय। केन्द्रीय असेम्बलीमें मुसलमानोंका ३३ 1/3 प्रतिशत प्रतिनिधित्व रहे। (४) सिन्ध पृथक् प्रान्त बना दिया जाय। और (५) सीमाप्रान्त तथा बिलोचिस्तानमें अन्य प्रान्तोंके अनुसार ही वैधानिक सुधार हों, नौकरियोंमें मुसलमानोंको उचित प्रतिनिधित्व मिले, मुस्लिम संस्कृतिकी रक्षा तथा मुस्लिम शिक्षा, भाषा, धर्म, व्यक्तिगत कानून, धर्मार्थ संस्थाओं और उनको मिलनेवाली सरकारी सहायतामें उन्नति और वृद्धिके लिए उचित संरक्षण मिलने चाहिए।

प्रस्तावमें अत्यन्त जोरदार शब्दोंमें यह घोषणा की गयी थी कि भारतीय मुसलमानोंको कोई भी विधान, चाहे उसे किसीने भी क्यों न बनाया हो, उस समयतक स्वीकार्य न होगा जबतक वह उपर्युक्त प्रस्तावको स्वीकार न कर ले।

श्री जिनाने मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलन तथा मुस्लिम लीगके दो भागोंके बीच मैत्री स्थापित करनेके लिए एक बार प्रयत्न किया। उन्होंने प्रमुख व्यक्तियोंसे परामर्श करके एक मसविदा तैयार किया जिसके आधारपर आपसमें कोई समझौता न हो सके। इस मसविदेमें आपने मुसलमानोंके हितों और अधिकारोंकी रक्षाके लिए निम्नलिखित १४ बातें आवश्यक बतायीं—

(१) भावी विधानका रूप सङ्घ प्रणालीका हो जिनमें अवशिष्ट अधिकार प्रान्तोंके हाथमें रहें।

(२) सभी प्रान्तोंमें एक समान स्वायत्त शासनाधिकार रहे।

(३) सभी प्रान्तोंमें असेम्बलियों और लोक प्रतिनिधि संस्थाओंमें निश्चित रूपसे अल्पमत सम्प्रदायोंका उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व रहे। जहाँ बहुमत हो वहाँ वह घटाकर समान या अल्पमत न कर दिया जाय।

(४) केन्द्रीय असेम्बलीमें मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व एक तिहाईसे कम न रहे।

(५) साम्प्रदायिक वर्गोंका प्रतिनिधित्व पृथक् निर्वाचनकी पद्धतिसे हो परन्तु कोई भी सम्प्रदाय जब चाहे तब संयुक्त निर्वाचनकी पद्धति स्वीकार कर ले।

(६) किसी भी प्रादेशिक पुनर्विभाजनद्वारा पञ्जाब, बङ्गाल और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तमें मुसलमानोंके बहुमतपर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिए।

(७) सभी सम्प्रदायोंको अपने धार्मिक विश्वास, उपासना, उत्सव, प्रचार, मेल-मिलाप और शिक्षाकी पूर्ण स्वाधीनता रहनी चाहिए।

(८) किसी भी असेम्बली अथवा लोकप्रतिनिधि संस्थामें ऐसा कोई भी बिल या प्रस्ताव स्वीकृत न होना चाहिए जिसका कि किसी भी सम्प्रदायके तीन चौथाई सदस्य अपने सम्प्रदायके हितोंका विरोधी बताते हुए विरोध करें।

(९) सिन्ध बम्बई प्रेसिडेन्सीसे पृथक् कर दिया जाय।

(१०) अन्य प्रान्तोंमें जिस प्रकारके सुधार किये जायँ उसी प्रकारके सुधार सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तानमें किये जायँ।

(११) विधानमें सभी नौकरियोंमें योग्यताको आवश्यकताके अनुरूप मुसलमानोंको उचित भाग मिले।

(१२) मुस्लिम संस्कृति, शिक्षा, भाषा, धर्म, व्यक्तिगत कानून और धार्मिक संस्थाओंकी रक्षा और उन्नतिके लिए उचित संरक्षण मिले तथा पर्याप्त सरकारी सहायता मिले।

(१३) केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलोंमें कमसे कम तिहाई मन्त्री मुसलमान रहें।

(१४) केन्द्रीय असेम्बलीको विधानमें कोई परिवर्तन करनेका केवल तभी अधिकार रहे जब भारतीय संघमें आबद्ध सभी इकाइयाँ उसे स्वीकार कर लें।

यह बात उल्लेखनीय है कि श्री जिना जिस लीगके अध्यक्ष थे उसमें राष्ट्रीय मुसलमानोंका प्राधान्य था। शफी लीग अपने लाहौरवाले प्रस्तावसे चिपटी हुई थी और व्यवहार्यतः मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलनका ही एक अङ्ग बन गयी थी। श्री जिनाने १४ बातोंवाला जो मसविदा तैयार किया वही राष्ट्रीय दलके अतिरिक्त और सभी मुसलमानोंकी माँग बन गया। ये चौदह बातें इसलिए और भी अपना विशेष महत्व रखती हैं कि श्री मेकडानेल्डके साम्प्रदायिक निर्णयमें ये सभी एक साथ कर ली गयी थीं। राष्ट्रीय मुसलमानों और मुस्लिम सर्व-

दलीय सम्मेलनमें नेहरू रिपोर्टकी स्वीकृतिके प्रश्नपर मतभेद था। राष्ट्रीय मुसलमान चाहते थे कि नेहरू रिपोर्ट स्वीकार कर ली जाय।

दिसम्बर १९२८ में कलकत्तेमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ उसने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार यदि नेहरू रिपोर्टको जिसमें औपनिवेशिक पदकी माँग की गयी है, एक वर्षके भीतर अर्थात् ३१ दिसम्बर १९२९ तक स्वीकार नहीं कर लेती तो कांग्रेस उक्त रिपोर्टकी माँग छोड़कर पूर्ण स्वाधीनताकी माँग करेगी। १९२९ में देशमें बड़ी जागृति दीख पड़ी। ३१ अक्तूबर १९२९ को वाइसराय लार्ड अरविनने जो इस बीच इंग्लैण्ड जाकर परामर्श कर आये थे, यह घोषणा की कि साइमन कमीशन जब अपनी रिपोर्ट दे देगा तब ब्रिटिश सरकार भारतीय समस्यापर विचार करनेके लिए ब्रिटिश और भारत और देशी रियासतोंके विभिन्न दलों और हितों-के प्रतिनिधियोंका एक गोलमेज सम्मेलन बुलायेगी। घोषणामें यह भी कहा गया कि 'मुझे स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा करनेका अधिकार मिला है कि ब्रिटिश सर-कारकी १९१७ की घोषणामें यह बात शामिल है कि औपनिवेशिक पदकी प्राप्ति भारतीय वैधानिक प्रगतिका लक्ष्य है।' घोषणाके इस अंशसे यह बात स्पष्ट नहीं हुई कि गोलमेज सम्मेलनमें भारतके लिए औपनिवेशिक विधानकी योजना तैयार की जायगी या नहीं, इसलिए घोषणापर विचार करनेके लिए दिल्लीमें जो नेता सम्मेलन हुआ उसने इस बातका स्पष्टीकरण माँगा। कांग्रेसके लाहौर अधि-वेशनके पूर्व २३ दिसम्बरको महात्मा गान्धी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, अध्यक्ष पटेल, सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जिना इस सम्बन्धमें वाइसरायसे मिले, वाइ-सराय यह आश्वासन देनेके लिए प्रस्तुत नहीं हुए कि उक्त सम्मेलनका उद्देश्य औपनिवेशिक पदकी योजना तैयार करना है। कांग्रेसने कलकत्तेवाले अपने अधि-वेशनमें स्वीकृत प्रस्तावके अनुसार यह घोषणा की कि कांग्रेस विधानकी पहली धारामें जो 'स्वराज' शब्द आया है उसका अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा और अब नेहरू कमेटीकी रिपोर्टकी सारी योजना समाप्त हो गयी। कांग्रेसने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको यह अधिकार दिया कि वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन,

जिसमें कर-बन्दीका कार्यक्रम भी सम्मिलित था, आरम्भ करे। आगामी मार्चमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया गया जो कि एक वर्षतक जारी रहा। साइमन कमीशनकी रिपोर्ट १९३० के मध्यमें उपस्थित की गयी और प्रथम गोलमेज सम्मेलन आगामी शरद ऋतुमें लन्दनमें बुलाया गया। उक्त सम्मेलनमें कांग्रेसका कोई प्रतिनिधित्व न था। उसमें देशी रियासतोंके प्रतिनिधि थे और ब्रिटिश भारतके। ब्रिटिश भारतके प्रतिनिधियोंमें मुसलमान थे। उसने भारतके लिए ऐसे संघ विधानके पक्षमें अपना निर्णय दिया जिसमें भारतके प्रान्त तो रहें ही इसके अतिरिक्त ऐसी रियासतें या उनके अन्तर्गत ऐसे दल भी सम्मिलित रहें जो उसमें सम्मिलित होनेकी इच्छा प्रकट करें। उसने सिन्धको पृथक् प्रान्त बनाने तथा सीमाप्रान्तमें सुधार कार्यान्वित करनेके पक्षमें अपना मत दिया। संयुक्त अथवा पृथक् निर्वाचन पद्धतिपर लोगोंने जो मत व्यक्त किया वह पृथक् निर्वाचन पद्धति बनाये रखने और सम्बन्धित दलोंकी स्वीकृतिद्वारा ही उसे रद्द करनेके पक्षमें जान पड़ा। संघशासन तथा उसकी इकाइयोंके क्या अधिकार रहें इसपर विस्तारपूर्वक विचार किया गया और दोनोंकी अलग अलग सूची बना ली गयी, परन्तु अवशिष्ट अधिकारोंके प्रश्नका भलीभाँति निर्णय नहीं किया गया और न यही निश्चित हुआ कि संघ असेम्बलीमें मुस्लिम प्रतिनिधियोंकी संख्या कितनी रहे।

प्रथम गोलमेज सम्मेलनके उपरान्त लार्ड अरविनने भारत-सरकारकी ओरसे और महात्मा गान्धीने काग्रेसकी ओरसे समझौता कर लिया जिसके कारण द्वितीय गोलमेज सम्मेलनमें जो कि १९३१ की शरद ऋतुमें होनेवाला था, कांग्रेसके सम्मिलित होनेका द्वार खुल गया। ठीक इसी समय काशी, कानपुर तथा अन्य स्थानोंमें भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो गये। राष्ट्रीय मुसलमानोंमें, जो कि इस समयतक 'राष्ट्रीय मुस्लिम सम्मेलनोंके रूपमें संघटित हो गये थे तथा मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलनमें, जिसमें कि जहाँतक कार्यक्रमका प्रश्न था, भारतीय मुस्लिम लीग और खिलाफत सम्मेलन मिलकर एक हो गये थे, मुख्य मतभेद निर्वाचन पद्धतिका था। पहला जहाँ संयुक्त निर्वाचन पद्धतिके पक्षमें था वहाँ दूसरा पृथक्

निर्वाचन पद्धतिके पक्षमें था। अप्रैल १९३१ में लखनउमें सर अली इमामकी अध्यक्षतामें राष्ट्रीय मुस्लिम सम्मेलन हुआ जिसमें उन्होंने घोषणा की कि 'यद्यपि एक समय मैं स्वयं पृथक् निर्वाचन पद्धतिके पक्षमें था और इसी उद्देश्यसे उस प्रतिनिधि मण्डलमें सम्मिलित हुआ था जिसने लार्ड मिण्टोंसे इस सम्बन्धमें भेंट की थी तथापि इस विषयपर गम्भीरतासे विचार करनेके उपरान्त मैं इसी निर्णयपर पहुँचा हूँ कि पृथक् निर्वाचन पद्धति केवल भारतीय राष्ट्रीयताके ही विरुद्ध नहीं है अपितु वह स्वयं मुसलमानोंके लिए घातक है। सम्मेलनने इस आशयका प्रस्ताव स्वीकृत किया कि विधानमें मौलिक अधिकारोंकी घोषणा होनी चाहिए, संस्कृति, भाषा और व्यक्तिगत कानूनों आदिकी रक्षाका पक्का आश्वासन मिलना चाहिए, विधान संघ प्रणालीका होना चाहिए जिसमें सम्बद्ध इकाइयोंके हाथमें अवशिष्ट अधिकार रहे, सरकारी नौकरियोंके लिए योग्यताके न्यूनतम मानके अनुसार पब्लिक सर्विस कमीशन चुनाव करे जिसमें किसी सम्प्रदाय विशेषको वंचित न किया जाय, सिन्ध पृथक् प्रान्त बना दिया और सीमाप्रान्त तथा बिलोचिस्तानमें अन्य प्रान्तोंके समान ही शासन पद्धति रहे। संघ और प्रान्तीय असेम्बलियोंमें प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें उक्त प्रस्तावमें कहा गया कि सर्वत्र बालिग मताधिकार रहे, संयुक्त निर्वाचन हो और ३० प्रतिशतसे कम अल्प मतवालोंके लिए जनसंख्याके आधारपर कुछ स्थान सुरक्षित रहें तथा उन्हें यह छूट रहे कि वे चाहें तो अन्य स्थानोंके लिए भी चुनाव लड़ सकते हैं। मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलन तथा मुस्लिम राष्ट्रीय सम्मेलनके बीच समझौता करानेका एक प्रयत्न किया गया। किन्तु वह असफल रहा। शिमलामें २२ जून १९३१ को दोनोंका एक संयुक्त अधिवेशन होनेको था जिसमें समझौतेके लिए उपस्थित किये जानेवाले प्रस्तावोंपर विचार विमर्ष होता। इस विषयमें डाक्टर अनसारीने यह वक्तव्य दिया कि शिमला पहुँचनेपर हमने देखा कि यहाँका वातावरण समझौतेके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। दुर्भाग्यकी बात है कि हमारे सन्देह ठीक निकले। यहाँका वातावरण और प्रभाव इतना दूषित है कि ऐक्यकी बातोंके लिए कोई गुञ्जाइश ही नहीं रह गयी है। उनका जिक्र करना व्यर्थ है, कारण, जनता

उनसे भलीभाँति परिचित है। दोनों दलोंको संयुक्त करनेके सभी प्रयत्नोंपर पानी फेर दिया गया है।'*

द्वितीय गोलमेज सम्मेलनके लिए कांग्रेसकी ओरसे महात्मा गान्धी एकमात्र प्रतिनिधि चुने गये। ब्रिटिश-सरकारने ब्रिटिश-भारतसे कितने ही प्रतिनिधि नामजद किये थे जिनमें कितने ही मुसलमान थे; परन्तु डाक्टर अनसारीको आमन्त्रित करनेका महात्मा गान्धीका सुझाव ब्रिटिश-सरकारने ठुकरा दिया। गोलमेज सम्मेलनमें एक कमेटी 'अल्पमत-कमेटी' चुनी गयी थी जिसे अल्पमतवालोंकी समस्या हल करनेका कार्य सौंपा गया था। यह कमेटी किसी सर्वसम्मत निर्णयपर पहुँचनेमें असमर्थ रही और इस तथा अन्य अनेक प्रश्नोंपर बिना किसी निर्णयपर पहुँचे ही गोलमेज सम्मेलन समाप्त हो गया। गोलमेज-सम्मेलनकी असफलतापर किसी भारतीयको आश्चर्य नहीं हुआ। ऐसे किसी भी समझौतेके प्रयत्नको विफल करनेके लिए कुछ शक्तियाँ बड़ी मुस्तैदीसे अपने कार्यमें संलग्न थीं। श्री एडवर्ड थामसन लिखते हैं कि 'जिन दिनों गोलमेज सम्मेलन हो रहा था उन दिनों समझौतेका तीव्र विरोध करनेवाले मुसलमानों तथा कुछ विशेष अलोकतन्त्रवादी ब्रिटिश राजनीतिक क्षेत्रोंमें कुछ स्पष्ट मैत्री और समझौता हो गया था। यह मैत्री अब भी भारतमें बनी है और उन्नतिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है। मेरा विश्वास है कि मैं यह बात प्रमाणित कर सकता हूँ कि यह बात अनेकांशोंमें सत्य है। इस बातमें तो सन्देह करनेके लिए स्थान है ही नहीं कि पुराने जमानेमें हमलोगोंने भारतमें 'भेद डालो और राज करो' की स्पष्ट नीति बना ली थी। वारेन हेस्टिंग्सके जमानेसे लेकर अबतक हिन्दुओं और मुसलमानोंके संघर्षोंसे अधिकारियोंको बड़ा आनन्द मिलता आया है, यहाँतक कि एलिफिन्स्टन, मेलकम और मेटकाफ जैसे व्यक्तियोंने भी स्वीकार किया है कि अंग्रेजोंके लिए इसका कितना महत्व है।'†

---

* 'ऐनुअल रजिस्टर फार १९३१'; पृष्ठ ३०५।

† एडवर्ड थामसन : 'एनलिस्ट इण्डिया फार फ्रीडम' पृष्ठ ५०।

प्रधानमन्त्री श्री रेमजे मेकडानेल्डने द्वितीय गोलमेज सम्मेलनकी कारवाई समाप्त करते हुए घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार, विशेष स्थितिमें संरक्षण रखते हुए, उत्तरदायी सङ्घशासनके सिद्धान्तको स्वीकार करती है ; गवर्नरी प्रान्तोंमें बाहरी हस्तक्षेपसे रहित पूर्ण उत्तरदायी शासन रहेगा और विभिन्न प्रान्त अपने यहाँ मनोनुकूल नीति चला सकेंगे ; सीमाप्रान्त गवर्नरी प्रान्त रहेगा और अन्य प्रान्तोंके समान ही उसका पद रहेगा ; सिन्धकी आयके लिए पर्याप्त साधन निकल आयेंगे तो वह पृथक् प्रान्त कर दिया जायगा। साम्प्रदायिक समस्याके विषयमें आपने कहा कि 'साम्प्रदायिक गत्यवरोध प्रगतिके मार्गमें बहुत बड़ी बाधा है किन्तु ब्रिटिश सरकार इस बातके लिए कृतसकल्प है कि यह बाधा भी उन्नतिके मार्गमें बाधक न बनने दी जायगी। इसका अर्थ यह होगा कि ब्रिटिश सरकारको केवल इतना हो न करना होगा कि वह आपके प्रतिनिधित्व-की समस्या हल करे अपितु अपनी सारी बुद्धिमत्ता लगाकर उसे यह भी निश्चय करना होगा कि विधानमें कैसे क्या प्रतिबन्ध और कैसा सन्तुलन रहे जिससे अल्प मतवालोंकी रक्षा हो सके और बहुमतद्वारा व्यक्त होनेवाले लोकतन्त्रके सिद्धान्तका अल्पमतवालोंके सम्बन्धमें अबाध और अनुचित प्रयोग न हो।'*

इस घोषणाके उपरान्त साम्प्रदायिक निर्णयका आना स्वाभाविक था। अगस्त १९३२ में वह आया। इस योजनाका क्षेत्र जान-बूझकर ब्रिटिश-भारतके निवासी विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रान्तीय असेम्बलियोंमें प्रतिनिधित्वतक सीमित रखा गया। केन्द्रीय असेम्बलीके लिए प्रतिनिधित्वकी समस्या यह कहकर आगेके लिए टाल दी गयी थी कि उसमें देशी रियासतोंकी भी समस्या शामिल है और बिना भलीभाँति विचार विनिमय किये उसपर कोई निर्णय देना सम्भव नहीं। यह आशा प्रकट की गयी थी कि एकबार प्रतिनिधित्वके तरीके और अनुपातके मूल प्रश्नके सम्बन्धमे घोषणा हो जानेसे अन्य साम्प्रदायिक समस्याओंपर विभिन्न सम्प्रदाय स्वयं ही कोई हल ढूँढ़ निकालेंगे। नये

---

* **'ऐनुअल रजिस्टर' १९३१, भाग २, पृष्ठ ४४६।**

भारत-शासनविधानके कानून बननेके पूर्व यदि सरकारको यह विश्वास हो जायगा कि विभिन्न सम्प्रदायोंको योजना स्वीकार्य है तो वह पार्लमेण्टसे सिफारिश करेगी कि साम्प्रदायिक निर्णयमें रखी गयी योजना स्वीकार कर ली जाय। उक्त निर्णयमें मुसलमानों, यूरोपियनों और सिखोंको पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धतिद्वारा अपने प्रतिनिधि चुननेका अधिकार दिया गया था। बम्बईमें कुछ विशेष साधारण निर्वाचनक्षेत्रोंमें मरहठोंके लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये थे। हरिजनोंके लिए कुछ स्थान रखे गये थे जिनके लिए विशेष निर्वाचनक्षेत्रोंमें चुनाव होता और वहाँ केवल वे ही अपना मत दे सकते थे। साधारण निर्वाचन-क्षेत्रोंमें भी उन्हें मत देनेका अधिकार था। भारतीय ईसाइयों और एंग्लो-इण्डियनोंके लिए भी कुछ स्थान रखे गये थे जिनके लिए मतदाता पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धतिद्वारा ही मत देते। महिलाओंके लिए भी विशेष रूपसे कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये थे और यह निर्णय कर दिया गया था कि अमुक अमुक सम्प्रदायकी इतनी महिलाएँ रहेंगी। मजदूरोंके निर्वाचनक्षेत्रोंसे मजदूरोंके प्रतिनिधियोंके लिए भी कुछ स्थान रखे गये थे। उद्योग, व्यवसाय, खानों आदिके लिए कुछ विशेष स्थान रखे गये थे जिनका चुनाव व्यापार-मण्डल तथा अन्य सङ्घोंद्वारा होता। इसी भाँति जमींदारोंके निर्वाचनक्षेत्रसे जमींदारोंके लिए कुछ स्थान रखे गये थे। इससे यह स्पष्ट है कि मार्ले-मिण्टो सुधारोंमें जनताको साम्प्रदायिक टुकड़ोंमें विभक्त करनेका जो सिद्धान्त आरम्भ किया गया था वह और अधिक, यहाँतक कि मांटेगू-चेम्सफोर्ड सुधारोंसे भी अधिक, व्यापक बना दिया गया था। '१९१९में मतदाता दस भागोंमें विभक्त किये गये थे, इस बार वे १७ असमान भागोंमें विभक्त कर दिये गये। महिलाओं और भारतीय ईसाइयोंपर जबरन उनकी इच्छाके विरुद्ध पृथक् निर्वाचन लाद दिया गया। दलितवर्गको पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान कर हिन्दू सम्प्रदाय और अधिक निर्बल बना दिया गया। धर्म, व्यवसाय और नौकरीके आधारपर विभाजन किया गया। जनताको जितने टुकड़ोंमें बाँटना सम्भव था उसमें कोई कमी नहीं की गयी।'*

*मेहता और पटवर्द्धन : 'दि कम्यूनल ट्रिएंगिल इन इण्डिया' पृष्ठ ७२

विभिन्न सम्प्रदायोंमें स्थानोंका बँटवारा भी कम महत्वपूर्ण न था। साम्प्रदायिक समस्यापर जब कभी विवाद हुआ है तब बङ्गाल और पञ्जाबके मामलेमें कठिनाई होती रही है। दोनों प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत है पर अल्प बहुमत है, लगभग ५५ प्रतिशतका बहुमत है। इन दोनों प्रान्तोंमें मुसलमानोंकी ओरसे यह माँग की गयी कि हमारे लिए पृथक् निर्वाचन भी रहे और कुछ स्थान भी सुरक्षित रहें, यद्यपि दोनों प्रान्तोंमें उनका बहुमत था। बङ्गालमें बृटिश सरकारने यूरोपियनोंको अत्यधिक स्थान देकर समस्या और अधिक उलझा दी तथा पञ्जाबमें गैरमुसलमान—हिन्दुओं और सिखोंमें बाँट दिये। सिखोंने इस बातपर जोर दिया कि यदि पृथक् निर्वाचन और कुछ स्थान सुरक्षित रखनेकी नीति हो तो हमें महत्त्वपूर्ण अल्पमत सम्प्रदाय होनेके नाते उतना ही महत्त्व और स्थान मिलने चाहिए जितने मुसलमानोंको उन प्रान्तोंमें मिलें जहाँ वे अल्पमत हैं। साम्प्रदायिक निर्णयमें मुसलमानोंको दिये गये स्थानोंका अनुपात, बङ्गाल और पञ्जाबको छोड़कर अन्य प्रान्तोंमें लगभग वैसा ही था जैसा मांटेगू चेम्सफोर्ड सुधारोंमें रखा गया था। उसमें यत्रतत्र थोड़ासा परिवर्तन किया गया था। बङ्गालमें हिन्दुओंका अल्पमत था। वे सारी जनसंख्याके ४४·८ प्रतिशत थे। उन्हें २५० मेंसे केवल ८० स्थान दिये गये अर्थात् कुलमें केवल ३२ प्रतिशत। मुसलमानोंको, जो कि जनसंख्याके ५४·८ प्रतिशत थे, ११९ स्थान दिये गये अर्थात् कुलमें ४७·६ प्रतिशत। यूरोपियनोंको जो कि जनसंख्याके ·०१ प्रतिशत थे, २५ स्थान दिये गये अर्थात् कुल स्थानोंमेंसे १० प्रतिशत स्थान उन्हें दे दिये गये। इससे यह स्पष्ट है कि मुसलमान, जिनका कि बहुमत था, अल्पमत कर दिये गये, और हिन्दू जो कि पहले ही अल्पमत थे उन्हें उनका उचित भाग भी नहीं दिया गया ताकि यूरोपियनोंको २५००० गुना अधिक प्रतिनिधित्व दिया जा सके। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि जहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनोंके प्रतिनिधित्वमें कमी की गयी वहाँ उपेक्षाकृत अधिक कमी हिन्दुओंके ही प्रतिनिधित्वमें की गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य प्रान्तोंके विपरीत बङ्गालमें सबसे छोटे सम्प्रदायको अत्यधिक महत्व देनेके

लिए बहुमतवाले सम्प्रदायकी नहीं, अल्पमतवाले सम्प्रदायकी बलि दी गयी और उसे बहुमतवाले सम्प्रदायकी उपेक्षा कहीं अधिक त्याग करना पड़ा। पञ्जाबमें भी सिखोंको अधिक महत्व प्रदान करनेके लिए हिन्दुओंकी ही बलि चढ़ायी गयी यद्यपि वे अल्पमतमें थे और न्यायकी दृष्टिसे उन्हें अधिक स्थान मिलना उचित था। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इन दोनों प्रान्तोंमें साम्प्रदायिक निर्णयने मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व इतना घटा दिया कि वह कुलमें अल्पमत बन गया यद्यपि ऐसा होनेपर भी असेम्बलीमें मुसलमानोंका दल ही सबसे बड़ा रहा और उनके स्थान पृथक् निर्वाचनद्वारा उनके लिए सुरक्षित रखे गये थे। ऐसी स्थितिमें हिन्दुओंने यदि निर्णयका तीव्र विरोध किया तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है। जहाँ वे बहुमतमें थे वहाँ भी, और जहाँ अल्पमतमें थे वहाँ भी उनसे अत्यधिक त्याग करनेके लिए कहा गया था और बङ्गालमें तो उनसे बहुमतवाले सम्प्रदायसे भी अपेक्षाकृत अधिक—लगभग दूना—त्याग करनेके लिए कहा गया था। सरकार पहलेसे ही जानती थी कि इसका विरोध होगा। इस सम्बन्धमें भारत सरकारकी ओरसे प्रकाशित विज्ञप्तिमें कहा गया कि 'विवादग्रस्त प्रत्येक दलने अपने जितने प्रतिनिधित्वकी माँग की है उसे दूसरे दल स्वीकार न करेंगे अतः यह अनिवार्य है कि समझौतेमें प्रत्येकका जितना प्रतिनिधित्व रखा जाय वह उसकी माँगसे कम हो। वस्तुतः बात यह है कि समझौता जितना ही उचित और न्यायपूर्ण होगा उतना ही अधिक सम्बन्धित दलोंके लिए वह निराशाजनक होगा। किन्तु चूँकि ब्रिटिश सरकार इस मामलेमें सर्वथा उदासीन है और निर्णयद्वारा वह सबसे अधिक कठिन समस्याका ऐसा हल करनेके लिए प्रयत्नशील है जो सबके लिए हितकर हो अतः उसने यह आशा की कि भारतीय उसे उसी सद्भावपूर्वक ग्रहण करेंगे और ईमानदारीसे व्यवहृत करेंगे जिस सद्भावसे सरकारने उसे भारतीय जनताके सम्मुख उपस्थित किया है। अन्तमें यह बता देना उपयुक्त होगा कि भारतमन्त्रीने यह वचन दिया है कि नये भारत शासन-विधानके स्वीकृत होनेके पूर्व यदि भारतके विभिन्न सम्प्रदाय एकमत होकर इससे भिन्न कोई आम समझौता कर लेंगे तो भारतमन्त्री उसे सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।'

ब्रिटिश सरकार अवश्य ही इस मामलेमें 'सर्वथा उदासीन' है ! तभी तो उसने सर्वत्र हिन्दुओंको दण्ड देनेका निश्चय किया, बङ्गालमें उनका अल्पमत होते हुए भी उनका प्रतिनिधित्व कम कर दिया और उनके मामलेमें मुसलमानोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कटौती कर दी और वह इसलिए कि यूरोपियनोंको २५०००० प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिल सके। इसी उदासीनताके कारण पञ्जाबमें सिखोंको उतने स्थान नहीं दिये गये जितने मुसलमानोंको अन्य प्रान्तोंमें दे दिये गये और इसीसे मुसलमानोंको पृथक् निर्वाचन ही नहीं दिया गया अपितु उनके लिए स्थान भी सुरक्षित कर दिये गये, और ऐसा उन प्रान्तोंमें भी किया गया जहाँ मुसलमान बहुमतमें थे ! इस प्रकार ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेके उपरान्त, जिसमें किसी भी प्रकारका साम्प्रदायिक समझौता सर्वथा असम्भव है, सरकारने यह वादा कर दिया कि वह ऐसे किसी भी समझौतेको सहर्ष स्वीकार कर लेगी जो सभी सम्प्रदाय आपसमें मिलकर कर लेंगे।

१९३५ के कानूनमें जहाँतक ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंका प्रश्न है, उक्त कानून देशी रियासतोंके प्रति अधिक उदार है और उसने यह उदारता ब्रिटिश भारतकी बलि चढ़ाकर प्रदर्शित की है। देशी रियासतोंमें कुल भारतकी जनसंख्याकी २३ प्रतिशत आबादी है किन्तु उनके शासकोंको सङ्घकी असेम्बलीमें ३३ प्रतिशत और कौंसिलमें ४० प्रतिशत मत देनेका अधिकार दिया गया है। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि सङ्घ असेम्बलीमें प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार देशी रियासतोंकी प्रजाको न होकर शासकोंको है। इस भाँति सङ्घकी असेम्बलीमें ३३ प्रतिशत स्थान देशी नरेशोंद्वारा नामजद करानेकी प्रथा बना रखी गयी है। एक हाथसे दी जानेवाली वस्तु दूसरे हाथसे छीन लेनेका इससे सुन्दर उपाय और क्या हो सकता है ?

इतना होनेपर भी, साम्प्रदायिक निर्णयके उपरान्त भी भारतमें साम्प्रदायिक समझौतेके लिए एक प्रयत्न किया गया। वह लगभग पूरा भी हो चला था कि ब्रिटिश सरकारने पुनः उसमें हस्तक्षेप कर उसे असम्भव बना दिया। निम्नलिखित घटनाक्रमसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। १६ अगस्त १९३२को

साम्प्रदायिक निर्णयकी घोषणा की गयी। महात्मा गान्धीके अनशन तथा पूना समझौतेके अनुसार हरिजनोंवाले अंशमें संशोधन होनेके उपरान्त पण्डित मालवीय और मौलाना शौकतअलीके बीच सर्वसम्मत साम्प्रदायिक निर्णय तैयार करनेकी बातचीत चली। आरम्भिक वार्ता अत्यन्त आशाजनक प्रतीत हुई। ६ अक्तूबर १९३२ को मौलाना शौकतअलीने वाइसरायसे अपील की कि वे इस वार्तामें सहायता पहुँचानेके लिए या तो महात्मा गान्धीको जेलसे मुक्त कर दें अथवा इस सम्बन्धमें उनसे बातचीत करनेकी सुविधा प्रदान करें। ७ अक्तूबर १९३२को मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलनके अध्यक्षकी ओरसे एक वक्तव्य प्रकाशित किया गया जिसमें यह बात कही गयी कि पृथक् अथवा संयुक्त निर्वाचनका प्रश्न नये सिरेसे खड़ा करनेके लिए यह अवसर सर्वथा अनुपयुक्त है और मुस्लिम सम्प्रदाय इस संरक्षणका त्याग करनेके लिए प्रस्तुत नहीं है; किन्तु यदि बहुमतवाला सम्प्रदाय अपनी ओरसे ऐसी वार्ता चलाये जिसमें सभी महत्वकी समस्याओंपर विचार हो तो ऐसे निश्चित प्रस्तावोंपर विचार करनेके लिए मुस्लिम सम्प्रदाय प्रस्तुत है। यह वक्तव्य शिमलासे प्रकाशित हुआ। ९ अक्तूबरको वाइसरायके प्राइवेट सेक्रेटरीने मौलाना शौकतअलीके तारके उत्तरमें उन्हें लिखा कि 'आप जो कार्य करनेकी बात सोच रहे हैं उसके लिए आपको सबसे पहले स्वयं इस बातका निश्चय कर लेना होगा कि मुस्लिम सम्प्रदाय आमतौरसे आपके साथ है। इस सम्बन्धमें आपका ध्यान उस वक्तव्यकी ओर आकर्षित किया जा रहा है जो गत ७ अक्तूबरको अखिल भारतीय मुस्लिम सम्मेलनके अध्यक्ष तथा अन्य लोगोंकी ओरसे प्रकाशित किया गया है।'* यहाँ इस बातकी ओर ध्यान दिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि वाइसरायके प्राइवेट सेक्रेटरीने मौलाना शौकतअलीके ६ अक्तूबरके तारका तबतक कोई उत्तर नहीं दिया जबतक ७ अक्तूबरको मुस्लिम सर्वदलीय सम्मेलनका वक्तव्य प्रकाशित नहीं हो गया, जिसका कि उल्लेख उन्होंने ९ अक्तूबरको भेजे गये अपने उत्तरमें

---

* 'ऐनुअल रजिस्टर' १९३२, भाग २, पृष्ठ २८१–२८२.

किया ही। २६ अक्तूबरको मौलाना शौकतअलीने अपना अनुरोध पुनः दोहराया और वाइसरायसे निवेदन किया कि वे सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंपर अपना प्रभाव डालकर ऐसा प्रयत्न करें जिससे सबमें समझौता हो जाय, इससे सभीका हित होगा। इसका उत्तर तत्काल, दूसरे ही दिन २७ अक्तूबरको मिला। उसमें कहा गया था कि गान्धीजो सविनय अवज्ञा आन्दोलनसे जबतक स्पष्टतः अपनेको पृथक् नहीं कर लेते तबतक यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया जा सकता। तब यह अनुरोध किया गया कि गान्धीजीसे मुलाकातकी ही सुविधा प्रदान कर दी जाय पर उसका भी यही उत्तर मिला कि २७ अक्तूबरवाले उत्तरसे यह बात स्पष्ट है कि गान्धीजीसे मुलाकातोंकी भी सुविधा नहीं दी जा सकती।

सरकारी रुखसे हतोत्साह न होकर १६ अक्तूबरको लखनऊमें सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलनका आयोजन किया गया। उसमें सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसमें हिन्दुओं तथा सिखोंके प्रतिनिधियोंसे परामर्श करनेके लिए सम्मेलनकी एक समिति नियुक्त करनेके पण्डित मालवीयके प्रस्तावका स्वागत किया गया और वस्तुतः साम्प्रदायिक समस्याका सर्वसम्मत हल खोजनेके उद्देश्यसे एक समिति सङ्गठित भी कर ली गयी। ३ नवम्बर १९३२ को प्रयागमें ऐक्य सम्मेलनकी बैठक आरम्भ हुई। इसमें ६३ हिन्दू, ११ सिख, ३९ मुसलमान और ८ भारतीय ईसाई सम्मिलित हुए। सम्मेलनने समझौता करने और रिपोर्ट देनेके लिए दस व्यक्तियोंकी एक समिति नियुक्त कर दी। इस समितिको बैठकें प्रतिदिन होने लगीं और इसने ऐसी अनेक बातोंपर कितने ही प्रस्ताव स्वीकृत किये जिनपर मतभेद होने या हो सकनेकी सम्भावना थी। यहाँतक कि बङ्गाल और पञ्जाबके सबसे अधिक विवादास्पद प्रश्नपर भी, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एक समझौता हो गया। हिन्दू संयुक्त निर्वाचन पद्धतिद्वारा मुसलमानोंके लिए ५१ प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखनेके लिए प्रस्तुत हो गये। अवशिष्ट अधिकार केन्द्रमें रहें अथवा सङ्घकी विभिन्न इकाइयोंके हाथमें, इस प्रश्नपर भी सर्वसम्मत उपाय खोज लिया गया जिससे सभी दल सन्तुष्ट हो गये। संयुक्त निर्वाचन-पद्धति भी स्वीकार कर ली गयी थी परन्तु उसमें यह शर्त थी कि उम्मेदवारको

अपने सम्प्रदायके कमसे कम ३० प्रतिशत मत प्राप्त करने होंगे अन्यथा उनके स्थानपर वे उम्मेदवार चुने जायँगे जिन्हें अपने सम्प्रदायके सबसे अधिक मत प्राप्त होंगे। केन्द्रीय असेम्बलीमें मुस्लिम प्रतिनिधित्वका प्रश्न भी हल हो गया था। वहाँ ३२ प्रतिशत प्रतिनिधित्व स्वीकार कर लिया गया था। दोनों दल स्थान स्थानपर झुक गये थे और दूसरे दूसरे स्थानोंपर उन्हें उसके बदलेमें अधिक लाभ मिल गया था।

बस एक ही प्रश्न रह गया था जिसपर केवल हिन्दुओं और मुसलमानोंका समझौता ही पर्याप्त नहीं था। वह प्रश्न था बङ्गालमें यूरोपियनोंको अत्यधिक स्थान देनेका। हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधियोंके समझौतेके अनुसार बङ्गालमें इन दोनों सम्प्रदायोंने मिलकर कुल ९५.७ प्रतिशत स्थान लेनेका निश्चय किया था। उस स्थितिमें यूरोपियनोंको १० प्रतिशत स्थान नहीं मिल सकते थे। अतः यह निश्चित हुआ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कलकत्ते जाकर यूरोपियनोंसे इस विषयमें विचारविमर्श करें। इतनी काररवाईके उपरान्त सम्मेलनका प्रयागवाला अधिवेशन समाप्त हुआ।

पाठकोंको स्मरण होगा कि साम्प्रदायिक निर्णयमें केन्द्रीय असेम्बलीमें मुस्लिम प्रतिनिधित्वकी बात भविष्यमें निर्णय करनेके लिए छोड़ दी गयी थी तथा सिन्धके विषयमें यह कहा गया था कि यदि उसकी आयके समुचित साधन निकल आयेंगे तो वह पृथक् प्रान्त बना दिया जायगा। जिस समय पण्डित मालवीयजी अन्य मुस्लिम प्रतिनिधियोंके साथ यूरोपियनोंके प्रतिनिधित्वकी समस्या हल करनेके लिए कलकत्ते जा रहे थे, ठीक उसी समय समाचारपत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित हुआ कि सर सेमुएल होरने यह घोषणा की है कि ब्रिटिश सरकारने केन्द्रीय असेम्बलीमें ब्रिटिश भारतीय स्थानोंमें ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत स्थान मुसलमानोंको देनेका निश्चय किया है। उसने सिन्धको केवल पृथक् प्रान्त बनानेका ही नहीं, केन्द्रीय सरकारसे पर्याप्त आर्थिक सहायता दिलानेका भी निश्चय किया है। इस प्रकार ऐन मौकेपर सर सेमुएल होरकी घोषणाने उस ऐक्य सम्मेलनके सारे प्रश्नोंपर पानी फेर दिया था, जिसकी सप्ताहों बैठक हुई

थी और बड़ी कठिनाईसे जिसने सभी प्रश्नोंको हलकर हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों तथा अन्य भारतीय सम्प्रदायोंमें सर्वसम्मत समझौता करा पाया था। ऐसी स्थितिमें किसी सर्वसम्मत समझौतेकी आशा करना सर्वथा व्यर्थ था जबकि यह स्पष्ट हो गया कि किसी भी सर्वथा उचित और सङ्गत समझौतेमें अड़ङ्गा लगानेके लिए एकाध दल सदैव प्रस्तुत बना रहेगा और ब्रिटिश सरकार ऐसे ऊँचीसे ऊँची बोलीपर गिरनेवाले दलको न्यायोचित समझौतेसे भी अधिक अच्छी शर्तें देनेके लिए सदा प्रस्तुत है।

---

(१०)

अन्तरका विस्तार

हमलोगोंने देखा है कि साम्प्रदायिक निर्णयने दलित जातियोंके लिए भी अलग प्रतिनिधित्व और जगहें सुरक्षित कर दी थीं। इस निर्णयमें पूना समझौता-के बाद सुधार हुआ। पूना समझौतेका आधार महात्मा गान्धीका ऐतिहासिक उपवास था। इस समझौतेके अनुसार दलित जातियोंको उससे कहीं अधिक जगहें मिलीं, जितनी उनके लिए साम्प्रदायिक निर्णयद्वारा सुरक्षित थीं और जिनकी चुनावके विशेष तरीकेद्वारा पूर्त्ति की जानेवाली थी। पूना समझौतेका आधार ब्रिटिश प्रधानमन्त्रीकी यह घोषणा थी कि यदि वे दल जिनका साम्प्र-दायिक निर्णयसे किसी तरहका सम्बन्ध हो, नये शासन-विधानके निर्णयके पहले आपसमें किसी तरहका समझौता कर लें तो वह शासन-विधानके लिए मान्य होगा। इलाहाबादमें जो एकता सम्मेलन हुआ था उसका यही उद्देश्य था कि मुसलमानों तथा भिन्न भिन्न जातियोंमें समझौतेद्वारा साम्प्रदायिक निर्णयमें सुधार करा दिया जाय। हमलोगोंने देखा कि ऐन मौकेपर जब सफलता सामने दीख पड़ती थी, वह भङ्ग हो गया। इससे हिन्दुओं और सिखोंका विरोध

किसी भी प्रकार शान्त नहीं हो सका । एक ओर तो इनका विरोध उत्तरोत्तर उग्ररूप धारण कर रहा था और दूसरी ओर शासन-सुधारका काम अबाध गतिसे आगे बढ़ रहा था । ब्रिटिश सरकारने साफ कह दिया था कि भारतकी भिन्न भिन्न जातियोंमें यदि समझौता न भी हुआ तो भी शासन-सुधारका काम नहीं रुकेगा । तदनुसार अगस्त १९३२में उसने साम्प्रदायिक निर्णयकी घोषणा भी कर दी । लेकिन शासनसुधार बिल स्वीकृत करानेमें उसे तीन साल लग गये । १९३५ के जूनमें यह पूरा हुआ इस बीच कांग्रेस दूसरी अग्निपरीक्षासे निकल चुकी थी । उसने अपना मत स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट किया । दोनों जातियों—हिन्दू और मुसलमान—में मतभेद होनेके कारण साम्प्रदायिक निर्णयको न तो उसने स्वीकार ही किया और न अस्वीकार ही । यह निर्णय १९३४में बम्बईकी बैठकमें हुआ था । इससे कुछ ही दिन बाद केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाका चुनाव हुआ और कांग्रेसकी इस तटस्थताकी नीतिको उसपर आक्रमण करनेका साधन बनाया गया । इतनेपर भी अधिकांश प्रान्तोंमें कांग्रेसको चुनावमें सफलता मिली । बङ्गालके सदस्योंको यह सुविधा दे दी गयी थी कि अन्य विषयोंमें कांग्रेसका आदेश पालन करते हुए साम्प्रदायिक निर्णयके सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करनेके लिए वे स्वतन्त्र हैं । साम्प्रदायिक निर्णयके कारण वाद-विवाद उत्पन्न होने तथा ब्रिटिश सरकारकी नीतिके कारण परस्पर वैमनस्य खूब बढ़ा । १९३५ में कांग्रेसके अध्यक्षने मुस्लिम लीगके अध्यक्षसे भेंट की और किसी निर्णयपर पहुँचनेका यत्न किया, लेकिन सफलता नहीं मिली ।

जून १९३५ में भारत शासन-विधान स्वीकृत हुआ । १९३६-३७ के जाड़ेमें नये शासन-सुधारके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंका चुनाव हुआ । १९३६ के अप्रैलमें मुस्लिम लीगका अधिवेशन बम्बईमें हुआ । इस अधिवेशनमें इस आशयका प्रस्ताव पास हुआ कि ब्रिटिश सरकारको कोई अधिकार नहीं है कि वह भारतीय जनताकी इच्छाके विरुद्ध कोई भी शासन-सुधार उसपर लादे ; तो भी उसमें जो भी उपयोगी बातें हैं उन्हें दृष्टिमें रखते हुए उनपर अमल किया जाय । यद्यपि इसमें इस तरहकी बाधाएँ हैं जिससे मन्त्रिमण्डल तथा

व्यवस्थापककी जिम्मेदारियाँ नगण्य हो जाती है। साथ ही सङ्घशासनका घोर विरोध किया गया। कहा गया कि सङ्घशासन अनुदार, प्रतिक्रियावादी, तथा हानि-कर है और ब्रिटिश भारतीय जनता एवं देशी नरेशोंके स्वार्थोंका घातक है— स्वाधीनता प्राप्त करनेकी भारतीयोंकी आकांक्षाके मार्गमें सबसे बड़ा बाधक है। भारतके कल्याणकी दृष्टिसे यह किसी भी तरह ग्राह्य नहीं हो सकता। स्मरण रखनेकी बात है कि भारतके स्वायत्त शासनकी प्राप्तिके मार्गमें सङ्घशासनको बहुत बड़ा बाधक समझकर ही उसकी निन्दा की गयी। भारतके कल्याणको दृष्टिसे भी वह ग्राह्य नहीं हो सकता था, नकि इसलिए कि सङ्घशासनका निर्माण अथवा अन्य किसी प्रकारसे वह मुसलमानोंके हितोंको हानि पहुँचाने-वाला था। इसके बाद लीगने पार्लमेण्टरी बोर्ड बनाया। इसने जो घोषणापत्र जारी किया उसीके आधारपर लीग चुनाव लड़ी। उस घोषणापत्रमें कहा गया था—"भिन्न भिन्न व्यवस्थापक सभाओंमें हमारे प्रतिनिधि जिन सिद्धान्तोंके आधारपर काम करेंगे वे निम्न प्रकार होंगे:—

(१) यह कि वर्तमान प्रान्तीय शासनविधान तथा प्रस्तावित केन्द्रीय शासन-विधानके स्थानपर शीघ्रातिशीघ्र उदारपूर्ण स्वायत्त शासन स्थापित किया जाय।

(२) यह कि भिन्न भिन्न व्यवस्थापक सभाओंके लीगी प्रतिनिधि राष्ट्रीय जीवनके विविध अङ्गोंकी पूर्तिके लिए तबतक व्यवस्थापक सभाओंके प्रयोग करेंगे जबतक वे उससे अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे। जबतक कि पृथक् निर्वाचन प्रणाली कायम रहती है तबतक मुसलमान प्रतिनिधियोंका अलग दल रहेगा। लेकिन दलका उद्देश्य मुस्लिम लीगके उद्देश्यके समान होगा उसके साथ लीगके प्रतिनिधि सहयोग करनेके लिए पूर्ण स्वतन्त्र होंगे।" घोषणापत्रमें जो कार्यक्रम दिया गया था उसमें मुख्यतः मुसलमानोंके लिए दो ही धाराएँ थीं:—(१) मुसलमानोंके धार्मिक अधिकारोंकी रक्षा, तथा (२) मुसलमानोंकी साधारण अवस्थाके सुधारका यत्न। इनके अलावा अन्य जो बातें थीं उनका सम्बन्ध बिना किसी धार्मिक भेद भावके सर्वसाधारणसे था; जैसे,

दमनकारी कानूनों, भारतीयोंकी आकांक्षाओंके प्रतिरोधक, नागरिक स्वतन्त्रताके बाधक तथा देशका आर्थिक शोषण करनेवाले कानूनोंका अन्त, शासन और सेनाके व्ययमें कमी, राष्ट्रीय निर्माण-कार्य तथा औद्योगिक उन्नतिके लिए अधिक धनकी स्वीकृति, देशके हितकी दृष्टिसे करेन्सी और एक्सचेञ्जकी नीतिका निर्धारण और देहातोंका उत्थान। चुनावमें या तो लीगने सभी प्रान्तोंकी मुस्लिम सीटोंके लिए उम्मेदवार नहीं खड़े किये या हार गयी। इसके प्रतिकूल कांग्रेसने प्रायः सभी गैर-मुस्लिम सीटों तथा चन्द मुस्लिम सीटोंके लिए उम्मेदवार खड़े किये। चुनावका निम्नलिखित परिणाम हुआः—

प्रान्त	कुल सीटें	कांग्रेसने जीता	कुल मुस्लिम सीटें	लीगने जीता	दूसरे मुसलमानोंने जीता
मद्रास	२१५	१५९	२८	११	१७
बम्बई	१७५	८६	२९	२०	९
बंगाल	२५०	५४	११७	४०	७७
संयुक्त प्रान्त	२२८	१३४	६४	२७	३७
पंजाब	१७५	१८	८४	१	८३
बिहार	१५२	९८	३९	०	३९
मध्यप्रान्त	११२	७०	१४	०	१४
सीमाप्रान्त	५०	१९	३६	०	३६
आसाम	१०८	३३	३४	९	२५
उड़ीसा	६०	३६	४	०	४
सिन्ध	६०	७	३६	०	३६
	१५८५	७१४	४८५	१०८	३७७

इस तालिकासे स्पष्ट है कि पाँच प्रान्तोंमें कांग्रेसका बहुमत था। बम्बई और सीमाप्रान्तमें कतिपय स्वतन्त्र दलके उम्मेदवारोंने चुने जानेके बाद कांग्रेसका साथ दिया।

इस तरह उन प्रान्तोंमें भी कांग्रेसका बहुमत हो गया और वह अपना मन्त्रिमण्डल बना सकी। जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंकी जनसंख्या अधिक है उन प्रान्तोंमें भी लीगको बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। जैसे बंगाल, पंजाब, सीमाप्रान्त तथा सिन्धमें भी लीगको बहुमत नहीं प्राप्त हो सका। इसलिए वह मुस्लिम या गैर-मुस्लिमके अन्य दलोंकी सहायता बिना लीगी मन्त्रिमण्डल नहीं बना सकती थी। चार प्रान्तोंमें तो लीगको एक भी सीट नहीं मिली। पंजाबमें केवल एक सीट मिली। जब मन्त्रिमण्डल बनानेका समय आया तो कांग्रेसने यह कहकर इन्कार कर दिया कि जबतक सरकारकी ओरसे यह आश्वासन नहीं मिलता कि अपने हस्तक्षेपके विशेषाधिकारका प्रयोग गवर्नर नहीं करेंगे और वैधानिक मामलोंमें अपने मन्त्रियोंकी सलाहको अस्वीकार नहीं करेंगे तबतक कांग्रेस मन्त्रिमण्डल संगठित करनेके लिए तैयार नहीं है। चूँकि गवर्नरोंने आवश्यक आश्वासन नहीं दिया इसलिए कांग्रेसने पद ग्रहण नहीं किया। जिन बातोंके लिए कांग्रेस आश्वासन माँग रही थी उनका सम्बन्ध गवर्नरकी खास जिम्मेदारियोंसे था अर्थात् वे मामले जिनके बारेमें अपने मन्त्रियोंसे सलाह लिये बिना ही गवर्नर अपना निर्णय दे सकता था अथवा वे मामले जिनके बारेमें अपने मन्त्रियोंसे सलाह लेनेके बाद भी वह अपना स्वतन्त्र निर्णय दे सकता था। गवर्नरकी कुछ जिम्मेदारियोंको एकत्र करके देखा जाय तो सर सेमुएल होरके शब्दोंमें शासनका सम्पूर्ण क्षेत्र उसके अन्दर आ जाता है जैसे प्रान्तकी शान्तिको खतरेमें डालनेवाली व्यवस्थाका रोकना, अल्पसंख्यक समुदायके वास्तविक स्वार्थोंकी रक्षा, पबलिक सर्विसके सदस्यों और उनके आश्रितोंके अधिकारों और उचित स्वार्थों, चाहे वे जो भी हों—की रक्षा, शासनके क्षेत्रमें रोकटोक, ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश कारबारके प्रति विशेष व्यवहार, आंशिक सुरक्षित क्षेत्रोंके सुशासन तथा शान्तिकी व्यवस्था, देशी राजों तथा उनके शासकोंके अधिकारोंकी रक्षा और बड़े लाटके आदेशों और आज्ञाओंका अपने विचारके अनुसार पालन।*

---

* चिन्तामणि एण्ड मसानी—इण्डियाज कान्स्टिट्यूशन ऐट वर्क पृष्ठ ९१-९२

अल्पसंख्यकोंके उचित स्वार्थोंकी रक्षाका प्रश्न ही एक ऐसी बात है जो शासनके सम्पूर्ण क्षेत्रको घेर लेती है और मुसलमानोंको छोड़कर भी अल्पसंख्यक समुदायमें ब्रिटिश जनता तथा अन्य अनेक अल्प समुदाय आ जाते हैं। इतने-पर भी भारतमन्त्री लार्ड जेटलैण्डने यह कहते हुए कि शासन-विधानमें संशोधन किये बिना इस तरहका कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता, उस अवस्थाको उदाहरणके रूपमें पेश किया जो उस हालतमें उत्पन्न हो सकती थी यदि कांग्रेस मन्त्रिमण्डल अल्प समुदायके स्वार्थके विरुद्ध आचरण करे। आपने कहा— "अल्प-संख्यक समुदायके स्कूलोंकी संख्या घटा देना कांग्रेसके मन्तव्यके भीतर ही होगा क्योंकि वह वैधानिक होगा। और वैधानिक कार्यके बाहर उसकी गिनती नहीं हो सकेगी। इस तरह गवर्नर अल्प-संख्यकोंकी रक्षा नहीं कर सकेंगे। पार्लमेण्ट इस बातको समझती थी कि इस तरहकी कारवाइयाँ विधानके अन्दर हो सकती हैं इसलिए उसने संरक्षण लगा दिये।"* अल्पसंख्यक समुदायका हवाला देना स्पष्ट मतलब रखता था और उसका पूरा असर भी हुआ। कांग्रेसने यह आश्वासन केवल कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके लिए नहीं माँगा था। अन्य प्रान्तोंके बहुसंख्यक दल भी कांग्रेसकी इस माँगका समर्थन कर सकते थे और इस तरह वैधानिक कार्योंमें गवर्नरोंके हस्तक्षेपसे मन्त्रियोंको बहुत अंशतक स्वतन्त्र कर सकते थे। लेकिन उन लोगोंने साथ नहीं दिया और बिना किसी आश्वासनके मन्त्रिमण्डलका सङ्गठन कर लिया। इसके बाद जो वादविवाद चला उससे इतना तो स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस-मन्त्रियोंके कामोंमें आसानीसे और बार बार हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। राजनीतिक जीवनके ये विचित्र अनुभव हैं जहाँ अविवेककी प्रधानता दिखाई देती है। आश्वासनकी यह माँग सभी मन्त्रिमण्डलोंके लिए समानरूपसे थी तो भी यह कहा गया कि यह माँग केवल कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके लिए है। भारतमन्त्रीने इस बातपर विशेष जोर दिया कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल अपने अधिकारोंका प्रयोग अल्पसंख्यक

---

* चिन्तामणि एण्ड मसानी—इण्डियाज कान्स्टिट्यूशन ऐट वर्क—पृ० १०६।

समुदायोंके स्वार्थोंके विरुद्ध कर सकता है और लीगने भी इसे स्वीकार कर लिया कि इसी हेतु आश्वासन माँगा जा रहा है। लीग इससे भी आगे बढ़ गयी। लीगके हिमायतियोंने यहाँतक कहना शुरू किया कि कांग्रेस इसलिए आश्वासन चाहती है कि वह अपने अधिकारोंका दुरुपयोग कर मुसलमानोंको सतावे। लीगके हिमायतियोंने यहाँ एक बात तो सामने रखी और शासनकी अन्य बातें जिनके लिए आश्वासन माँगा जा रहा था, पर्देकी ओटमें कर दी। जहाँ जहाँ जरूरत पड़ी कांग्रेस मन्त्रिमण्डलने त्यागपत्र देकर अथवा त्याग-पत्रकी धमकी देकर गवर्नरोंको उनकी सलाह मानकर काम करनेके लिए बाध्य किया लेकिन इस तरहके एक भी ऐसे अवसर नहीं बतलाये जा सकते जहाँ कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलने अल्पसंख्यक समुदायके स्वार्थोंको हानि पहुँचानेके लिए इस तरहकी धमकीसे गर्वनरोंको बाध्य करनेका यत्न किया हो। वाद-विवादके फलस्वरूप आगे चलकर १९३७ के जुलाई मासमें कांग्रेसने मन्त्रिमण्डल बनानेका निश्चय किया। प्रश्न यह उठा कि लीगको साथ लेकर वह संयुक्त मन्त्रिमण्डल कायम करे। जिन प्रश्नोंमें लीगके एक भी सदस्य व्यवस्थापक सभाओंमें नहीं थे, वहाँ लीग को साथ लेनेका प्रश्न ही नहीं उठता था, जैसे बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त। बम्बई और संयुक्तप्रान्तमें इसके लिए यत्न किया गया लेकिन फल कुछ नहीं हुआ। कांग्रस एक निश्चित ध्येय और उद्देश्य लेकर व्यवस्थापक सभामें गयी थी। इसलिए जो लोग उस उद्देश्य और कार्यक्रमको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे उनके सहयोगसे मन्त्रिमण्डल संघटित करना कांग्रेसने मतदाताओं-के प्रति विश्वासघात समझा।

कांग्रेसका कार्यक्रम भी ऐसा नहीं था जिसका साम्प्रदायिक आधारपर विरोध किया जाता। यद्यपि कार्यक्रमके कुछ अंशोंपर सभी मत और धर्मवालोंका सामूहिक मतभेद हो सकता था। तात्पर्य यह है कि कांग्रेसका कार्यक्रम साम्प्र-दायिक कार्यक्रम नहीं था जिससे मुसलमानोंसे किसी तरहका मतभेद होता। कांग्रेसका कार्यक्रम पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक था और इस कार्यक्रमको जिन मुसलमानोंने अपनाया वे महज उसके कारण गैर-मुसलमान नहीं हो गये।

स्वभावतः कांग्रेसने उन मुसलमानोंकी अपेक्षा जिन्होंने इस कार्यक्रमको नहीं अपनाया, उन्हें ज्यादा पसन्द किया जिन्होंने इसे अपनाया। कांग्रेसने इस वैधानिक सिद्धान्तपर अटल रहना निश्चय किया कि मन्त्रिमण्डल मेल खानेवाले तत्वोंसे ही बनाया जाना चाहिए। इसलिए उसने मन्त्रिमण्डलमें उन्हीं लोगोंको रखा जिनका कांग्रेस कार्यक्रममें विश्वास था। इसमें मुसलमान भी शामिल थे। उसने उन्हीं मुसलमानोंको मन्त्रिमण्डलमें शामिल किया जो कांग्रेस-दलके थे। यही कांग्रेसका सबसे बड़ा अपराध था। लार्ड जेटलैण्डने जिस बातकी ओर संकेत किया था उसका कांग्रेसके विरुद्ध प्रचारके लिए पूरा उपयोग किया गया। मन्त्रिमण्डलमें मुसलमानों तथा अन्य दल संरक्षक समुदायोंको उनके अनुपातसे ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया गया। ११ प्रान्तोंमें कुल मिलाकर ७१ मन्त्री थे। इनमें २६ मुसलमान १० अन्य अल्प-संख्यक समुदाय तथा ३५ हिन्दू थे। जिन प्रान्तोंमें कांग्रेस मन्त्रिमण्डल था उनमें कुल ३५ मन्त्री थे। इनमें ६ मुसलमान, ५ अन्य अल्प-संख्यक समुदामके मन्त्री थे। आगे चलकर कांग्रेसने दो प्रान्तोंमें संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाया। इससे मुस्लिम मन्त्रियोंकी संख्या और भी बढ़ गयी। सीमाप्रान्तमें प्रधानमन्त्री डाक्टर खाँ साहबको लेकर चार मन्त्री थे। इनमें तीन मुसलमान थे। आसाममें सातमेंसे तीन मुसलमान और पाँच गैर-मुसलमान मन्त्री थे। ये आँकड़े लीगी प्रचारकोंकी झुठाई प्रत्यक्ष साबित कर देते हैं।*

१९३७ की जुलाईके मध्यमें कांग्रेसने पद ग्रहण किया। कांग्रेस मुश्किलसे आठ महीनेतक अधिकारपर रही होगी कि ३० मार्च १९३८को अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी कौंसिलने इस आशयका प्रस्ताव पास किया कि केन्द्रीय कार्यालयमें इस तरहकी अनेक शिकायतें पहुँची हैं कि कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें मुसलमानों, खासकर लीगके कार्यकर्ताओंको अनेक तरहसे सताया और तङ्ग किया जा रहा है। इसलिए लीगकी यह कौंसिल निम्नलिखित

---

* अशोक एण्ड पटवर्धन—कम्यूनल ट्रिएंगिल, पृ० ११४।

सदस्योंकी एक जाँच-समिति बनाती है जो आवश्यक जाँच कर सामग्री संग्रह कर उचित काररवाई करे और समय समयपर कौंसिलको रिपोर्ट देती रहे। इस कमेटीके अध्यक्ष बीरपुरके राजा साहब थे। इसने १५ नवम्बर १९३८ को अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्टमें जो शिकायतें की गयी थीं उनका विस्तृत विवेचन करना सम्भव नहीं है। यहाँ इतना ही कह देना उचित होगा कि रिपोर्टके प्रकाशित होनेपर कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंने उनकी छानबीन की और विज्ञप्तिके रूपमें विस्तृत उत्तर दिया। कुछ शिकायतोंपर तो व्यवस्थापिका सभाओं-तकमें बहस हुई। इन अभियोगोंके स्वतन्त्र जाँचकी कसौटीपर नहीं कसने दिया गया। श्री फजलुलहकने जो उस समय लीगके प्रधान सदस्य थे पण्डित जवाहरलाल नेहरूको खुला चैलेंज दिया। पण्डितजीने उनका चैलेंज स्वीकार किया और उनके साथ यात्रा कर उन अभियोगोंकी जाँच करनेके लिए तैयार हो गये; लेकिन श्री हक उसे पूरा करनेके लिए कभी खड़े नहीं हुए। १९३९ में मैं ही कांग्रेसका अध्यक्ष था। मैंने श्री जिनाको १९३९ के अक्तूबरमें लिखा कि कांग्रेस मन्त्रिमण्डलपर जो अभियोग लगाये गये हैं उनकी निष्पक्ष जाँच करायी जाय और उसके लिए मैंने फेडरल कोर्टके चीफ जस्टिस श्री मारिस ग्वायरका नाम भी पेश किया। लेकिन श्री जिनाने इसे कबूल नहीं किया। उत्तरमें उन्होंने लिख भेजाः—अब वह मामला बड़े लाटके हाथमें है। वही उपयुक्त व्यक्ति हैं जो उचित काररवाई कर सकते हैं और जिन प्रान्तोंमें कांग्रेस मन्त्रिमण्डल हैं उन प्रान्तोंके मुसलमानोंकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध कर सकते है। लेकिन न तो बड़े लाटने, न किसी प्रान्तके गवर्नरने और न स्वयं लार्ड जेटलैण्डने ही जो कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके जीवनकालतक भारतमन्त्री थे, मुसलमानों अथवा अन्य अल्पसंख्यक समुदायपर कांग्रेस मन्त्रिमण्डलद्वारा किये गये किसी अत्याचारका अभियोग लगाया। जहाँतक मुझे मालूम है न तो बड़े लाटने ही श्री जिनाद्वारा भेजे गये अभियोगोंकी जाँचकी और श्री जिनाने ही उस सम्बन्धमें बड़े लाटसे किसी तरहकी दोबारा लिखा पढ़ी की। आगे चलकर श्री जिनाने इन अभियोगोंकी जाँचके लिए रायल कमीशनकी माँग की लेकिन यह

भारत सरकारको कबूल नहीं हुआ इसलिए भाषण ज्योंका त्यों पड़ा रह गया। पद त्यागके पहले पार्लमेण्टरी बोर्डके आदेशसे प्रत्येक प्रान्तके कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलने अपने प्रान्तोंके गवर्नरोंसे पूछा था कि कांग्रेस मन्त्रिमण्डलने मुसलमानों अथवा अन्य अल्पसंख्यक समुदायोंके साथ जो ज्यादतियाँ की हैं उनका उल्लेख हो जाना चाहिए। लेकिन किसी प्रान्तके गवर्नर एक भी ऐसा उदाहरण पेश नहीं कर सके। अपने पदसे अलग हो जानेके बाद संयुक्तप्रान्तके गवर्नर सर हेरीहेगने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके विवेक और विचारपूर्ण नीतिकी प्रशंसा अवश्य की। सर हेग कभी भी कांग्रेसके हिमायती नहीं थे। इस तरह कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलपर लगाये गये अभियोग केवल कागजी रह गये जो कभी भी साबित नहीं किये जा सके। लेकिन वे लीगके प्रचारके प्रधान अङ्ग बन गये और लीगने उनका मनमाना उपयोग किया।

उस अभियोगकी मुख्य बातें यहाँ दे देना अनुचित नहीं होगा। दोनों प्रमुख सम्प्रदायोंके बीच कलहका एक कारण वन्देमातरम् राष्ट्रीयगान बतलाया गया है। वन्देमातरम् गीत १९ वीं सदीके अन्तिम भागमें बनाया गया था। इस सदीके आरम्भिक कालतक यह गीत केवल बङ्गालमें ही नहीं, बल्कि अन्य प्रान्तोंमें भी सर्वप्रिय बना रहा। तबसे यह केवल कांग्रेसमें ही नहीं, बल्कि दूसरे जलसोंमें भी बराबर गाया जाता रहा है। स्वयं श्री जिना कमसे कम १५ सालतक कांग्रेसके प्रधान नेता थे और यह गीत वहाँ बराबर गाया जाता था। लेकिन तब उन्हें मुस्लिम दृष्टिकोणसे एतराजकी कोई बात उस गीतमें दिखाई नहीं पड़ी। खिलाफत आन्दोलनके समय यह अनेकों जलसोंमें गाया गया जब कांग्रसको मुसलमानोंका सहयोग उस तरहका प्राप्त था जैसा कभी नहीं हुआ। उस समय किसीने इसका विरोध नहीं किया। लेकिन कांग्रेस मन्त्रिमण्डलकी स्थापनाके बाद ही यह गीत मुस्लिम वैमनस्यका प्रधान कारण बन गया और इस अभियोगकी पहले पहल चर्चा भी पीरपुर रिपोर्टमें हुई। कांग्रेसने उस शिकायतको भी दूर करनेका यत्न किया और एतराजका शमन करनेके लिए उसने निश्चय किया कि उस गीतके केवल दो ही पद गाये

जायँ। इस तरह धार्मिक आधारपर जो एतराज हो सकता था उसे दूर कर दिया गया। तब यह कहा जाने लगा कि उस गीतके पीछे जो इतिहास है उसे मुसलमान नहीं भूल सकते। यह स्मरण रखनेकी बात है कि बङ्गालके बाहर कोई भी नहीं जानता था कि इस गीतके पीछे कौनसा इतिहास छिपा है जबतक कि इसे एतराजका कारण बनानेके लिए उसे प्रकट करनेका प्रयास नहीं किया गया।

दूसरा अभियोग तिरङ्गा झण्डा है। यह तिरङ्गा झण्डा उस समय प्रकट हुआ जब खिलाफत आन्दोलनके युगमें कांग्रेसको मुसलमानोंका सहयोग प्राप्त था। उस समय हिन्दू और मुसलमान दोनोंने इसे राष्ट्रीय झण्डाके रूपमें स्वीकार किया। वन्देमातरम् गीतकी तरह यह भी ब्रिटिश सरकारके कोपका भाजन बन गया क्योंकि दोनोंको उसने क्रान्तिका निशान माना और दोनोंको मटियामेट कर देना चाहा। इसलिए यह उन समस्त हिन्दुओं और मुसलमानोंका प्रिय पात्र बन गया जिन लोगोंको इसकी मर्यादाकी रक्षाके लिए जेल जाना पड़ा, लाठियाँ खानी पड़ीं और गोलीतकका शिकार होना पड़ा। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके सङ्गठनके पहले मुसलमानोंकी तरफसे कभी कोई एतराज इसके खिलाफ नहीं पेश किया गया। यहाँ यह भी बतला देना चाहिए कि हिन्दू इसे अपना भारतीय झण्डा नहीं मानते क्योंकि उनका झण्डा अलग ही है।

तीसरा अभियोग कांग्रेसका मुस्लिम जनसम्पर्कका प्रस्ताव है। कमसे कम पचीस वर्षोंसे कांग्रेसका कार्यक्रम सार्वजनिक आन्दोलन रहा है जो अनेक सत्याग्रह आन्दोलनोंसे प्रकट है। इसकी पुकारपर देशको आजाद करनेके लिए जनसाधारणने अनेक तरहकी यातनाएँ सही हैं। इन आन्दोलनोंमें मुसलमान भी शामिल रहे हैं और कष्ट झेले हैं। इन आन्दोलनोंका विस्तृत वर्णन यहाँ आवश्यक नहीं। यदि कांग्रेस मुस्लिम जनतातक देशकी दशाका सन्देश पहुँचाकर उन्हें जाग्रत करना चाहती है तो यह अपराध किस तरह हुआ, यह समझमें नहीं आता। जबतक यह न मान लिया जाय कि मुस्लिम लीगको छोड़कर अन्य किसी समाज या व्यक्तिको यह अधिकार ही प्राप्त नहीं है कि वह मुस्लिम

जनताके साथ सम्पर्क स्थापित करे और उनसे राजनीति या अर्थनीतिकी कोई बात करे। प्रत्येक देशके नागरिकको इस बातकी आजादी प्राप्त है कि वह अपना कार्यक्रम उस देशके जनसाधारणके सामने पेश करे। आशा तो यही की जाती है कि पाकिस्तानमें भी जनसाधारणको यह अधिकार उनसे छीना नहीं जायगा। कांग्रेस ही क्या कोई भी संस्था—चाहे वह राजनीतिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक या साम्प्रदायिक हो—अपने इस अधिकारका त्याग नहीं कर सकती और इसके विरुद्ध आवाज उठानेका यही मतलब हो सकता है कि विरोधी दल लोगोंको बोलने, लिखने और भाषणकी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता। साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन प्रणालीने साम्प्रदायिक आधारपर दोनों जातियोंको अलग कर दिया है। इसका प्रभाव साम्प्रदायिक और धार्मिक भेदभावपर जोर देना हुआ है। इसे मुसलमानोंने भी कबूल किया है और इसपर खुद लीगमें मतभेद उपस्थित हो गया था और श्री जिना उस दलके नेता थे जो साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन प्रणालीका विरोधी था। लेकिन लोगोंने उनका नेतृत्व स्वीकार नहीं किया। इससे उन्हें झुक जाना पड़ा। यदि कांग्रेस आज भी यही कहता है कि साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन प्रणाली गलत है तो उसे क्यों दोष दिया जाता है। लेकिन आज तो लीग यहाँतक कहनेके लिए तैयार हो गयी है कि साम्प्रदायिक पृथक् निर्वाचन प्रणाली तो क्या दूसरी जातियोंको यह भी अधिकार नहीं है कि वे मुसलमानोंके बीच किसी तरहका प्रचार कर सकें या उनसे सम्पर्क स्थापित कर सकें। यह माँग पृथक् निर्वाचन प्रणालीके दूषित प्रभावको पुष्टि ही प्रदान नहीं करती बल्कि मुसलमानोंको अल्प जातियोंके सम्पर्कमें आनेसे स्पष्ट रोकती है। यह स्थिति कैसे कबूल की जा सकती है। इसे तो नष्ट करना ही है।

दूसरी बात जो लीगके कोपका भाजन बनी वह है वर्धा बुनियादी तालीमकी योजना। उस योजनाका एकमात्र उद्देश्य यही है कि शिक्षाकी व्यवस्था पुस्तकोंद्वारा न होकर कला और कारीगरीद्वारा होनी चाहिए। पश्चिमके शिक्षा विशेषज्ञोंने इसी प्रणालीको अपनाया है और सार्जेण्ट योजनामें भी इसको आधारभूत माना गया है। इस योजनाको तैयार करनेवाली कमेटीके अध्यक्ष प्रसिद्ध शिक्षाविशेषज्ञ

डाक्टर जाकिर हुसेन थे, और उनके सहायक तथा सलाहकार थे ख्वाजा जी० सैयदैन। आप किसी समय अलीगढ़ युनिवर्सिटीमें प्रोफेसर थे और बादमें काश्मीर राज्यके शिक्षाविभागके डाइरेक्टर हो गये। यह समझना कठिन है कि जिस शिक्षाप्रणालीकी योजनाको दो मुसलमान शिक्षाविशेषज्ञोंने तैयार किया वह हिन्दुओंद्वारा मुस्लिम स्वार्थोंको धक्का पहुँचानेवाला कैसे हो सकता है। वर्धा-योजनामें एक ही दोष हो सकता है। वह यह कि इस विचारको महात्मा गान्धीने जनताके सामने रखा और उन्होंने ही कमेटी बिठायी। डाक्टर जाकिर हुसेनने दिल्लीके जामा मिलियामें इस प्रणालीको जारी कर दिया है और वहाँ इसी प्रणालीके अनुसार शिक्षा दी जा रही है। मुझे नहीं मालूम कि इसके अनुसार और भी कहीं शिक्षाकी व्यवस्था की गयी है, लेकिन पीरपुर रिपोर्टमें इसकी भी चर्चा है और कांग्रेसपर जो अभियोग लगाये गये हैं उनमें एक यह भी है। सबसे अधिक आपत्ति मध्यप्रान्तके विद्यामन्दिर योजनापर की गयी थी। १७ फरवरी १९३९ को मध्यप्रान्तके प्रीमियरने व्यवस्थापक सभाके मुसलमान सदस्योंकी एक बैठक बुलायी थी। उस बैठकमें लीगके मन्त्री नवाबजादा लियाकतअलीखाँको भी निमन्त्रण देकर बुलाया गया था। प्रधान मन्त्रीने विद्या-मन्दिर योजनाको समझाते हुए कहा था कि "इसका उद्देश्य बिना किसी तरहके साम्प्रदायिक भेदभावके देहातोंमें शिक्षाका प्रचार कर निरक्षरताको दूर करना है और इसका काम उदार दानियोंके चन्देद्वारा चलाया जायगा।" इसके लिए एक अलग संस्था कायम की गयी थी जिसकी बाजाब्ता रजिस्टरी करा ली गयी थी और सरकारद्वारा केवल सहायतामात्र इसे दिया जानेवाला था। उन्होंने यह भी कहा था कि "यदि मुसलमान भाई चाहें तो वे इस तरहकी अपनी अलग संस्था भी कायम कर सकते हैं। नवाबजादा लियाकतअलीने कहा था कि मुसलमानलोग इस संस्थाका नाम मदीनतुल-इल्म और योजनाका नाम मदीन-तुल प्रणाली रखेंगे। प्रधान मन्त्रीने कहा कि सरकारकी ओरसे जो सहायता विद्यामन्दिरको दी जायगी वही इस संस्थाको भी दी जायगी। मध्यप्रान्तकी व्यवस्थापक सभाके समस्त मुसलमान सदस्यों तथा लीगके मन्त्रीके साथ पूर्ण

सद्भावके साथ सारी बातोंपर विस्तारसे विचार विनिमय हुआ था और वह व्यवस्था तै पायी थी। राजीनामेपर मध्यप्रान्तके प्रधान मन्त्री और नवाबजादा लियाकत अलीखाँके हस्ताक्षर हुए थे। इसके फलस्वरूप जिन मुसलमानोंने इस योजनाके खिलाफ सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था, वे रोके गये और जिन सत्याग्रही मुसलमानोंपर मुकदमा चल रहा था वह उठा लिया गया। १९ फरवरीको इसपर सरकारी वक्तव्य भी प्रकाशित कर दिया गया। तो भी विद्यामन्दिर शिक्षा-योजनाने लीगके अभियोगोंकी तालिकामें स्थान प्राप्त कर ही लिया। जब श्री फजलुल हकने इस गड़े मुर्देको उखाड़ा तो मध्यप्रान्तके प्रधान मन्त्रीको मजबूर होकर नवाबजादा लियाकतअलीखाँकी आज्ञा लेकर वह शर्तनामा प्रकाशित करना पड़ा। २२ दिसम्बर १९३९ के नागपुरके हितवादमें वह प्रकाशित हुआ था। यह कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके पद त्याग करनेके एक मास बादकी घटना है।

कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके खिलाफ यह भी अभियोग है कि उनके समयमें हिन्दू मुस्लिम दंगे हुए। दुर्भाग्यकी बात है कि ये दंगे कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके पहलेसे ही होते आये हैं और उसके पद त्याग करनेके बाद भी होते रहे। यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जबसे इस देशमें मार्ले-मिण्टो शासन-सुधारके अनुसार पृथक् निर्वाचन प्रणालीका जन्म हुआ है तभीसे साम्प्रदायिक दंगे अधिकाधिक होने लगे हैं। प्रत्येक दंगेकी मीमांसा करना यहाँ सम्भव नहीं। अदालतमें तो उनका विवेचन हुआ ही होगा। श्री दुर्रानीने अपनी पुस्तकमें बरारके एक दंगेपर बहुत जोर दिया है जो कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके शासन-कालमें हुआ था। हाईकोर्टके फैसलेसे अवतरण देकर आपने उस प्रान्तके प्रधान मन्त्रीको फटकारते हुए लिखा है कि या तो उन्हें आत्महत्या कर लेनी चाहिए या मुँहमें कालिख पोतकर सार्वजनिक जीवनसे हट जाना चाहिए। इसलिए यहाँ उस मुकदमेका विवरण देना आवश्यक है। घटना यों है—एक प्रतिष्ठित हिन्दू मारा गया और कई घायल हुए। इसकी जाँच एक अंग्रेज डी० आई० जी० श्री टेलरकी देखरेखमें हुई। अभियुक्तोंकी दरख्वास्तपर मुकदमेका विचार जिला अदालतमें न होकर नागपुरमें हुआ। जिस सेशन जजके इजलासमें

यह मुकदमा था वह भी यूरोपियन था। श्री क्लार्क पुराने अनुभवी जज थे। इसके थोड़े ही दिन बाद वह नागपुर हाईकोर्टके जज बना दिये गये। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलके पद त्याग करनेके बाद उस मुकदमेपर विचार हुआ और पद त्यागके कई मास बाद सेशन जज तथा हाईकोर्टका फैसला हुआ। अदालतमें यह प्रतिदिनका धन्धा है कि एक अदालतका फैसला अपीलमे प्रायः टूट जाता है। इस मुकदमेमें भी यही हुआ। यही वहाँके प्रधान मन्त्रीके खिलाफ बहुत बड़ा अभियोग बताया गया। कहा जाता है कि उन्होंने उस समय कहीं भाषण दिया था जिसका प्रभाव जाँचपर पड़ा था। यह स्मरण रखनेकी बात है कि यह भाषण उस प्रान्तकी व्यवस्थापक सभामें एक काम रोको प्रस्तावके सिलसिलेमें दिया गया था। यह काम रोको प्रस्ताव उस मुकदमेके विवरणके लिए लाया गया था। घटनाके तीन दिन बाद ही यह प्रस्ताव असेम्बलीमें उपस्थित किया गया था और तबतक वह मामला किसी अदालतमें नहीं गया था। उस इलाकेमें सङ्गीन साम्प्रदायिक तनातनीका समाचार पाकर प्रधान मन्त्री वहाँ स्वयं गये थे और अपने साथ प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाके तीन मुसलमान सदस्योंको भी लेते गये थे। उनमेंसे एक उस प्रान्तकी मुस्लिम लीगके प्रधान मन्त्री श्री अब्दुर्रहमान खाँ थे। खाम गाँवके सार्वजनिक सभामें उन्होंने भी भाषण दिया था। प्रधान मन्त्रीके खिलाफ यह अभियोग है कि उन्होंने अपने भाषणमें यह कह दिया था कि यह निर्मम हत्या जान बूझकर की गयी है और इसके लिए पहलेसे ही तैयारी हो रही थी। ये बातें उन्होंने ऐसे समय कहीं जब जाँचका काम जारी था। व्यवस्थापक सभामें काम रोको प्रस्तावपर जो बहस हुई थी उसमें मुसलमान सदस्योंने भी इस हत्याकी निन्दा की थी। उसी 'काम रोको' प्रस्तावपर बहसके सिलसिलेमें श्री अब्दुर्रहमान खाँने प्रधान मन्त्रीके सम्बन्धमें निम्नलिखित प्रशंसात्मक बातें कही थीं। "खाम गाँवमें प्रधान मन्त्रीका भाषण सुनकर मैं बागबाग हो उठा था। क्या ही अच्छा होता यदि हमारे भाई उनकी भावनाके अनुसार काम करते और उनके विचारोंसे सबक लेते।"* हाईकोर्टने

*** मध्यप्रान्तीय व्यवस्थापक सभाकी कार्यवाही सन् १९३९ पृ० ३०७-३०८।**

अपने फैसलेमें जाँच करनेवाले अफसरके खिलाफ बातें लिखी थीं इसलिए उस प्रान्तकी सरकारने बम्बई हाईकोर्टके जज जस्टिस ए० एस० आर० मैकलिनको इस बातकी जाँच करनेके लिए नियुक्त किया कि पुलिसकी रिपोर्टमें जाँचकी काररवाईमें क्या गलती हुई है और इसकी जिम्मेदारी किसपर है। कहा जाता है कि मुसलमानोंके साथ दुर्व्यवहार और ज्यादती की जानेकी शिकायतें की गयी थीं। जस्टिस मैकलिनने लिखा है कि मध्यप्रान्तकी सरकारने इस मामलेको तुरत अपने हाथमें लिया और जिला मजिस्ट्रेट श्री हिलद्वारा जाँच करवायी। लेकिन अभियोग झूठा साबित हुआ। इससे जस्टिस मैकलिनको सन्तोष हो गया कि मुसलमानोंपर किसी तरहका अत्याचार नहीं हुआ था। उन्होंने अपनी जाँचकी रिपोर्टमें यह भी लिखा है कि झूठे गवाह पेश करने या झूठा बयान दिलवानेकी जिम्मेदारी पुलिसपर नहीं है। इस तरह उन्होंने इस मामलेमें पुलिसको भी बरी कर दिया। एक अदालतके फैसलेको यदि दूसरी अदालत उलट दे और यदि इस तरहके प्रत्येक मुकदमेके लिए किसी प्रान्तका प्रधान मन्त्री जिम्मेदार समझा जाने लगे तो किसी प्रान्तका शासन एक दिन भी नहीं चल सकता। यह कहीं नहीं कहा गया है कि सेशन जजके ऊपर प्रधान मन्त्रीका प्रभाव पड़ सकता था—खासकर जब मुकदमेका विचार उनके पद त्यागके बाद हुआ और उनकी हैसियत एक साधारण नागरिककी रह गयी थी।

कांग्रेसके अत्याचारोंमें हिन्दी उर्दूका झगड़ा भी शामिल है। यह झगड़ा बहुत पुराना है और आज भी उसी तरह कायम है। जहाँतक मुसलमानोंका सम्बन्ध है कांग्रेसने इस कलहको सङ्गीन बनानेके लिए कुछ नहीं किया है। वास्तवमें कांग्रेसने यदि इस सम्बन्धमें कुछ किया तो उसका प्रयास दोनोंके बीच समन्वय स्थापित करनेके लिए था। लेकिन कुछ करनेके पहले ही वे शासनसे अलग हो गये।

१९३७ से आजतककी साम्प्रदायिक समस्याका इतिहास यही है कि एक ओर तो कांग्रेस इसे सुलझानेके लिए लगातार प्रयत्न करती आयी है और दूसरी

और लीगकी माँग बराबर बढ़ती गयी है। इसमें कभी ब्रिटिश सरकारने उनको प्रोत्साहन दिया है और कभी निराश किया है। इस तरह देशको सदा हुक (कँटिया) में लटकाकर रखा गया है। हमलोगोंने देख लिया है कि जुल्मों-की विभीषिका किस तरह उत्पन्न हुई। १९३८ में महात्मा गान्धी तथा कांग्रेस-के अध्यक्ष श्री सुभासचन्द्र बसुने लीगसे यह जानना चाहा कि उसे किस तरह सन्तुष्ट किया जा सकता है ताकि देश और कांग्रेस उनकी माँगपर विचार करे और यदि सम्भव हो तो उन्हें पूरा करनेका यत्न करे। यह इसलिए आवश्यक था कि श्री जिनाकी चौदह शर्तोंको सरकारने पूरा कर दिया था और १९३५ के शासन-सुधारमें उन्हें शामिल भी कर दिया था। १९३५ में मैं ही कांग्रेसका अध्यक्ष था। उस सन्के आरम्भमें ही मैंने साम्प्रदायिक समस्याके विषयमें श्री० जिनासे बातचीत आरम्भ की। संयुक्त निर्वाचन प्रणाली इस बातचीतका आधार थी। उस समयतक १९३५ का शासन-सुधार कानून स्वीकृत नहीं हुआ था। शासन-सुधारके स्वीकृत होनेके बाद हमलोगोंने देखा कि मुसलमानोंको पृथक् निर्वाचन ही नहीं बल्कि अन्य अनेक तरहकी रिआयतें भी दे दी गयी हैं। लीगने जिन संरक्षणोंकी माँग की थी उनके मिल जानेके बाद यह आशा करना कि लीम पृथक् निर्वाचन प्रणाली तथा प्राप्त अन्य अधिकारोंको त्याग देगी, व्यर्थ था। यद्यपि पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त, बङ्गाल तथा कभी कभी आसाम सरीखे मुस्लिम बहुमत प्रान्तोंमें मुस्लिम मन्त्रिमण्डल शासन कर रहा था तो भो लीगने इस आवाजको बुलन्द रखा कि मुसलमानोंको सताया जा रहा है और ब्रिटिश सरकारके सारे संरक्षण और गवर्नरोंके विशेष अधिकारोंद्वारा संरक्षणके वादे व्यर्थ हो रहे हैं। यह धारणा जिसका आधार कल्पित भय और अविश्वास था सही थी या गलत। अगर यह विभीषिका सही है तब तो इसका प्रतिकार हिन्दुस्तानसे उन प्रान्तोंको जहाँ मुसल-मानोंका बहुमत है, अलग कर स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र कायम करनेपर भी नहीं हो सकता जैसा कि हम आगे देखेंगे। मुस्लिम अल्पमत प्रान्तोंकी तो बात ही न्यारी है। यदि यह कोरी कल्पना है तब तो इसकी कोई

दवा नहीं है। केवल समय ही धीरे धीरे इस तरहके अविश्वासको दूर कर सकता है। जो भी हो लीगकी माँग बराबर बढ़ती गयी और समझौता असम्भव हो गया। महात्मा गान्धी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र वसु तथा श्री जिनाके बीच जो लम्बे पत्रव्यवहार हुए हैं उन्हें पढ़नेसे प्रकट होता है कि समझौता करनेवाले दलके अधिकारकी चर्चाके आगे वह नहीं बढ़ सका है। श्री जिना इसी बातपर अड़े रहे कि कांग्रेस यह घोषणा कर दे कि वह हिन्दुओंकी प्रतिनिधि संस्था है और उनकी ओरसे बातचीत कर रही है तथा यह बात स्वीकार कर ले कि लीग ही मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। लेकिन कांग्रेस इन दोनों बातोंमें से एकके लिए भी तैयार होनेमें असमर्थ थी और है। इसलिए समझौतेके प्रयासका इतना भी फल नहीं निकल सका कि लीगकी माँगकी एक तालिका बन जाती।

यह नहीं भूला जा सकता कि देशमें और भी मुस्लिम संस्थाएँ हैं और वे लीगका यह दावा कबूल नहीं करतीं। भारतके राष्ट्रीय मुसलमानोंकी जमात है। अहरार मुसलमान हैं जिन्होंने त्यागद्वारा अपनी दृढ़ताका परिचय दिया है। जमैयतुल-उलेमा हैं जिन्होंने देशकी आजादीके लिए त्याग किया है और संकट झेले हैं। धर्माधिकारी होने तथा अपनी विद्वत्ताके प्रभावसे इस संस्थाका मुसलमानोंमें काफी प्रभाव है। इनके अलावा शिया मुसलमान हैं जिनकी अलग ही जमात है। इन्होंने लीगसे अलग अपने प्रतिनिधित्वकी माँग की है यद्यपि स्वयं श्री जिना तथा लीगके कतिपय प्रमुख सदस्य शिया हैं। मुसलमानोंमें मोमिनोंकी एक बड़ी तादाद है। इन्होंने अपनी अलग जमात कायम की है और खुलेआम लीगके इस दावेका खण्डन करते हैं कि वह भारतके समस्त मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं है। बिलोचिस्तानके राष्ट्रीय मुसलमान, सीमाप्रान्तके खुदाई खिदमतगार, बंगालका कृषक प्रजादल तथा श्री अलामा मशरकीके खाकसार हैं जिनका मत अनेक बातोंमें लीगसे नहीं मिलता है। इनका अलग अलग संघटन है और इन लोगोंका दावा है कि लीगकी अपेक्षा इनका बहुमत है।

कांग्रेस यह स्वीकार नहीं कर सकती कि वह केवलमात्र हिन्दू संस्था है। इसका मतलब उसे अपने अतीत इतिहासपर हड़ताल फेरना होगा अपने इतिहासको झूठा प्रमाणित करना होगा और अपने भविष्यको अन्धकारमय बनाना होगा। जहाँतक देशकी राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रताका प्रश्न है, कांग्रेसका सदासे यही दावा रहा है कि वह बिना किसी भेद-भावके भारतमें बसनेवाली सभी जातियोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। मुसलमानों तथा अन्य समुदायोंके मुकाबले हिन्दुओंके और भी स्वार्थ हो सकते हैं इस अर्थमें वह केवलमात्र हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व नहीं करती। इसलिए वह एक साम्प्र-दायिक संस्था बननेके लिए तैयार नहीं है। लीगका यह दृष्टिकोण स्वीकार न कर कांग्रेसने वास्तविकताको ही प्रकट किया। वह लीगके साथ साम्प्रदायिक समझौतेके लिए रास्ता ढूँढ़नेको सदा तैयार थी। लेकिन यह श्री जिनाको स्वीकार नहीं था इसलिए बातचीत व्यर्थ हो गयी।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसकी पुष्टिके लिए कुछ अवतरण देना उचित होगा। १९३८मे ३ मार्चको श्री जिनाने महात्मा गान्धीको लिखा था— हमलोग वहाँ पहुँच गये हैं जहाँ किसी तरहका संशय नहीं रह जाता। आप यह बात स्वीकार कर लें कि लीग हिन्दुस्तानके मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है जो उनके बारेमें अधिकारपूर्ण बातें कह सकती है और दूसरी तरफ यह मान लें कि आप कांग्रेस तथा अन्य हिन्दुओंके प्रतिनिधि हैं। इसी अधारपर हमलोग आगे बढ़ सकते हैं और समझौतेका रास्ता निकाल सकते हैं।* जब श्री सुभाषचन्द्र बसुके साथ समझौतेकी बातचीत चली तब श्री जिनाने यह नुसखा उनके सामने रखाः—"हिन्दू मुस्लिम समस्या सुलझानेके लिए मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था लीग तथा हिन्दुओंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था कांग्रेसके बीच समझौतेके लिए निम्नलिखित शर्तें तै पायीं।" कुछ सोच विचारके बाद उन्होंने इसे इस प्रकार बदल दियाः—

---

* यूनिटी टाक्स पृ० २८

"मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था लीग तथा कांग्रेसके बीच हिन्दू मुस्लिम समस्या सुलझानेके लिए निम्नलिखित शर्वें तै पायीं।" लीगकी कार्य-समितिने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया:—"अखिल भारतीय मुस्लिमलीगके लिए यह असम्भव है कि वह कांग्रेसके साथ हिन्दू मुस्लिम प्रश्नपर किसी तरहकी बातचीत इस आधारके बिना करे कि वह भारतके मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। ता० २ अगस्त १९३८ को श्री जिनाने श्री सुभाषचन्द्र बसुको जो पत्र लिखा उसमें वह एक कदम और आगे बढ़ गये।—"लीगकी कार्यसमिति आपको बतला देना चाहती है कि कांग्रेस जो कमेटी बनाने जा रही है उसमें वह मुसलमानोंका नाम शामिल करना वाञ्छनीय नहीं समझती क्योंकि उस कमेटीका काम हिन्दू मुस्लिम प्रश्नका निपटारा करना होगा।" फरवरी १९४१ में सर तेजबहादुर सप्रूने श्री जिनाको लिखा कि हिन्दू मुस्लिम प्रश्नके निपटारेके लिए वह महात्मा गान्धीसे बातचीत क्यों न करें। उसके उत्तरमें १९ फरवरीको श्री जिनाने उनके पास लिखा था:—"मैं महात्मा गान्धी या हिन्दुओंकी तरफसे अन्य किसी नेतासे बातचीत करनेके लिए सदा तैयार हूँ और हिन्दू मुस्लिम प्रश्न हल करनेके लिए जो सम्भव है करनेके लिए तैयार हूँ।"

यह स्पष्ट है कि यह माँग एकदम नयी थी क्योंकि इससे पहले यह कभी पेश नहीं की गयी थी। जिस बातचीतके आधारपर लखनऊका समझौता हुआ था उसमें भी इस तरहकी कोई चर्चा नहीं थी कि लीग हिन्दुस्तानके मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है और कांग्रेस भारतके हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व करती है। १९३५ में कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे मेरी जो बातें श्री जिनाके साथ हुई थीं उस समय भी इस तरहका कोई प्रश्न नहीं उठा था। श्री जिनाने केवल इसी बातपर जोर दिया था कि जबतक हिन्दू महासभाकी ओरसे मालवीयजी इस समझौतेपर हस्ताक्षर नहीं कर देंगे तबतक यह मान्य नहीं होगा। उस समयकी विफलताका यही कारण था कि मैं मालवीयजीसे समझौतेपर हस्ताक्षर करानेकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता था।

श्री जिना केवल इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं होनेवाले थे कि कांग्रेस मुस्लिम-लीगको मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मान ले और अपनेको हिन्दुओं-की प्रतिनिधि संस्था करार दे, बल्कि वे यह भी तै कर लेना चाहते थे कि हिन्दू मुस्लिम प्रश्न हल करनेके लिए कांग्रेसका प्रतिनिधित्व कौन करेगा। क्योंकि जब एक बार श्री जिनाके साथ बातचीतके समय महात्मा गान्धीने अपने साथ मौलाना आजादको रखना चाहा तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया।

अपने लम्बे पत्रव्यवहार और बातचीतमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूने यह निश्चित करना चाहा कि लीग किन विषयोंपर बातचीत कर समझौता करना चाहती है। लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। पण्डित नेहरूने बड़ी नम्रतासे श्री जिनाको लिखा था कि आप कमसे कम इतना तो स्पष्ट कर दें कि आप किन विषयोंपर बातचीत और बहस करना चाहते हैं। इसके उत्तरमें श्री जिनाने १७ मार्च १९३८ के पत्रमें लिखा—"शायद आपने १४ शर्तोंके सम्बन्धमें सुना होगा" और १२ जुलाई १९३८ के स्टेट्समैनमें प्रकाशित लेख 'मुसलमानोंके दृष्टिकोणसे' तथा १ मार्च १९३८ के न्यू टाइम्समें प्रकाशित लेखोंकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा कि "उन लेखोंमें वे सारी बातें आ गयी हैं जिनपर बातचीत होगी।" इसके उत्तरमें जब पण्डित नेहरूने अपने ६ अप्रैल १९३८के पत्रमें उन सब बातोंको छाँटकर एकत्र किया और उनपर कांग्रेसका दृष्टिकोण व्यक्त किया तो श्री जिनाने अपने १३ अप्रैल १९३८ के पत्रमें यह लिखा कि "आपने अपने पत्रमें चन्द बातें लिख भेजी हैं और आप चाहते हैं कि मैं अपनेको उनमें बाँध दूँ कि ये ही मेरे प्रस्ताव हैं।" असल बात यही है कि लीग किन प्रश्नोंपर विचार करना चाहती है इसका पता किसीको नहीं लग सका।

यूरोपीय युद्ध छिड़ जानेके बाद १९३९ के दिसम्बरमें महात्मा गान्धी तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरूने एक बार फिर समझौतेके लिए यत्न किया, लेकिन कोई फल नहीं निकला। निराश होकर १६ दिसम्बर १९३९ को पण्डितजीने यहाँतक लिख दिया कि "खेद तो इस बातका है कि हमलोग उन प्रश्नोंके

ऊपर उचित विचार करनेकी अवस्थातक भी नहीं पहुँच पाते क्योंकि अनेक तरहकी शर्तें बाधाके रूपमें आकर खड़ी हो जाती हैं।······एक बाधा दूर भी नहीं होने पाती कि शर्तके रूपमें दूसरी लाकर खड़ी कर दी जाती है। इसलिए मेरी समझमें तो यही आता है कि हमलोगोंका राजनीतिक दृष्टिकोण ही भिन्न-भिन्न है।"

लीगके अध्यक्ष कांग्रेसके साथ बातचीत करनेके लिए तो उन शर्तोंको स्पष्ट नहीं करना चाहते थे लेकिन बड़े लाटके सामने प्रकट करनेमें वे कभी भी नहीं हिचके। इस मतभेदसे लाभ उठानेमें ब्रिटिश सरकार भी कभी नहीं हिचकी और उसने इस मतभेदको कायम रखनेके लिए लीगको मजबूत बनाते जाना आवश्यक समझा। पर स्मरण रखनेकी बात है कि भारतमें सङ्घशासन स्थापित करनेकी चर्चा आल पार्टी मुसलिम कान्फरेन्सने ही की थी। जब १९३५ के शासन-विधानमें सङ्घशासनकी व्यवस्था की गयी तबतक लीग और खासकर श्री जिनाका दृष्टिकोण एकदम बदल गया था और शासनसुधारका वह अंश आक्रमणका प्रधान लक्ष्य बन गया। ता० ११ सितम्बरको बड़े लाटने यह घोषणा की कि युद्धतक सङ्घशासनके लिए कोई व्यवस्था नहीं होगी। इसपर लीगको कार्यकारिणीने सन्तोष और प्रसन्नता प्रकट की और यह इच्छा प्रकट की कि सङ्घशासनकी व्यवस्था सदाके लिए त्याग दी जाय। उसने ब्रिटिश सरकारसे यह भी प्रार्थना की कि भारतकी शासन व्यवस्थाकी एकदम नये सिरेसे जाँच हो और साथ ही ब्रिटिश सरकार इस बातका आश्वासन लीगकी स्वीकृति और अनुमोदन प्राप्त किये बिना भारतके लिए कोई भी शासनविधान तैयार न किया जायगा।

ता० २३ दिसम्बर १९४० को इसके उत्तरमें लार्ड लिनलिथगोने कहा था कि सम्राट्की सरकार इस बातको भलीभाँति समझती है कि भारतके वैधानिक विकास और सफलताके लिए मुसलमानोंको सन्तुष्ट रखना कितना आवश्यक है। इसलिए आपको इस तरहकी कोई शङ्का मनमें नहीं रखनी चाहिए कि भारतके किसी भी भावी विधानमें आपकी मालिकी महत्ताकी अवज्ञा की जायगी।" ता० ६ फरवरी १९४० को श्री जिनाने बड़े लाटसे मुलाकात की थी। उसके

बाद जो सरकारी वक्तव्य प्रकाशित किया गया था उसमें कहा गया था—'बड़े लाटने श्री जिनाको इस बातका पूरा आश्वासन दिया है कि अल्पसंख्यकोंके स्वार्थोंकी रक्षाकी ओर सम्राटकी सरकारका पूरा ध्यान है। इसलिए उन्हें (श्री जिनाको) इस बातकी लेशमात्रभी आशङ्का नहीं होनी चाहिए कि सरकारकी दृष्टि से यह बात ओझल रहेगी।' लेकिन इतनेसे ही लीगको सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए ऊपरका अवतरण उद्धृतकरके उसपर लीगकी कार्यसमितिके मनकी व्याख्या करते हुए श्री जिनाने बड़े लाटको ता० २३ फरवरी १९४० को लिखा:—"मुझे यह लिखते खेद होता है कि इससे लीगकी शंकाओंका पूरा समाधान नहीं होता; क्योंकि इससे ९ करोड़ भारतवासियोंके भाग्यका निपटारा ब्रिटेनके ही हाथमें रह जाता है जिसका फैसला विचार-विमर्षके आधारपर ही होगा। मुझे यह स्थिति स्वीकार नहीं है। मुझे इस बातका पक्का आश्वासन मिलना चाहिए कि:—"हमलोगोंकी स्वीकृति या रजामन्दीके बिना भारतके भावी शासन-विधानके लिए किसी तरहका समझौता किसी दलके साथ नहीं किया जायगा और इस सम्बन्धमें कोई अस्थायी व्यवस्था नहीं की जायगी"। ब्रिटिश सरकारने दूसरा प्रयास किया और भारतके बड़े लाट तथा भारत-मन्त्रीने १ अप्रैल १९४१ को लार्ड-सभामें घोषणा की जिसे बड़े लाटने श्री जिनाके पास लिखे भेजा। वह इस प्रकार था:—"भारतके भावी शासन-विधानके बारेमें भिन्न भिन्न समुदायों और स्वार्थवालोंसे सलाह लेनेका जो वादा सम्राट्की सरकारने किया है वह किसी दलके आदेशसे नहीं बल्कि परस्पर बातचीतसे पूरा किया जायगा। भारतके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके बीच बहुत अशोंमें मतैक्य होना आवश्यक है। यदि उस संयुक्त भारतकी कल्पना जिसके लिए इतने अधिक भारतीयों और अंग्रजोंने सतत प्रयत्न किया है—वास्तविकताका रूप ग्रहण नहीं कर सकती, तो मुझे यह विश्वास नहीं है कि कोई भी सरकार या पार्लमेण्ट सम्राट्की सरकारकी ८ करोड़ प्रजाके ऊपर ऐसा कोई भी शासन जबर्दस्ती लाद देगी जिसमें वे सुख और शान्तिसे नहीं रह सकते।" इस स्पष्टीकरणसे भी लीगकी कार्यसमितिको सन्तोष नहीं हुआ और श्री जिनाने २५ जून १९४० को बड़े लाटसे

फिर भेंट की और जिन बातोंपर उनके साथ विचार विमर्ष किया उसे १ जुलाई १९४० के पत्रमें लिख भेजा। उस पत्रमें ये बातें थीं:—

१—सम्राट्की सरकार ऐसी कोई घोषणा नहीं करेगी जो लीगके लाहौर-वाले उस प्रस्तावके आशयके किसी तरह विरुद्ध हो, जिसके द्वारा भारतके विभाजन और उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्वीय क्षेत्रोंमें मुसलमान राष्ट्रकी स्थापना-की माँग की गयी है।

२—सम्राट्की सरकार भारतके मुसलमानोंको इस बातका पक्का विश्वास दिला दे कि मुसलमानोंकी अनुमति और स्वीकृतिके बिना भारतके लिए कोई भी अस्थायी या स्थायी शासन-विधानकी व्यवस्था वह नहीं करेगी।

३—युद्धके लिए प्रयत्नों और युद्धके लिए भारतीय उपकरणोंकी प्राप्तिमें पूरी सफलता तभी मिल सकती है जब भारत-सरकार इस बातका भरोसा दे कि प्रान्तीय तथा केन्द्रीय शासन व्यवस्थामें मुसलमानोंको बराबरका हक प्राप्त होगा। अर्थात् मुसलमानोंसे यह कह दिया जाय कि उनका बराबरीका दावा सही है और भारतके भावी शासनमें केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थामें उन्हें बराबरका हक दिया जायगा।

४—युद्धके दिनोंमें अस्थायी रूपसे यह व्यवस्था हो जानी चाहिए:—

(क) वर्तमान शासन-विधानके अन्तर्गत बड़े लाटकी कार्य समितिका विस्तार कर दिया जाय और यदि कांग्रेस भाग लेना स्वीकार करे तो हिन्दुओं और मुसलमानोंको बराबरका प्रतिनिधित्व मिले, अन्यथा नयी नियुक्तिमें मुसल-मानोंको प्रधानता दी जाय क्योंकि ऐसी हालतमें सारी जिम्मेदारीका भार मुसल-मानोंको ही उठाना पड़ेगा।

(ख) बड़े लाटकी अध्यक्षतामें १५ सदस्योंकी एक युद्ध-समिति बनायी जाय। यदि कांग्रेस सहयोग करे तब तो हिन्दुओं और मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व बराबर बराबर रहे अन्यथा मुसलमानोंको प्रधानता दी जाय।

(ग) युद्ध-समिति, बड़े लाटकी कार्यसमिति तथा प्रान्तीय गवर्नरोंके बढ़ाये जानेवाले सलाहकारोंके पदके लिए मुस्लिम सदस्योंको चुननेका एकमात्र अधि-कार लीगको हो।

बड़े लाटको यह बात समझनेमें देर नहीं लगी कि इस माँगका यह अभिप्राय है कि सारे अधिकार लीगके हाथमें सौंप दिये जायँ। श्री जिनाके इस पत्रका उत्तर देते हुए उन्होंने अपने ६ जुलाई १९४०के पत्रमें लिखा— मैं मुसलमानोंके उचित प्रतिनिधित्वके महत्वको भलीभाँति समझता हूँ। लेकिन किसी एक समुदायपर जिम्मेदारीका बोझ कम या हलका पड़नेका प्रश्न ही नहीं उठता। जिम्मेदारी तो सपरिषद् बड़े लाटकी होगी। इसके साथ ही वर्तमान कानून और व्यवहारमें यही होता है कि भारत-मन्त्री तथा बड़े लाट नामोंको चुनते हैं और सम्राट्के पास स्वीकृतिके लिए भेजते हैं। इसलिए बड़े लाटकी कार्यसमितिके सदस्य किसी राजनीतिक दलके प्रतिनिधि नहीं हो सकते चाहे वह दल कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो। अन्तमें मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरी विस्तृत कार्यसमिति या प्रान्तीय गवर्नरोंके सलाहकारोंके पदके लिए जो मुसलमान सदस्य चुने जायँगे उनके चुननेकी जिम्मेदारी भी लीगको नहीं सौंपी जा सकती। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि यदि आप कोई सलाह देना चाहेंगे तो उसपर विचार नहीं किया जायगा।'

७ अगस्त १९४०को सरकारकी नीतिकी घोषणा करते हुए बड़े लाटने एक वक्तव्य प्रकाशित किया। उस वक्तव्यमें १९३५के शासन-विधानकी पूरी तरहसे जाँच की। सरकारकी पुरानी घोषणाको दोहराते हुए उन्होंने कहा कि भारतमें सुख, शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखनेकी जो जिम्मेदारी उनके ऊपर है उसे सरकार किसी ऐसी व्यवस्थाको नहीं सौंप देना चाहती जो भारतके अधिकांश निवासियोंको कबूल न हो और न तो वे ऐसी कोई व्यवस्था उनके ऊपर जबर्दस्ती लादनेका इरादा रखते हैं। उन्होंने सरकारकी ओरसे इस बातका वचन दिया कि युद्धके बाद भारतके राष्ट्रीय-जीवनके भिन्न-भिन्न तत्वोंके प्रतिनिधियोंको आमन्त्रित किया जायगा कि ये लोग आपसमें मिलकर नये विधानका ढाँचा तैयार करें। उन्होंने सरकारके इस इरादेको भी व्यक्त किया कि बड़े लाटकी कार्यसमितिमें भाग लेनेके लिए कतिपय भारतीयोंको आमन्त्रित किया जायगा। साथ ही उन्होंने युद्ध सलाहकार समितिकी स्थापनाकी भी चर्चा की।

बड़े लाटकी इस घोषणापर कामन्स सभाकी बहसमें भारतमन्त्री श्री एमरीने भारतमें विभिन्न दलोंके परस्पर वैमनस्यका वही पुराना राग अलापा। उन्होंने कहा था—"भारतमें राजनीतिक गतिरोध सम्राट्की सरकार और सचेतन भारतीय विरोधके बीच उतना नहीं है जितना भारतके राष्ट्रीय जीवनके प्रधान तत्वोंके बीच है। इसलिए यह गतिरोध सम्राट्की सरकार और भारतीयोंके बीच समझौताद्वारा दूर नहीं हो सकता। इसे दूर करनेके लिए भारतके विभिन्न दलोंके बीच समझौता होना आवश्यक है जिसमें सम्राट्की सरकार केवल एक फरीकके रूपमें रहेगी।" उन्होंने अन्य दलोंमें मुसलमान, दलितवर्ग तथा देशी नरेशोंका नाम लिया। इसके साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा कि भारत हर तरहसे परिपूर्ण और विश्वका प्रधान प्रदेश है। उसकी सभ्यता बहुत पुरानी है और सारी जनताका सर्वसाधारण इतिहास भी पुराना है। इस तरह हम देखते हैं कि इस त्रिभुजको तीसरी भुजा धीरे धीरे पर साथ ही स्थिररूपसे बढ़ती जा रही है। एक ओर तो मुँहसे स्वराज्य और उदार शासनकी लम्बी लम्बी बातें की जाती हैं और दूसरी ओर भारतके राष्ट्रीय जीवनके उन तत्वोंको आवश्यकतानुसार पुचकारा या ठुकराया जाता है। कहा जाता है कि किसी भी वैधानिक सुधारके लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय जीवनके इन विभिन्न दलोंके बीच अधिकांश बातोंपर समझौता हो और गतिरोधके विषयमें कहा जाता है कि इसका कारण ब्रिटेन और भारतीयोंके बीचका मतभेद नहीं है बल्कि भारतके विभिन्न दलोंके ही बीचका मतभेद है। जब मुस्लिमलीग यह माँग पेश करती है कि उसकी अनुमति बिना कोई वैधानिक सुधार न किया जाय और भिन्न भिन्न समितियोंके लिए मुस्लिम सदस्य नामजद करनेका एकमात्र अधिकार उसे ही प्राप्त हो तब पहली माँग तो सार्वजनिक घोषणाद्वारा टाल दी जाती है और दूसरीको साफ अस्वीकार कर दिया जाता है। जब लीग यह माँग पेश करती है कि उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी प्रदेश पृथक् कर दिये जायँ तो उससे यह कहा जाता है कि भारत एक सम्पूर्ण इकाई है, उसकी सभ्यता बहुत प्राचीन है और उसके इतिहासमें यहाँकी सभी प्राचीन जातियोंके

इतिहासका समावेश है। भारतके भावी सुधारसे बड़े लाटकी घोषणाका जहाँ-तक सम्बन्ध था उसे तो लीगकी कार्यसमितिने सन्तोषप्रद बतलाया लेकिन कार्यकारिणी समितिके विस्तारके सम्बन्धकी बातोंको नितान्त असन्तोषपूर्ण। बड़े लाटका प्रस्ताव था कि लीग चार व्यक्तियोंका नाम क्रमके हिसाबसे पेश करे। उनमेंसे कार्य समितिके लिए दो नाम चुन लिये जायँगे। यही बात सलाहकारोंके लिए भी थी। लेकिन लीगको यह बात मान्य नहीं हुई। इसके बाद फिर बातचीतका सिलसिला जारी हुआ लेकिन कोई फल नहीं निकला। अन्तमें लीगकी कार्यसमितिको २० सितम्बर १९४० की बैठकमें श्री जिनाने यह वक्तव्य दिया कि ब्रिटिश सरकार अधिकार छोड़ना नहीं चाहती और वह ९ करोड़ मुसलमानोंकी अवज्ञा कर रही है जो एक स्वतन्त्र राष्ट्र हैं। इस तरह ब्रिटिश सरकार और श्री जिनाके बीच जो युद्धकालीन समझौता हो रहा था वह कुछ समयके लिए असफल हो गया।

१९४० के अन्तमें कांग्रेसने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया। यह सत्या-ग्रह भाषणकी स्वतन्त्रता व्यक्त करनेके लिए था। यह स्पष्ट है कि उस सत्या-ग्रहसे मुसलमान अथवा लीगसे कोई मतलब नहीं था और जिस अधिकारकी प्राप्तिके लिए वह आरम्भ किया गया था उसका लाभ अन्य लोगोंके साथ मुस-लमानोंको भी होता। तो भी लीगने उसे मुसलमानोंके विरुद्ध बतलाया। लीगकी कौंसिलने प्रस्ताव पास किया कि श्री गान्धीने जिस उद्देश्यसे यह सत्याग्रह जारी किया है और उसे इतने जोरसे चला रहे हैं, वह लीगसे छिपा नहीं है। लीग ब्रिटिश सरकारको चेतावनी देती है कि यदि कांग्रसको ऐसी कोई रिआयत दी गयी जिसका असर मुसलमानोंके स्वार्थके खिलाफ हो या मुसलमानोंकी माँगको किसी तरह घटाये तो लीग अपनी पूरी ताकतके साथ उसका विरोध करेगी और लीग यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि इस देशके मुसलमानोंके हकों और स्वार्थोंकी रक्षाके लिए यदि आवश्यक प्रतीत हुआ तो वह हस्तक्षेप करने और तदर्थ संग्राम करनेसे भी नहीं हिचकेगी।

१९४१ के अप्रैलमें लीगका अधिवेशन मद्रासमें हुआ। उस अधिवेशनमें

लीगके विधानमें आवश्यक संशोधन किया गया और पाकिस्तानकी प्राप्ति उसके ध्येयमें शामिल किया गया।

क्रिप्स प्रस्तावके समय फिर ब्रिटिश सरकार और लीगके बीच सौदा होने लगा। ब्रिटिश युद्ध-समितिके सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स १९४२ के मार्चमें सम्राट्की सरकारकी नीति और प्रस्तावोंका मसविदा लेकर भारत आये। उसके अनुसार भारतमें एक नये सङ्घकी स्थापना करने तथा साम्राज्यके भीतर अन्य उपनिवेशोंकी भाँति औपनिवेशिक स्वराज्य देनेका प्रस्ताव था। उस प्रस्तावमें भारतके लिए नया शासनविधान तैयार करनेकी व्यवस्था दी गयी थी और सम्राट्की सरकारने क्रिप्स प्रस्तावके अनुसार निर्मित शासनविधानको स्वीकार करने तथा कार्यमें परिणत करनेका वादा इस शर्तके साथ किया था कि यदि ब्रिटिश भारतका कोई प्रान्त इस नये विधानको कबूल न करना चाहे तो वह अपनी वैधानिक स्थिति कायम रखनेके लिए स्वतन्त्र है और उसे अधिकार है कि जब वह चाहे इस सङ्घमें शामिल हो जाय। इसके साथ ही साथ सम्राट्की सरकारने उस प्रान्तको भी वही स्वतन्त्र शासनविधान देनेका वादा किया था जो भारतीय सङ्घको दिया जायगा। घोषणापत्रमें भारतीय नेताओंसे अपील की गयी थी कि भारतकी रक्षाके लिए वे लोग कार्यसमितिमें शामिल होकर युद्धके सञ्चालनमें सहायता प्रदान करें।

इस तरह क्रिप्स प्रस्तावके अनुसार किसी भी प्रान्तको भारतीय सङ्घसे अलग होनेका पूरा अधिकार दे दिया गया था। प्रकारान्तरसे अलग मुस्लिम स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित करनेकी लीगकी माँग स्वीकार कर ली गयी थी। कांग्रेस कार्यसमितिने इस आधारपर क्रिप्स प्रस्तावको अस्वीकार नहीं किया कि उसमें भारतकी इकाईको खण्डित करनेकी योजना थी, जैसी उससे आशा की जाती थी बल्कि कांग्रेसने इस बातको एकदम स्पष्ट कर दिया कि—"वह इस बातकी कल्पना नहीं कर सकती कि भारतके किसी भी प्रान्तवासीको भारतीय सङ्घके अन्दर रहनेके लिए बाध्य किया जाय, लेकिन साथ ही साथ उस इकाईको तोड़नेका कोई भी प्रस्ताव इस देशमें रहनेवाली प्रत्येक जातिके लिए अहितक

है ।" कांग्रेसकी अस्वीकृतिका दूसरा कारण यह भी था कि रक्षाविभागको भारतीयोंके अधिकारके बाहर रखा गया था और इस तरह क्रिप्स प्रस्ताव एक तरहका तमाशामात्र रह गया था । लीगकी कार्यसमिति चुपचाप बैठकर कांग्रेस कार्यसमितिके निर्णयकी प्रतीक्षा करती रही । कांग्रेस कार्यसमितिके निर्णयके प्रकाशित होनेके बाद उसने भी प्रस्ताव पास किया कि वर्तमानरूपमें क्रिप्स प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं है । लीगकी कार्यसमितिने इस बातपर सन्तोष प्रकट किया कि सम्राटकी सरकारने प्राकारान्तरसे पाकिस्तानके सिद्धान्तको कबूल कर लिया लेकिन साथ ही यह भी निश्चय किया कि भारतीय सङ्घ—जो सम्भवतः हिन्दू और मुसलमानोंका सङ्घ होगा—में दोनों जातियोंको शामिल होनेके लिए बाध्य करना देशके सुख और शान्तिके लिए हितकर नहीं होगा, जो घोषणाका प्रधान उद्देश्य प्रतीत होता है । लीगकी कार्यसमितिने अपने प्रस्तावमें इस बातकी भी चर्चा की थी कि यदि सुदूर भविष्यमें सम्भव हुआ तो एकसे अधिक सङ्घकी स्थापना हो सकेगी ; किन्तु वह कोरी कल्पनामात्र थी । विधान निर्मातृ समितिके निर्माणके तरीकेसे भी लीगका विरोध था क्योंकि पृथक् निर्वाचन प्रणालीके आधारपर मुसलमानोंको अपने प्रतिनिधि चुननेके अधिकारसे यह सिद्धान्ततः भिन्न था । भारतीय सङ्घमें रहने या न रहनेके लिए प्रान्तोंसे मत लेनेका जो तरीका क्रिप्स प्रस्तावमें दिया गया था उससे भी लीग सहमत नहीं थी । लीगका कहना था कि जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत होगा उन प्रान्तोंकी सारी बालिग जनताकी राय सङ्घमें रहने या न रहनेके लिए न ली जाय, बल्कि केवल बालिग मुसलमानोंकी राय ली जाय । अन्यथा आत्म-निर्णयके नैसर्गिक अधिकारसे उन्हें वञ्चित करना होगा । इससे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकारने ब्रिटिश प्रान्तोंको यह अधिकार दे दिया कि यदि वे चाहें तो भारतीय सङ्घसे अलग हो सकते हैं और यह भी तै कर दिया कि इसके निर्णयका अधिकार व्यवस्थापक सभाको ६० फीसदीके बहुमतसे होगा । यदि यह बहुमत प्राप्त न हो सके तब उस प्रान्तके अल्पमतकी माँगपर वहाँके बालिग मताधिकारके आधारपर निर्णय किया जाय । लीगका मत था कि उस प्रान्तके मुसलमानोंकी वास्तविक मंशा जाननेके लिए व्यवस्था-

पक सभाका मत वास्तविक आधार नहीं हो सकता और साथ ही माँग भी पेश की कि केवल मुसलमानोंका ही मत लिया जाना चाहिए और अन्य अल्प सम्प्रदायोंको एकदम छोड़ देना चाहिए चाहे उनकी संख्या ४५ फीसदीके लगभग क्यों न हो, जैसा कि बङ्गाल और पञ्जाबमें है। अर्थात् भारतीय सङ्घसे अलग होनेके महत्वपूर्ण प्रश्नपर और अपने उन देशवासियोंसे जिनके साथ वे पुश्त दर पुश्तसे रहते आये हैं—सम्बन्ध विच्छेद किये जानेके प्रश्नपर उन्हें कुछ कहनेका अधिकार ही न दिया जाय। क्रिप्स प्रस्तावके असफल होनेके बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने अपनी १९४२की ६ से ८ अगस्ततककी बैठकमें वह ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया जो "भारत छोड़ो" प्रस्तावके नामसे प्रसिद्ध है। हमेशाकी भाँति अधिवेशनके आरम्भमें ही कांग्रेसने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह अपने लिए नहीं, बल्कि भारतीय जनताके लिए अधिकार चाहती है और उसे परम सन्तोष होगा यदि वास्तविक अधिकारके साथ लीग ही शासनारूढ़ हो जाय। लेकिन इसके बाद उसी सालमें १६ से २० तककी लीगकी कार्यसमितिकी बैठकमें जो प्रस्ताव पास हुआ, उसमें निम्नलिखित बातें थीं:—

लीगकी कार्यसमितिका यह दृढ मत है कि वर्तमान आन्दोलन केवल ब्रिटिश सरकारके खिलाफ इसलिए नहीं चलाया जा रहा है कि वह मजबूर होकर निरंकुश हिन्दुओंको अधिकार सौंप दे और इस तरह मुसलमानों तथा अन्य सम्प्रदायोंको समय समयपर उन्होंने जो वचन दिये हैं तथा उनकी जो नैतिक जिम्मेदारी है उसका पालन वे न कर सकें बल्कि इसका उद्देश्य यह भी है कि वह मुसलमानोंको बाध्य करें कि वे कांग्रेसकी शर्तें और उसका आदेश स्वीकार करें······ब्रिटिश सरकारके सामने यह माँग पेश करनेके बाद कि यदि लीगका दावा स्वीकार कर लिया जाय तो बराबरीके हकपर लीग जिम्मेदारी लेनेके लिए तैयार है। लीगकी कार्यसमितिने मुसलमानोंको यह आदेश दिया कि कांग्रेसद्वारा आयोजित किसी आन्दोलनमें वे भाग न लें। उसके बादसे सत्याग्रह आन्दोलन मुसलमानोंके खिलाफ समझा गया और लीगके प्रचारक सदा इस बातपर जोर देते रहे कि अगस्त प्रस्ताव वापस लेनेके बाद ही कांग्रेसवालोंको जेलसे रिहा

किया जा सकता है और तभी गतिरोधको दूर करनेके लिए कांग्रेसके साथ किसी तरहके समझौतेकी बातचीत हो सकती है। इतना ही नहीं ब्रिटिश सरकार-द्वारा खण्डित किये जानेके बाद भी वे बराबर इस बातपर जोर देते रहे कि कांग्रेस जापानके साथ मिली हुई है।

१९४४ के सितम्बरमें महात्मा गान्धी श्री जिनासे फिर मिले। कई दिनतक वार्तालाप हुआ, लेकिन कोई फल नहीं निकला। श्री जिना स्पष्टरूपसे इतना भी नहीं बतला सके कि उनके पाकिस्तानकी रूप-रेखा क्या है, उसकी सीमाएँ क्या हैं, उसके विधान क्या होंगे और उसमें अल्पदलवालोंके संरक्षणकी क्या व्यवस्था होगी।

जून १९४५ में लार्ड वेवलने यह मसविदा उपस्थित किया कि बीचके समयके लिए कोई अस्थायी समझौता कर लिया जाय। इस समझौतेका भावी शासन-विधानपर जो युद्धके बाद तैयार किया जायगा—कोई असर नहीं पड़ेगा। बड़े लाटके मसविदेकी एक शर्त यह थी कि दलित जातियोंको छोड़कर हिन्दू और मुसलमानोंको समान प्रतिनिधित्व दिया जायगा। इस तरह लीगकी यह माँग कि अस्थायी शासनमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको बराबरका प्रतिनिधित्व मिले, पूरी हो गयी। १९३७ से ही लीग और श्री जिनाने भारतके अल्पसंख्यक समुदायको अपने विशेष संरक्षणमें ले लिया है और अपनी माँगोंपर जोर डालते हुए लोगोंसे यह कहनेमें कभी नहीं चूके कि हिन्दू-बहुमत खासकर कांग्रेस—जो हिन्दुओंकी सङ्गठित और प्रतिनिधि संस्था है—अल्प समुदायोंके सताने और दबानेके लिए कमर कसकर तैयार है। उन्होंने दलित जातियोंको हिन्दुओंसे अलग अल्पमत मान लिया है जिसे संरक्षणकी आवश्यकता है। ब्रिटिश सरकार जनताकी प्रतिनिधि संस्था कांग्रेसकी बढ़ती शक्तिका मुकाबला करनेके लिए मुस्लिम लीगको सदा मिलाये रखनेके लिए चिन्तित रही है और लीगकी बढ़ती माँगको पूरा करते रहनेके लिए उसे रिआयतपर रिआयत देती गयी है। दलित जातियोंको छोड़कर हिन्दू और मुसलमानोंको समान प्रतिनिधित्व देनेका उनका अन्तिम प्रस्ताव लीगको खुश करनेके प्रयासके एकदम अनुकूल

था । लेकिन पहली बारकी भाँति इस बार भी वह नीति सफल नहीं हो सकी क्योंकि श्री जिना इस बातपर अड़े ही रह गये कि मुस्लिम सदस्योंके नामजद करनेका अधिकार एकमात्र लीगको मिलना चाहिए । इस असफलताकी सारी जिम्मेदारी लार्ड वेवलने अपने ऊपर ले ली । यह उचित भी था । लेकिन इस असफलतासे एक विचित्र परिणाम निकल आया । लीगने एक नयी माँग यह पेश कर दी कि मुसलमानोंको केवल हिन्दुओंके ही बराबर प्रतिनिधित्व नहीं मिलना चाहिए बल्कि दलितवर्ग तथा अल्पसंख्यक जातियोंके प्रतिनिधियोंको भी हिन्दुओंमें मिलाकर कुल संख्याके बराबर मुसलमानोंको प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए । शिमला अधिवेशनके बाद १४ जुलाई १९४५ को श्री जिनाने प्रेस-प्रतिनिधियोंके सामने निम्नलिखित बातें कहीं :—

(बड़े लाटकी) प्रस्तावित कार्यसमितिमें मुसलमान एक तिहाई अल्पसंख्यकके रूपमें हो जायँगे क्योंकि दलितवर्ग, सिख तथा ईसाइयोंका ध्येय कांग्रेसके ध्येयके समान ही है । अल्पसंख्यकके रूपमें उनकी शिकायतें जरूर हैं लेकिन उनका ध्येय और आदर्श अखण्ड भारतके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं हो सकता । उनकी संस्कृति और सदाचार हिन्दुओंसे बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं । मैं यह नहीं चाहता कि सभी अल्पसंख्यक समुदायोंके साथ पूरा न्याय न हो । अल्पसंख्यक होनेके नाते हर जगह उनके साथ पूरा न्याय और संरक्षण होना चाहिए लेकिन व्यवहार और क्रियामें उनके मत (वोट) हमलोगोंके खिलाफ जायँगे और बड़े लाटकी अस्वीकृति (वीटो) के अतिरिक्त हमलोगोंके लिए कोई संरक्षण नहीं है । विधानके सभी विशेषज्ञ इस बातको जानते हैं कि शासन तथा व्यवस्थाके लिए बहुमतसे जो नीति और सिद्धान्त प्रतिदिनकी कारगुजारीके लिए निश्चित किये जायँगे उनके खिलाफ इस (वीटो) अधिकारका अनवरत प्रयोग नहीं किया जा सकता इससे इतना तो स्पष्ट होता जाता है कि (मुस्लिम) अल्पदलको तबतक रक्षा नहीं हो सकती जबतक कि उन्हें बहुमत दल अथवा अन्य सभी संयुक्त दलोंके बराबर न बना दिया जाय । यहाँ आकर श्री. जिना अल्पसंख्यक समुदायके संरक्षक होनेका आडम्बर तो कमसे कम उतार

फेंकते हैं और इस बातको स्वीकार कर लेते हैं कि केवल सिखों तथा दलित जातियोंका ही नहीं, जिसे वे अभी भी अल्पसंख्यक समुदाय मानते हैं, बल्कि ईसाइयोंका भी वही ध्येय और आदर्श है जो कांग्रेसका है, और उन्हें इस बातकी आशङ्का है कि कार्य और व्यवहारमें उनके मत (वोट) कांग्रेसके पक्षमें और लीगके खिलाफ रहेंगे और बड़े लाटकी अस्वीकृति (वीटो) जो मुसलमानोंके लिए केवल मात्र रक्षाका साधन है, व्यर्थ और निष्क्रिय प्रमाणित होगा। लीगकी नीतिकी हीनताका इससे बढ़कर दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है कि उसे किसीसे भी समर्थन पानेकी आशा नहीं है, उन मुसलमानोंसे भी नहीं जो उसके नामजद नहीं हैं।

११
सारांश

साम्प्रदायिक समस्याके इतिहासका खासकर जहाँतक मुसलमानोंका प्रश्न है और ब्रिटिश सरकारने जो भाग लिया है, हमने विस्तारसे वर्णन किया है। उस विस्तृत इतिहासको कई भागोंमें बाँटकर हम यहाँ उसका संक्षेप दे देना चाहते हैं—

पहला युग वह है जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी अधिकार प्राप्त कर भारतमें ब्रिटिश शासनकी जड़ जमा रही थी। उसने स्पष्टतः फूटकी नीतिसे काम लिया ताकि इस विदेशी ताकतके खिलाफ भारतीय संयुक्त मोर्चा कायम न कर सकें। इसके लिए उसने कभी इस राजाका साथ दिया और कभी उस राजाका। १९वीं सदीके प्रथम चरणतक प्रायः सभी भारतीय नरेश दबा दिये गये या दोस्त बना लिये गये और मुगल सम्राट् दिल्लीमें अंग्रेजोंके हाथके खिलौना मात्र रह गये थे। जो देशी राज्य बचे रह गये थे उन्हें शीघ्र ही खतम कर दिया गया।

दूसरा युग वह है जब एक या दूसरे बहानेसे देशी राज्य कम्पनीके राज्यमें मिला लिये गये और कम्पनीका शासन दृढ़ बनाया गया। इस समय विदेशी शासनके खिलाफ असन्तोषकी भावना घनी और बलिष्ठ हो गयी थी। प्रतिष्ठा अधिकारका ही अपहरण नहीं बल्कि सुख-समृद्धिका भी अपहरण मुसलमानोंको बहुत खटकता था। इसके खिलाफ सुधारका आन्दोलन जारी किया गया लेकिन

इसने सिखोंके खिलाफ जो उस समय पञ्जाबके शासक थे जेहादका रूप धारण कर लिया । ब्रिटिश सरकारने यदि उसे प्रोत्साहन नहीं दिया तो उसे उपेक्षासे अवश्य देखा । लेकिन सिखोंसे पञ्जाब जीत लेनेके बाद उसे निर्दयतासे दबा दिया गया ।

असन्तोषकी जो आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी वह १८५७ में विद्रोहका रूप धारण कर भभक उठी । इस विद्रोहमें हिन्दू और मुसलमान सभी शामिल थे और वे सब दिल्लीके सम्राट्के झण्डेके नीचे इकट्ठे हुए । विद्रोह असफल हुआ और इसके साथ ही मुगल साम्राज्यका अन्त भी हो गया और भारतका शासन इङ्गलैण्डकी रानीके अधीन हो गया । विद्रोहके बाद भयानक दमनचक्र चला । इसमें मुसलमान सबसे ज्यादा पीसे गये। दमनचक्रके बाद होश सँभालनेमें देशको कई साल लग गये ।

कम्पनीके शासनके साथ ही भारतमें अंग्रेजी शिक्षाका समावेश हुआ था । हिन्दुओंने इससे लाभ उठाया । मुसलमानोंने उपेक्षा की, इससे पीछे रह गये । सर सैयद अहमद खाँने मुसलमानोंमें शिक्षा-प्रचारके लिए आन्दोलन शुरू किया। इसी निमित्त उन्होंने अलीगढ़ कालेजकी स्थापना की । राजनीतिक क्षेत्रमें १८८५ में कांग्रेसका जन्म हुआ । प्रत्येक प्रान्तके अंग्रेजी शिक्षित भारतीयोंको यह मंच मिल गया जहाँ एकत्र होकर वे लोग सार्वजनिक महत्वके मामलोंपर बहस करते थे और लोगोंकी शिकायतें दूर करनेके लिए सरकारसे सिफारिशें करते थे । इसी समय श्री बेक अलीगढ़ कालेजके प्रिंसिपल होकर आये । उन्होंने अलीगढ़ कालेजके छात्रोंका ही भार नहीं सँभाला बल्कि मुस्लिम राजनीतिकी बागडोर भी अपने हाथमें ले ली । उनके प्रभावमें आकर सर सैयदने मुसलमानों-को सलाह दी कि वे कांग्रेससे अलग रहें । तो भी बहुतसे मुसलमान कांग्रेसके साथ रहे । लेकिन अलीगढ़ कालेजकी ओरसे सदा इसी बातकी चेष्टा होती रही कि मुसलमानोंकी उन्नतिके लिए इङ्गलैण्डके अनुदार दल तथा भारतके सरकारी अधिकारियोंसे मेलजोल रखना ही श्रेयस्कर होगा । इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए पैट्रियाटिक असोसियेशन तथा मुहम्मदन डिफेंस असोसियेशन नामक संस्थाओं-

की स्थापना की गयी जिनका कार्य-सञ्चालन अलीगढ़ कालेजके प्रिंसिपल श्री बेक तथा श्री (बादमें सर) थियोडोर मारिसनकी देखरेखमें होता रहा ।

बीसवीं सदीके प्रथम दशकमें लार्ड कर्जनने बंग-भंग किया । उनका उद्देश्य एक ऐसा प्रान्त कायम करना था जिसमें मुसलमानोंका बहुमत हो । इसके खिलाफ भीषण आन्दोलन शुरू हुआ और जैसी आशा की जाती थी बङ्गालके हिन्दू और मुसलमानोंके बीच घोर विद्वेष पैदा हो गया यद्यपि उस समय भी अनेक ऐसे मुसलमान थे जो बंग-भंगके खिलाफ थे । लार्ड कर्जनके बाद लार्ड मिण्टो भारतके बड़े लाट होकर आये । भारत-मन्त्री लार्ड मार्लेके परामर्शसे उन्होंने शासन-सुधारका एक मसविदा तैयार किया । शासन-सुधारकी प्रत्याशाएँ अलीगढ़ कालेजके उस समयके प्रिंसिपल श्री आर्चबाल्डकी सलाहसे—जिनका सम्पर्क बड़े लाटके प्राइवेट सेक्रेटरीसे था—मुसलमानोंका एक प्रतिनिधि मण्डल सङ्गठित किया गया । इस डेपुटेशनके अगुआ श्री आगाखाँ थे । बड़े लाटने मुसलमानोंके विशेष दावाको कबूल किया और व्यवस्थापक सभाके लिए उन्हें पृथक् निर्वाचन प्रणालीके आधारपर प्रतिनिधि चुननेका हक दे दिया । बड़े लाटने मुसलमानोंकी यह बहुत बड़ी सेवा समझी क्योंकि इसके द्वारा मुसलमानोंको राजद्रोहियोंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेसे रोका जा सका । इस तरह जो बीज बोया गया वह आज बहुत बड़ा पेड़ बन गया है । उसकी जड़ गहराईतक पहुँच गयी है और उसके डारपात दूर दूरतक फैल गये हैं । इससे भारतका सबसे अधिक अहित हुआ है और ब्रिटिश सरकारको सबसे ज्यादा नफा क्योंकि इसीकी आड़में वह भारतकी स्वाधीनताका रास्ता रोक कर खड़ी है ।

मजबूर होकर कांग्रेसने पृथक् निर्वाचन प्रणालीको ही स्वीकार नहीं कर लिया बल्कि उन प्रान्तोंमें जहाँ मुसलमानोंका अल्पमत था, उनकी जनसंख्याके अनुपातसे बहुत अधिक प्रतिनिधित्व भी दिया । १९१६ में लखनऊमें कांग्रेस और लीगके बीच समझौता हुआ और ब्रिटिश सरकारके सामने संयुक्त माँग पेश की गयी । इसके दो भाग थे । पहले भागमें व्यवस्थापक सभाओंमें मुसलमानोंके प्रतिनिधित्व और पृथक् निर्वाचन प्रणालीकी बात थी और दूसरे भागमें यह नरम माँग

की गयी थी कि देशके शासनमें यहाँके निवासियोंको भी कुछ हिस्सा दिया जाय। ब्रिटिश सरकारने ऐलान किया कि उसकी यह हार्दिक इच्छा है कि भारतीयोंको धीरे धीरे स्वायत्त शासन दे दिया जाय। इसके बाद माण्ट-फोर्ड शासन-सुधार आया। इसमें मुसलमानोंसे सम्बन्ध रखनेवाली पृथक् निर्वाचन प्रणाली और प्रतिनिधित्वकी बात तो पूरी तरह स्वीकार कर ली गयी लेकिन राज-नीतिक अधिकारकी बात एकदम उड़ा दी गयी और उसके स्थानपर प्रान्तोंमें द्वैध शासनकी स्थापना की गयी।

यूरोप तथा भारतमें होनेवाली घटनाओंके फलस्वरूप भारतके प्रत्येक समाज और जातिमें बहुत अधिक जागृति हुई। पञ्जाबके हत्याकाण्ड तथा खिलाफतके प्रश्नने हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य जातियोंको सामूहिक आन्दोलनकी ओर खींचा। कांग्रेस, खिलाफत कमेटी, जमैयतुल-उलेमा तथा अन्य संस्थाओंने साथ मिलकर काम करना आरम्भ किया और लार्ड लायडके शब्दोंमें "सफलताके एक दम निकटतक पहुँच गये।" भारतके बड़े लाट घबरा गये और उलझनमें पड़ गये। बड़े बड़े हिन्दू तथा मुसलमान नेताओंको जेल भेज देने तथा चौरीचौरा काण्डके कारण सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर देनेके बाद हिन्दू मुसलिम दंगे आरम्भ हुए जिन्होंने कई सालतक देशकी उज्ज्वल कीर्तिको कलङ्कित किया। भ्रातृभाव और मेलजोलके उत्साहवर्द्धक दृश्यका स्थान परस्पर वैमनस्य और मारपीटने ग्रहण किया। अहिंसात्मक असहयोगका कार्यक्रम जिसे हिन्दू और मुसलमानोंने एकमतसे स्वीकार किया था और कार्यरूपमें परिणत किया था, कमजोर होकर छिन्नभिन्न हो गया।

गोहाटी कांग्रेसके बाद हिन्दू मुसलिम समस्याओंको हल करनेका यत्न किया गया। १९२७ के आरम्भमें ही कतिपय हिन्दू और मुसलमान नेताओंमें पर-स्पर बातचीत हुई और मुसलमान-नेताओंने अपना मन्तव्य तैयार किया। उसमें चार शर्तें थीं। समझदार भारतीयोंने पृथक् निर्वाचन प्रणालीकी हानिको समझ लिया था। इसलिए मुसलमान नेता नीचे लिखी चार शर्तोंके मान लेनेपर उसका अन्त करनेके लिए तैयार थे। वे शर्तें ये थीं—(१) सिन्धको स्वतन्त्र प्रान्तका

रूप दिया जाय। (२) अन्य प्रान्तोंकी भाँति सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तानमें भी सुधार जारी किया जाय। (३) पञ्जाब और बङ्गालमें मुसलमानोंकी जन-संख्याके अनुसार प्रतिनिधित्व दिया जाय तथा (४) केन्द्रीय व्यवस्थापक सभामें उन्हें कमसे कम एकतिहाई प्रतिनिधित्व मिले।

बातचीत और सलाह मशविरेके फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होने लगा कि कांग्रेसके मद्रास आन्दोलनके बाद इन शर्तोंपर कांग्रेसके साथ मुसलमानोंका समझौता हो जायगा।

कांग्रेस तथा लीग दोनोंने १९२० के शासन-सुधारका बहिष्कार किया था। उससे किसी दलको सन्तोष नहीं था। नरम दलके लोगोंने उसे अपनाया था। १९२० के विधानमें सुधारकी लगातार माँग की गयी थी और ब्रिटिश सरकारने लगातार उस माँगको अस्वीकार कर दिया था लेकिन १९२७ में उसने उनके व्यावहारिकताकी जाँचके लिए एक वैधानिक कमीशन नियुक्त किया। कमीशनके बहिष्कार और पृथक् निर्वाचन प्रणालीका अन्त करनेके प्रश्नको लेकर लीगमें फूट पैदा हो गयी। मद्रास अधिवेशनमें स्वीकृत प्रस्तावके अनुसार कांग्रेसने अन्य दलोंके सहयोगसे शासन सुधारका एक मसविदा तैयार किया जो नेहरू रिपोर्टके नामसे प्रसिद्ध है। यह रिपोर्ट कलकत्तामें अखिल भारतीय समझौता सम्मेलनके सामने उपस्थित की गयी। लीगकी ओरसे इसमें अनेक संशोधन उपस्थित किये गये। लीगकी माँगे ये थीं :— केन्द्रीय व्यवस्थापक सभामें मुसलिम प्रतिनिधित्व एकतिहाईसे कम नहीं होना चाहिए। यदि बालिग मताधिकार स्वीकार न किया जाय तो बङ्गाल और पञ्जाबमें मुसलमानोंको अपनी जनसंख्याके अनुसार जगह मिलनी चाहिए और केन्द्र में उन्हें अवशिष्टाधिकार प्राप्त हो। इसे स्वीकार न किये जानेके कारण लीग इससे हट गयी। उसके बाद ही आल पार्टी मुस्लिम कान्फरेन्सका जन्म हुआ और थोड़े ही दिनोंके बाद मुस्लिम लीगके दोनों दल इसीमें समा गये और साथ ही श्री जिनाकी १४ शर्तें मुसलमानोंकी माँग बन गयीं।

मुसलमानोंकी माँगोंमें दो प्रधान माँगें ये थीं :—भारतका शासन-विधान

सङ्घ-शासनके आधारपर होना चाहिए और व्यवस्थापक सभाओं तथा अन्य प्रतिनिधि संस्थाओंका संगठन इस प्रकार होना चाहिए कि प्रत्येक प्रान्तमें बहुमतको अल्पमत या बराबरीका बनाये बिना ही अल्पमतको उचित और प्रभावशाली प्रतिनिधित्व दिया जाय। प्रथम गोलमेज कान्फरेंसने सङ्घ-शासनको स्वीकार-कर लिया। गोलमेज कान्फरेंसकी माइनारिटी कमेटी किसी निर्णयपर न पहुँच सकी इसलिए ब्रिटिश प्रधान मन्त्री सर रेमजे मैकडानल्डको अपना निर्णय देना पड़ा जो "साम्प्रदायिक निर्णय" के नामसे प्रसिद्ध है। इसमें मुसलमानोंकी चौदह माँगोंके अधिकांश अंशका समावेश कर दिया गया। केवल केन्द्रीय व्यवस्थापक सभामें मुस्लिम प्रतिनिधित्वके प्रश्नको भविष्यके लिए छोड़ दिया गया और सिन्धको स्वतन्त्र प्रान्तका रूप इस शर्तपर देना स्वीकार किया गया कि वह अपना खर्च आप सँभाल ले। साम्प्रदायिक निर्णयमें हिन्दू और सिख दोनोंके साथ अन्याय किया गया है। जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका अल्प भाग है उन प्रान्तोंमें उन्हें जो विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया था उसे तो कायम रहने दिया गया लेकिन बङ्गालमें हिन्दुओंके विशेष प्रतिनिधित्वकी चर्चा कौन करे उन्हें जनसंख्याके अनुसार भी प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। ·०१ फीसदी यूरोपियनोंको १० फीसदी प्रतिनिधित्व देनेकी व्यग्रतामें हिन्दुओं-को केवल ३२ फीसदी प्रतिनिधित्व दिया गया हालाँ कि उनकी जनसंख्या ४४·८ फीसदी है। बङ्गालके मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वमें भी कटौती की गयी लेकिन मुसलमानोंकी अपेक्षा हिन्दुओंके प्रतिनिधित्वमें बहुत अधिक कटौती की गयी। पञ्जाबमें भी यही बात हुई। अल्पमत हिन्दुओंको विशेष प्रतिनिधित्व देनेके बदले सिखोंको विशेष प्रतिनिधित्व देनेके लिए उनका उचित प्रतिनिधित्व भी काट लिया गया। अन्य प्रान्तोंमें मुसलमानोंको जो विशेष प्रतिनिधित्व मिला वह पञ्जाबमें सिखोंको नहीं मिल सका। हिन्दुओं और सिखोंने साम्प्रदायिक निर्णयका घोर विरोध किया लेकिन उसे १९३५ के शासनविधानमें सम्मिलित कर लिया गया। इलाहाबादके समझौता-सम्मेलनमें उनकी जगहपर दूसरा निर्णय रखवानेका प्रयत्न हो रहा था लेकिन ब्रिटिश सरकारने उसमें विघ्न

उपस्थित कर दिया और जो समझौता हुआ था वह रद्द कर दिया गया।

सङ्घशासनकी लगातार माँग मुसलमानोंकी ओरसे ही हुई थी। उनके आग्रहपर ही ब्रिटिश सरकारने १९३५ के शासन-विधानमें उसका समावेश किया था। लेकिन १९३५ के शासन-विधानके बाद न जाने किस कारणवश मुस्लिम लीग सङ्घशासनका सबसे बड़ा शत्रु बन गयी। १९३५ के शासन-विधानके अनुसार जो चुनाव हुआ उसमें चार प्रान्तोंमें लीगको एक भी जगह नहीं मिली और जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत था उनमें भी लीगको बहुमत नहीं प्राप्त हो सका। इसलिए अन्य दलोंके साथ मिले बिना वह किसी भी प्रान्तमें मन्त्रिमण्डल कायम नहीं कर सकती थी। कांग्रेस लीगके साथ नहीं मिल सकती थी क्योंकि अनेक प्रान्तोंमें लीगके प्रतिनिधि चुने ही नहीं गये थे और एक ही प्रान्त ऐसा था जहाँ मुस्लिम प्रतिनिधियोंका बहुमत था। इससे लीग चिढ़ गयी और कांग्रेसका कट्टर शत्रु बन गयी। कांग्रेस-मन्त्रियोंके अधिकार-पदपर आरूढ़ होते ही लीग कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलद्वारा मुसलमानोंके ऊपर किये गये कल्पित अत्याचारोंकी एक तालिका लेकर सामने आयी। यह स्मरण रखनेकी बात है कि जिन गवर्नरोंपर अल्पसंख्यकोंकी रक्षाका भार था उनमेंसे एकने भी कहीं कांग्रेस मन्त्रिमण्डलको दोषी नहीं ठहराया, बल्कि उनके अधिकार-पदपर रहते तथा उनके पद त्याग करनेके बाद भी उनके शासनकी प्रशंसा ही की है। कांग्रेसने यह भी चाहा कि इन अभियोगोंकी जाँच भारतके चीफ जस्टिसद्वारा करायी जाय लेकिन श्री जिना राजी नहीं हुए। कांग्रेसने लगातार इस बातका यत्न किया कि बातचीतके द्वारा यदि सम्भव हो तो कांग्रेस और लीगके भेदभावको मिटाया जाय लेकिन श्री जिनाने यह कहकर रास्ता भी बन्द कर दिया कि कांग्रेसको सबसे पहले यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि वह एकमात्र हिन्दुओंकी प्रतिनिधि संस्था है और लीग मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है अर्थात् कांग्रेसमें जो मुसलमान शामिल हैं उन्हें ही नहीं, बल्कि अन्य मुस्लिम संस्थाओंको भी छाँट दिया जाय। विश्वयुद्धके आरम्भ होते ही कांग्रेस-मन्त्रियोंने पद त्याग कर दिया और उसके बाद ही लीगने 'मुक्तिदिवस'

मनाया। कांग्रेसने ब्रिटिश सरकारसे यह जाननेकी लगातार कोशिश की कि जहाँ-तक भारतका सम्बन्ध है इस युद्धका क्या ध्येय है। साथ ही यह वचन भी लेना चाहा कि युद्धके बाद भारतको पूर्ण स्वाधीनता दे दी जाय तथा युद्धकालतकके लिए राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना कर दी जाय। ब्रिटिश सरकारने इन माँगोंको तो ठुकरा दिया, लेकिन लीगकी माँगके अनुसार १९३५ के सङ्घशासनवाले अंशको स्थगित कर दिया और साथ ही यह भी घोषणा कर दी कि भारतके राष्ट्रीय जीवनके प्रधान तत्वों—जिनमें मुसलमान, दलितवर्ग तथा देशी नरेश शामिल हैं—की रजामन्दी बिना शासनमें किसी तरहका सुधार नहीं किया जायगा। लेकिन लीगको इतनेसे भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने १९३० में लाहोरके अधिवेशनमें पाकिस्तानका प्रस्ताव पास किया और मद्रासके अधिवेशनमें उसकी प्राप्तिको अपने ध्येयका एक अङ्ग बनाया।

उस समयतक लीग तथा अन्य मुस्लिम संस्थाएँ अपनेको अल्पसंख्यक समुदाय मानती थीं जिन्हें संरक्षणकी आवश्यकता थी। संरक्षणके अनेक उपाय पेश किये गये, जैसे पृथक् निर्वाचन प्रणाली, विशेष प्रतिनिधित्व और श्री जिनाकी १४ शर्तें। ब्रिटिश सरकारने एकएक करके इन्हें स्वीकार किया। मुस्लिम माँगोंमें यह भी माँग थी कि भारतीय-शासन सङ्घशासनके आधारपर होना चाहिए। ब्रिटिश सरकारने इसे भी स्वीकार कर लिया। जब इतनेसे भी लीगको सन्तोष नहीं हुआ तब उसने उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्वके इलाकोंमें, जहाँ मुसलमानोंका बहुमत है, स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापनाकी माँग पेश की। द्वितीय विश्वयुद्धके दिनोंमें लीग तथा ब्रिटिश सरकारके साथ जो बातचीत चल रही थी उसमें लीगकी माँग इस प्रकार थी :—(१) पाकिस्तानकी माँग पूरी की जाय और जबतक वैधानिक समस्या पूरी तरह हल न हो जाय तबतक इस सम्बन्धमें कोई ऐसी बात न कही जाय जिसका इसपर बुरा असर पड़े। (२) इस अवधिमें यदि बड़े लाटकी कार्यसमितिका विस्तार हो और यदि कांग्रेस शामिल होना स्वीकार करे तो लीगको हिन्दुओंके समान प्रतिनिधित्व मिले और यदि कांग्रेस शामिल न हो तो मुसलमानोंको अधिक

प्रतिनिधित्व मिले। (३) मुस्लिम प्रतिनिधि केवलमात्र लीगके नामजद हों। हिन्दुओं और कांग्रेसके अत्याचारोंसे अन्य अल्पमतकी रक्षाका ठेकेदार लीग बन बैठी। दलितवर्गको उसने हिन्दुओंसे अलग एक अल्पमत माना। प्रान्तोंको केन्द्रीय शासन-व्यवस्थासे अलग हो जानेके अधिकारको स्वीकारकर ब्रिटिश सरकारने लीगकी पहली माँगको कबूल कर लिया। दूसरी माँगको उसने यद्यपि उसी रूपमें स्वीकार नहीं किया पर कार्यसमितिमें मुसलमान सदस्योंको बराबरीकी संख्यामें नियुक्तकर प्रकारान्तरसे स्वीकार कर लिया। हिन्दूसभाने अपने सदस्योंको कार्यसमितिमें शामिल होनेकी अनुमति देकर इस व्यवस्थाको कबूल भी कर लिया। लीगकी केवल तीसरी माँगको ब्रिटिश सरकारने कबूल नहीं किया और अपने इच्छानुसार सदस्य नियुक्त करनेका हक अपने हाथमें रखा। कांग्रेस इस बातपर बराबर जोर डालती रही कि भारतको आजादीका वचन मिल जाना चाहिए। युद्धके सञ्चालनका काम छोड़कर शेप सब अधिकार भारतीयोंको सौंप दिया जाना चाहिए। ब्रिटिश सरकारद्वारा इन माँगोंके स्वीकार न किये जानेके फलस्वरूप ८ अगस्त १९४२ का कांग्रेस प्रस्ताव और उसके बाद नेताओंकी गिफ्तारी तथा अन्य घटनाएँ हैं। ८ अगस्त के प्रस्तावको लीगने मुसलमानोंके विरुद्ध माना और उसके वापस लिये जानेपर जोर देना आरम्भ किया। १९४५ में ब्रिटिश सरकार नया प्रस्ताव लेकर सामने आयी जो वेवल प्रस्तावके नामसे प्रसिद्ध है और इसपर विचार करनेके लिए कांग्रेसके नेताओंको जेलसे मुक्त कर दिया। लार्ड वेवलने एक कान्फरेंसका आयोजन किया। इस कान्फरेंसमें उन्होंने कांग्रेस तथा लीगके प्रतिनिधियों, केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके भिन्न भिन्न दलोंके नेताओं तथा प्रान्तके प्रधान मन्त्रियोंको निमन्त्रण देकर बुलाया। इस प्रस्तावका एक महत्वपूर्ण अङ्ग यह था कि बड़े लाटकी कार्य-समितिमें दलितवर्ग को छोड़कर हिन्दू और मुसलमानोंको बराबर प्रतिनिधित्व दिया जायगा। जैसा ऊपर कहा गया है बराबरीका प्रतिनिधित्व व्यवहारमें १९४१ से ही जारी है। इस समय ब्रिटिश सरकारने उसे प्रस्तावके रूपमें भी पेश कर दिया था; किन्तु कान्फरेन्स असफल रही क्योंकि

श्री जिना इस बातपर अड़े रह गये कि मुसलमान सदस्योंके नामजद करनेका एकमात्र अधिकार लीगको होना चाहिए। श्री जिना इसलिए भी असन्तुष्ट थे कि व्यवहारमें लीगकी स्थिति एक तिहाई अल्पमतकी हो जायगी क्योंकि दलित जाति ईसाई आदि सभी अल्प-संख्यक सम्प्रदायोंका आदर्श और ध्येय कांग्रेस-से मिलता जुलता है और उनके मत (वोट) सदा कांग्रेसको मिलेंगे। मुसल-मानोंकी रक्षा एकमात्र बड़े लाटके वीटो अधिकारसे हो सकती है जिसका प्रयोग सदा नहीं हो सकता। हिन्दू और मुसलमानोंके बराबरके प्रतिनिधित्वको चरितार्थ करनेके लिए श्री जिनाकी अगली माँग यह है कि हिन्दुओं तथा अन्य जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संख्याके बराबर मुसलमानोंको प्रतिनिधित्व मिले। सम्भव है इससे भी मुसलमानोंकी पूरी तरह रक्षा न हो सके और श्री जिनाकी अगली माँग मुसलमानोंको बहुमत प्रदान करनेकी हो।

इस तरह १९३० से लीगकी माँग और ब्रिटिश सरकारकी रिआयतोंकी तीन अवस्थाएँ देखी जाती हैं। पहली अवस्थामें सङ्घशासन तथा अल्पसंख्यकों-के लिए व्यवस्थापक सभाओंमें सन्तोषप्रद और पुरअसर माँगपर जोर दिया गया। चूँकि कतिपय प्रान्तीय मुसलमानोंका बहुमत है और अन्य जातियोंका अल्पमत, इसलिए इस बातकी आशंका स्वभावतः की जा सकती है कि उन प्रान्तोंके गैरमुस्लिम अल्पमत भी उसी तरहकी माँग पेश कर सकता है जिस तरहकी माँग मुस्लिम अल्पमत प्रान्तोंमें लीग कर रही है। उसके बचावके लिए यह शर्त भी लगा दी गयी है कि किसी प्रान्तका बहुमत किसी भी दशामें अल्पमत या बराबरीका नहीं बनाया जायगा। ब्रिटिश सरकार सङ्घशासन-को कबूल कर लेती है, मुसलमानोंको उन प्रान्तोंमें जहाँ उनका अल्पमत है विशेष प्रतिनिधित्व देती है किन्तु वही प्रतिनिधित्व हिन्दुओंको बङ्गाल और पञ्जाबमें नहीं देती जहाँ वे अल्पमत समुदायमें हैं; बङ्गालमें तो उन्हें उतना भी प्रतिनिधित्व नहीं देती जितनी उनकी वास्तविक संख्या है। बङ्गालमें यूरोपि-यनोंको विशेष प्रतिनिधित्व देनेके लिए हिन्दुओंके प्रतिनिधित्वमेंसे जितना काटती है उससे कहीं कम मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वमेंसे काटती है। दूसरी अवस्थामें

ब्रिटिश सरकारद्वारा संघशासनकी माँग १९३५के शासनविधानद्वारा पूरी होते ही लीग उसका विरोध करती है और उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्वके इलाकोंके लिए स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रकी माँग पेश करती है। जब गैर-मुस्लिम बहुमतका प्रश्न आता है तब अपनी उस शर्तपर जोर नहीं देती कि किसी भी अवस्थामें किसी बहुमत प्रान्तको अल्पमत या बराबरीका स्थान नहीं दिया जायगा बल्कि यह माँग पेश करती है कि यदि कांग्रेस शामिल हो जाय तो हिन्दू बहुमत और मुस्लिम अल्पमतको बराबरीका स्थान मिले और यदि कांग्रेस शामिल न हो तब हिन्दू बहुमतको अल्पमत और मुस्लिम अल्पमतको बहुमत बना दिया जाय। ब्रिटिश सरकार संघशासनको स्थगित कर देती है और वादा करती है कि मुसलमानोंकी स्वीकृति बिना कोई भी शासन-विधान नहीं बनाया जायगा। व्यवहारमें वह हिन्दू और मुसलमानोंके बीच समान प्रतिनिधित्वको स्वीकार करती है। तीसरी अवस्थामें ब्रिटिश सरकार हिन्दू और मुसलमानोंका समान प्रतिनिधित्व अपने प्रस्तावका आवश्यक अङ्ग मानकर चलती है। लीग सरकारके इस प्रस्तावको ठुकरा देती है क्योंकि उस समय उसे मुस्लिम सदस्योंको नामजद करनेका अधिकार नहीं मिलता। तब तो वह यह दिखलानेका प्रयास करती है कि दलित वर्ग, तथा ईसाई प्रतिनिधि बहुमत हिन्दुओंका ही साथ देंगे इसलिए मुसलमान सदा अल्पमत बने रहेंगे और अपने स्वार्थोंकी रक्षा नहीं कर सकेंगे—यदि कार्य-समितिमें अल्पमत मुसलमानोंको केवल हिन्दुओंके ही मुकाबले नहीं बल्कि हिन्दू बहुमतके साथ साथ अन्य समुदायोंके प्रतिनिधियोंको मिलाकर, बहुमत नहीं दिया जायगा। लीगकी माँग और ब्रिटिश सरकारद्वारा उसकी पूर्तिकी घुड़दौड़में लीग सदा चार कदम आगे ही रही है लेकिन हिन्दू बहुमत तथा अन्य अल्पमत समुदायोंको इसमें प्रवेश करनेकी भी गुंजायश नहीं है। कोई आश्चर्यकी बात नहीं है यदि साम्प्रदायिक त्रिभुजकी आधार-रेखा बढ़ती जाती है और तद-नुसार ही साम्प्रदायिक मतभेदका कोण चौड़ा होता जाता है।

———

तृतीय भाग

विभाजनकी योजनाएँ

१

भारतके लिए स्वतन्त्र राष्ट्रोंका सङ्घ

हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्र हैं, इस सिद्धान्तकी बहुत अधिक विवेचना की गयी। इसमें हमलोगोंने यह भी देखा कि भारतमें मुस्लिम शासनकी लम्बी अवधिमें दोनों जातियोंके सचेतन प्रयास तथा आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक कारणोंसे--जिनकी क्रिया और प्रतिक्रिया अनवरत होती रही--एक संस्कृतिका उदय हुआ था जिसे न तो पूर्णतः हिन्दू संस्कृति कह सकते हैं और न मुस्लिम संस्कृति ही। उसे हिन्दुस्तानी संस्कृति भले ही कहें। हमलोगोंने यह भी देखा है कि भारतको मुस्लिम और गैरमुस्लिम भागोंमें बाँटनेके प्रस्तावके समर्थनमें दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तका उदय अभी हालमें ही हुआ है। इस बातको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि लीगने १९४० से इस विभाजनको प्राप्त करनेका अनेक बार निश्चिय किया। इसलिए इस माँगके गुण-दोषोंका विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि लीग बहुत अधिक मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करती है।

इस प्रस्तावके पक्ष और विपक्षमें बहुत कुछ लिखा गया है। दोनों तरफसे जोशपूर्ण बहस उपस्थित की गयी है और भावुकताको प्रश्रय दिया गया है। भावुकता मूल्यवान वस्तु है और उसे यों ही नहीं टाला जा सकता और न तो मुकाबला किये बिना उसे छोड़ा ही जा सकता है। लेकिन वास्तविकताके सहारे उसका नियन्त्रण हो सकता है क्योंकि वास्तविकता ऐसे नाजुक स्थलोंपर अपना प्रभाव दिखाये बिना अनेक व्यवस्थाओंको जिन्होंने उसकी पूरी अवज्ञा-की हो—व्यर्थ सिद्ध किये बिना नहीं रह सकती। इसलिए मैं उन सभी लोगोंके समक्ष—जो इस योजनाके पक्ष या विपक्षमें हों—कुछ स्थूल बातें उपस्थित करना चाहता हूँ। यह करनेके पहले मैं उन योजनाओंका संक्षिप्त वर्णन कर देना

चाहता हूँ जो सांस्कृतिक आधारपर या सांस्कृतिक आवश्यकताके लिए समस्त भारत या उसके किसी अंशको स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें बाँटना चाहती हैं। यह करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि अभीतक अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने कोई व्यवस्थित ढाँचा नहीं पेश किया है बल्कि कुछ थोड़े साधारण सिद्धान्त जिनके आधारपर प्रस्तावित बटँवारा निर्भर है—पेश करके ही सन्तोष कर लिया है।

१९४० के मार्चमें लाहौरके अधिवेशनमें इस विषयपर प्रस्ताव पास करनेके पहले ही इस सम्बन्धमें कई योजनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। लीगने न तो उन योजनाओंमेंसे ही किसीको अपनाया और न अपनी ही कोई विस्तृत योजना प्रकाशित की बल्कि बटँवारेके सिद्धान्तका प्रस्तावमात्र पास कर लिया और विस्तृत योजनाका ढाँचा तैयार करनेका काम आगेके लिए छोड़ दिया। आजतक उसने कोई योजना प्रकाशित नहीं की यद्यपि उस प्रस्तावके स्वीकृत हुए पाँच सालसे ज्यादा हो गये। इसलिए जो लोग लीगके प्रस्तावके गुणदोषोंका अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है और वे उन योजनाओंकी ही छानबीन करते हैं जिन्हें समय समयपर किसी दल या व्यक्तिने उपस्थित किया है लेकिन जिन्हें लीगसे ऐसा करनेके लिए कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। यहाँ यह लिख देना भी आवश्यक है जैसा आगेकी विवेचनासे प्रकट होगा, कि इन प्रकाशित योजनाओंमें एक भी ऐसी नहीं है जिसका उन बुनियादी सिद्धान्तोंसे मेल खा सके जो लीगके लाहौरवाले प्रस्तावमें दिये गये हैं। तो भी इनपर विचार करना आवश्यक है क्योंकि इससे यह दिखलानेमें सहूलियत होगी कि लीगकी शर्तोंसे उनका कहाँ मतभेद है।

पञ्जाबीकी योजना

यह योजना श्री पञ्जाबीकी है जो उनकी लिखी पुस्तकमें प्रकाशित हुई है। उन्होंने इसका वर्णन कुछ विस्तारसे किया है। उनके अनुसार भारत उपद्वीपका बँटवारा कई सङ्घोंमें हो सकता है और उसके बाद सबको एक सङ्घ-शासनमें मिला लिया जा सकता है।

(१) इण्डस प्रदेशीय सङ्घमें पञ्जाब (इसमें पञ्जाबके वे पूर्वी हिस्से—आम्बला कमिश्नरी, कांगड़ा जिला और होशियारपुर जिलेकी उन तथा गढशङ्कर तहसील शामिल नहीं रहेंगी क्योंकि यहाँ हिन्दुओंकी आबादी अधिक है) सिन्ध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान, बहावलपुर, अम्ब, धीर, स्वात, चित्राल, खैरपुर, केलात, लासबेला, कपूरथला, मलेरकोटाके इलाके शामिल रहेंगे। इस योजनाके जनकका अन्दाज है कि इस प्रदेशमें, जिसका नाम वे इण्डस्तान रखना चाहते हैं, ३,९८,८३८ वर्गमील भूमि और ३,३०,००,००० जनसंख्या शामिल होगी। इसमें ८२ फीसदी मुसलमान ६ फीसदी सिख और ८ फीसदी हिन्दू होंगे।

(२) हिन्दू भारत सङ्घमें सयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बिहार, बङ्गालप्रान्तके कुछ हिस्से, उड़ीसा, आसाम, मद्रास, बम्बई तथा राजिस्थान और दक्खिनकी रियासतोंको छोड़कर देशी राज शामिल होंगे। दक्खिनकी रियासतोंका एक अलग सङ्घ होगा। उन्होंने इन क्षेत्रोंके क्षेत्रफल और जनसंख्याकी गणना नहीं की है। केवल बङ्गाल सङ्घका दिया है जो इस प्रकार होगा :—

क्षेत्रफल——७,४२,१७३ वर्गमील।
जनसंख्या २१,६०,४१,५४१।
हिन्दू ८३·७२ फीसदी।
मुसलमान ११ फीसदी।

(३) राजिस्तान सङ्घ—इसमें राजपूताना और मध्यभारतके अनेक देशी राज्य शामिल होंगे। इस सङ्घका क्षेत्रफल १,८०,६५६ वर्गमील, जनसंख्या १,७८,५८,५०२ होगी। इसमें हिन्दू ८६·३९ और मुसलमान ८·०९ फीसदी होंगे।

(४) दक्खिन रियासत सङ्घमें हैदराबाद, मैसूर और बस्तरकी रियासतें शामिल होंगी।

क्षेत्रफल	१,२५,०८६ वर्गमील।
जनसंख्या	२,१५,१८,१७१।

चाहता हूँ जो सांस्कृतिक आधारपर या सांस्कृतिक आवश्यकताके लिए समस्त भारत या उसके किसी अंशको स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें बाँटना चाहती हैं। यह करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि अभीतक अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने कोई व्यवस्थित ढाँचा नहीं पेश किया है बल्कि कुछ थोड़े साधारण सिद्धान्त जिनके आधारपर प्रस्तावित बटँवारा निर्भर है—पेश करके ही सन्तोष कर लिया है।

१९४० के मार्चमें लाहौरके अधिवेशनमें इस विषयपर प्रस्ताव पास करनेके पहले ही इस सम्बन्धमें कई योजनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। लीगने न तो उन योजनाओंमेंसे ही किसीको अपनाया और न अपनी ही कोई विस्तृत योजना प्रकाशित की बल्कि बटँवारेके सिद्धान्तका प्रस्तावमात्र पास कर लिया और विस्तृत योजनाका ढाँचा तैयार करनेका काम आगेके लिए छोड़ दिया। आजतक उसने कोई योजना प्रकाशित नहीं की यद्यपि उस प्रस्तावके स्वीकृत हुए पाँच सालसे ज्यादा हो गये। इसलिए जो लोग लीगके प्रस्तावके गुणदोषोंका अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है और वे उन योजनाओंकी ही छानबीन करते हैं जिन्हें समय समयपर किसी दल या व्यक्तिने उपस्थित किया है लेकिन जिन्हें लीगसे ऐसा करनेके लिए कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। यहाँ यह लिख देना भी आवश्यक है जैसा आगेकी विवेचनासे प्रकट होगा, कि इन प्रकाशित योजनाओंमें एक भी ऐसी नहीं है जिसका उन बुनियादी सिद्धान्तोंसे मेल खा सके जो लीगके लाहौरवाले प्रस्तावमें दिये गये हैं। तो भी इनपर विचार करना आवश्यक है क्योंकि इससे यह दिखलानेमें सहूलियत होगी कि लीगकी शर्तोंसे उनका कहाँ मतभेद है।

पञ्जाबीकी योजना

यह योजना श्री पञ्जाबीकी है जो उनकी लिखी पुस्तकमें प्रकाशित हुई है। उन्होंने इसका वर्णन कुछ विस्तारसे किया है। उनके अनुसार भारत उपद्वीपका बँटवारा कई सङ्घोंमें हो सकता है और उसके बाद सबको एक सङ्घ-शासनमें मिला लिया जा सकता है।

(१) इण्डस प्रदेशीय सङ्घमें पञ्जाब (इसमें पञ्जाबके वे पूर्वी हिस्से— आम्बला कमिश्नरी, कांगड़ा जिला और होशियारपुर जिलेकी उन तथा गढशङ्कर तहसील शामिल नहीं रहेंगी क्योंकि यहाँ हिन्दुओंकी आबादी अधिक है) सिन्ध, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान, बहावलपुर, अम्ब, धीर, स्वात, चित्राल, खैरपुर, केलात, लासबेला, कपूरथला, मलेरकोटाके इलाके शामिल रहेंगे। इस योजनाके जनकका अन्दाज है कि इस प्रदेशमें, जिसका नाम वे इण्डस्तान रखना चाहते हैं, ३,९८,८३८ वर्गमील भूमि और ३,३०,००,००० जनसंख्या शामिल होगी। इसमें ८२ फीसदी मुसलमान ६ फीसदी सिख और ८ फीसदी हिन्दू होंगे।

(२) हिन्दू भारत सङ्घमें संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बिहार, बङ्गालप्रान्तके कुछ हिस्से, उड़ीसा, आसाम, मद्रास, बम्बई तथा राजिस्थान और दक्खिनकी रियासतोंको छोड़कर देशी राज शामिल होंगे। दक्खिनकी रियासतोंका एक अलग सङ्घ होगा। उन्होंने इन क्षेत्रोंके क्षेत्रफल और जनसंख्याकी गणना नहीं की है। केवल बङ्गाल सङ्घका दिया है जो इस प्रकार होगा :—

क्षेत्रफल—७,४२,१७३ वर्गमील।

जनसंख्या २१,६०,४१,५४१।

हिन्दू ८३·७२ फीसदी।

मुसलमान ११ फीसदी।

(३) राजिस्तान सङ्घ—इसमें राजपूताना और मध्यभारतके अनेक देशी राज्य शामिल होंगे। इस सङ्घका क्षेत्रफल १,८०,६५६ वर्गमील, जनसंख्या १,७८,५८,५०२ होगी। इसमें हिन्दू ८६·३९ और मुसलमान ८·०९ फीसदी होंगे।

(४) दक्खिन रियासत सङ्घमें हैदराबाद, मैसूर और बस्तरकी रियासतें शामिल होंगी।

क्षेत्रफल १,२५,०८६ वर्गमील।

जनसंख्या २,१५,१८,१७१।

हिन्दू ८५·२८ फीसदी।
मुसलमान ८·९ „ ।

(५) बङ्गाल सङ्घ—इस सङ्घमें पूर्वी बङ्गालके मुस्लिम प्रधान क्षेत्र, आसामके ग्वालपुर और सिलहट जिले इसकी प्रान्तीय इकाई होंगे। त्रिपुरा तथा अन्य देशी रियासतोंके वे हिस्से भी इसमें शामिल रहेंगे जो इसकी प्रान्तीय इकाईके अन्दर आ जायँगे या जो हिन्दू इकाईसे छाँटे हुए रहेंगे।

इस सङ्घका क्षेत्रफल ७०,००० वर्गमील।

जनसंख्या ३,१०,००,०००।
मुसलमान २,०५,००,००० या ६६·१ फीसदी।
हिन्दू १,०१,००,००० या ३२·६ फीसदी।

पञ्जाबीने इस बातको स्वीकार किया है कि इन क्षेत्रोंकी पूरी जानकारी न होनेके कारण उनके इस सुझावमें स्थानीय मुसलमानोंमें आवश्यकता अनुसार उलट फेर हो सकता है। पञ्जाबीके आँकड़े भी सही नहीं प्रतीत होते यद्यपि उनसे किसी तरह औसतका अन्दाज लग जाता है। बङ्गालके जिन जिलोंको उन्होंने शामिल किया है, वे ये हैं—दिनाजपुर, रंगपुर, मालदा, बोगरा, राजशाही, मुर्शिदाबाद, पबना, मैमनसिंह, नदिया, जैसोर, फरीदपुर, ढाका, त्रिपुरा, नोआखाली, बाकरगंज, खुलना तथा चटगाँव।

इस तरह जिन पाँच राष्ट्रोंमें भारतका बँटवारा किया गया है उनमें दो मुस्लिम राष्ट्र होंगे जिनमें मुसलमानोंका बहुमत होगा और बाकी हिन्दू राष्ट्र जिनकी जनसंख्यामें अत्यधिक हिन्दू बहुमत होगा। यह स्मरण रखनेकी बात है कि इण्डस्तान राष्ट्रमें हिन्दू ८ फीसदी और सिख ६ फीसदी होंगे अर्थात् १४ फीसदी आबादी गैर-मुसलमानोंकी होगी। और बङ्गाल राष्ट्रमें हिन्दुओंकी जनसंख्या ३२·६ फीसदीसे कम नहीं होगी। तीन हिन्दू राष्ट्रोंमें मुसलमानोंकी जन संख्या क्रमशः ११ फीसदी ८·०९ फीसदी तथा ८·९ फीसदी होगी।

इन पाँच राष्ट्रोंका एक स्वतन्त्र सङ्घराष्ट्र कायम होगा। "ऊपरकी व्यवस्थाके अनुसार इसमें जो राष्ट्र शामिल होंगे उनमेंसे प्रत्येकके लिए एक गवर्नर जेनरल

और उनके प्रत्येक प्रान्तके लिए एक एक गवर्नर नियुक्त किये जायँगे। जिन विषयोंसे सङ्घराष्ट्रका सम्बन्ध होगा तथा सङ्घके अन्तर्गत देशी राज्योंसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंके लिए ये राष्ट्र केन्द्रीय सङ्घ या सङ्घराष्ट्रके प्रति उत्तरदायी होंगे। सङ्घराष्ट्र सम्बन्धी अधिकार वाइसरायके हाथमें रहेगा। उनकी सहायताके लिए सङ्घ राष्ट्रीय समिति रहेगी। इसके सदस्य भिन्न भिन्न राष्ट्रोंके प्रतिनिधि होंगे। प्रत्येक राष्ट्रके प्रतिनिधियोंकी संख्या उसके भौगोलिक महत्व, जनसंख्या, क्षेत्रफल, आर्थिक स्थिति आदिके आधारपर नियत होगी। वैदेशिक सम्बन्ध, रक्षा, समान नैसर्गिक आधारसे जलकी व्यवस्था तथा देशी राज्योंके प्रति साम्राज्यके अधिकार और कर्तव्य (यदि कोई राज्य ब्रिटिश प्रान्तीय राष्ट्रोंमें शामिल न हो) की जिम्मेदारी गवर्नर जनरलोंके हाथमें होगी जो वाइसरायके प्रति उत्तरदायी होंगे। जो राष्ट्र इस राष्ट्रसङ्घमें शामिल होंगे वे इसके व्ययके लिए या तो नकद रकम दे दिया करेंगे या अपनी आमदनीका कुछ अंश इसके व्ययकी मदोंके लिए निर्धारित कर देंगे। लेकिन सीमाप्रान्तके मुसलमान इसकी आमदनीके लिए चुङ्गीकी रकम नहीं निर्धारित करेंगे। *

इस योजनाके जनक दो बातोंको स्पष्ट कर देनेके लिए बड़े व्यग्र दिखाई देते हैं। सबसे पहले तो यह कि यह राष्ट्रसङ्घ किसी भी प्रकार भारतीय उपद्वीपकी भौगोलिक इकाईको तोड़कर उसका बँटवारा भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंकी जनसंख्या और सांस्कृतिक आधारपर नहीं करना चाहता। जिस तरह एक परिवारके लोग परस्पर सम्बन्ध विच्छेदके बिना आपसी बँटवारा कर लेते हैं, उसी तरहके बँटवारेकी योजना पञ्जाबीने पेश की है। अर्थात् भारतीय उपद्वीपके भिन्न भिन्न भागोंको सांस्कृतिक आधारपर भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें बाँटकर राष्ट्रीय सङ्घमें वह उन्हें फिर एकत्र कर लेना चाहते हैं।† दूसरे—"हमलोग उन मुसलमानोंको जो इसलिए विभाजन चाहते हैं ताकि भारतके बाहरके मुसलमान राष्ट्रोंके

---

* पञ्जाबी लिखित 'कान्फेडरेसी आव इण्डिया' पृ० १२-१३।

† " " पृ० १५।

यह योजना मुस्लिम लीगके इस प्रस्तावको जहाँतक सम्भव है पूरा करनेकी चेष्टा करती है कि जिस क्षेत्रमें—जैसे उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी मुसलमानोंकी जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक है वहाँ जरूरतके अनुसार प्रदेशोंको एकत्र करके एक स्वतन्त्र राष्ट्र कायम कर दिया जाय। इसे पूरा करनेके लिए यह योजना पञ्जाब तथा बङ्गालके उन हिस्सोंको भी मुस्लिम राष्ट्रके लिए ले लेती है जहाँ मुसलमानोंका अल्पमत है। लेकिन व्यवहारमें यह सही नहीं उतरती क्योंकि उसी आधारपर मुस्लिम राष्ट्रसे कुछ क्षेत्रोंको अलग भी करना पड़ेगा। उदाहरणके लिए पञ्जाबकी जालन्धर कमिश्नरीको इण्डस्तान सङ्घसे अलग कर देना होगा क्योंकि वहाँ मुसलमानोंका अल्पमत है और प्रत्येक जिलेमें हिन्दुओं तथा सिखोंका बहुमत है। यदि उस कमिश्नरीके प्रत्येक जिलेकी अलग अलग समीक्षा की जाय तो कांगड़ा तथा होशियारपुर जिलोंमें हिन्दुओंका अत्य-धिक बहुमत पाया जायगा। लुधियाना जिलेमें मुसलमानोंकी अपेक्षा सिख अधिक हैं। केवल जालन्धर और होशियारपुर जिलोंमें हिन्दुओं और सिखोंकी अलग जनसंख्याकी अपेक्षा मुसलमानोंकी संख्या अधिक है। लेकिन हिन्दू और सिखोंकी कुल संख्या मिला देनेपर मुसलमानोंकी संख्या कम हो जाती है। लाहौर कमिश्नरीके अमृतसर जिलेमें भी मुसलमानोंकी अपेक्षा हिन्दुओं और सिखोंका संयुक्त बहुमत है, मुसलमानोंका अल्पमत। इस जिलेमें सौमें ५४ गैर-मुसलमान और ४६ मुसलमान हैं। बङ्गालमें भी ग्वालपाड़ा जिलामें मुसलमानोंकी अपेक्षा गैर-मुसलमानोंका बहुमत है इसलिए इस जिलेको भी मुस्लिम राष्ट्रमें शामिल करना उचित नहीं होगा। विभाजनका मतलब मुस्लिम इकाई कायम करना है, इसलिए जिन क्षेत्रोंमें गैर-मुसलमानोंकी अपेक्षा मुसलमान कम हैं उन क्षेत्रोंको शामिल करनेके लिए कोई यथेष्ट कारण नहीं है।

विभाजनकी योजनाओंकी जो आलोचना आगे की गयी है उससे स्पष्ट प्रकट होगा कि कोई भी योजना सार्थक नहीं है, लेकिन पञ्जाबीने अपनी योजनामें जिन बातोंका समावेश किया है वे तो और भी विचित्र है। जिन पाँच सङ्घोंमें वे देशका विभाजन करना चाहते हैं वह किसी भी सिद्धान्तपर अवलम्बित नहीं

है। इसका केवलमात्र आधार यही है कि इनमेंसे दो मुसलिम सङ्घोंमें मुसलमानों-का बहुमत है। दूसरे सङ्घोंके बीचमें आ जानेसे हिन्दू सङ्घोंमें छः प्रदेश इनसे एक-दम कटकर अलग हो जाते हैं। हिमालयसे कन्याकुमारी अन्तरीपतक तथा अरब सागरसे चीन और बर्माकी सीमातक यह फैला हुआ है। इसलिए एक भागको दूसरे भागसे जोड़नेके लिए अनेक पगडंडियाँ निकालनी होंगी। कितने ही प्रदेशोंको उनके पुराने साथियोंसे अलग कर उन्हें ऐसे इलाकोंमें मिला दिया जायगा जिनसे वे बहुत दूर हैं। सिन्धी, बलूची और पश्तोको छोड़-कर भारतमें बोली जानेवाली सभी भाषाओंका प्रयोग इस विस्तृत प्रदेशमें पाया जायगा। साथ ही इस क्षेत्रके लोग देशके भिन्न भिन्न धर्मोंके माननेवाले भी पाये जायँगे केवल इनकी संख्यामें फर्क होगा। इसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राजोंके हिस्से पाये जायँगे। यदि अन्य भेदभावोंके रहते हुए भी केवल दो करोड़ मुसल-मानोंके कारण इस विस्तृत क्षेत्रका एक सङ्घ राष्ट्र कायम हो सकता है तब कोई कारण नहीं है कि समूचे भारतका एक सङ्घ राज कायम न हो सके। यदि राजपूताना और मध्यभारतके देशी राज्योंका एक सङ्घ बन सकता है तब कोई कारण नहीं है कि बस्तारको जो भाषाके कारण स्वभावतः छत्तीसगढ़ या उड़ीसाकी रियासतोंका अङ्ग है—उससे काटकर हैदराबाद सङ्घमें मिला दिया जाय। इसी तरह ट्रावंकोर और कोचीनके देशी राज्योंको जो कम या बेशी मैसूरके निकटवर्ती हैं, दक्खिनके देशी राज्यसंघसे काटकर हिन्दू संघराष्ट्रमें मिलाये जायँ। हैदराबादके निवासी उर्दूके अतिरिक्त जो वहाँके शासनकी भाषा है मराठी, तेलगू और कनारी तीन भाषा बोलते हैं। यदि इस सङ्घमें मैसूर, कोचीन और ट्रावंकोरको मिला दिया जाता है तब इस सङ्घको एक ही नयी भाषा अर्थात् मलया-लमका—जो कोचीन और ट्रावंकोरमें बोली जाती है—समावेश करना पड़ता है क्योंकि मैसूरकी भाषा कनारी है।

श्री ए० आर० टी० ने भी एक योजनाका खाका तैयार किया था जो ईस्टर्न टाइम्समें प्रकाशित हुआ था और जिसका 'इण्डियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कांस्टिट्यूशन' नामक पुस्तकमें समावेश है। चूँकि इस योजनाका बहुत

कुछ आधार पञ्जाबीकी योजना है इसलिए यहाँ उसकी अलग मीमांसा नहीं की जाती।

अलीगढ़ योजना

दूसरी योजना अलीगढ़के प्रोफेसर सैयद जफरुल हसन और मुहम्मद अफजल हुसेन कादिरीकी है। इस योजनाके अनुसार हिन्दुस्तानका विभाजन अनेक पूर्ण-स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें इस प्रकार होगा:—

(१) पाकिस्तान—इसमें पञ्जाब, सीमाप्रान्त, सिन्ध, बिलोचिस्तान, तथा जम्मू, काश्मीर, मण्डी, चम्बा, सकित, सुमीन, कपूरथला, मलेरकोटा, चित्रल, धीर, कलात, लोहारू, बिलासपुर, शिमलाके पहाड़ी राज्य तथा बहावलपुरके राज शामिल होंगे।

कुल जनसंख्या ३९२,७६,२४४।

मुसलमान २,३६,९७,५३८ अर्थात् ६०·३ फीसदी।

(२) बङ्गाल—हवड़ा तथा मिदनापुर जिलोंको छोड़कर समूचा बङ्गाल तथा बिहारका पूर्णिया जिला तथा आसामकी सिलहट कमिश्नरीके जिले इसमें शामिल होंगे।

कुल जन-संख्या—५,२५,७९,२३२।

मुसलमान—३,०१,१८,९८४ अर्थात् ५७° फीसदी।

(३) हिन्दुस्तान—हैदराबाद, पाकिस्तान तथा बङ्गाल और उसके अन्तर्गत जिलों तथा रियासतोंको छोड़कर बाकी सब ब्रिटिश भारत तथा देशी राज।

कुल जनसंख्या—२१,६०,००००० ।

मुसलमान—२०,६०,००० अर्थात् ९-७ फीसदी।

(४) हैदराबाद—हैदराबाद, बरार तथा करनाटक (मद्रास तथा उड़ीसा)।

कुल जनसंख्या—२,९०,६५,०९८।

मुसलमान—२१,४४,०१० अर्थात् ७-४ फीसदी।

(५) दिल्ली प्रान्त—दिल्ली, मेरठ कमिश्नरी, रुहेलखण्ड कमिश्नरी तथा आगरा कमिश्नरीका अलीगढ़ जिला।

कुल जनसंख्या—१,२६,६०,००० ।

मुसलमान—३५,२०,००० अर्थात् २८·० फीसदी ।

(६) मलाबार प्रान्त—मलाबार तथा इसके आसपासके प्रदेश जैसे दक्षिण कनारा।

कुल जन-संख्या—४१,००,००० ।

मुसलमान—१४,४०,००० अर्थात् २७·० फीसदी ।

इसके अलावा भारतके जिन शहरोंकी आबादी ५० हजार या इससे अधिक होगी उन्हें बारो या स्वतन्त्र नगरकी हैसियत प्राप्त होगी और इन्हें स्वायत्त शासनके बहुत कुछ अधिकार प्राप्त होंगे। इसमें मुसलमानोंकी आबादी प्रायः १३,८८,६९८ होगी। हिन्दुस्तानके देहातोंमें रहनेवाले मुसलमानोंसे आग्रह किया जायगा कि नगण्यकी भाँति छिटफुट न बसकर जैसा कि इस वक्त है, वे उन गाँवोंमें जाकर बसें जिनमें मुसलमानोंका बहुमत हो।

पाकिस्तान, बङ्गाल, तथा हिन्दुस्तानके ये तीन राष्ट्र निम्नलिखित आधारपर आपसमें रक्षात्मक और आक्रमणात्मक सन्धि कर लेंगे—

(१) एक दूसरेकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हुए एक दूसरेकी सहायता करें।

(२) पाकिस्तान और बङ्गाल मुसलमानोंका तथा हिन्दुस्तान हिन्दुओंका निवास-स्थान (होमलैण्ड) मान लिया जाय और जो मुसलमान या हिन्दू चाहें इन राष्ट्रोंमें क्रमशः जाकर बसें।

(३) हिन्दुस्तानमें बसनेवाले मुसलमान पाकिस्तान तथा बङ्गालके नागरिकके रूपमें अल्पसंख्यक राष्ट्र माने जायँ।

(४) हिन्दुस्तानके मुसलमान अल्पसंख्यकों तथा पाकिस्तानके गैरमुसलमान अल्पसंख्यकोंको (क) जनसंख्याके अनुसार प्रतिनिधित्व (ख) तीनों राष्ट्रोंद्वारा

अनुकूल संरक्षण तथा (ग) प्रत्येक अवस्थामें पृथक् प्रतिनिधित्व और पृथक् निर्वाचन प्रणाली प्राप्त होगी। तीनों राष्ट्रोंके अन्य उपयुक्त अल्पसंख्यक समुदायको जनसंख्याके अनुसार अलग प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है।

(५) हिन्दुस्तानमें बसनेवाले मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व प्रामाणिक मुसलिम राजनीतिक संस्था करेगी।

पाकिस्तान बङ्गाल और हिन्दुस्तानके ये स्वतन्त्र राष्ट्र ग्रेटब्रिटनके साथ अलग अलग सन्धि करेंगे और यदि ब्रिटिशराजका प्रतिनिधि रखना आवश्यक हुआ तो प्रत्येकके लिए अलग अलग प्रतिनिधि रहेंगे। इन तीनों राष्ट्रोंके आपसी झगड़े तथा ग्रेट ब्रिटेनके साथ इनके किसी झगड़ेको निपटानेके लिए संयुक्त पञ्चायती अदालत होगी।

हैदराबादका अपना अलग स्थान है। यह ब्रिटिश सरकारका दोस्त माना जाता है। सन्धिके अनुसार यह स्वतन्त्र और खुद मुख्तार राष्ट्र है। शासन व्यवस्थाके लिए बरार और कर्नाटकको ब्रिटिश सरकारने इससे ले लिया था। ये इसे वापस मिल जाने चाहिए। इन दोनों प्रदेशोंको मिलाकर हैदराबाद नेपालके समान खुद मुख्तार राज्य माना जाना चाहिए। कर्नाटकके मिल जानेपर इसका अपना समुद्री किनारा हो जायगा और स्वभावतः यह मुस्लिम भारतका दक्षिणी बेड़ा बन जायगा।

पञ्जाबीकी योजनामें जो खराबियाँ हैं, उससे कहीं ज्यादा खराबी इस योजनामें है। मुस्लिम लीगके अनुसार यह मुसलिम राष्ट्रोंमें केवल उन क्षेत्रोंको शामिल करनेका सुझाव पेश नहीं करता जिनमें केवल मुसलमानोंका बहुमत है, जैसे वह पाकिस्तानमें अम्बाला कमिश्नरी शामिल कर लेता है जिसमें हिन्दुओंका अत्यधिक बहुमत है तथा जालन्धर कमिश्नरीको शामिल कर लेता है जिसमें गैर-मुसलमानोंका बहुमत है। वह पूर्वी इलाकेमें बंगाल तथा आसामके उन जिलोंको शामिल कर देता है जिनमें भी हिन्दुओं और गैर-मुसलमानोंका बहुमत है। इस क्षेत्रमें वह बिहारका पूर्णिया जिला मिलाता है जिसमें हिन्दुओंका बहुमत है।

कर्नाटक और बरारको हैदराबादमें मिलाकर उसे खुदमुख्तार स्वतन्त्र राष्ट्र कायम करता है। हैदराबादकी आबादीमें अत्यधिक हिन्दू हैं, मुसलमान केवल १०·४ फीसदी हैं, फिर भी हैदराबादको मुस्लिम राष्ट्र क्यों माना गया है, यह समझमें नहीं आता। हैदराबादका शासक मुसलमान होनेके नाते यदि इसे मुस-लिम राष्ट्र माना गया है तो काश्मीरको पाकिस्तानमें कैसे लिया जा सकता है, क्योंकि काश्मीरका शासक हिन्दू राजा है।

समस्त भारतमें अनेक स्वतत्र नगरोंकी स्थापनाकर वह इस विभाजनको पुष्ट बनानेका यत्न करता है। इस योजनाके जनकोंने भारतके हिन्दू और मुसल-मानोंकी तुलना जर्मनीके जेक और सुडेटनसे की है इसलिए इन नगरोंकी तुलना डैंजिगसे की जा सकती है। तब क्या भारतमें भी उस इतिहासकी पुनरावृत्ति होगी कि भारतीय जेकों (हिन्दुओं) द्वारा भारतीय सुडेटन (मुसलमानों) के ऊपर अत्याचारकी आड़ लेकर भारतके डैंजिग—उन स्वतन्त्र नगरोंको मुक्त करनेके लिए जेक (हिन्दुओं) और जेकोस्लावेकिया (हिन्दुस्तान) के खिलाफ युद्धकी घोषणा की जाय।

हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्रोंके बीच संरक्षणात्मक और आक्रमणात्मक सन्धिके आधारकी व्याख्या करते हुए इस योजनाके रचयिता दोनों राष्ट्रोंमें परस्पर सह-योग और सद्भावनाकी आशा प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि हिन्दुस्तानमें बसनेवाले मुसलमान स्वतन्त्र बड़े मुस्लिम राष्ट्रके नागरिककी हैसियतसे अल्प-संख्यक स्वतन्त्र राष्ट्र समझे जायँगे, लेकिन पाकिस्तान और बङ्गालमें बसनेवाले हिन्दुओंको इसी तरहके अधिकार देनेकी वे चर्चातक नहीं करते। वे यह भी कहते हैं कि हिन्दुस्तानमें बसनेवाले मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व एकमात्र प्रामा-णिक मुस्लिम राजनीतिक संस्था करेगी लेकिन पाकिस्तान तथा बङ्गालमें बसने-वाले हिन्दू तथा अन्य अल्पसंख्यक समुदायको वे इस तरहका कोई हक नहीं देते।

तात्पर्य यह कि इस योजनाका उद्देश्य स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र कायम करने-का है जिसका एकमात्र यही आधार है कि चित पड़ा तो तुम खोये, पट पड़ा तो हम जीते।

रहमतअलीकी योजना

तीसरी योजना चौधरी रहमतअलीकी है। इस योजनाका समावेश उनकी पुस्तक "दी मिल्लत आव इस्लाम ऐण्ड दि मिनास आव इण्डियनिज्म"में है। यह पुस्तक १९४० में लिखी गयी थी। इसके लेखक पाकिस्तान राष्ट्रीय आन्दोलनके जन्मदाता और अध्यक्ष हैं। इस संस्थाका जन्म १९३३ में हुआ था। इसका उद्देश्य पाकिस्तानकी माँगको स्थूल रूप देना था अर्थात् उन पाँच प्रदेशोंको अलग करनेके लिए जिनके नामके प्रथम अक्षरके संयोगसे 'पाकिस्तान' शब्दका निर्माण होता है, जैसे पञ्जाबसे 'प' अफगानिया (उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त जिसके निवासी अफगान कहलाते हैं) से 'अ' काश्मीरसे 'क' सिन्धसे 'स' और बिलोचिस्तानसे 'तान'। १९४० में उन्हें यह प्रतीत हुआ कि उनकी योजनाका जिस तरहसे स्वागत हुआ है, उससे, "हमलोगोंको केवल इतना ही प्रोत्साहन नहीं मिलता है कि हमलोग अपनी माँग जारी रखें बल्कि उसे बंगाल तथा उस्मानिस्तान (हैदराबाद-दक्खिन) की ओर भी बढ़ायें।"* "क्योंकि इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि यदि हमलोग भारतके अन्दर रहनेके लिए राजी हो जायँ तो हमलोगोंको भारतीयताके अन्दर सड़ना पड़ेगा जिसके धूर्त अनुयायी—भारतीय राष्ट्रवादी—इसे नया रूप प्रदान करनेके लिए तुले हैं। जिन राष्ट्रवादियोंको तुच्छ अवसरवादी मुसलमानों तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंने इसी रूपमें स्वीकार कर लिया है।† मुस्लिम लीगसे भी वे इसलिए नाराज हैं कि उसने अपने नामके साथ 'अखिल भारतीय' शब्द जोड़ लिया है। क्योंकि मिल्लतकी राष्ट्रीयताको भारतीय राष्ट्रीयतासे भिन्न मानते हुए भी लीग 'अखिल भारतीय' शब्दके साथ सटा हुआ है और भारतको अपनी 'समान मातृभूमि' मानता है।"‡ "भारतकी भौगोलिक इकाईको स्वीकार करनेका अर्थ होगा मिल्लतके गलेमें भारतीयताका

* दि मिल्लत आव इस्लाम ऐण्ड दि मिनास आव इण्डियनिज्म—पृ० १।
† ,, ,, ,, पृ० ४।
‡ ,, ,, ,, पृ० ६।

जालिम जुआ डाल देना। लीगको दृढ़ निश्चयी होकर 'भारत' शब्दका परित्याग कर देना चाहिए अर्थात् भारतके साथ हर तरहका सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिए। इसीसे भारतीयतासे मिल्लत और पान—इस्लामकी रक्षा हो सकती है"।*

चौधरी रहमतअली पाकिस्तान, बङ्गाल तथा उस्मानिस्तानके खुदमुख्तार राष्ट्रपर बहुत अधिक जोर देते हैं। आसाम तो बङ्गालका पुछल्ला है और उनके अनुसार इस क्षेत्रका नाम बंग-इ-इस्लाम होगा। "इस स्थूल सत्यको कह देना उचित है कि हमलोगोंको उस्मानिस्तानके लिए उसी अन्तर्राष्ट्रीय विधानके अनुसार हक प्राप्त है जिसके अनुसार अन्य राष्ट्रोंको अपनी भूमिपर वह अधिकार प्राप्त होता है। यह अधिकार उसे वैधानिक मालिकाना हक प्रदान करता है जिसे उन सन्धियोंमें भी कबूल किया गया है जो ब्रिटिश सरकार तथा उस्मानिस्तानके आला हजरतके बीच हुई हैं। उस्मानिस्तानको इस उपद्वीपमें जो अधिकार प्राप्त हैं वे असाधारण हैं क्योंकि वे दूसरोंको प्राप्त नहीं हैं। यह हो जानेके बाद हमलोग पाकिस्तान, बङ्गाल और उस्मानिस्तानका निर्माण ऐसे दृढ़ नींवपर करेंगे कि इतिहासमें उसकी मजबूती, शक्ति और विशालताका कोई मुकबला नहीं कर सकेगा। यदि हमलोग 'भारतीयता' से अपना गला छुड़ाना चाहते हैं, भारतसे पृथक् अपनी राष्ट्रीयता कायम करना चाहते हैं, और अपने राष्ट्रीय प्रदेशोंको दक्षिणी एशियाई मुल्कोंके रूपमें एक सूत्रमें बाँधना चाहते हैं तो हमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीगको मिटा देना होगा और उसके स्थानपर उपर्युक्त तीनों राष्ट्रोंका एक सङ्गठन कायम करना होगा"।†

"इतनेसे ही भारतसे अलग होनेकी हमलोगोंकी आकाङ्क्षापर अन्तिम मुहर पड़ जायगी, मिल्लतको प्रोत्साहन मिलेगा और संसारपर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। इतना हो जानेका यह मतलब होगा कि हमलोग कसौटीपर उतर चुके और अपना अन्तिम निर्णय कर लिया, हमलोगोंके उद्देश्यकी सिद्धि निश्चय होगी और दक्षिण एशियामें हमलोग एक पवित्र उद्देश्यका जन्म देंगे। इसके

* वही पृष्ठ ११–१४। † वही पृ० १५।

बाद अपने ऐतिहासिक उद्देश्यमें विश्वास रखते हुए, चाँद और सितारेके झण्डेके नीचे खड़े होकर हमलोग अवश्य विजयी होंगे।*

इससे स्पष्ट है कि इस योजनाके जनक दो राष्ट्र अथवा मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तके कट्टर हिमायती हैं चाहे जहाँ भी उसकी स्थापना हो सके। जिस समय उन्होंने अपनी यह पुस्तक लिखी उन्हें यह आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ कि वे इसका भी विवेचन करें कि मुस्लिम राष्ट्रमें कौन-कौनसे क्षेत्र होंगे, उनमें बसनेवाले गैरमुसलमानों तथा भारतमें बसनेवाले अन्य मुसलमानोंके क्या अधिकार होंगे। उन्होंने जो आदर्श स्वप्न देखा उसके सामने इन छोटी-छोटी बातोंकी चर्चा उन्हें तुच्छ प्रतीत हुई। यदि मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापना हो गयी तो सब कुछ ठीक है अन्यथा सब कुछ गलत।

पाकिस्तान, बंगिस्तान और उस्मानिस्तानके कायम करनेकी इस योजनासे भी रहमतअलीको पूरा सन्तोष नहीं हुआ। १९४२में उन्होंने 'पाक योजना' के सात फर्मान निकाले। ये फर्मान पुस्तिकाके रूपमें हैं जिसका नाम है "दि मिल्लत ऐण्ड दि मिशन।" वे फरमान इस प्रकार —

१—अल्पमतसे बचो।
२—राष्ट्रीयताका मन्त्र जपो।
३—अनुपातके अनुसार देशपर कब्जा करो।
४—एक एक मुस्लिम राष्ट्रको दृढ़ बनाओ।
५—'पाक' इन राष्ट्रोंको पाक राष्ट्रसङ्घके (कामनवेल्थ आव नेशन्स) के अन्दर बाँधकर रखो।
६—भारतको 'दीनिया' बना डालो।
७—'दीनिया' और उसके अधीन प्रदेशोंको पाकिस्तानमें सङ्गठित करो।

---

* दि मिल्लत आव इस्लाम ऐण्ड दि मिनास आव इण्डियनिज्म—पृष्ठ १६।

१—अल्पमतसे बचो—अर्थात् यदि हिन्दू और ब्रिटिश सरकार वैधानिक संरक्षण दें तो भी अल्पसंख्यक मुसलमानोंको हिन्दू प्रदेशमें मत रहने दो।

२—राष्ट्रीयताका मन्त्र जपो—यह फरमान पहले फरमानका अङ्गीभूत है। इसका अभिप्राय यह है कि हिन्दूराष्ट्रमें बसनेवाले मुसलमान अल्पसंख्यक समुदायके लिए राष्ट्रीय पदकी माँग करें और उसपर जोर दें। पाकिस्तान, बङ्गिस्तान और उस्मानिस्तानमें बसनेवाले हिन्दुओं और सिखोंको भी वही अधिकार बदलेमें दो। इसका आधार यह सिद्धान्त है कि व्यक्तिके लिए जो अभिप्राय जवानीका है जातिके लिए वही अर्थ बहुमतका है। १९४० तक इस तरहकी माँग पेश करनेमें जो औपनिवेशिक कठिनाई थी वह अब दूर हो गयी क्योंकि सिखोंने पाकिस्तानमें स्वतन्त्र राष्ट्रीयताकी माँग पेश कर दी है। इसलिए इस दावेका हमलोगोंको ज्यादासे ज्यादा उपयोग करना चाहिए और पटियाला, नाभा और झींद सिख रियासतोंमें अनुपातके अनुसार सिखोंकी इस शर्तपर माँग पूरी कर देनी चाहिए कि हिन्दू बहुमतवाले सातो इलाकोंमें हमें भी वही अधिकार सिखोंके समर्थकों हिन्दू और ब्रिटिश सरकारद्वारा मिल जायगा और हमलोग सिदिकिस्तान, फरूकिस्तान, हिन्दुस्तान, मोमिनिस्तान, मोप्लाइस्तान, सफीइस्तान नासिरिस्तानकी स्थापना कर सकेंगे। इन लोगोंने सिखोंके दावेका भय दिखलाकर विगत ८५ सालोंसे हमलोगोंके जायज हकोंसे वञ्चित रखनेका यत्न किया है।" *

३—ऊपर लिखे सातो 'स्तानों' को कायम करनेके लिए अनुपातके हिसाबसे इलाके प्राप्त करो। इसका अभिप्राय यह है कि दीनिया तथा उसके मातहत इलाकोंमें अपने अनुपातके हिसाबसे प्रदेश प्राप्त करो और उसे मुसलमानी राष्ट्रमें बदल दो।...उदाहरणके लिए हिन्दुइस्तान अर्थात् संयुक्तप्रान्त आगरा-अवधमें हमारा अल्पमत समुदाय प्रायः १५ प्रतिशत है इसलिए इस प्रान्तकी १५ फीसदी भूमि अर्थात् प्रायः १७००० वर्गमील भूमिपर हमलोगोंका

---

* श्री रहमतअली लिखित "दि मिल्लत ऐण्ड दि मिशन"। पृष्ठ १३-१४।

हक है इसे प्राप्तकर हमें अपने राष्ट्रको हिन्दुस्तानमें बदल देना चाहिए। इसी तरह मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, मालवा, बिहार, उड़ीसा, राजिस्तान, बम्बईप्रान्त दक्षिण भारत, पश्चिमी लङ्का तथा पूर्वी लङ्कामें भी हमलोगोंको अपना यह दावा पेश करना चाहिए और हमलोगोंको अपना बिदिकिस्तान, फरूकिस्तान, मोमिनिस्तान, मोप्लाइस्तान, सफीइस्तान तथा नासिरिस्तान स्वतन्त्र राष्ट्र कायम करना चाहिए।*

४—एकाकी राष्ट्रोंको संगठित करो—इस फरमानका अभिप्राय यह है कि दीनिया और लङ्काके हिन्दू बहुमत प्रदेशोंमें छिटफुट रहना हमारे अल्पमत समुदायके लिए खतरनाक है इसलिए अपनी इन बिखरी हुई शक्तियोंको संगठित कर मजबूत बनानेका यत्न करो।

५—इन राष्ट्रोंको पाँच राष्ट्रसंघके अन्दर गूँथकर रखो। इस फरमानका आशय यह है कि कमसे कम अपने दसो प्रदेशोंको तो एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनके अन्दर कर लेना चाहिए। अर्थात् उन 'स्तानों' को जिनकी कल्पना लेखकने दीनियाके अन्तर्गत तथा इस राष्ट्रसंघके अन्दर की है।

६—भारत उपनिवेशको दीनिया बना डालो—इस फर्मानका अभिप्राय यह है कि भारत-भूमि और उसकी आत्माका भारतीयतासे उद्धारकर हमें उसपर दीनियाकी प्रभुता स्थापित करनी चाहिए और इस तरह उसे विश्वमें उचित और मान्य स्थान दिलाना चाहिए जो इसकी विरासत है। इसलिए हमलोगोंको एकबार पुनः अपने उस प्राचीन आदर्शको सामने खड़ा करना चाहिए और उसके लिए इन तीन सिद्धान्तोंपर अमल करना चाहिए—

(१) संसारमें जो यह भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि भारत भारतीयोंका है, उसका अन्त कर देना चाहिए।

(२) संसारमें हमें यह सचाई फैलानी चाहिए कि भारत दीनियोंका है।

---

* वही पृ० १७।

(३) और साथ ही हमें यह भावना भी फैलानी चाहिए कि भारत उपद्वीपका असली नाम दीनिया उपद्वीप है।

४—दीनिया और उसके अधीन प्रदेशोंको पाकिस्तानमें संगठित करो।

चौधरी रहमतअलीको पाकिस्तान, बंगिस्तान और उस्मानिस्तानसे ही सन्तोष नहीं है बल्कि हिन्दू प्रदेशमें भी वे सात मुसलिम राष्ट्रोंकी स्थापनाकी कल्पना करते हैं और ये राष्ट्र मुसलमानोंकी आबादीके अनुपातमें होंगे जो कि सबके सब पाकिस्तान राष्ट्रसंघके अंग होंगे। वे भारत नाम भी उड़ा देना चाहते हैं और इसकी जगह दीनिया नाम रखना चाहते हैं। इस तरह पाक राष्ट्रसंघ पाकेशियाके अन्दर आपसे आप आ जायगा।

पाकिस्तानकी भावना तथा इस नामके जन्मदाता चौधरी रहमतअली पहले मुसलमान हैं जिन्होंने मुसलमानोंकी स्वतन्त्र राष्ट्रीयताका दावा गोलमेज कान्फरेंसके उन मुस्लिम प्रतिनिधियोंके विश्वासघातके विरोधमें पेश किया जिन्होंने सङ्घ-शासन कबूलकर मिल्लतको धक्का पहुँचाया। आपका खयाल है कि उनके विचारोंको लीगने अंशतः कबूल कर लिया है और धीरे धीरे लीग उनके उन मन्तव्योंको भी स्वीकार कर लेगी जो प्रकाशित या अप्रकाशित हैं। इसलिए भारतको उस दिनके लिए तैयार रहना चाहिए जब 'भारत' नाम ही उड़ जायगा और समस्त देशमें मिल्लत कायम होकर इसका नाम दीनिया हो जायगा।

डाक्टर लतीफकी योजना

चौथी योजनाके जनक डा० एस. ए. लतीफ हैं। इस योजनाका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक "दि मुस्लिम प्राब्लम इन इण्डिया" में की है। भारतके विभाजनको अपनी योजनाका आधार बनाकर उन्होंने उसमें जटिलता उत्पन्न करनेका यत्न नहीं किया है, बल्कि प्राकृतिक आधारपर भारतको एक सूत्रमें बाँधनेकी यह योजना एक प्रयासमात्र है, इसलिए इस योजनाका दृष्टिकोण सर्वथा भारतीय है। जिस तरह कनाडा आदि उपनिवेशोंमें दो विभिन्न जातियाँ अपने अपने क्षेत्रोंमें रहकर एक ही कनाडा राष्ट्रके कल्याणके लिए यत्न करती

हैं उसी तरह हिन्दुस्तानमें भी वे चाहते हैं कि सांस्कृतिक साम्य रखनेवाली जातियोंके अलग अलग राष्ट्र हो जायँ। उनका दावा है कि यह योजना मेलके लिए है विभाजनके लिए नहीं।*

इस योजनाके अनुसार सांस्कृतिक साम्यके खयालसे भारतका विभाजन १५ प्रधान क्षेत्रोंमें होगा। चार क्षेत्र मुसलमानोंके लिए और कमसे कम ११ हिन्दुओंके लिए। देशके कोने कोनेमें बिखरी देशी रियासतोंको उनकी प्राकृतिक अवस्थाके अनुसार भिन्न भिन्न क्षेत्रोंके अन्तर्गत कर दिया जायगा। इस तरहके प्रत्येक क्षेत्रमें एक सांस्कृतिक राष्ट्रकी स्थापना होगी और जिस क्षेत्रमें एकसे अधिक राष्ट्र होंगे वहाँका अन्तरङ्ग शासन पूर्ण रूपसे विकेन्द्रित होते हुए भी अन्य क्षेत्रोंकी तरह भारतीय संघराष्ट्रके अनुकूल होगा। †

मुस्लिम सांस्कृतिक क्षेत्र

(१) उत्तर पश्चिमी गुट—इसमें सिन्ध, बिलोचिस्तान, पंजाब, सीमाप्रान्त तथा खैरीपुर और बहावलपुरकी देशी रियासतें शामिल होंगी। संघ व्यवस्थाके अनुसार इन छहोंका एक स्वतन्त्र राष्ट्र होगा इसमें २५० लाख मुसलमानोंको अपना स्वतन्त्र निवास प्राप्त होगा।

(२) उत्तर पूर्वी गुट—पूर्वी बङ्गाल, कलकत्ता तथा आसामको मिलाकर यह गुट बनेगा। इसमें ३ करोड़ मुसलमानोंको स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ता प्राप्त होगी।

(३) दिल्ली लखनऊ गुट—ऊपरके दोनों गुटोंमें मुसलमान तितर-बितर बसे हुए हैं। इसलिए इस गुटमें बसनेवाले मुसलमानोंको प्राकृतिक (आदि) निवासीका हक प्राप्त करनेके लिए इन दोनोंमेंसे अपने निकटवर्ती गुटमें बस जाना चाहिए। बाकी जिनकी तादाद भी काफी है, जो इस समय संयुक्तप्रान्त, बिहारमें बसते हैं और जिनकी संख्या १२० लाखके लगभग होगी, इन्हें मिलाकर अलग एक गुट बना दिया जायगा जो एक सोधमें पटियालाकी पूर्वी

---

* श्री एस० ए० लतीफ लिखित "मुस्लिम प्राब्लम इन इंडिया" पृष्ठ २८-३८।

† ,, ,, ,, पृष्ठ ३८।

सीमासे रामपुर, आगरा, दिल्ली, कानपुर, और लखनऊको शामिल करते दिल्ली तक चला जायगा। बनारस, हरद्वार, प्रयाग और मथुरा सरीखे हिन्दू तीर्थ क्षेत्रोंको इससे अलग कर दिया जाय।

(४) दक्खिनका गुट—इसमें हैदराबाद, बरार तथा दक्षिणी भूभागका वह पतला रेखानुमा प्रदेश जो कर्नूल, कुड़प्पा, चिमूर उत्तरी अर्काट तथा चिंगलपेठ जिलोंसे होता हुआ मद्रास शहरमें समुद्री किनारेतक चला गया है। प्रायद्वीप, मध्यप्रान्त, बम्बई, मद्रासखूबा, मैसूर, कोचीन तथा ट्रावंकोरके मुसलमान इस गुटमें बटोरे जायँगे। उत्तर पूर्वी तथा दिल्ली-लखनऊ गुटके फाजिल मुसलमान भी इसी गुटमें बसाये जायँगे। इन चार गुटोंके अतिरिक्त राजपूताना, गुजरात, मालवा पश्चिमी भारतीय रियासतोंमें बसनेवाले मुसलमानोंको भोपाल, टोंक, जूनागढ़ तथा जाओनकी मुस्लिम रियासतोंमें एवं अजमेरके स्वतन्त्र नगरमें आबादीके अदले-बदलेके आधारपर बसानेका प्रबन्ध किया जायगा।

हिन्दू सांस्कृतिक क्षेत्र

(१) बङ्गालके निकटवर्ती बिहारका हिस्सा बङ्गालमें मिलाकर बङ्गाली हिन्दुओंका एक गुट बन जायगा।

(२) उड़िया बोलनेवालोंका उड़ीसामें एक गुट होगा।

(३) पश्चिमी बिहार और लखनऊ-दिल्ली गुटतक संयुक्तप्रान्त जो हिमालयसे लेकर विन्ध्यपर्वत शृङ्खलातक फैला हुआ है। इसमें मध्यभारतकी कई देशी रियासतें भी शामिल रहेंगी। यही गुट मुख्य हिन्दुस्तान नवोदित हिन्दीका गढ़ होगा जो नया जोश और नया उत्साह प्रदान करेगा।

(४) राजपूतानाकी राजपूत रियासतें।

(५) गुजरात तथा काठियावाड़की हिन्दू रियासतें जहाँ गुजराती संस्कृति अपना विकास कर सकेगी।

(६) द्राविड़ संस्कृतिके गुट, जैसे, कनारी, आन्ध्र, तामिल और मलयाली संस्कृतियोंका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होगा।

(७) काश्मीरके एक अंशको लेकर उत्तर पश्चिम मुस्लिम गुटमें हिन्दू सिख गुट। काश्मीर मुस्लिम-प्रधान प्रदेश है। आपसकी रजामन्दीसे उसे पञ्जाबमें मिला दिया जायगा और उसके बदलेमें वर्तमान पञ्जाबका उत्तर पूर्वी भाग काँगड़ाघाटी सहित महाराज काश्मीरको दे दिया जायगा। सिन्धके हिन्दुओंको पड़ोसी गुजरात या राजपूतानामें स्थान दे दिया जायगा। पञ्जाब स्टेट एजेंसीके अन्तर्गत सभी गैर-मुस्लिम रियासतें तथा हिन्दू रियासतें काश्मीरके एक भाग सहित हिन्दू सिख गुटमें शामिल कर दी जायँगी।

विभाजनकी इस रूपरेखामें केवल आभास मात्र दे दिया गया है। जरूरत पड़नेपर रायल कमीशन नियुक्त कर इसकी निश्चित रूपरेखा तैयार की जा सकती है।

इस योजनाके अनुसार प्रत्येक गुटमें एक जातीयता कायम करनेके लिए उन गुटोंमें बसनेवाले हिन्दू और मुसलमानोंको अपने पड़ोसी हिन्दू और मुस्लिम प्रदेशोंमें जाकर बसना होगा। हरिजनोंको इस बातकी स्वतन्त्रता रहेगी कि वे अपने इच्छानुसार हिन्दू या मुस्लिम क्षेत्रको अपना निवास स्थान बनावें। आबादीका अदला-बदला धीरे धीरे कई वर्षोंमें पूरा किया जायगा। इस तरह आबादीको स्थानान्तरित करनेका परिणाम देखनेके लिए पहले कुछ ऐसे लोगोंको तैयार करना होगा जो स्वेच्छासे स्थानान्तरित हो सकें।

विधानमें निम्नलिखित व्यवस्थाएँ होगी:—

भारतीय राष्ट्रोंके सार्वजनिक कानून :—(१) एक या दूसरी जातिका कोई व्यक्ति किसी विशेष कारणसे उस क्षेत्रमें रह सकता है जो सांस्कृतिक आधारसे उसका नहीं है। उसे जान और मालकी रक्षा तथा नागरिक अधिकारकी पूरी व्यवस्था प्राप्त होगी।

तीर्थस्थान :—(२) धार्मिक प्रतिमा, स्मारक चिह्न तथा कब्रिस्तानोंकी रक्षा केन्द्रीय सरकारकी देखरेखमें प्रत्येक राष्ट्रको करनी होगी।

ईसाई, बुद्ध तथा पारसी :—(३) अल्पसंख्यक जातियोंके स्वतन्त्र अस्तित्वके लिए उनके धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थानोंकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध प्रत्येक

राष्ट्रको करना होगा। उन्हें इस बातका अधिकार होगा कि यदि वे चाहें तो अन्तर्देशीय आजादीकी माँग किसी भी समय कर सकते हैं।

हरिजन :—(४) इन्हें इस बातकी स्वतन्त्रता रहेगी कि वे अपने निवासके लिए हिन्दू या मुस्लिम क्षेत्र चुन लें। वहाँ उन्हें नागरिक अधिकार पूर्णरूपसे प्राप्त होंगे।

इस योजनाके लेखकने विधान भी तैयार किया है जो १९३५के शासन-विधानका स्थान ले सकता है।

इसके अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय सङ्घको अधिकसे अधिक स्वायत्त शासन प्राप्त होगा और सङ्घके अन्दर आनेवाले विषयोंकी सूचीको न्यूनतम बनाकर देशी रियासतें तथा उनके शासकोंके अधिकारोंकी रक्षाकी पूरी व्यवस्था की जायगी।

जिन सङ्घोंमें विचार व्यवहारकी समानता हो, उनके लिए एक प्रादेशिक बोर्डकी व्यवस्था की जायगी जो उनके समान सांस्कृतिक और आर्थिक विषयोंके लिए समान नियम निर्माण करेगा और प्रत्येक प्रदेशको यह अधिकार दिया जायगा कि इन नियमोंके आधारपर वह अपने लिए कानून बनावे।

इसमें प्रत्येक प्रान्तीय इकाई और केन्द्रके लिए पार्लमेण्टरी शासनके स्थानपर एक सर्वानुमोदित संयुक्त और स्थायी शासनकी व्यवस्था की गयी है।

इसमें ऐसे अधिकारकी व्यवस्था है जिसके द्वारा केन्द्रमें तथा सङ्घमें भी मुसलमान तथा प्रत्येक अल्पमतको आर्थिक और सांस्कृतिक संरक्षण प्राप्त होंगे।

इस योजनाके अनुसार भारत एक सङ्घराष्ट्रके रूपमें बदल जायगा जिसकी प्रत्येक इकाईको अधिकसे अधिक स्वाधीनता—केवल उन बातोंको छोड़कर जो सबके लिए समान है, जैसे, रक्षा, विदेशी सम्बन्ध, व्यवसाय, यातायात—प्राप्त होगी तथा प्रत्येक इकाईको अविशिष्टाधिकार प्राप्त होगा।

भारतमें अनेक संस्कृतियाँ हैं। प्रत्येकको अपने स्वतन्त्र विकासका अवसर मिलना चाहिए। प्रत्येककी रक्षा इस प्रकार होनी चाहिए कि वह सङ्घमें सन्तुष्ट और निश्चित रह सके। ऐसा अवसर कभी भी नहीं आने देना चाहिए

कि केन्द्रको सांस्कृतिक विषयपर किसी तरहका कानून बनानेके लिए बाध्य होना पड़े।

प्रत्येक सङ्घको पूर्ण स्वायत्त शासन देनेपर और साथ साथ चलनेवाली सूचीके हटा देनेपर प्रत्येक क्षेत्रको मिलाकर रखनेके लिए एक संस्थाको आवश्यकता होगी। उसको पूरा करनेके लिए संघीय बोर्डके निर्माणकी बात कही गयी है जो सभी संघोंको राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टिकोणसे समान कानून बनावेगी और प्रत्येक संघ हिन्दू या मुसलमान- इसीके अनुसार अपने कार्यके सञ्चालनके लिए कानून बना लेंगे। इस बोर्डके बन जानेके बाद प्रत्येक गुटके लिए उपसंघ बनानेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी जिससे शासन और व्यवस्थापक यन्त्र बहुत अधिक बढ़ जायँगे।

एक बहुमत सम्प्रदाय दूसरे समुदायपर जुल्म या ज्यादती न कर सके, इसकी देखभाल तथा इसे रोकनेके लिए मजबूत संयुक्त शासनकी व्यवस्था की गयी है जिसमें सभी दलोंके प्रतिनिधि रहेंगे। इसकी नीति सभी गुटोंके अखिल भारतीय प्रतिनिधित्वके आधारपर परस्पर समझौतेके द्वारा स्थिर होगी। तो भी शासन-व्यवस्था सम्मिलित दलकी नहीं होगी क्योंकि यह सदा अस्थायी रहती है, बल्कि अमेरिकाकी तरह पूर्ण स्थायी शासन-व्यवस्थाका प्रबन्ध किया जायगा। प्रत्येक प्रान्तका प्रधान मन्त्री उस प्रान्तकी व्यवस्थापक सभाके जीवनकालतक काम करनेके लिए उसके सम्पूर्ण सदस्योंद्वारा चुना जायगा। अखिल भारतीय आधारपर परस्पर समझौताद्वारा निश्चित किये हुए अनुपातके अनुसार वह अपने सहायक मन्त्रियोंको चुनेगा। निर्वाचित प्रधान मन्त्रीद्वारा नामजद मन्त्रीगण व्यवस्थापक सभाके निर्णयद्वारा नहीं हटाये जा सकेंगे।

मुसलमानोंके लिए विधानमें निम्नलिखित संरक्षण रहेंगे—

क—व्यवस्थापक सभामें प्रतिनिधित्व

(१) प्रत्येक व्यवस्थापक सभामें मुसलमानोंका वर्तमान प्रतिनिधित्व तथा पृथक् निर्वाचन प्रणाली कायम रखी जायगी।

(२) देशी रियासतोंको केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके लिए अपने प्रतिनिधित्वका कमसे कम एक तिहाई मुसलमान प्रतिनिधि चुनना होगा ।

(३) प्रत्येक सङ्घकी व्यवस्थापक सभामें मुसलमानोंको उन प्रान्तीय व्यवस्थापक पत्रोंके कुल मुसलमान प्रतिनिधियोंकी संख्याके अनुपातसे प्रतिनिधित्व दिया जायगा जिन्हें मिलाकर वह संघ बना हो ।

ख—कानून निर्माण

(१) मुसलमानोंके धार्मिक, सांस्कृतिक तथा जातीय कानून बनानेका एकमात्र अधिकार व्यवस्थापक सभाके मुसलमान सदस्योंको होगा इसके लिए मुस्लिम धर्म और कानूनको जाननेवाले व्यवस्थापक सभाके एक तिहाई सदस्योंकी एक समिति बना दी जायगी । इस समितिका निर्णय व्यवस्थापक सभाको स्वीकार कर लेना होगा । यदि इस तरहकी कमेटीके निर्णयोंका कोई बुरा असर दूसरे सम्प्रदायोंपर पड़ता हो तो उस निर्णयपर पुनः विचार करनेका पूरा अधिकार व्यवस्थापक सभाको होगा लेकिन उसके आधारमें किसी तरहके संशोधनका अधिकार व्यवस्थापक सभाको नहीं होगा ।

ग—शासन

(१) शासन-विभाग हिन्दू और मुसलामान दोनोंको मिलाकर बनाया जायगा जो परस्पर समझौतेसे तै किया जायगा । लेकिन व्यवस्थापक सभाका उसपर कोई अधिकार नहीं होगा । इसका प्रधान मन्त्री अमेरिकाकी तरह जनताद्वारा न चुना जाकर व्यवस्थापक सभाके सदस्योंद्वारा चुना जायगा । व्यवस्थापक सभाके सदस्योंमें सभी दलोंके प्रधान मन्त्री अपने सहकर्मियोंको चुनेंगे । इसमें मुसलमानोंकी उपयुक्त संख्या रहेगी । मुस्लिम सहकर्मी ऐसे होंगे जिनपर मुसलमान सदस्योंका पूरा विश्वास हो और जो मुस्लिम सदस्योंद्वारा बनायी गयी तालिकामेंसे हों । कानून, शान्ति और शिक्षा-विभागकी देखरेखके लिए एक मन्त्री और एक सहायक मन्त्री रहेंगे । इनमेंसे कोई एक पद मुसलमानोंको दिया जायगा ।

घ—पब्लिक सर्विस कमीशन

जिस प्रान्तमें मुसलमानोंका अल्पमत होगा उस प्रान्तके पब्लिक सर्विस कमीशनके सदस्योंमें कमसे कम एक मुसलमान अवश्य होगा। उसका कर्तव्य होगा कि वह इस बातकी देखरेख करता रहे कि मुसलमानोंके लिए सरकारी नौकरीमें जो अनुपात निश्चित किया गया है वह पूरा होता रहता है।

च—अदालत

मुसलमानोंके जातीय कानूनकी व्यवस्था मुसलमान जजोंद्वारा होनी चाहिए।

छ—धार्मिक उत्पात तथा शिक्षाके लिए मुस्लिम बोर्ड

मुसलमानोंकी धार्मिक और सांस्कृतिक शिक्षा, सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान, टेकनिकल ट्रेनिङ्गकी व्यवस्थाके लिए एक मुस्लिम बोर्ड रहेगा जो इन कामोंकी देखरेख करेगा।

ज—अतिरिक्त कर

यदि किसी विशेष कारणसे मुसलमान अपने ऊपर अतिरिक्त कर बिठाना चाहे तो उसके लिए विशेष कानूनका निर्माण कर देना होगा।

आरम्भिक कालमें एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जाकर बसनेका कार्य स्वेच्छासे होना चाहिए इसके लिए प्रत्येक रीजन (खण्ड) में विशेष कानून बनाये जायँगे और आबादीके अदल बदलमें भी व्यवस्थाके लिए रायल कमीशन तैनात किया जायगा। आरम्भिक कानूनकाका निर्माण ऐसा होना चाहिए कि वह भविष्यमें सङ्घके भावी विधानमें एकदम मिल जाय। इसके लिए आबादीके तात्कालिक परिवर्तनको रोककर स्वीकृति तथा भाषाके आधारपर कई नये प्रान्तोंके निर्माणकी आवश्यकता पड़ेगी। ये नये प्रान्त धीरे धीरे बनाये जा सकते हैं लेकिन संयुक्तप्रान्तमें तो इस तरहके एक प्रान्तके तुरत बनानेकी आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि संयुक्तप्रान्तके मुसलमानोंका यही वास-स्थान होगा। इस नवनिर्मित प्रान्तका प्रधान मन्त्री मुसलमान होगा ताकि मुस्लिम क्षेत्र बनानेकी दृष्टिसे वह इसका संचालन करे।

इस योजनामें दो बड़े दोष हैं। पहला दोष तो यह है कि इसमें आबादी-को स्थानान्तरिक करनेकी व्यवस्था है। यह स्थानान्तर केवल आसपास या पड़ोसके प्रान्तोंके बीच ही नहीं, बल्कि दूर दूरके प्रान्तोंके बीच भी होगा। आबादीको स्थानान्तरित करनेकी यह व्यवस्था केवल ब्रिटिश भारतके लिए नहीं बल्कि देशी रियासतोंके लिए भी समान रूपसे होगी, यह काम चाहे कितने ही वर्षोंमें क्यों न पूरा हो। इसमें इतना ज्यादा खर्च पड़ेगा और इसके लिए इतना अधिक श्रम उठाना पड़ेगा कि यह कदापि व्यावहारिक नहीं कहा जायगा। जो लोग सदियोंसे एक जगह बसते आये हैं, उन्हें उस जलवायु, पड़ोस, और वातावरणसे हटाकर दूसरी जगह बसानेकी व्यवस्था करना उनके लिए नितान्त दुखदायी और हानिकर होगा। यह स्थान-परिवर्तन आरम्भमें तो ऐच्छिक होगा लेकिन आगे चलकर अनिवार्य हो जायगा। जबतक यह ऐच्छिह रहेगा तबतक कोई हिन्दू या मुसलमान इसपर अमल नहीं करेगा क्योंकि अपना जन्मस्थान छोड़कर कोई भी कहीं अन्यत्र जाना नहीं चाहेगा। अनिवार्य हो जानेपर इसके कारण लोगोंको असीम यातनाएँ भोगनी पड़ेगी। पञ्जाबीने जैसा लिखा है कि भारतीय राष्ट्रसङ्घमें इसका असर कमसे कम दो तिहाई आबादीपर पड़ेगा। आबादीको इस व्यापक रूपसे स्थानान्तरित करनेका प्रयास इतिहासमें न तो कभी देखा गया है और न सुना गया है।

दूसरा दोष इसमें यह है कि इस योजनाके अनुसार वर्तमान प्रान्तोंकी भाँति राष्ट्र होंगे और ब्रिटेनके अधीन उनका एक सङ्घ होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनोंमें शासक और शासितके राजनीतिक सम्बन्धको आपसमें तै कर लेनेके खयालसे अछूता छोड़ दिया गया है। लेकिन इस तरहके विधानकी व्यवस्था करते समय इस तरहके महत्वपूर्ण प्रश्नको अछूता छोड़ देना और केवल साम्प्रदायिक पहलूको दृष्टिकोणमें रखना कभी भी वाञ्छनीय नहीं है। भारतके सभी राजनीतिक दलोंने प्रस्तावद्वारा व्यक्त किया है कि भारतकी पूर्ण स्वाधीनता उनका ध्येय है केवल नरमदल अपवाद है क्योंकि उसका खयाल है कि औपनिवेशिक स्वराज्य ही पर्याप्त है। भारतकी पूर्ण

स्वाधीनताके लिए सबसे पहले उस निरंकुश शासनको हटाना होगा जो यहाँ जड़ जमाये हुए है और इसके स्थानपर प्रतिनिधि शासन कायम करना होगा। इस व्यवस्थामें देशी नरेशोंके अधिकारोंको इङ्गलैण्डके राजाकी भाँति सीमित कर दिया जायगा और सारा अधिकार जनताके प्रतिनिधियोंके हाथमें दे दिया जायगा।

इस योजनाके जनकने यह भी लिखा है कि वे भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंकी सीमाका आभास मात्र दे देते हैं, इसकी निश्चित रूपरेखाके लिए रायल कमीशन तैनात किया जायगा। इसलिए इसकी कोई भी आलोचना अस्थायी ही होगी। सबसे पहले दक्षिणके गुटको ही ले लीजिए। यह हैदराबाद और बरारसे लेकर अनेक जिलोंको चीरता हुआ मद्रासमें समुद्रके किनारेतक चला जाता है। क्या इस खण्डमें निर्माणका कोई उचित आधार है? इस प्रदेशके समस्त मुसलमानोंमें मध्यप्रदेश, बम्बई, मद्रास सूबा, मैसूर, कोचीन तथा ट्रावंकोरके मुसलमानोंको मिलाकर भी अन्य गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रकी आबादी बहुत कम रहेगी। भाषाकी समानता भी यहाँ नहीं रहेगी। मराठी, तामिल, तेलगू तथा कनारी भाषा बोलनेवालोंका यह प्रान्त होगा। जब आबादीका बँटवारा नये सिरेसे करना है तब हैदराबादमें इन भाषाओंके बोलनेवालोंको भारतके उन प्रदेशोंमें क्यों न बसाया जाय जहाँ इन्हीं भाषाओंके बोलनेवाले हों। लेकिन इसके लिए हैदराबाद राज्यको तोड़ना होगा। यदि इसे बचाना है तो समस्याको अधिक जटिल न बनाकर ब्रिटिश भारतके अन्य क्षेत्रोंको काट-कर इसमें मिलाना होगा। अन्य प्रान्तोंकी आबादी काटकर इस क्षेत्रमें मिला देनेके बाद भी यहाँ मुसलमानोंका बहुमत हो सकेगा या नहीं, यह सन्देहात्मक है।

प्रत्येक खण्डके लिए बोर्ड बनानेकी व्यवस्था बेमतलब प्रतीत होती है। प्रत्येक गुट पूर्ण स्वतन्त्र है या नहीं, लेकिन केन्द्रीय सरकार तथा उसकेच बी एक और शासन-व्यवस्था कायम करनेमें कोई विशेष लाभ तो नहीं प्रतीत होता।

यदि इन गुटोंके आग्रह करनेपर भी केन्द्रीय सरकारके जिम्मे वह काम नहीं सौंपा जा सकता तो भिन्न भिन्न गुटोंके समान स्वार्थ और लाभकी बातोंको

इसी कामके लिए एक कमेटी बनाकर तै किया जा सकता है। विधानके लिए अन्य जो शर्तें दी गयी हैं उनकी चर्चा करना यहाँ सम्भव नहीं है क्योंकि उनमेंसे कईपर विस्तारके साथ विचार करनेकी आवश्यकता होगी। हमलोग भारतके लिए अमेरिका या स्विटजरलैण्डके शासनविधानके आधारपर विधान बना सकते हैं, यदि यह मुसलमानोंको पसन्द हो। लेकिन इस विषयकी आलोचना यहाँ नहीं हो सकती क्योंकि आबादीके स्थानान्तरित करनेके प्रश्नको तथा इलाकोंके पुनः विभाजनके प्रश्नको इसमें शामिल करनेपर इसकी उपादेयताकी ठीक जाँच नहीं हो सकेगी।

सर सिकन्दर हयातखाँकी योजना

चौथी योजना स्वर्गीय सर सिकन्दर हयातखाँकी है। 'आउट लाइन आव इण्डियन फेडरेशन' नामसे यह योजना पुस्तक-रूपमें प्रकाशित की गयी है। इस योजनामें केवल ब्रिटिश भारत ही नहीं बल्कि देशी राज्योंके लिए भी व्यवस्था है।

(१) अखिल भारतवर्षीय सङ्घ कायम करनेके लिए इस योजनामें प्रादेशीय आधारपर समूचे भारतवर्षको सात खण्डोंमें बाँटा गया है—

खण्ड १—आसाम और बङ्गाल, बङ्गालकी देशी रियासतें तथा सिकिम (इस खण्डका आकार घटानेके लिए इसमेंसे एक या दो पश्चिमी जिले निकाल दिये जायँगे।

खण्ड २—बिहार और उड़ीसा तथा उड़ीसामें बङ्गालसे मिलाये गये जिले।

खण्ड ३—संयुक्तप्रान्त तथा यहाँकी देशी रियासतें।

खण्ड ४—मद्रास और ट्रावंकोर तथा मद्रास सूबेकी देशी रियासतें और कुर्ग।

खण्ड ५—बम्बई सूबा, हैदराबाद, पश्चिमी भारतके देशी राज्य, बम्बई सूबेके देशी राज्य, मैसूर तथा मध्यप्रदेशके देशी राज्य।

खण्ड ६—(बीकानेर तथा जैसलमेरको छोड़कर) राजपूतानाकी सभी देशी रियासतें, ग्वालियर, मध्यभारतकी देशी रियासतें, बिहार और उड़ीसाकी देशी रियासतें, मध्यप्रदेश तथा बरार ।

खण्ड ७—पञ्जाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त, काश्मीर, पञ्जाबकी देशी रियासतें, बिलोचिस्तान, बीकानेर तथा जैसलमेर ।

ये खण्ड अस्थायी रूपसे बनाये गये हैं । आवश्यकतानुसार इनमें रद्दोबदल हो सकता है ।

(२) प्रत्येक खण्डके लिए एक व्यवस्थापक सभा होगी जिसमें उस खण्डके ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंके प्रतिनिधि रहेंगे ।

प्रत्येक खण्डको सङ्घ व्यवस्थापक सभामें प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार होगा । १९३५ के भारतीय शासन विधानमें जिस प्रान्तको जितना प्रतिनिधित्व दिया गया है उतना ही प्रतिनिधित्व यहाँ भी उसे प्राप्त होगा ।

(३) पैराग्राफ २१ में दी गयी बातोंको ध्यानमें रखते हुए प्रत्येक खण्डकी व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधि मिलकर केन्द्रीय सङ्घ व्यवस्थापक सभाका निर्माण करेंगे । इसमें कुल ३७५ प्रतिनिधि रहेंगे (२५० ब्रिटिश भारतसे और १२५ देशी रियासतोंसे) ।

(४) सङ्घ व्यवस्थापक सभामें एक तिहाई मुसलमान प्रतिनिधि होंगे ।

(५) अन्य अल्पसंख्यक समुदायको १९३५ के भारतीय शासन विधानके अनुसार सङ्घ व्यवस्थापक सभामें प्रतिनिधित्व दिया जायगा ।

(६) प्रत्येक खण्डको अपने क्षेत्रकी तालिकाके लिए विधान निर्माण करनेका अधिकार होगा लेकिन उस खण्डके एक या दो इकाईकी प्रार्थनापर प्रान्तीय तालिकाके लिए भी वह विधान बना सकता है । किसी भी खण्डमें इस तरहके विधानोंके प्रयोगके लिए, उस इकाईको सरकारकी अनुमति प्राप्त कर लेनी होगी, जहाँ इसका प्रयोग करना होगा । इसके बाद उस स्थानके लिए उस विषयपर बना प्रान्तीय या राज्यविधान रोक दिया जायगा ।

(७) किसी खण्डकी व्यवस्थापक सभामें स्थानीय तालिकाके लिए कोई भी विधान तबतक स्वीकृत नहीं समझा जायगा जबतक दो तिहाई प्रनिनिधि उसके पक्षमें मत न दें। छोटी इकाइयोंके संरक्षणके लिए यह नितान्त आवश्यक है।

(८) किसी खण्डकी व्यवस्थापक सभा प्रस्तावद्वारा खण्ड तालिका या प्रान्तीय तालिकाके लिए संघ व्यवस्थापक सभासे प्रार्थना कर सकती है। लेकिन इस तरहकी प्रार्थना तबतक स्वीकार नहीं की जायगी जबतक सातमेंसे कमसे कम चार खण्ड उस प्रार्थनाका अनुमोदन न करें। और जबतक सातो खण्ड उसका समर्थन न करें तबतक उनका प्रयोग केवल उन्हीं ४ खण्डोंमें होगा जिन्होंने प्रार्थना की थी।

(९) खण्डोंके आवेदनपर सङ्घ व्यवस्थापक सभाद्वारा तथा इकाईके आवेदनपर खण्ड व्यवस्थापक सभाद्वारा निर्मित कोई भी विधान तभी रद्द कर दिया जायगा जब कमसे कम सङ्घ व्यवस्थापक सभाके लिए ३ खण्ड और खण्ड व्यवस्थापक सभाके लिए कमसे कम आधे इकाई आवेदनपत्र दें।

(१०) सङ्घशासन सभामें सम्राट्के प्रतिनिधि वाइसराय तथा कमसे कम ७ और अधिकसे अधिक ११ सदस्योंकी कार्यसमिति रहेगी। सङ्घके प्रधान मन्त्री इसीमेंसे होंगे।

(११) सङ्घ व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधियोंमें सङ्घ प्रधान मन्त्रीकी नियुक्ति वाइसरायद्वारा होगी और शेष मन्त्रियोंकी नियुक्ति भी फेडरल प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे निम्नलिखित शर्तोंके साथ सङ्घ व्यवस्थापक सभाके सदस्योंमेंसे ही होगी—

(क) शासनसभामें प्रत्येक खण्डके कमसे कम एक प्रतिनिधि रहेंगे।

(ख) कमसे कम एक तिहाई मन्त्री मुसलमान होंगे।

(ग) यदि मन्त्रियोंकी संख्या ९ से अधिक न हो तो कमसे कम २ और यदि ९ से अधिक हो तो ३ मन्त्री देशी रियासतोंके प्रतिनिधियोंमेंसे चुने जायँगे।

यदि (ख) और (ग) में चढ़ा ऊपरी हो जाय तो कोई आपत्ति नहीं होगी। अन्य प्रभावशाली अल्पसंख्यक समुदायको भी उपयुक्त प्रतिनिधित्व देनेका यत्न किया जायगा।

(घ) सङ्घ व्यवस्था कायम होनेके प्रथम १५ या २० सालतक वाइसराय अपने रक्षा और वैदेशिक मन्त्रीको व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधियोंमेंसे या बाहरसे नामजद कर सकते हैं। उसके बाद सभी मन्त्री व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधियोंमेंसे ही चुने जायँगे।

मन्त्रियोंके निम्नलिखित पद और अधिकार होंगे—(१) सङ्घका प्रधान मन्त्री। (२) रक्षा मन्त्री। (३) वैदेशिक मन्त्री, देशी राज्योंकी देखरेखका भार भी इनपर ही रहेगा। (४) सङ्घ अर्थ मन्त्री, (५) गृह मन्त्री, (६) यातायात मन्त्री, (७) अल्पमत समुदायके स्वार्थोंकी देखरेख करनेवाले मन्त्री, (८) मेल-जोल संस्थापक मन्त्री, इनका काम होगा, प्रत्येक खण्डके सम्पर्कमें रहकर समान स्वार्थके विषयोंमें परस्पर मेलजोल स्थापित करते रहनेका यत्न करना। (९) व्यवसाय और उद्योग मन्त्री।

(१२) क—मन्त्रियोंके पदकी अवधि साधारणतः सङ्घ व्यवस्थापक सभाकी अवधिके बराबर ही होगी (अर्थात् ५ साल)।

ख—वाइसरायकी इच्छाके अनुसार ही कोई मन्त्री अपने पदपर कायम रहेगा।

ग—किसी भी खण्डका प्रतिनिधि मन्त्री अपने खण्डकी व्यवस्थापक सभाका विश्वास खो देनेपर अपने पदसे हटा दिया जायगा।

घ—अगर सङ्घ व्यवस्थापक सभामें मन्त्रियोंके ऊपर अविश्वासका प्रस्ताव पास हो जाय तो ११ (घ) के अनुसार नियुक्त मन्त्रियोंको छोड़कर सभी मन्त्रियोंको परित्याग कर देना होगा—

(१३) खण्ड व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधियोंका चुनाव नीचे लिखे अनुसार होगा—

(१) ब्रिटिश भारतखण्डके लिए प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाद्वारा उस

तरीकेसे जो तरीका सङ्घ व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधियोंके चुनावके लिए १९३५ के शासन विधानमें दिया गया है।

(२) देशी रियासतोंके लिए जहाँतक सम्भव हो नीचे लिखे तरीकेके अनुसार—

(क) खण्ड और सङ्घ व्यवस्थापक सभाकी स्थापनाके १० साल बादतक तीनचौथाई सदस्य शासनद्वारा नामजद किये जायँगे और एक चौथाई उस तालिकामेंसे चुने जायँगे जो इस कामके लिए बनायी गयी राजसभा या इसी तरहकी किसी संस्थाद्वारा पेश की गयी हो।

(ख) अगले पाँच सालतक दो तिहाई शासकद्वारा नामजद किये जायँगे और एक तिहाई (क) के अनुसार चुने जायँगे।

(ग) १५ सालके बाद (क) के अनुसार आधे प्रतिनिधि नामजद किये जायँगे और आधे चुने जायँगे।

(घ) २० सालके बाद (क) के अनुसार एक तिहाई नामजद किये जायँगे और दो तिहाई चुने जायँगे।

अगर किसी देशी रियासत या अनेक देशी रियासतोंको दोसे कम जगहें मिली हों तो प्रथम १५ सालतक शासन नामजद करेगा और उसके बाद (क) के अनुसार चुनाव होगा।

(१४) रक्षाके विषयमें सलाह देनेके लिए एक कमेटी होगी। इस कमेटी-के अध्यक्ष वाइसराय होंगे तथा इसमें निम्नलिखित सदस्य होंगे—

सङ्घके प्रधान मन्त्री, रक्षा मन्त्री, वैदेशिक मन्त्री, अर्थ मन्त्री, यातायात मन्त्री, प्रधान सेनापति, सेण्ट्रल स्टाफके अध्यक्ष, नौ-सेन तथा हवाई बेड़ेके सीनियर अफसर, प्रत्येक खण्डके एक एक प्रतिनिधि, वाइसरायद्वारा नामजद सरकारी पक्ष तथा रक्षा विभागके सेक्रेटरी।

(१५) वैदेशिक विभागके लिए एक कमेटी होगी। इस कमेटीके अध्यक्ष वाइसराय होंगे तथा इसके निम्नलिखित सदस्य होंगे—

सङ्घके प्रधान मन्त्री, वैदेशिक मन्त्री, प्रत्येक खण्डके एक एक प्रतिनिधि जो खण्ड व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधियोंमेंसे अध्यक्षद्वारा चुने जायँगे, वाइस-

रायद्वारा नामजद दो सरकारी तथा दो गैर-सरकारी सदस्य तथा वैदेशिक विभागके सेक्रेटरी।

यदि इन समितियोंमें देशी रियासतोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या ३ से कम रही तो इस कमीको इस प्रकार पूरी करेंगे कि नरेन्द्र मण्डलतक तालिका बनाकर भेजेगा और अध्यक्ष उसी तालिकामेंसे सदस्य चुन लेंगे।

(१६) सङ्घ रेलवे प्रबन्ध विभागमें प्रत्येक खण्डके कमसे कम एक प्रतिनिधि अवश्य रहेंगे।

(१७) शासन विधानमें निम्नलिखित बातोंके लिए अनुकूल संरक्षणकी व्यवस्था रहेगी—

(क) अल्पसंख्यक समुदायके उचित स्वार्थोंकी रक्षाके लिए,

(ख) ब्रिटिश पैदाइश प्रजाके प्रति जातीय भेदभाव रोकनेके लिए,

(ग) देशी नरेशोंके साथ की गयी सन्धि तथा उनके अन्य अधिकारोंकी रक्षाके लिए,

(घ) सङ्घशासन सभा अथवा सङ्घ या खण्ड व्यवस्थापक सभाद्वारा ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंकी आन्तरिक स्वाधीनता तथा इकाईमें किसी तरहका हस्तक्षेप रोकना,

(च) किसी तरहके विदेशी आक्रमणसे देश या उसके खण्डकी रक्षाका प्रबन्ध करना,

(छ) अल्पसंख्यकोंकी सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकारोंकी रक्षा करना।

(१८) भारतीय सेनाका सङ्गठन उसी तरहका रहेगा जैसा ता० १ जनवरी १९३७ को था। यदि किसी समय शान्तिकालमें उसमें परिर्वतनकी आवश्यकता प्रतीत हो तो प्रत्येक सम्प्रदायकी संख्याका वही अनुपात होगा जो १ जनवरी १९३७ को था। देशकी रक्षामें सङ्कट उपस्थित हो जाने या अन्य अनिवार्य कारण आ जानेपर इसमें परिवर्तन हो सकेगा।

(१९) केन्द्रीय सरकारके अधिकारमें वे ही विषय रहेंगे जो समस्त देशकी सुचारु व्यवस्थाके लिए आवश्यक होंगे, जैसे, रक्षा, वैदेशिक मामला, यातायात,

चुङ्गी, सिक्का और नोट। इनके अतिरिक्त वर्तमान सङ्घ तालिकाके सभी विषय खण्ड तालिकामें मिला दिये जायँगे। सङ्घ तालिकामें जिन विषयोंका समावेश नहीं है उनके लिए अवशिष्टाधिकार खण्डोंके हाथमें होगा और खण्ड तालिकाके लिए यह अधिकार खण्ड व्यवस्थापक सभाको होगा।

(२०) यदि किसी विषयके लिए विवाद उठ खड़ा हो कि यह किसकी अधिकार-सीमाके अन्दर है तो उसपर वाइसरायका निर्णय अन्तिम माना जायगा।

(२१) सङ्घ व्यवस्थामें एक ही सभा होगी। लेकिन विशिष्ट स्वार्थोंके लिए सङ्घ व्यवस्थापक सभामें आन्तरिक प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है जिस तरह वर्तमान राज्य-परिषदको प्राप्त है,जो सभी खण्डोंमें बाराबर बाँट दिया जायगा।

(२२) अल्पमत समुदायके स्वार्थोंकी देखरेख तथा रक्षाके लिए उपयुक्त साधनका प्रबन्ध किया जायगा।

इस योजनाके अनुसार ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंका प्रवेश सङ्घके अन्दर दो भिन्न दलकी भाँति नहीं होगा बल्कि उनके प्रवेशकी व्यवस्था क्षेत्रके आधारपर होगी। यह कहा जाता है कि इससे केन्द्रीय सरकारको बल मिलेगा और देशका सङ्गठन मजबूत होगा। खण्डोंमें जिन इलाकोंका समावेश किया जायगा उनकी भौगोलिक तथा आर्थिक समानता आदि रहनेके कारण वे आपसमें हिलमिलकर अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए उचित व्यवस्था करेंगे जिससे उनकी औद्योगिक आदि उन्नति हो सके। इससे ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंके मनमें किसी तरहकी आशङ्का उत्पन्न नहीं होगी और वे लोग निश्चिन्त होकर सङ्घमें प्रविष्ट कर सकेंगे क्योंकि अन्दरूनी मामलोंमें सङ्घका अधिकार सीमित रहेगा। साथ ही जहाँ अल्पमत समुदायोंके स्वार्थोंकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध रहेगा वहाँ प्रत्येक खण्डके स्वायत्त अधिकारोंकी रक्षाका भी प्रबन्ध रहेगा।

इस योजनाके पढ़ जानेपर इसी निष्कर्षपर पहुँचा जाता है कि यह योजना भारतको आजाद करनेके लिए न होकर केवल १९३५ के शासन विधानमें संशोधन मात्रके लिए है। इस योजनाके अनुसार देशी रियासतोंमें स्वतन्त्र चुनाव कभी हो ही नहीं सकता। सङ्घ तथा खण्ड व्यवस्थापक सभाके लिए

यह दो तरहके सदस्योंका प्रस्ताव करता है:—ब्रिटिश भारतके प्रतिनिधि तो जनताके चुने प्रतिनिधि होंगे, लेकिन देशी रियासतोंके अधिकांश प्रतिनिधि शासकोंद्वारा नामजद और कुछ थोड़े प्रजाद्वारा उपस्थित तालिकामेंसे चुने हुए होंगे। देशके दो महत्वपूर्ण विभाग—रक्षा और वैदेशिक विभाग—के पदपर इस योजनाके अनुसार वाइसरायको ऐसे व्यक्तियोंके नियुक्त करनेका अधिकार मिल जाता है जो प्रजाके चुने प्रतिनिधि नहीं हैं। इस योजनाके अनुसार प्रत्येक मन्त्री अपनी खण्ड-व्यवस्थापक-सभाके प्रति जिम्मेदार समझा जाता है। इससे मन्त्रियोंकी संयुक्त जिम्मेदारी नष्ट हो जाती है। साथ ही अविश्वासका प्रस्ताव पास हो जानेके बाद इस योजनामें दोनों बाहरी मन्त्रियोंके पदपर कायम रह जानेकी व्यवस्था है। साम्प्रदायिक, खण्ड तथा देशी रियासत क्षेत्रोंमेंसे मन्त्रियोंकी नियुक्तिकी व्यवस्था कर यह योजना योग्यताको सर्वथा गौण स्थान देती है और साथ ही परस्पर सद्भावकी वृद्धिमें भी बाधा उपस्थित करती है। इस योजनामें केवलमात्र एक ही गुण है, वह यह कि यह भारतको एक सम्पूर्ण इकाई मानती है और राजनीतिक, सांस्कृतिक या धार्मिक आधारपर इसके विभाजनका प्रस्ताव नहीं करती।

सर अब्दुल्ला हारून कमेटीकी योजना

फरवरी १९४०में अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी वैदेशिक समितिने भिन्न भिन्न योजनाओंके निर्माताओंको निमन्त्रित कर इस आशयसे एकत्र करनेका यत्न किया था कि सबलोग एक साथ मिलकर प्रत्येक योजनाकी जाँच करें और सबको मिलाकर एक योजना तैयार करें। निमन्त्रित सज्जन एकत्र हुए और एक समितिके रूपमें परिवर्तित हो गये। इस समितिकी कई बैठकें हुईं और लीगके लाहौरवाले उस प्रस्तावके आधारपर, जिसका ढाँचा लीगके वैदेशिक मन्त्री सर अब्दुल्ला हारूनने तैयार कर लीगके अध्यक्ष श्री जिनाको दिया था—एक योजना तैयार की। समितिने जो योजना तैयार की उसमें देशी रियासतोंका भी समावेश कर दिया। इसलिए वह पाकिस्तानवाले प्रस्तावकी अपेक्षा कहीं अधिक पूर्ण मानी जाती है।

समितिकी सिफारिश है कि (१) उत्तर-पश्चिममें एक मुस्लिम राजकी स्थापना हो सकती है जिसमें मुसलमानोंकी जन-संख्या ६३ फीसदीके लगभग होगी और (२) उत्तर-पूर्वमें जिसमें मुसलमानोंकी जन-संख्या ५४ फीसदीके करीब होगी।

उत्तर-पश्चिमी राज

प्रान्त	कुल जन-संख्या	मुसलमान
पञ्जाब	२ ३५ ८० ८५२	१ ३३ ३२ ४६०
सिन्ध	३८ ८७ ०७०	२८ ३० ८००
सीमाप्रान्त	२४ २५ ०७६	२२ २७ ३०३
ब्रिटिश-शासित आदिवासी क्षेत्र	१३ ६७ २३१	१३ १७ २३१
ब्रिटिश बिलोचिस्तान	४ ६३ ५०८	४ ०५ ३०९
दिल्ली प्रान्त	६ ३६ २४६	२ ०६ ९६०
जोड़—	३ २३ ६० ०६३(?)	२०३ २० ०६३

मुसलमानोंकी संख्या ६२.७९ फीसदी (ये आँकड़े सन् १९३१की जन-संख्याके हैं।

उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें आसाम, बङ्गाल (बाँकुड़ा तथा मिदनापुर जिला छोड़कर) और बिहारका पूर्णिया जिला होगा।

कुल जन-संख्या	५७०१०९४६		
मुसलमान	३०८७६४२१	—	५४ फीसदी
गैर मुसलमान	२६१३४५२५	—	४६ ,,

गैर मुसलमानोंमें औसतन ८५००,००० अर्थात् ३२ फीसदी दलितवर्ग १५००,००० अर्थात् ६ फीसदी आदिवासी, ४ लाख ईसाई और बाकी सवर्ण हिन्दू हैं।

(३) "समिति यह प्रकट कर देना अपना कर्त्तव्य समझती है कि मुसलमानोंके स्वार्थमें यह आवश्यक है कि गैर-ब्रिटिश भारतमें जहाँ कहीं मुसलमानोंकी प्रधानता हो, वहाँ उन्हें मुस्लिम प्रभावको स्थायी बना देनेका यत्न करना चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक छोटी बड़ी मुस्लिम देशी रियासतोंको—मुस्लिम वैधानिक व्यवस्थाके लिए—खुदमुख्तार मुस्लिम राष्ट्र मान लेना चाहिए। इस माँगको सभी माँगोंका आधार बनाना चाहिए।......यह सर्वथा उपयुक्त होगा कि लीग हैदराबाद रियासतके विस्तार तथा पूर्ण आजादीपर खूब जोर देती रहे और समुद्रके किनारेतक उसे रास्ता दिलानेका यत्न करती रहे। इससे भारतके मुसलमानोंको बड़ी ताकत मिलेगी। कौन मानता है कि एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब भारतके मुसलमानोंको हैदराबादको ही अपनी बढ़ती शक्तिका केन्द्र और अपना गढ़ बनाना पड़े।"* इस तरह यह मुसलमानोंके प्रभावका तीसरा बड़ा क्षेत्र होगा।

समितिने इस बातकी सम्भावनापर भी जाँच की कि क्या मुस्लिम देशी रियासतोंके आसपासकी देशी रियासतें किसी समान उद्देश्यके लिए एक दूसरेके साथ सङ्गठित हो सकती हैं। यदि इस तरहकी कोई व्यवस्था हो सके तो निम्नलिखित स्थिति तैयार हो सकती है—

नाम	कुल आबादी	मुसलमान
ब्रिटिश भारत	३२३६००६३	२०३२००६३
सीमान्तकी रियासतें		
धीर, खान, चित्रल	९०२०७५	८५२०००
बिलोचिस्तानके राज		
कलात	३४२१०१	३३१२३४
लासबेला	६३००८	६१५५०

* दि पाकिस्तान इशू पृ० ७९–८०

नाम	कुल आबादी	मुसलमान
सिन्धकी रियासतें		
खैरपुरमीर	२२७१८३	१८६५७७
पंजाबकी रियासतें		
बहावलपुर	९८४६१२	७९९१७६
कपूर्थला	३१६७५७	१७९२५१
पटियाला	१६२५५२०	३६३९२०
नाभा	२८७५७४	५७,३९३
फरीदकोट	१६४३६४	४९९१२
झींद	३२४६७६	४६००२
मलारकोटा	८३०७२	३१४१७
लोहारू	२३३३८	३११९
पटौदी	१८८७३	३१६८
दुयाना	२८२१६	५८६३
चम्बा	१४६८७०	१०८३९
मण्डी	२७०४६५	६३५१
सुकेत	५८४०८	७३३
कलसिया	५९८४८	२१७९७
शिमला हिल्स स्टेट	३३०८५०	१००१७
शरमुर	१४८५६३	७०२०
बिलासपुर	१००९९४	१४५८
काश्मीर	३६४६२४३	२८१७६३६
बीकानेर तथा जैसलमेरके शामिल होनेपर—		
बीकानेर	९३६२१३	१४१५७८
जैसलमेर	७६२५५	२२११६
	४३५२६१५१	२६३३०१९०
		या ६९.४९ फीसदी

बीकानेर और जैसलमेरको		
बाद देकर	४२५१३६७८	२६१६६५२६
		या ६१.५४ फीसदी

कमेटीने उत्तर पश्चिमी क्षेत्रमें बसनेवाले विविध अल्पसंख्यक समुदायोंकी आबादीका पता लेनेका भी यत्न किया और वह इस परिणामपर पहुँची कि इस क्षेत्रके ब्रिटिश भारत प्रान्तोंमें दलित जातियाँ १४१३५३२ अर्थात् ४.३६ फीसदी, सिख ३१३९९६४ अर्थात् ९-७० फीसदी और सवर्ण हिन्दू ७०१९२७८ अर्थात् २१.६९ फीसदी हैं। देशी रियासतोंकी तालिका भी कमेटीने बनायी है। वहाँ सवर्ण हिन्दू २४९४०९३ या २२-३३ फीसदी, और सिख १०५८१४२ या १०.४२ फीसदी हैं (देशी रियासतोंमें सवर्ण हिन्दुओंका औसत निकालनेमें भूल प्रतीत होता है। वह २४.५६ होना चाहिए २२.३३ नहीं)।

पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें निम्नलिखित देशी रियासतोंको शामिल होनेके लिए राजी किया जा सकता है—

	आबादी	मुसलमान
बंगालसे		
कूच बिहार तथा त्रिपुरा	९७३३१६	३१२,४७६
आसामसे		
मनीपुर तथा खासी पहाड़ी	६२५६०६	२४६००
ब्रिटिश प्रान्त	५७०१०९४६	३०८७६४२१
कुल जोड़	५८६०९८६८	३१२१३४९७
		या ५३.१५ फीसदी

अल्पसंख्यक समुदायोंकी जनसंख्या इस क्षेत्रकी समूची जनसंख्याके मुकाबले इस प्रकार है:—

	सवर्ण हिन्दू	दलितवर्ग	आदिवासी	ईसाई
ब्रिटिश बंगाल	२९.९	१३.७	१.५	—

बङ्गालकी रियासतें	६४.९	३.०	—	—
ब्रिटिश आसाम	३६.६	२१.०	८.२	२.५
आसामकी रियासतें	४३.७	—	४४.९	७.४

इन दोनों क्षेत्रोंमें आनेवाले प्रदेशोंका क्षेत्रफल वर्गमीलमें इस प्रकार है—

	ब्रिटिश भारत	देशी रियासत	जोड़
उत्तर पश्चिमी क्षेत्र	२२५३५२	२१३३७०	४३८७२२
पूर्वी क्षेत्र	१२९६३७	१७७५४	१४७३९१
जोड़	३५४९८९	२३११२४	५८६११३

समस्त भारतकी जनसंख्यासे यदि इसकी तुलना करें तो इसकी स्थिति इस प्रकार होगी:—

समस्त भारतकी कुल जनसंख्या— ३५०५२९५५७

मुसलमान ७७६७८२४५

पश्चिमी और पूर्वीक्षेत्रके (देशी रियासतों सहित)

मुसलमान ५७५४२७८७

अर्थात् ७४-०७ फीसदी

इस तरह अपने मन्तव्यद्वारा कमेटी ७४.०७ फीसदी मुसलमानोंकी रक्षाकी व्यवस्था कर देती है।

"लीगका लाहौरवाला प्रस्ताव इस बातसे सहमत नहीं है कि इन नवनिर्मित राष्ट्रोंकी रक्षा और वैदेशिक विषय तुरन्त सौंप दिये जायँ। उसके अनुसार अस्थायी अवधिके लिए ऐसी शक्तिके हाथमें अधिकार रहना चाहिए जो सबके लिए समान हो। इस विचारके अलावा भी मेल कायम रखनेवाली एक समान शक्तिकी आवश्यकता होगी क्योंकि प्रस्तावकी तीसरी धाराके अनुसार अल्प-संख्यकोंके लिए संरक्षणकी जो व्यवस्था की जायगी उसका समुचित पालन तबतक सम्भव नहीं है जबतक मुस्लिम प्रभाव तथा हिन्दू प्रभावके क्षेत्रोंके बीच सम्बन्ध कायम रखनेवाली कोई शक्ति न हो। सङ्घराष्ट्र मुसलमानोंके अनुकूल

नहीं है क्योंकि उन्हें इस बातकी आशङ्का है कि अपने बहुमतके कारण हिन्दू सदा मुसलमानोंपर हावी रहेंगे। लेकिन प्रस्तावके मन्तव्यको पूरा करनेके लिए एक समान व्यवस्था आवश्यक है, इसलिए कोई सर्व सम्मत तरीका तैयार करना होगा जिसके अनुसार गैर-मुसलमानोंके साथ मुसलमानोंको केन्द्रमें बराबरका नियन्त्रण प्राप्त हो।"*

तदनुसार कमेटीने यह मन्तव्य उपस्थित किया कि सभी प्रस्तावित राष्ट्रोंको खुदमुख्तारकी उपाधि मिल जाय और सभी मिलकर एक ऐसी शक्तिका निर्माण करें जो सबके संयुक्त नामपर (१) रक्षा, (२) वैदेशिक विभाग, (३) यातायात, (४) चुंगी, (५) अल्पसंख्यकोंका संरक्षण तथा (६) इच्छानुसार एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाकर बसनेके कामको निम्नलिखित शर्तोंके साथ देखें—

(क) रक्षा—प्रत्येक राष्ट्रको अपने व्ययसे सेना रखनी होगी। प्रत्येक राष्ट्रके सामूहिक महत्वके अनुसार सेनाकी संख्या नियत की जायगी। सैनिक व्ययमें अनुपातके हिसाबसे केन्द्रको हिस्सा लेना होगा। साधारण स्थितिमें सेनाका नियन्त्रण प्रत्येक राष्ट्र करेंगे, लेकिन युद्धकालमें समस्त सेनाओंपर केन्द्रीय सरकारका अधिकार होगा।

(ख) नौ-सेनापर केन्द्रका ही अधिकार होगा। राष्ट्रोंको जो विषय दे दिये जायँगे उनके अलावा सभी विषयोंपर केन्द्रका शासन होगा। अवशिष्टाधिकार राष्ट्रोंको प्राप्त होगा। शासन तथा अन्य समितियोंमें मुसलमानोंको आधी जगहें मिलेंगी।

जिस कमेटीने यह योजना बनायी उसमें ९ सदस्य थे। यह उनके बीच घूम ही रही थी कि अचानक स्टेट्समैनमें असमय प्रकाशित हो गयी। इस कमेटीके एक सदस्य तथा एक योजनाके जनक (जिसपर ऊपर विचार किया जा चुका है) प्रो० अफजल हुसेन कादिरीका खयाल था कि राष्ट्रोंको इसमें शामिल

* पाकिस्तान इशू पृ० ८७–८८।

करने तथा शेष भारतके साथ मुस्लिम राष्ट्रोंका सम्बन्ध स्थापित करनेकी व्यवस्था देकर यह योजना लाहोरवाले प्रस्तावसे आगे बढ़ जाती है। मुसलमानोंकी माँगों-के बीचमें वे किसी केन्द्रीय व्यवस्थाको लानेके विरुद्ध थे क्योंकि इससे अखिल भारतीय सङ्घ या हिन्दू राजकी स्थापनाकी सम्भावना हो जायगी। एक दूसरी योजनाके जनक डाक्टर सैयद अब्दुल लतीफ उत्तर पश्चिमी और उत्तर पूर्वी क्षेत्रके बनावटसे सन्तुष्ट नहीं थे। इस क्षेत्रको पञ्जाब सिन्ध और संयुक्त प्रान्तके सदस्योंने बनाया था। क्योंकि यह काम इन्हीं लोगोंको सौंपा गया था। डा० लतीफने सर हारूनको लिखा था कि लाहोरवाले प्रस्तावकी यह मंशा है कि जिन प्रदशोंमें मुसलमानोंका अत्यधिक बहुमत हो उन्हें मिलाकर समान विचार रखनेवाले प्रदेशोंका गुट बनाया जाय लेकिन आपकी कमेटीके पञ्जाबी और अलीगढ़ी सदस्य गैर मुस्लिम क्षेत्रोंपर साम्राज्यवादी प्रभाव रखनेके उद्देश्यसे ऐसे वृहत्तर पञ्जाबका निर्माण करना चाहते हैं जो अलीगढ़तक फैलकर जैसल-मेरसे काश्मीरतकके सभी गैर-मुस्लिम राज्योंको अपने अन्तर्गत कर लेता है। इससे मुसलमानोंकी संख्या केवल ५५ फीसदी ही हो जाती है। इसी तरह उत्तर पूर्वी क्षेत्रमें ये समूचा बङ्गाल, आसाम और बिहारका भी एक जिला मिला देना चाहते हैं, इससे वहाँ भी मुसलमानोंकी आबादी ५४ हो जाती है। मेरी समझमें इस तरहका क्षेत्र बनाना लाहौरके प्रस्तावकी मंशाके एकदम विरुद्ध है। क्योंकि उत्तरमें ४६ और पूरबमें ४२ सैकड़े गैर-मुस्लिम आबादीके रहते आप इन क्षेत्रोंको मुस्लिम राष्ट्र कभी नहीं कह सकते और न किसी भी प्रकार इन्हें मुस्लिम क्षेत्र ही कहा जा सकता है।*

श्री जिनाने इस कमेटी तथा इसकी सिफारिशोंको एक दल या एक व्यक्तिकी सिफारिशोंके अलावा और कुछ माननेसे साफ इन्कार कर दिया।

ऊपर जिन योजनाओंकी चर्चा की गयी है उसके अतिरिक्त अन्य योजनाएँ भी हैं। एक योजना सर फीरोज खाँ नूनकी है जिसका उल्लेख उन्होंने १९४२में

---

* दि पाकिस्तान ईशू पृ० ९८-९९।

अपने अलीगढ़के भाषणमें किया था, और दूसरी योजना श्री रिजवेन्नुल्लाकी है। चूँकि इन दोनों योजनाओंको देखनेका अवसर नहीं मिला है, इसलिये प्रस्तुत पुस्तकमें उनका उल्लेख नहीं है।

विभाजनकी भावनाका उदय

ये सभी योजनाएँ मुस्लिम लीगके लाहौरवाले प्रस्तावके बाद अर्थात् १९३९ के बाद ही तैयार की गयी हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि १९३० में मुस्लिम लीगके इलाहाबादवाले अधिवेशनके अध्यक्ष पदसे भाषण देते हुए स्वर्गीय डाक्टर इकबालने पहले पहल स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रकी माँग पेश की थी। इसलिए उस भाषणसे कुछ अंश उद्धृत कर देना आवश्यक होगा। "मुसलमानोंका धार्मिक आदर्श उसी सामाजिक सङ्गठनसर निर्भर करता है जिसका उसके ही द्वारा निर्माण हुआ है। यदि आप एकको ठुकरा देते हैं तो दूसरेको भी ठुकरा देना होगा। इसलिए जिस राष्ट्रीयतामें मुसलमानोंको इस्लामके सिद्धान्तोंकी हत्या करना पड़े उसपर तो उन्हें विचारतक नहीं करना चाहिए। इसलिए भारतीय राष्ट्रकी एकताका आधार बहुतोंके साथ मेल और सङ्गठन होना चाहिए न कि उसका विरोध। इसी तरहकी एकतापर भारत और उसके साथ ही समस्त एशियाका भविष्य निर्भर करता है।"

हमें यह कहते खेद होता है कि इस दिशामें हमारा अबतकका प्रयास हर तरहसे असफल रहा। वे क्यों असफल हुए? कदाचित् हमलोग एक दूसरेकी नीयतपर सन्देह करते हैं और एक दूसरेपर हावी होकर रहना चाहते हैं। परस्पर सहयोगके ऊँचे आदर्शके लिए भी शायद हमलोग उन विशेषाधिकारोंका त्याग नहीं करना चाहते, जो भाग्यसे हमारे हाथ आ गये हैं और अपनी स्वार्थपरताको राष्ट्रीयताके आवरणसे ढँककर रखना चाहते हैं। बाहरसे तो हमलोग उदार राष्ट्रीयताकी डींग हाँकते हैं लेकिन अन्दरसे कट्टर साम्प्रदायिक हैं। कदाचित् हमलोग यह स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं कि प्रत्येक दलको अपनी सांस्कृतिक परम्पराके अनुसार अपना विकास करनेका पूरा

अधिकार है। हमारी असफलताका चाहे जो भी कारण हो, पर मैं अभी भी आशान्वित हूँ। घटनाओंके क्रमसे प्रतीत होता है कि हमलोगोंके बीच किसी तरहका समझौता हो जायगा। जहाँतक मुसलमानोंकी विचारधाराका मैंने अध्ययन किया है मुझे यही प्रकट हुआ है कि यदि मुसलमानोंको यह विश्वास हो जाय कि अपने घरमें रहकर उन्हें अपनी परम्परा और अपनी संस्कृतिके अनुसार अपना विकास करनेका अवसर मिलेगा तो वे देशको आजाद करनेके लिए अपना सब कुछ निछावर कर सकते हैं। यह कहना कि प्रत्येक समुदायको अपने विश्वासके अनुसार अपने विकासका अधिकार है, संकीर्ण साम्प्रदायिकता नहीं है...अन्य जातियोंके धार्मिक विश्वास, सामाजिक आचार, व्यवस्था और रीति-रिवाजके लिए मेरे हृदयमें यथेष्ट आदर है। इतना ही नहीं, कुरानकी शिक्षाके अनुसार उनके मजहबी तीर्थोंकी रक्षा करना भी मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

"यूरोपीय देशोंके अनुसार भारतीय समाजकी इकाई भौमिक नहीं है। इसलिए साम्प्रदायिक गरोह कायम किये बिना, यूरोपीय जनशासनका सिद्धान्त यहाँ लागू नहीं हो सकता। इसलिए भारतके अन्दर मुसलमानोंकी मुस्लिम भारतकी माँग सर्वथा उचित है। मैं चाहता हूँ कि पञ्जाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तान एक राष्ट्रमें शामिल कर दिये जायँ......अम्बाला कमिश्नरी तथा उन जिलोंको जिनमें गैरमुसलमान अधिक हैं—इसमेंसे निकाल देनेसे इसका विस्तार भी कम हो जायगा और मुस्लिम आबादीका अनुपात भी बढ़ जायगा।...इस तरह भारत राष्ट्रके अन्दर विकासका पूरा अवसर पाकर उत्तर पश्चिमके मुसलमान किसी भी विदेशी आक्रमणके मुकाबले भारतकी रक्षा सबसे अधिक कर सकेंगे, चाहे वह आक्रमण विचारोंका हो या शस्त्रोंका। ...मेरा अपना खयाल है कि स्वतन्त्र भारतके शासनके लिए एक ही शासन-व्यवस्था अनुकूल नहीं हो सकती। अवशिष्टाधिकार स्वतन्त्र राष्ट्रोंके लिए छोड़ देना चाहिए। संघ-शासन केवल उन्हीं अधिकारोंकी देखभाल करे जो उसे संघ-राष्ट्रोंकी सर्व-सम्मतिसे प्राप्त हों"।*

* एफ०के०खाँ दुर्रानी—"दि मीनिंग आव पाकिस्तान" पृ० २०५-२१३।

इससे स्पष्ट प्रकट है कि डाक्टर इकबालने ऐसी किसी योजनाकी चर्चा नहीं की थी जिसमें बिना किसी केन्द्रीय शासनके मुसलमानोंके अलग स्वतन्त्र राज कायम किये जायँ। वे एक ऐसा सङ्घ चाहते थे जिसकी प्रत्येक इकाई स्वायत्त हो और साथ ही उन्होंने उत्तर पश्चिमी क्षेत्रका निर्माण इस तरह करना चाहा था जिससे उसका शासन ठीक तरहसे हो सके और वहाँ मुसलमानोंकी प्रधानता रहे। १९२५ में 'नेशन' पत्रके प्रतिनिधिके साथ बातचीतमें भारतकी रक्षाके सम्बन्धमें उन्होंने जो विचार प्रकट किये थे वे भी उनके पहले विचारके सर्वथा अनुकूल हैं। उन्होंने कहा था—"कुछ ऐसे बुजदिल हिन्दू भी हैं जिन्हें यह भय बना रहता है कि अफगानोंकी चढ़ाई होनेपर मुसलमान देशद्रोह करेंगे। यदि भारतके लोग सङ्गठित हो जायँ और एक दूसरेका विश्वास करने लगें तो वे लोग प्रत्येक आक्रमणकारीका मुकाबला करेंगे चाहे वह मुसलमान हो या गैर-मुसलमान। जो आक्रमणकारी मेरा घर और मेरी आजादी मुझसे छीनना चाहता है, उससे मैं अपनी और अपने घरकी रक्षा हर तरहसे करूँगा। जेहादका तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जेहाद तो राजनीतिक आकाङ्क्षाके लिए आड़मात्र है। यदि हमलोगोंमें सामूहिक चेतनाका उदय हो जाय तो हमलोगोंकी सारी कठिनाई हल हो जाय। मेरा विचार है कि यदि सौदा करके भी हमलोग राष्ट्रीय एकता स्थापित कर लें तो इस तरहकी विचारधाराका उदय और विकास सम्भव है।"*

गोलमेज कान्फरेन्सके बादतक भारतके मुसलमानोंकी माँग केवल इतनी ही थी कि अल्पसंख्यक सम्प्रदायके नाते उन्हें पर्याप्त संरक्षण मिलना चाहिए। विभाजनकी भावना उनमें किस प्रकार उदय हुई, इसका विवरण डाक्टर शौकतुल्ला अन्सारीने अपनी पुस्तक "पाकिस्तान दि प्राब्लम आव इण्डिया" में दिया है। यहाँ उससे अवतरण दे देना उचित होगा :—

"१९३०—३१ में शासन-सुधार खरादपर चढ़ चुका था और प्रथम तथा द्वितीय गोलमेज कान्फरेन्समें मुसलमानोंने सङ्घ-शासनकी स्थापनाके लिए

* सर्चलाइट, ३० अप्रेल १९२६।

वचन दे दिया था । तृतीय गोलमेज कान्फरेन्सके समय १९३२में श्री जे० कोटमैन सी.आई.ई.ने लिखा था—'दृढ़ और संयुक्त भारत—जिसमें समस्त ब्रिटिश भारत, देशी रियासतें, उत्तर पश्चिमकी सीमाप्रान्तीय भूमि—जिसका कि भारतीय राजके लिऐ भारतमें मिलना आवश्यक है—की स्थापना दिनपर दिन असम्भव होती जा रही है और ऐसा प्रतीत होता है कि उसके स्थानपर उत्तर पश्चिममें एक शक्तिशाली मुसलमान राजकी स्थापना होगी जिसकी आँखे सदा भारतसे बाहरकी ओर लगी रहेंगी अर्थात् विश्वके उन मुसलमान राजोंकी ओर जिसका वह अपनेको अङ्ग समझता है । इसके साथ ही सुदूर दक्षिण और पूर्वमें क्या होगा ? हिन्दू भारत, एकजातीय और संयुक्त ? शायद ! अथवा एक विस्तृत क्षेत्र जिसमें पुराने युगकी तरह एक जाति या देशी नरेश दूसरी जाति या नरेशके साथ युद्ध करते रहेंगे । भविष्यमें इसकी बहुत कुछ सम्भावना दिखाई देती है···।"

"यह बीज कुछ उन मुसलमान युवकोंके दिमागमें बैठ गया जो सङ्घ-राष्ट्रके विरोधी थे और जिनकी यह धारणा थी कि शासन-विधानमें जो संरक्षण दिये जा रहे हैं वे व्यर्थ हैं और बहादुर तथा मूक मुसलमानजाति हिन्दू राष्ट्रीयताकी वेदीपर बलिदान की जा रही है। १९३३में पहले-पहल एक पञ्जाबी मुसलमान, चौधरी रहमतअलीने मुसलमानोंको एक स्वतन्त्र राष्ट्र कहना आरम्भ किया जो अबतक एक अल्पसंख्यक समुदाय माने जाते थे। इन्होंने ही इसे आन्दोलनका रूप दिया। इन्होंने इस विचारको जन्म दिया कि पञ्जाब, सीमाप्रान्त (अफगान प्रान्त) काश्मीर, सिन्ध तथा बिलो-चिस्तानको मिलाकर एक स्वतन्त्र मुस्लिम राज—पाकिस्तान—की स्थापना की जाय । डा० इकबालके मन्तव्यसे यह एकदम भिन्न था। डा० इकबालका प्रस्ताव था कि इन प्रान्तोंको मिलाकर एक राज कायम किया जाय जो अखिल भारतीय सङ्घ राष्ट्रका एक अङ्ग हो और चौधरी रहमतअलीका प्रस्ताव था कि इन प्रान्तोंका अपना अलग सङ्घ-शासन ही हो। चौधरी रहमतअलीने अपनी योजना छपवाकर पार्लमेण्ट तथा गोलमेज कान्फरेन्सके सदस्योंके पास भेजी

लेकिन किसी भारतीय--हिन्दू या मुसलमान--ने उसमें दिलचस्पी नहीं ली। ज्वायण्ट पार्लमेण्टरी सेलेक्ट कमेटीके समक्ष बयान देते हुए अगस्त १९३३ में मुस्लिम गवाहोंने पाकिस्तान योजनाके बारेमें निम्नलिखित मत प्रकट किया था—

'ए० यूसुफअली--जहाँतक मेरी धारणा है, यह कच्चे मस्तिष्कवाले विद्यार्थियोंकी योजना है। इसे किसी भी सम्भ्रान्त व्यक्तिने पेश नहीं किया है।

'डा० खलीफा शुजा-उद्दीन--शायद इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि उस तरहकी किसी भी योजनापर किसी भी संस्था या प्रतिनिधि जमातने विचार नहीं किया है।

"यह ध्यान देनेकी बात है कि इस कान्फरेन्समें पाकिस्तानके सम्बन्धमें प्रश्न पूछे गये थे। इससे भी अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस तरहके प्रश्नकी प्रेरणा ब्रिटेनकी ओरसे आयी थी। कागजातोंसे प्रकट होता है कि भारतीय मुस्लिम प्रतिनिधि इस तरहके सवालोंमें किसी तरहकी दिलचस्पी नहीं ले रहे थे और आगे बढ़नेके लिए सदा उतावले रहते थे; लेकिन कमेटीके ब्रिटिश सदस्य इस प्रश्नपर बहुत अधिक जोर देते थे...यद्यपि भारतमें उस समयतक किसीने पाकिस्तानकी चर्चातक नहीं की थी और मुसलमान प्रतिनिधियोंने उसमें किसी तरहकी रुचि भी नहीं दिखायी तो भी अनुदार दलके समाचारपत्र तथा चर्चिल और लायड जार्जके दलने गला फाड़ फाड़कर उसपर जोर दिया और उसे बहुत ही आशयभरी बात समझा। उसका परिणाम यह हुआ कि कामन्स सभामें इसपर अनेक बार सवाल किये गये।"*

विभाजनकी भावनाका उदय और विकास चाहे किसी भी प्रकार हुआ हो, लेकिन डा० अन्सारीके शब्दोंमें यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस बीजको उपजाऊ भूमि मिल गयी और अपनी ओर इसने जबर्दस्ती ध्यान आकृष्ट कर लिया।

---

* शौकतुल्ला अन्सारी—पाकिस्तान दि प्राब्लम आव इण्डिया पृ० ४-७।

चतुर्थ भाग

अखिलभारतीय मुस्लिमलीगका पाकिस्तानका प्रस्ताव

१

अनिश्चितता और व्यापकता

अखिल भारतीय मुस्लिम लीगने मार्च १९४०में अपने लाहौरवाले अधिवेशनमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया——

१——अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी कौंसिल और कार्यसमितिके २७ अगस्त, १७-१८ सितम्बर, २२ अक्तूबर और ३ फरवरीके प्रस्तावोंमें वैधानिक प्रश्नके सम्बन्धमें जिस बातका निर्देश किया गया है उसको मानते और स्वीकार करते हुए अखिल भारतीय मुस्लिम लीगका यह अधिवेशन जोर देकर दुहराता है कि १९३५ के भारत शासन-विधानमें जो सङ्घ योजना रखी गयी है वह इस देशकी विचित्र स्थितिके विचारसे पूर्णतः अनुपयुक्त और अव्यवहार्य है तथा मुस्लिम भारतके लिए सर्वथा अग्राह्य है।

२——यह अपना यह दृढ़ विचार भी प्रकट कर देना चाहता है कि सम्राट-सरकारकी ओरसे १८ अक्तूबर १९३९ को वाइसरायने जो घोषणा की उसमें यह आश्वासन पुनः दिये जानेपर भी कि जिस नीति और ढाँचेके आधारपर १९३५ का भारत शासन-विधान बना है उनपर भारतके विभिन्न दलों, स्वार्थों और सम्प्रदायोंकी राय लेकर पुनः विचार किया जायगा, जबतक सारे ढाँचेपर नये सिरेसे विचार न किया जायगा तबतक मुस्लिम भारत सन्तुष्ट न होगा और मुसलमानोंकी स्वीकृति और सम्मति लिए बिना जो भी संशोधित ढाँचा तैयार किया जायगा वह मुसलमानोंको कभी ग्राह्य न होगा।

३——निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके इस अधिवेशनका यह सुविचारित मत है कि ऐसा कोई भी वैधानिक ढाँचा इस देशके लिए व्यवहार्य या मुसलमानोंके लिए ग्राह्य न होगा जिसमें भौगोलिक दृष्टिसे संलग्न इकाईयोंको, आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर, इस प्रकारके सीमाबद्ध प्रदेशोंका

रूप देनेका मौलिक सिद्धान्त न बरता गया हो जिससे भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्र—जैसे संख्याकी दृष्टिसे मुसलमान-प्रधान क्षेत्र आपसमें मिलकर 'स्वतन्त्र राज' बन सकें और सम्मिलित होनेवाली इकाईयोंको स्वायत्त शासन और प्रभुसत्ता प्राप्त हो।

४—— इन इकाईयों और प्रदेशोंके अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक आर्थिक, राजनीतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों और स्वार्थोंकी रक्षाके लिए उनकी रायसे पर्याप्त, प्रभावकारी तथा आदिष्ट संरक्षणोंकी विधानमें विशेष रूपसे व्यवस्था की जाय ; और भारतके जिन भागोंमें मुसलमान अल्पसंख्यक हों वहाँ उनके तथा अन्य अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों और स्वार्थोंकी रक्षाके लिए पर्याप्त, प्रभावकारी तथा आदिष्ट संरक्षणोंकी विशेष रूपसे * व्यवस्था की जाय।

यह अधिवेशन कार्यसमितिको इन्हीं मौलिक सिद्धान्तोंके आधारपर विधानकी एक ऐसी योजना प्रस्तुत करनेका अधिकार देता है जिसमें उक्त प्रदेशोंके लिए सभी अधिकार—यथा, रक्षा, बाहरी विषय, यातायात सम्बन्ध, चुङ्गी तथा अन्य आवश्यक विषय—अन्ततः ग्रहण कर लेनेकी व्यवस्था हो।

प्रस्तावसे यह प्रकट होता है कि इसका सम्बन्ध १९३५ के भारत शासन-विधानमें सन्निविष्ट सङ्घ-योजनासे है जो भारतकी विचित्र स्थितिके विचारसे पूर्णतः अनुपयुक्त और अव्यवहार्य है और इस कारण मुस्लिम भारतके लिए सर्वथा अग्राह्य है। यह दृढ़ मत प्रकट करनेके अनन्तर कि जबतक सारे वैधानिक ढाँचेपर नये सिरेसे विचार न होगा तबतक भारतके मुसलमान सन्तुष्ट न होंगे और ऐसा कोई भी संशोधित ढाँचा जो मुसलमानोंकी स्वीकृति और सम्मतिसे तैयार न किया जायगा उनको ग्राह्य न होगा, वह मौलिक सिद्धान्त निर्दिष्ट किया गया है जिसपर व्यवहार्य और मुसलमानोंके ग्राह्य होने योग्य ढाँचा आधृत होना चाहिए।

*** 'इंडियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कान्स्टिट्यूशन'में** 'Specially' **और 'मुस्लिम इण्डिया' तथा 'पाकिस्तान आर पार्टीशन आव इण्डिया'में** 'Specifically' **शब्द है।**

मौलिक सिद्धान्त यह रखा गया है कि भौगोलिक दृष्टिसे संलग्न इकाइयाँ, आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर, इस प्रकारके सीमाबद्ध प्रदेश बना दी जायँ जिससे सीमाप्रान्त और पूर्वीभारत जैसे मुसलमान-प्रधान क्षेत्र आपसमें मिलकर 'स्वतन्त्र राज' बन जायँ और सम्मिलित होनेवाली इकाइयोंको स्वायत्तशासन और प्रभुसत्ता प्राप्त हो। इसके बाद प्रस्तावमें कहा गया है कि इन प्रदेशोंमें बसनेवाले अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों और स्वार्थोंकी रक्षाके लिए उनकी रायसे विधानमें संरक्षणोंकी विशेष रूपसे व्यवस्था की जाय और भारतके जिन भागोंमें मुसलमानोंका अल्पमत हो वहाँ उनकी तथा अन्य अल्पसंख्यकोंकी रक्षाके लिए ऐसे ही संरक्षणोंकी व्यवस्था की जाय। लीगने अपनी कार्यसमितिको इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर विधानकी एक ऐसी योजना प्रस्तुत करनेका अधिकार दिया जिसमें उक्त प्रदेशोंके लिए सभी अधिकार—यथा रक्षा, बाहरी विषय, यातायात-सम्बन्ध, चुंगी तथा अन्य आवश्यक विषय—अन्ततः ग्रहण कर लेनेकी व्यवस्था हो।

इस प्रस्तावके द्वारा लीगकी कार्यसमितिको जो योजना प्रस्तुत करनेका अधिकार दिया गया था वह, अगर तैयार भी की गयी हो तो, अभीतक प्रकाशित नहीं की गयी। मुसलिम लीगके अध्यक्ष श्री जिनाने मद्रासमें कहा था—

'यथासम्भव स्पष्ट शब्दोंमें मैं आपलोगोंको बतला देना चाहता हूँ कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीगका लक्ष्य उत्तर-पश्चिम और भारतके पूर्वी क्षेत्रोंमें रक्षा, मुद्रा, विनिमय आदिके अन्तमें पूर्ण अधिकारके साथ सर्वथा स्वतन्त्र राज स्थापित करना है। हम किसी भी हालतमें ऐसा विधान नहीं चाहते जो एक केन्द्रीय सरकारके साथ सारे भारतके लिए हो।'

जब उनसे योजनाकी व्याख्या करने और उक्त प्रदेशोंमें सम्मिलित किये जानेवाले स्थानों तथा अन्य विषयोंके सम्बन्धमें ब्योरेकी बातें बतानेको कहा गया तब उन्होंने यह आग्रह करते हुए ऐसा करनेसे इनकार कर दिया कि पहले सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाय तब, और सिर्फ तभी व्याख्या या ब्योरेकी बातें प्रकट करनेको मैं प्रस्तुत होऊँगा।

कुछ ही दिन पहले, १९४४ के अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें, जब श्री जिना और पञ्जाबके प्रधान मन्त्री मलिक खिजिर हयातखाँके बीच पञ्जाबमें यूनियनिस्ट दलके मन्त्रिमण्डलके स्थानपर मुस्लिम लीग या मुस्लिम लीगका संयुक्त मन्त्रिमण्डल स्थापित करनेके श्री जिनाके प्रस्तावपर बात चल रही थी, गैर मुसलमान मन्त्रियों-ने यह इच्छा प्रकट की कि योजनाके राजनीतिक और वैधानिक स्वरूपकी पूरी-पूरी व्याख्या कर दी जाय और पाकिस्तान योजनाके अनुसार पञ्जाबकी भौगोलिक सीमा क्या होगी और सीमा-निर्धारणमें कौनसा सिद्धान्त बरता जायगा इन बातोंको स्पष्ट कर दिया जाय जिसमें जिन लोगोंका सम्बन्ध है वे योजनाके गुण-दोषोंपर विचार कर सकें। इसपर श्री जिनाने सिर्फ यह टिप्पणी की कि 'यह तो अखिल भारतीय प्रश्न है, प्रस्तावित संयुक्त मन्त्रिमण्डलकी स्थापनाके विषयसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं।'*

अगर सचमुच कोई योजना तैयार हो तो लीगके अध्यक्ष उसका पूरा स्वरूप प्रकट करनेमें क्यों हिचकते हैं, यह समझ सकना कठिन है। ऐसा मानना कभी युक्ति-युक्त न होगा कि एक जिम्मेदार संस्था जो भारतके मुस्लिम-सम्प्रदायका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करती है, देशके विभाजनके लिए कोई ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित करेगी जिसकी व्यापकतापर उसने पूर्णरूपसे विचार न कर लिया हो अथवा ऐसी योजना रखेगी जिसकी तफसील न तैय्यार कर ली गयी हो। दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः यह आशा करेगा कि यदि लीग अपनी योजनापर विचार और उसकी विशेषताके बलपर उसे स्वीकार कराना चाहती है तो दूसरोंके इच्छा प्रकट करनेपर उसे इसकी व्याख्या करनेके लिए इच्छुक नहीं तो कमसे कम राजी तो होना ही चाहिए जिसमें वे इसपर बुद्धिमत्ता और समझदारीके साथ तर्क कर इसे ग्रहण कर सकें। उसपर उचित रूपसे विचार करनेके लिए उसके ब्यौरेका ही नहीं बल्कि उसके मूलभूत स्वरूप-

---

* 'अमृतबाजार पत्रिका'के ३-५-४४के अंकमें प्रकाशित गैर-मुसलमान मन्त्रियोंका वक्तव्य।

का भी परिचय और व्याख्या आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यह जानना आवश्यक है कि लीगकी योजनाके अनुसार कौनसे भू-भाग पाकिस्तानमें और कौनसे उसके कल्पित हिन्दुस्तानकी सीमामें पड़ेंगे। इसी प्रकार यह जानना भी आवश्यक है कि पाकिस्तानमें अल्पसंख्यक गैर-मुसलमानोंका और हिन्दुस्तानमें अल्पसंख्यक मुसलमानोंका क्या परिमाण होगा और हिन्दुस्तानके अल्पसंख्यक मुसलमानोंके लिए लीग कौनसे संरक्षण और आश्वासन दिलानेका प्रयत्न करेगी। लीगके लिए सिर्फ यह कह देना पर्याप्त न होगा कि हिन्दुस्तानमें अल्पसंख्यक मुसलमानोंके लिए जो संरक्षण रखे जायँगे वे ही संरक्षण अल्पसंख्यक गैर-मुसलमानोंको प्रदान किये जायँगे। किसी दूसरे दलने न तो विभाजनकी योजना पेश की है और न अल्पसंख्यक सम्बन्धी अधिकार देने-दिलानेकी बात कही है; इसलिए लीगको ही चाहिए कि वह मुसलमानोंकी तरह दूसरोंके विचार करनेके लिए भी अपने प्रस्तावोंको निश्चित रूप दे। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि दूसरे भागमें अल्पसंख्यक समुदायके परिमाणके कारण बाध्य-बाधकताकी—एकके सम्बन्धमें प्रयुक्त होनेवाला सिद्धान्त दूसरी जगह प्रयोगमें लानेकी—योजना अव्यावहारिक सिद्ध हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि एक भागमें अल्पसंख्यक जातिकी संख्या कुल आबादीपर ४० और ५० के बीच हो और दूसरे भागमें १० या इसके आसपास, तो यह बिलकुल स्पष्ट है कि ४०-४५ वाली अल्पसंख्यक जातिकी स्थिति १० या इसके आसपासवाली अल्पसंख्यक जातिकी स्थितिसे कहीं अच्छी होगी, क्योंकि ४०-४५ वाली अपनी अन्तरस्थ शक्तिके सहारे प्राप्त आश्वासनोंको कार्यान्वित करा ले सकेगी। यह भी हो सकता है कि परस्पर बाध्य-बाधकताका सिद्धान्त स्वीकार न हो क्योंकि जो कुछ दिया जाता हो वह इतना सामान्य हो सकता है कि उस समुदायके लिए उसमें कोई आकर्षण ही न हो।

यही विषय उदाहरणद्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये कि पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंके विशेषकर पञ्जाब और बङ्गालके हिन्दू यह कहें कि अपने प्रान्तमें अल्पसंख्यक होते हुए भी हम अपने लिए व्यवस्थापिका सभा या

नौकरियोंमें प्रतिनिधित्वके विषयमें कोई रिआयत या अतिरिक्त संख्या (वेटेज) नहीं चाहते, जन-संख्याके अनुपातसे जो प्रतिनिधित्व मिले उसीसे हम सन्तुष्ट हैं और ईसाई सरीखे अन्य अल्पसख्यकोंके लिए, माँग करनेपर या अपनी ओरसे जो रिआयत या अतिरिक्त संख्या रखना स्वीकार किया जाय वह बहु-संख्यक सम्प्रदाय अपने हिस्सेमेंसे दे ; यह भी मान लें कि वे कहें कि हम अपने लिए रिआयत या अतिरिक्त संख्या नहीं चाहते इसलिए जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका अल्पमत है उनमें मुसलमानोंके लिए रिआयत या अतिरिक्त संख्या न रखी जाय, पर उन प्रान्तोंके बहुसंख्यक हिन्दू, ईसाई सरीखे दूसरे अल्प-संख्यकोंके लिए जरूरत होनेपर इस प्रकारकी रिआयत या अतिरिक्त सख्या स्वीकार करनेके लिए तैयार हों। यही बात हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तोंके हिन्दुओं-द्वारा दूसरे प्रकारसे भी रखी जा सकती है। मान लीजिये वे यह कहें कि हम अपने प्रान्तमें अल्पसंख्यक मुसलमानोंके लिए अतिरिक्त संख्या रखनेके लिए तैयार नहीं है और मुसलमान-प्रधान प्रान्तोंमें भी अल्पसंख्यक हिन्दुओंके लिए कोई अतिरिक्त संख्या स्वीकार करनेकी जरूरत नहीं है। हम यह भी मान लें कि उक्त दोनों परिस्थितियोंमें सारे देशके हिन्दू, चाहे उनका बहुमत हो या अल्पमत, यही रुख अख्तियार करें तो यह स्थिति पूर्णरूपसे बाध्य-बाधकतापर आश्रित होगी और इसलिए इसपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। ऐसा कोई कारण नहीं देख पड़ता जिससे हिन्दू यह रुख अख्तियार न करें। बङ्गालके हिन्दू इससे फायदेमें रहेंगे। १९३५ के विधानके अनुसार व्यवस्थापिका सभामें मिली ३२ प्रतिशत जगहोंके बदले उन्हें ४४ प्रतिशत जगहें मिल जायँगी। पञ्जाबमें भी उनकी स्थिति कुछ अंशोंमें उन्नत हो जायगी। उन्हें बङ्गालमें ५० प्रतिशतकी जगह ४४ प्रतिशत नौकरियाँ मिलेंगी और पञ्जाबमें उनकी स्थितिमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिन्ध और बिलोचि-स्तानके हिन्दू काफी घाटेमें रहेंगे, पर उनकी कुल आबादी सिर्फ १४½ लाख है और व्यवस्थापिका सभा तथा नौकरियोंमें जितनी जगहोंसे वे वञ्चित होंगे वे बिलकुल नगण्य होंगी। अब—बिहार जैसे किसी एक प्रान्तमें ही देखें कि वहाँके

मुसलमानोंको इसकी तुलनामें क्या क्षति पहुँचती है। वहाँ व्यवस्थापिका सभा तथा नौकरियोंमें उनका प्रतिनिधित्व २५ प्रतिशतसे घटकर १२ प्रतिशत हो जायगा और हाथसे निकल जानेवाली जगहों और नौकरियोंकी संख्या बहुत बड़ी होगी और उक्त दोनों मुस्लिम क्षेत्रोंमें कुल जितनी जगहोंसे हिन्दू वञ्चित होंगे उससे वह अधिक ही होगी। इस कमीका असर जहाँ सिर्फ एक प्रान्तमें ४७ लाख मुसलमानोंपर होगा वहाँ पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें सिर्फ १४½ लाख हिन्दुओं-पर होगा। अन्य हिन्दू क्षेत्रोंमें मुसलमानोंकी स्थिति क्या होगी उसका आसानीसे अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार बाध्य-बाधकताके सिद्धान्तके प्रति हिन्दुओंके लिए कोई आकर्षण नहीं हो सकता और न वह उनको मुसलमानोंके लिए कोई रिआयत या अतिरिक्त प्रतिनिधित्व स्वीकार करनेको प्रवृत्त कर सकेगा।

फिर प्रत्येक पक्षको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि वह कौनसी शक्ति होगी जो आश्वासनोंको कार्यान्वित करा सकेगी। मैंने तो उन बहुसंख्यक प्रश्नोंमेंसे केवल कुछका उल्लेख किया है जो इस योजनामें स्पष्ट रूपसे उठते हैं और जिनका इस योजनापर उचित रूपसे विचार करने और समझदारीके साथ स्वीकार करनेके लिए स्पष्टीकरण और व्याख्या आवश्यक है।

दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तके साथ भी बहुतसे प्रश्न लगे हुए हैं जिन्हें समझ लेना आवश्यक है। देखा जाता है कि पाकिस्तानके प्रमुख समर्थक इस्लामधर्म और उससे उद्भूत सामाजिक और राजनीतिक पद्धतिको ही मुसलमानोंके पृथक् राष्ट्र होनेका आधार मानते हैं। दूसरी विशेषताएँ जो राष्ट्रके लिए आवश्यक उपा-दान मानी जाती हैं, मुसलमानोंमें मुसलमान होनेकी वजहसे ही पायी जाती हों, ऐसी कोई बात नहीं है। वे भारतके खास-खास क्षेत्रों हिन्दू मुसलमान दोनोंमें समान रूपसे पायी जाती हैं। यदि भाषाकी ही बात ले ली जाय तो देख पड़ेगा कि धर्ममें भिन्नता होते हुए भी पञ्जाबके हिन्दू, मुसलमान और सिख एक ही भाषा बोलते हैं। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके पठानोंमें भी यही बात है—हिन्दू और मुसलमाम दोनों पश्तो भाषा बोलते हैं। बङ्गाली भी—हिन्दू हो या मुस-लमान—बँगला ही बोलता है। उक्त सभी क्षेत्रोंमें वे एक ही भूभागपर बसे

हुए हैं, इन सभी स्थानोंमें, यदि मुसलमानोंका सुदीर्घ शासनकाल छोड़ दें, तो भी ब्रिटिश शासनमें, कमसे कम, सौ वर्षसे अधिक ही शेष ब्रिटिश भारतके साथ वे एक ही सरकारकी अधीनतामें रहे हैं।

धर्म ही एकमात्र लक्षणके रूपमें रखा जाता है, अतः यह स्मरण रखनेकी बात है कि ऐसे लोग जो महत्वकी अधिकांश नहीं तो बहुतसी बातोंमें एक जैसे पर धर्ममें भिन्न हैं, देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक बसे हुए हैं। कहा जाता है कि प्रश्नके इस पहलूपर टीका करते हुए श्री एडवर्ड थामसनने श्री जिनासे कहा था कि इसका अर्थ तो यह होगा कि गाँव गाँव और गली-गलीमें दो परस्पर विरोधी राष्ट्र होंगे जिसका ध्यानमात्र भी हृदयको दहला देनेवाला है। कहते हैं कि इसके उत्तरमें श्री जिनाने कहा था कि यह दृश्य भयङ्कर जरूर है पर दूसरा कोई मार्ग भी नहीं है।* हालमें ही श्री जिनाने प्रेसको दिये गये एक वक्तव्यद्वारा मुलाकातमें श्री थामसनको प्रेसके लिए इस तरहका कोई वक्तव्य देने या ऐसी बात कहनेका खण्डन किया है। पर श्री जिनाने थामसन साहबसे प्रेस-प्रतिनिधि या किसी और रूपमें यह बात कही हो या न कही हो, उससे इस स्थितिमें कोई अन्तर नहीं आता कि धर्मके आधारपर दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त मान लेनेका परिणाम यही होगा कि भारतके गाँव-गाँव और गली-गलीमें दो राष्ट्र प्रस्तुत और स्थापित हो जायँगे। अगर भारतके किसी भागका कोई मुसमान केवल अपने धर्मके कारण उन सारे मुसलमानोंसे बने हुए राष्ट्रका सदस्य हो जो भारतके प्रत्येक कोनेमें बसे हुए पर वह अपने पड़ोसी गैर-मुसलमानसे पृथक् हो तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि उस मुसलमानका किस राजके प्रति भक्तिभाव होगा—उस राजके प्रति जिसमें वह रहता है और जो पकिस्तानके अन्दर न होनेसे मुस्लिम राज नहीं भी हो सकता या उस दूरवर्ती मुस्लिम राजके प्रति जिसके साथ उसका इसके अतिरिक्त और

---

* 'एनलिस्ट इण्डिया फार फ्रीडम', पृष्ठ ५२ से डाक्टर अन्सारीद्वारा 'पकिस्तान दि प्राब्लम आव इण्डिया', पृष्ठ ७१–७२ में उद्धृत।

कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता कि उस राजका बहुसंख्यक दल उसका सहधर्मी है? मुसलिम राजमें बसनेवाले गैर-मुसलमानके सम्बन्धमें भी यही प्रश्न उपस्थित होगा यदि यह पहले ही मान लें कि मुसलमानोंका एक राष्ट्र बन सकता है और बनता है और राष्ट्र-निर्माणके लिए सिर्फ एक गुण—धर्म—की आवश्यकता है, उसके अभावमें अन्य सारी बातें निरर्थक हैं। अथवा अन्य प्रकारके मुसलमान या गैर-मुसलमानका दोहरा व्यक्तित्व और विभक्त राजभक्ति होगी? इस प्रकारकी विभक्त राजभक्तिवाला व्यक्ति युद्ध जैसे सङ्कटकालमें कैसा आचरण करेगा?

भिन्न राष्ट्रके इस प्रकारके सदस्यके पदके सम्बन्धमें कुछ और प्रश्न भी उत्पन्न होते है। साधारणतः किसी राज-विशेषके भूभागमें बसनेवाला मनुष्य, उसकी राष्ट्रीयता पहले जो भी रही हो, कुछ शर्तोंको पूरा करनेपर उस राजका नागरिक बन जाता है। इस प्रकार उसे एक पद प्राप्त हो जाता है जिससे उसे कुछ विशेष अधिकार मिल जाते हैं और उसपर कुछ जिम्मेदारियाँ भी आ जाती हैं। यदि भारतका कोई मुसलमान इस बातपर ध्यान न देकर कि वह मुस्लिम राजका अधिवासी है या गैर मुस्लिम राजका, मुस्लिम राजका सदस्य हो तो क्या वह गैर-मुसलिम राजके, जिसमें वह बसा हुआ है, नागरिकका पद पानेका अधिकारी है और उसे यह पद देना उचित और न्याय्य होगा? क्या वहाँ अधिकतर विजातीयके ही रूपमे रहते हुए रक्षाके लिए और नागरिकतासे प्राप्त अधिकारोंद्वारा लाभान्वित करनेके लिए अपने राजकी ओर उसका ध्यान नहीं रहेगा जो उसका राष्ट्रीय राज होगा? वह विजातीयोंको मिलनेवाले अधिकारों और यदि सुविधाएँ दी जाती हों तो उनका भी दावा करेगा। दूसरे राष्ट्रके राजके भूभागमें काम करने या कारबार चलानेवाले विजातीयों और अपने ही राष्ट्रके भूभागमें उसी राष्ट्रके अन्य दलोंकी तुलनामें अल्पमत होते हुए भी काम करने या कारबार चलानेके लिए सदस्योंमें अन्तर हुआ करता है जो दृष्टिसे ओझल या विस्मृत नहीं किया जा सकता। अल्पमतवाले भी उसी राष्ट्रके सदस्य होते हैं और उनके अधिकार भी स्वीकृत रहते हैं। विजातीयोंको, अल्पमतवालोंको मिलनेवाले अधिकार नहीं दिये जा सकते।

इसलिए उन प्रान्तों या राजोंके मुसलमान जहाँ गैर-मुसलमानोंका बहुमत है, अगर दूसरे राष्ट्रके सदस्य बने रहनेका दावा करें तो वे अल्पमतवालोंके हकदार नहीं माने जा सकते। मुस्लिम राजोंके गैर-मुसलमानोंके राष्ट्रीय सदस्य होनेका दावा करनेपर भी यही बात चरितार्थ होगी क्योंकि गैर-मुसलमान होनेके कारण वे दूसरे राष्ट्रके सदस्य माने जायँगे।

यदि मुस्लिम लीग भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंमें मुसमानोंकी राजसम्बन्धी कल्पनाके अनुसार मुस्लिम राज रखना चाहती है तो प्रश्न यह उठता है कि उन राजोंमें गैर-मुसलमानोंका क्या पद होगा? क्या राजमें वे समानरूपसे नागरिक समझे जायँगे या उनका पद कुछ नीचा होगा? मुसलमानी आमकानूनमें मुसलमान और जिम्मीके बीच कुछ अन्तर माना जाता है।

मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़के श्री ए. एस. ट्रिटनने 'दि कलीफ्स एण्ड देयर नन-मुस्लिम सब्जेक्ट्स' (खलीफा और उनके गैर-मुसलमान प्रजाजन) नामक एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने खलीफाके अधीन राजोंके गैर-मुसलमानोंकी स्थितिपर विस्तारके साथ विचार किया है। इस स्थलपर उक्त पुस्तकका सारांश दे सकना सम्भव नहीं है इसलिए पुस्तकके उपसंहारसे कुछ अवतरण देकर सन्तोष करना पड़ता है। श्री ट्रिटनका कहना है 'इस्लामका शासन प्रायः भार-स्वरूप था जो मिस्रके विद्रोहसे प्रमाणित है। द्वितीय उमर मुसलमानोंकी आवश्यकता पूरी हो जानेपर खजानेकी बची हुई रकम धिम्मियोंमें वितरण कर देनेका आदेश गवर्नरको दे सकता था, पर नियमतः गजके लिए आवश्यक धन उन्हें प्रस्तुत करना पड़ता था और इसके बदलेमें उन्हें कुछ भी नहीं मिलता था। पहले पहल तो प्रजाजनोंने पूर्ववर्ती सरकारको जितना कर दिया था उससे अधिक कर शायद नहीं दिया, पर किसी न किसी रूपमें उनका भार धीरे धीरे बढ़ता ही गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रथम शताब्दीका अन्त होते होते, द्वितीय उमरके शासनकालमें ही धिम्मियोंकी असमर्थता निश्चित रूपसे आरम्भ हो गयी थी। उनकी पोशाकपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और सरकारी पदोंसे भी उनका बहिष्कार होने लगा था।......दूसरी शताब्दीमें

मुसलमानोंका रुख और भी कड़ा पड़ गया......पोशाक सम्बन्धी कानून और भी कड़े कर दिये गये और यह विचार भी स्पष्ट होता जा रहा था कि गिरजा-घर बनवानेकी कोई जरूरत नहीं।...यही कहना उचित होगा कि कानूनकी तुलनामें शासकका आचरण अच्छा था।......विधान-पुस्तकमें उनके लिए (धिम्मियोंके लिए) बहुतसी चीजों—विवाह या अन्त्येष्टि संस्कारके सार्व-जनिक रूपसे सम्पादन, भोज, गिरजाघरकी विधियों आदि—की मनाही थी। मुसलमानकी पोशाककी कोरपर जान-बूझकर पैर रखना दण्डनीय अपराध था और उन्हें मार्गका मध्यभाग मुसलमानोंके लिए छोड़ देना पड़ता था।......

मुतसिमने समाराका मठ खरीद लिया जिसके स्थानपर वह प्रासाद बनवाना चाहता था। दूसरे खलीफोंने अपनी इमारतोंके सामानके लिए गिरजे ढहवा डाले और जन-समूह भी गिरजों और मठोंको लूटनेके लिए हमेशा तैयार रहता था। धिम्मी बहुत कुछ उन्नति कर सकते थे पर उन्हें शासककी सनक और जनसमूहके भावोन्मादका शिकार बनकर बराबर कष्टका ही सामना करते रहना पड़ा। अल्-हकीमके कार्य तो इस्लामके अनुयायीके रूपमें न होकर पागलकी करतूतसे होते थे। आगे चलकर धिम्मियोंकी स्थिति और भी बुरी हो गयी। भीड़द्वारा सताये जानेकी सम्भावना और भी बढ़ गयी। और लोगोंके धर्मो-न्मादके साथ शिक्षितवर्गका कट्टरपन भी आ मिला। इस्लामका आध्यात्मिक अलगाव पूरा हो गया। दुनिया दो वर्गों, मुसलमानों और गैर-मुसलमानोंमें बँट गयी और गणना केवल इस्लामकी रह गयी। कुछ उल्लेखनीय अपवाद भी थे, पर यह साधारण कथन सत्य है। अगर कोई मुसलमान धिम्मीके धर्मको साहाय्य प्रदान करता तो वह तीन बार पश्चात्ताप करनेके लिए बुलाया जाता और यदि वह अड़ा रह जाता तो मार डाला जाता था। साधारणतः धारणा यही थी कि मुसलमान जिस चीजको खराब समझकर छोड़ देते हैं वही धिम्मियोंके लिए बढ़िया चीज है।'*

* ए० एस० ट्रिटन—'दि कलीफ्स ऐण्ड देयर नन-मुस्लिम सब्जेक्ट्स' पृष्ठ २३०-३३

क्या गैर-मुसलमानोंको धिम्मियोंका दरजा दिया जायगा या किसी आधुनिक जनतन्त्र राजके परस्पर समान नागरिकोंका ? पाकिस्तानके समर्थक कुछ लेखकोंने स्पष्ट रूपसे कहा है कि जिस राजकी कल्पना उन्होंने की है वह मुस्लिम राज होगा। उनकी समझमें इसका अर्थ सबके प्रति न्याय है लेकिन ऊपर जो उद्धरण दिया गया है उसका विचार करते हुए, सम्भव है, गैर-मुसलमान यह बात माननेको तैयार न हों इसलिए ठीक-ठीक राय कायम करनेके लिए योजनाकी स्पष्ट और पूरी व्याख्या आवश्यक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गोल-मटोल लाहौर-प्रस्तावके स्पष्टीकरण और व्याख्याकी माँग सर्वथा उचित है। दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त प्रचारित करने और विभाजनकी योजना रखनेके पहले लीगने इन तथा ऐसे अन्य प्रश्नों पर अवश्य विचार किया होगा और यदि वह चाहती है कि जो उसमें नहीं हैं वे भी चाहे मुसलमान हों या या गैर-मुसलमान—उसके कार्यक्रमको स्वीकार करें तो उसे इन तथा समान उलझनवाली अन्य समस्याओंके समाधानमें सम्मिलित होनेके लिए तैयार रहना चाहिए; अगर वह यह चाहती हो कि लोग अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधकर विभाजनके पक्षमें हाथ उठा दें तो बात दूसरी है।

यह कहना कुछ कटु होगा कि लीग दूसरोंसे अस्पष्ट साधारण सिद्धान्त और गोल-मटोल योजना पहले स्वीकार करा लेना चाहती है और तब उनपर सम्बद्ध बातों और तफसीलोंको कबूल करानेके लिए जोर डालेगी जिन्हें वह धीरे-धीरे प्रकट करती जायगी और यदि वे सिद्धान्त और योजनाको मानते हुए भी सम्बद्ध बातों और तफसीलोंको माननेसे इनकार करेंगे तो उनपर बदनीयती और वादेसे मुकर जानेका दोषारोप करेगी।

लेकिन जिस रूपमें यह विषय सर्वसाधारणके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है उससे तो इसी कटु अनुमानका समर्थन होता है। आरम्भमें तो लीगके अध्यक्षने पहले विभाजनका सिद्धान्त ही मनवानेका आग्रह करते हुए सम्मिलित हिन्दू परिवारका उदाहरण दिया जिसमें पहले बँटवारेका सिद्धान्त मान लिया जाता है और तफसीलकी बातें बादमें तै कर ली जाती हैं; पर बादमें उनकी

बातका रूप बदल गया। जब श्री राजगोपालाचारीने गान्धीजीकी सहमति और स्वीकृतिसे मूर्त रूपमें योजना प्रस्तुत की जिससे, उनके कथनानुसार, लीगके लाहौर प्रस्तावकी शर्तें पूरी हो जाती थीं, तब श्री जिनाने कुछ बेसिर-पैरकी बातें पेशकर इसे ठुकरा दिया। स्थिति किस प्रकार बदलती रही है, इसका यहाँ निर्देश किया जा सकता है। जब श्री जिनाने बम्बईमें अपने मकानपर महात्माजीसे मिलनेका निश्चय प्रकट किया तब उन्होंने राजाजीका सिद्धान्त अस्वीकृत करते हुए कहा था—‘श्री गान्धीने किसी प्रकार अपनी व्यक्तिगत हैसियतमें देशके बँटवारे या विभाजनका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। अब शेष यही रह गया है कि यह कब और कैसे कार्यान्वित किया जाय।’ * इस घोषणाके बाद लोगोंने यही खयाल किया होगा कि तफसीलकी बातें प्रकट करने या तै करनेके पूर्व बँटवारे या विभाजनके जिस सिद्धान्तपर जोर दिया जा रहा था उसके स्वीकार कर लिये जानेपर अब दूसरा कदम तफसीलकी बातें तै करनेकी दिशामें होगा और श्री जिना अपनी योजना प्रस्तुत कर यह बतलायेंगे कि वह श्री राजगोपालचारीके ‘भग्नाङ्ग, खण्डित और दीमक चाटे हुए पाकिस्तान’से कहाँ और कैसे भिन्न है। पर बादमें चलनेवाली लम्बी बहसमें जिसका परिणाम गान्धीजी और श्री जिनामें हुए लम्बे पत्र-व्यवहारमें सन्निविष्ट है, योजनाकी तफसीलकी बातोंको आरम्भ करनेके पहले ही दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त और लाहौर प्रस्ताव ज्योंका त्यों मान लेनेकी नयी माँगें पेश कर दी गयीं। बँटवारेके निरे सिद्धान्तसे भिन्न जिसे स्वयं श्री जिनाके कथनानुसार गान्धीजीने स्वीकार कर लिया था, विभाजनका नग्न साधारण सिद्धान्त और नग्न साधारण प्रस्ताव स्वीकार करनेका आग्रह किया जाने लगा। तफसीलपर विचार करनेके पहले ही विभाजनका सिद्धान्त मान लेनेका प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेसे तफसीलपर विचार करनेकी बात तो ताकपर धर दी गयी, दो राष्ट्रोंका सिद्धान्त स्वीकार करनेकी एक नयी

---

* अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी कौंसिलकी ३०-७-४४ की बैठकमें दिया गया वक्तव्य।

माँग सामने आ गयी जो विभाजन और लाहौर-प्रस्तावका मूलाधार कहा जाता है। अगर ये दोनों भी मान लिये गये तो पता नहीं और कौनसी माँग सामने आ जायगी। विभाजनकी योजना और उसके मूलभूत सिद्धान्तके एक टुकड़ेपर विचार करनेके आग्रहका यह स्वाभाविक परिणाम है।

२
अनिश्चितताजन्य असुविधाएँ

पाकिस्तानमें कौन-कौनसे भूभाग सम्मिलित किये जायँगे, इस प्रश्नका भी एक इतिहास है जिसका बहुतोंको साधारणतः क्रम पता होगा जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है, भारतके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंद्वारा तरह-तरहकी योजनाएँ प्रस्तुत की गयी थीं। उनमेंसे कुछमें तो इन क्षेत्रोंकी आवश्यकता सांस्कृतिक प्रयोजन और शासनके सम्बन्धमें मुसलमानोंका स्तर केवल मुस्लिम क्षेत्रोंमें नहीं बल्कि सारे देशमें ऊपर उठानेके लिए बतलायी गयी थी और शेषमें स्पष्ट शब्दोंमें स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंकी स्थापनाकी बात थी। ऐसा प्रतीत होता है कि १९४० की फरवरीमें, अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके लाहौरवाले अधिवेशनके कुछ ही दिन पूर्व, जिसमें मार्च महीनेके अन्तमें पाकिस्तानका प्रस्ताव स्वीकार किया गया, लीगकी विदेश-समितिने भारतके वैधानिक सुधार सम्बन्धी विभिन्न योजनाओंके निर्माताओंको समितिके तत्वावधानमें एक बैठक करनेके लिए आमन्त्रित किया जिसमें सभी योजनाओंकी एक साथ जाँच की जा सके और यह देखा जा सके कि अन्ततः कोई ठोस योजना प्रस्तुत की जा सकती है या नहीं।'* अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी विदेश-उपसमितिके सभापति सर अब्दुल्ला हारूँने अध्यक्ष श्री जिनाको एक स्मरण-पत्र दिया, और उपर्युक्त पत्रमें लिखा कि—'स्पष्टतः यह प्रस्ताव (लीगका लाहौर-प्रस्ताव) मैंने जो स्मरणपत्र गत फरवरीमें आपको (श्री जिनाको) दिया था उसीके

---

*'दि पाकिस्तान इशू' पृष्ठ ७३–४में प्रकाशित विदेश-उपसमितिके सभापति सर अब्दुल्लाका १३-१२-४० का पत्र।

आधारपर कार्यसमितिद्वारा तैयार किया गया है।'* यह स्मरणपत्र प्रकाशित नहीं हुआ है इसलिए यह कह सकना असम्भव है कि उसमें क्या था।

उपर्युक्त योजनाओंमें, जिनके निर्माता विदेश-समितिके निमन्त्रणपर एकत्र हुए थे, दो सर्वथा भिन्न और परस्पर विरोधी विचार थे। एक विचार तो यह था कि मुस्लिम क्षेत्र ठोस होना चाहिए और जिन क्षेत्रोंमें मुसलमानोंका अल्पमत हो उनको पृथक् कर देना चाहिए जिसमें उसकी आबादीमें मुसलमानोंका अनुपात यथासम्भव अधिक हो जाय और अधिक बहुमतवाले मुसलमान कुछ थोड़ेसे अल्पसंख्यक गैर-मुसलमानोंके साथ क्षेत्रकी व्यवस्था अपनी इच्छाके अनुसार कर सकें। अगर मुसलमानोंका बहुमत कम होगा तो यह कार्य कठिन हो जायगा और स्थिति अनिश्चित हो जायगी तथा इस प्रकार पृथक् मुस्लिम क्षेत्र बनानेका उद्देश्य अगर विफल नहीं तो सङ्कटापन्न अवश्य हो जायगा। दूसरा विचार, भारतका अधिकसे अधिक भाग मुस्लिम क्षेत्रमें, अगर उसमें मुसलमानोंका बहुमत होता हो तो, ले लेनेके पक्षमें था, चाहे वह बहुमत थोड़ा ही क्यों न हो। विदेश-उपसमितिद्वारा नियुक्त समितिका उद्देश्य और बातोंके साथ इन परस्पर विरोधी विचारोंमें सामञ्जस्य स्थापित करना भी रहा होगा। लीगके वार्षिक अधिवेशनके समयतक समिति अपना कार्य पूरा नहीं कर सकी और उस समयके समितिके अध्यक्ष सर अब्दुल्ला हारूँने वह स्मरणपत्र लीगके अध्यक्षको दे दिया। लाहौर-प्रस्ताव, जो सर अब्दुल्लाके कथनानुसार स्मरण-पत्रके आधारपर तैयार किया गया था, मामूली तौरसे इस अस्पष्ट रूपमें था— 'भौगोलिक दृष्टिसे सम्बद्ध इकाइयोंको आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर इस प्रकारके सीमाबद्ध प्रदेशोंका रूप देनेका मौलिक सिद्धान्त बरता जाय जिससे सीमाप्रान्त और पूर्वी भारत जैसे मुसलमान-प्रधान क्षेत्र आपसमें मिलकर स्वतन्त्र राज बन जायँ और सम्मिलित होनेवाली इकाइयोंको स्वायत्त शासन और प्रभुसत्ता प्राप्त हो। मुस्लिम राज या राजोंमें सम्मिलित किये जानेवाले भूभागोंका विस्तार सूचित

---

* वही पृष्ठ ७५

करनेके लिए अब इकाई, प्रदेश, भूभाग, क्षेत्र आदि कई शब्दोंका प्रयोग किया जाता है। देशके वर्तमान वैधानिक तथा शासन-सम्बन्धी कागजोंमें इनमेंसे एक भी शब्द नहीं पाया जाता। जिला, तहसील, तालुका, प्रान्त आदि शब्द ही प्रयुक्त किये जाते हैं। यदि अस्पष्टता, दुर्बोधता और अनिश्चितता न लाकर स्पष्टता, बोधगम्यता और निश्चितता लाना अभिप्रेत होता तो उक्त प्रचलित और परिचित शब्दोंका प्रयोग कहीं अधिक सरल हुआ होता। कहीं यह बात तो नहीं थी कि उस समय निश्चित और स्पष्ट रूप देना उचित न समझा गया हो, क्योंकि ऐसा करनेसे स्वयं लीगमें उपर्युक्त दोनों पत्रोंका अन्तर बढ़कर सबके सामने आ जाता? बात जो भी रही हो, हमें तो सिर्फ यह देखना है कि इन शब्दोंद्वारा किस अर्थका द्योतन करना अभिप्रेत था।

दुर्बोधता और अनिश्चितताके बावजूद भी ये शब्द अपने रूपमें काफी निश्चित हैं और स्वयं लीगके अध्यक्षने प्रकारान्तरसे इसकी व्याप्तिद्वारा इन्हें निश्चित अर्थ प्रदान कर दिया है और यह प्रदत्त अर्थ अत्यधिक मुस्लिम बहुमतके साथ छोटे मुस्लिम क्षेत्रके पक्षमें और अल्प बहुमतवाले बड़े मुस्लिम क्षेत्रके विपक्षमें है।

इस विचारके समर्थनमें कुछ प्रसङ्गोंका यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। अमेरिकाकी इण्टरनेशनल न्यूजसर्विसके सम्वाददाता श्री डब्ल्यू डब्ल्यू चैपमैन के मुलाकात करनेपर श्री जिनाने कहा था 'सच्ची स्वतन्त्रता तो पाकिस्तानके द्वारा ही प्राप्त हो सकती है जिसमें पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंमें जहाँ लगभग ७५ प्रतिशत मुसलमान हैं, एक या अधिक मुस्लिम राजोंका अस्तित्व होगा।'* यदि पञ्जाबके वे जिले जिनमें गैर-मुसलमान बहुसंख्यक हैं, पृथक् कर दिये जायँ तो यह बात पश्चिमोत्तर क्षेत्रके सम्बन्धमें ठीक है जो १९४१ की जनगणनाके निम्नलिखित अङ्कोंसे स्पष्ट है—

---

* जमीलुद्दीनद्वारा संगृहीत और सम्पादित 'सम रीसेण्ट स्पीचेज़ ऐण्ड राइटिंग्स आव मि० जिना', तीसरा संस्करण (१९४३), पृष्ठ ३६६

क्षेत्र	कुल आबादी (हजारमें)	मुसलमान (हजारमें)	गैर-मुसलमान (हजारमें)
पश्चिमोत्तर सीमान्त	३०,३८	२७,८८	२,४९
सिन्ध	४५,३५	३२,०८	१३,२७
ब्रिटिश बिलोचिस्तान	५,०२	४,३९	६३
पञ्जाब (गैर-मुस्लिम जिले छोड़कर)	१,६८,७१	१,२३,६४	४५,०७
जोड़	२,४९,४६	१,८७,९९	६१,४६

इस प्रकार आबादीके हिसाबसे मुसलमानोंकी संख्या ७५·३० प्रतिशत और गैर-मुसलमानोंकी २४·७० प्रतिशत होती है। दूसरी ओर यदि पृथक् किये गये गैर-मुस्लिम जिलोंको सम्मिलित कर सारे पञ्जाब प्रान्तकी आबादी ली जाय तो स्थिति यह होगी—

	कुल आबादी (हजारमें)	मुसलमान (हजारमें)
ऊपरका कुल जोड़	२,४९,४६	१,८७,९९
छोड़े हुए भागकी आबादी	१,१५,४८	३८,५४
कुल जोड़	३,६४,९४	२,२६,५३

इस हिसाबसे मुसलमानोंकी संख्या ६२ प्रतिशत ठहरती है। १९३१ को जन गणनाके अनुसार पञ्जाब, सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमान्त और ब्रिटिश बिलो-चिस्तान—इन सभी प्रान्तोंकी आबादीका योग ३,०३,५६,५०६ था जिसमें १,८७,९५,८७२ या ६१·९ प्रतिशत मुसलमान थे। इसलिए श्री चैपमैनको दिये गये वक्तव्यमें श्री जिनाने सम्भवतः पश्चिमोत्तर मुस्लिम क्षेत्रमें सारे पञ्जाब प्रान्तको सम्मिलित न कर केवल उस भागको सम्मिलित किया होगा जिसमें मुसलमानोंकी प्रधानता है।

एक और भी लिखित प्रमाण है जिससे इसी तथ्यकी पुष्टि होती है। श्री एम. आर. टी. ने मुस्लिम क्षेत्रोंके शेष भारतसे पृथक् किये जानेके सम्बन्धमें

'ईस्टर्न टाइम्स'में बहुत कुछ लिखा है। १९४० के मार्चमें लाहौरवाले लीगके अधिवेशनके बाद श्री एम. एच. सईदने श्री जिनाकी ओरसे माउन्ट प्लीजेंट रोड, मालाबार हिल, बम्बईसे 'इण्डियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कांस्टिट्यूशन'नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जिसकी भूमिका स्वयं श्री जिनाने लिखी। उसमें उन्होंने कहा है 'जो लोग भारतके भावी विधानकी वस्तुतः परीक्षा करना चाहते हैं उनके लिए यह संग्रह उपयोगी सिद्ध होगा। इसी उद्देश्यको सामने रखकर 'मैंने' कुछ सुविचारित मतोंको चुनकर सुविधाके विचारसे पुस्तिकाका रूप दे दिया है।' वे आगे कहते हैं 'मुझे आशा है कि यह पुस्तिका अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके लाहौर-प्रस्तावके स्पष्टीकरणमें विशेष रूपसे सहायक होगी जिसमें एक मौलिक प्रश्न उठाया गया है, और मुझे विश्वास है कि इस विशाल देशका प्रत्येक हितेच्छु इस विषयपर राग-द्वेष और भावनासे रहित होकर विचार करेगा।' पुस्तकमें सन्निविष्ट मतोंमें, जिनका चुनाव स्वयं श्री जिनाने किया था, श्री एम. आर. टी. का भी एक लेख है जो लीगके अधिवेशनके पहले ही, ५ जनवरी १९४० के 'ईस्टर्न टाइम्स' में प्रकाशित हुआ था। इस लेखमें 'रक्षा बनाम पार्थक्य' के प्रश्नपर विचार करते हुए श्री एम. आर. टी.ने लिखा है——'पश्चिमोत्तरके पाँच आसन्न क्षेत्रों——पञ्जाब, काश्मीर, सिन्ध, सीमा-प्रान्त और बिलोचिस्तान——में कुल ४ करोड़ २० लाखकी आबादीमें उनकी (मुसलमानोंकी) संख्या २ करोड़ ८० लाख है। मुस्लिम जनसंख्याका अनुपात पञ्जाबकी पूर्वी सीमापरका भाग मिलाकर और बढ़ाया जा सकता है।

'अगर अम्बाला डिवीजन और पूर्वी हिन्दू और सिख रियासतें अलग कर दी जायँ तो इसकी २ करोड़ ८५ लाखकी वर्तमान जनसंख्या घटकर २ करोड़ १० लाख हो जायगी, पर मुसलमानोंकी संख्या ५५ से बढ़कर ७० प्रतिशत हो जायगी। अगर पश्चिमोत्तरका मुस्लिम क्षेत्र पूराका पूरा ले लिया जाय तो यह संख्या और भी बढ़ जायगी। अगर पूर्वी सीमाप्रान्तका उक्त प्रस्तावके अनुसार सुधार कर दिया जाय तो पश्चिमोत्तर क्षेत्रकी सारी आबादी ३ करोड़ ५० लाख हो जायगी जसमें मुसलमान २ करोड़ ७० लाख और

गैर-मुसलमान ८० लाख होंगे। मुसलमानोंका ७७ प्रतिशत अनुपात सरकारकी दृढ़ता और स्थायित्वके लिए पर्याप्त रूपसे शक्तिशाली होगा और यह फल आबादीकी अदला-बदली किये बिना ही प्राप्त किया जा सकता है।'* इस प्रकार यह योजना जो श्री जिनाकी इस स्वीकारोक्तिके साथ प्रकाशित हुई है कि इससे लाहौर-प्रस्तावके स्पष्टीकरणमें काफी मदद मिलेगी, पञ्जाबके उस भागके अलग किये जानेके ही पक्षमें है जिसमें उनके कथनानुसार मुसलमानोंकी प्रधानता नहीं है।

एक और भी बात है जिससे इस दृष्टिकोणका प्रकारान्तरसे समर्थन होता है। मैं ऊपर उस समितिका उल्लेख कर चुका हूँ जिसे लीगकी विदेश-समितिने सर अब्दुल्ला हारूँकी अध्यक्षतामें बनायी थी। लीगके लाहौरवाले अधिवेशनके बाद भी समितिका कार्य चलता रहा और इसने पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें सम्मिलित किये जानेवाले भूभागोंके ब्योरेके साथ एक योजना तैयार भी की। समितिने इस योजनामें पूरा पञ्जाब, काश्मीर और पञ्जाबकी हिन्दू रियासतें, दिल्ली प्रान्तकी पूर्वी सीमासे कुछ आगेतक ब्रिटिश भारतका एक भाग, अलीगढ़ जिलेका कुछ भाग जिसमें अलीगढ़ मुस्लिम क्षेत्रके भीतर आ जाय और राजपूतानाकी बीकानेर और जैसलमेर रियासतें भी सम्मिलित कर लीं। यह योजना समयके पूर्व और अधिकारी व्यक्तिसे स्वीकृति लिये बिना ही १८ फरवरी, १९४१ के 'स्टेट्समैन (दिल्ली) में प्रकाशित करा दी गयी और दिल्ली-स्थित प्रान्तीय पत्रोंके सम्वाददाताओंने अपने-अपने केन्द्रोंको इसका सारांश फौरन तारद्वारा यह सूचित करते हुए भेज दिया कि लीगकी विदेश-समितिने १७ फरवरीको रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। सैय्यद अब्दुल्ला हारूँने सैय्यद अब्दुल-लतीफसे सारी योजना देखकर अपने वक्तव्यके साथ इसे भेजनेका अनुरोध किया। सैयद अब्दुल लतीफने ८ मार्च, १९४१ को इसे अपने वक्तव्यके साथ भेज दिया और अपने वक्तव्यकी एक एक प्रति श्री जिनाको भी भेज

* 'इण्डियाज प्राब्लम-आव हर फ्यूचर इन्स्टिट्यूशन' पृ० ३३-३४।

दी। मालूम होता है इससे श्री जिना नाराज हो गये और १५ मार्चको डाक्टर लतीफको लिखा—'मैं आपको स्पष्ट और आमतौरसे बतला देना चाहता हूँ कि मुस्लिम लीगने इस प्रकार कोई समिति नहीं बनायी है जिसका आप राग अलापते जा रहे हैं और इसके सिवा जैसा कि मैं कह भी चुका हूँ कि व्यक्तियों और दलोंके सुझावोंपर उचित ध्यान दिया जायगा, इन तथाकथित योजनाओंके सुझावों और प्रस्तावोंको माननेके लिए न तो लीग ही तैयार है और न मैं ही। इसलिए मैं हमेशाके लिए यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सर अब्दुल्ला या आप इस या उस समितिकी बात चलाते रहकर व्यक्तियों या दलोंद्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्तावोंके साथ लीग या उसके अधिकारिवर्गको न समेटें।'*

संक्षेपमें परिस्थिति इस प्रकार है। लीगके अध्यक्ष भी एक अन्तर्राष्ट्रीय समाचार-समितिके सम्वाददातासे यह कहते हैं कि पश्चिमोत्तर क्षेत्रके मुसलमानोंकी आबादी कुल आबादीपर ७५ प्रतिशत होगी—यह स्थिति पञ्जाबके गैर-मुस्लिम जिलोंको उक्त क्षेत्रसे अलग कर लायी जा सकती है। वे कुछ मतोंको चुनकर प्रकाशित करते हैं जिनसे 'लाहौर-प्रस्तावके स्पष्टीकरणमें काफी मदद मिलती है'। इस मत-संग्रहमें वे श्री एम. आर. टी. की योजना सम्मिलित करते हैं जिसमें पञ्जाबके पूर्वी जिलोंको अलग कर देनेका प्रस्ताव किया गया है, और उन लोगोंके मतका परित्याग कर देते हैं जिन्होंने पूरी योजना बनाकर उसे प्रकाशित किया था और कुछ देशी रियासतोंके साथ-साथ पूरा पञ्जाब और ब्रिटिश भारतका भी कुछ भाग सम्मिलित कर लिया था। जब लीगकी विदेश-समितिद्वारा लीगके प्रमुख सदस्य सर अब्दुल्ला हारूँकी अध्यक्षतामें नियुक्त समिति एक योजना तैयार करती है और उसमें सारा पंजाब, अलीगढ़ तक ब्रिटिश भारतका कुछ भाग और कुछ भारतीय रियासतोंको भी सम्मिलित-कर लेती है तब श्री जिना समितिके कार्यको ही नहीं स्वयं समितिको भी माननेसे

---

* 'दि पाकिस्तान इशू', पृष्ठ १००

इनकार कर देते हैं। इस सबका अनिवार्य परिणाम यही निकलता है कि लीगके अध्यक्ष भी ऐसी योजनाके पक्षमें थे जिसमें पंजाबके पूर्वी जिले पश्चिमोत्तर क्षेत्रसे अलग रखे गये हों, और सारा पञ्जाब उसमें सम्मिलित करनेके पक्षमें नहीं था। इन बातोंपर ध्यान देते हुए यह आवश्यक जान पड़ता है कि लीग या उसके अध्यक्ष भारतके मुसलमानों और गैर-मुसलमानोंसे स्पष्ट और नपे-तुले शब्दोंमें कह दें कि ब्रिटिश भारतके कौन कौनसे जिले और प्रान्त पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें सम्मिलित करना उन्हें अभिप्रेत है। पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उन्होंने ऐसा करनेसे इनकार कर दिया और १९४४ के अप्रैलतक, जब पञ्जाबके गैर-मुसलमान मन्त्रियोंने योजनापर विचार करनेकी गरजसे तफसीलकी बातें जानने की इच्छा प्रकट की, इनकारपर ही डटे रहे। श्री राजगोपालाचारीके ऐसे शब्दों-में जो वैधानिक और शासन सम्बन्धी कागजोंमें प्रयुक्त होते हैं और इस कारण सरलतापूर्वक समझ लिये जाते हैं और उनकी स्पष्ट व्याख्या भी हो जाती है, मूर्त्त रूप देनेके बाद और महात्मा गान्धीके साथ चलनेवाली बातचीतके दौरानमें और एक पत्र-प्रतिनिधिके मिलनेके समय श्री जिना पहले पहल यह बतलानेको तैयार हुए कि लाहौर प्रस्तावमें जिन इकाइयोंको मुस्लिम क्षेत्रमें शामिल करनेका अभिप्राय निहित है वे जिले न होकर वर्तमान रूपमें प्रान्त हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें सारा पञ्जाब सम्मिलित हो और पूर्वी क्षेत्रमें पूरा-पूरा बंगाल और आसाम। पर हम देख चुके है कि किस प्रकार अध्यक्षके अपने ही कार्योंद्वारा सारा पञ्जाब सम्मिलित करनेके विचारका खण्डन होता है।

अब पूर्वी क्षेत्रके सम्बन्धमें देखें कि स्थिति क्या है। बंगालकी आबादी ६०,३०,६५,२५ है जिसमें मुसलमानोंकी संख्या ३,३०,०५,४३४ या ५४·७३ प्रतिशत है; आसामकी आबादी १,०२,०४,७३३ है जिसमें ३४,४२,४७९ या ३३·७३ प्रतिशत मुसलमान हैं। यदि दोनों प्रान्त सम्पूर्णतः पूर्वी क्षेत्रमें सम्मिलित कर लिये जायँ, जैसा कि लाहौर-प्रस्तावका अभिप्राय होनेका दावा किया जाता है, तो स्थिति यह होगी कि दोनों प्रान्तोंकी सम्मि-

लित जनसंख्या ७,०५,११,२५८ होगी और मुसलमानोंकी संख्या ३,६४, ४७,९१३ या ५१·६९ प्रतिशत। ऊपर उधृत श्री जिनाका श्री चैपमैनको दिया गया यह वक्तव्य कि मुसलमानोंकी संख्या लगभग ७५ प्रतिशत होगी, निश्चय ही वास्तविकतासे बहुत दूर है। यदि पूर्वी क्षेत्रसे गैर-मुस्लिम भाग पृथक् कर दिया जाय और मुस्लिम जिले सम्मिलित कर लिये जायँ तो भी मुसलमानोंकी संख्या ६८ या ६९ प्रतिशतसे अधिक न होगी। श्री एम. आर. टी.ने 'इण्डियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कन्स्टिटयूशन'में उधृत अपने लेखके २४वें पृष्ठमें कहा है "पञ्जाबकी तरह बङ्गालमें भी सीमावर्ती भागोंको घटा-बढ़ा-कर ठीक कर लेनेपर आबादीमें मुसलमानोंका अनुपात ८० प्रतिशत या इससे अधिक ही रहेगा। सम्प्रति पूर्वी बङ्गाल और पश्चिमी बङ्गालके ग्वालपारा और सिलहट जिलोंमें, जो पूर्वी बङ्गालसे मिले हुए हैं, मुस्लिम जनसंख्या बहुत अधिक, ७५ प्रतिशत है। अगर यह सारी मुस्लिम आबादी एक साथ मिलाकर पूर्वी बङ्गाल और आसामके एक नये प्रान्तके अन्तर्गत हो जाय तो ४ करोड़ की कुल आबादीमें मुसलमानोंको ८० प्रतिशतका स्थायी बहुमत प्राप्त हो जाय।" श्री एम. आर. टी.के दिये हुए ये अङ्क ठीक नहीं हैं—यह तो आगे चलकर दिखलाया जायगा, पर यहाँ जिस विषयका निर्देश करना है वह यह है कि उसकी कल्पनामें मुसलमानोंका पूर्वी क्षेत्र निर्माण करनेके लिए पूरा बङ्गाल और पूरा आसाम मिलानेकी बात नहीं है, केवल उन्हीं भागोंको लेनेकी बात कही गयी है जिनकी आबादीमें मुसलमानोंका प्राधान्य है। हारूँ-कमेटीकी सिफारिश यह थी कि 'पूर्वोत्तर क्षेत्रमें वर्तमान आसाम और बङ्गालप्रान्त (बाँकुरा और मेदिनीपुर जिले छोड़कर) तथा बिहारका पूर्णियाँ जिला, जिसकी आबादी जाति और संस्कृतिकी दृष्टिसे बङ्गालकी-सी है, सम्मिलित होंगी इस समितिने भी बङ्गालके कुछ जिलोंको छोड़ दिया था। इस प्रकार पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें सम्मिलित किये जानेवाले भूभागोंके सम्बन्धकी लीगकी बदलती हुई माँगके विषयमें जो बात कही गयी है वह पूर्वी क्षेत्रके विषयमें भी समानरूपसे लागू होती है।

३

प्रस्तावका विश्लेषण

हम देख चुके हैं कि लाहौर-प्रस्तावमें प्रयुक्त अस्पष्ट और गोल-मटोल शब्दों-से पूर्वी और पश्चिमोत्तर क्षेत्रोंमें सम्मिलित किये जानेवाले भूभागोंके सम्बन्धमें किस प्रकार भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले जाते रहे हैं। इसलिए योजनाका नपी-तुली और विस्तृत ब्योरे और स्पष्ट व्याख्याके साथ होना आवश्यक है जिसमें मुसलमान और गैर-मुसलमान दोनों समानरूपसे उसपर समझदारीके साथ उचित विचार कर सकें। पर लीगने इस तरहका ब्योरा प्रस्तुत करनेसे इनकार कर दिया है। फिर भी हमें शब्दोंका साधारण और स्वाभाविक अर्थ ग्रहण करते हुए लाहौर-प्रस्तावपर विचार करना है और यह पता लगाना है कि प्रस्तावको स्वीकार करते समय लीगका अभिप्राय और उद्देश्य क्या था। अतः प्रस्तावका विश्लेषण कर देखा जाय।

प्रस्तावके तीन भाग हैं। पहले भागमें यह बात दुहरायी गयी है कि १९३५ के भारत शासनविधानमें जो संघ-योजना रखी गयी है वह इस देशकी विचित्र स्थितिके विचारसे पूर्णतः अनुपयुक्त और अव्यवहार्य है तथा मुस्लिम भारतके लिए सर्वथा अग्राह्य है। दूसरे भागमें यह दृढ़ विचार प्रकट किया गया है कि सम्राट्-सरकारकी ओरसे १८ अक्टूबर १९३९ को वाइसरायने जो घोषणा की उसमें इस बातका आश्वासन पुनः दिये जानेपर भी कि जिस नीति और ढाँचेके आधारपर भारत शासनविधान बना है उनपर भारतके विभिन्न दलों, स्वार्थों और सम्प्रदायोंकी राय लेकर पुनः विचार किया जायगा। जबतक सारे ढाँचेपर नये सिरेसे विचार न किया जायगा तबतक मुस्लिम भारत सन्तुष्ट न होगा और मुसलमानोंकी स्वीकृति और सम्मति लिये बिना जो भी संशोधित ढाँचा तैयार किया जायगा वह मुसलमानोंको कभी ग्राह्य न होगा।

इस प्रकार ये दोनों भाग ब्रिटिश सरकारके लिए हैं और उन वैधानिक प्रस्तावोंके सम्बन्धमें लीगका मत ऐलान करते हैं जिनपर सरकार विचार कर

रही हो। सम्प्रति जिस विषयपर विचार करना है उसके सम्बन्धमें इनका महत्व सिर्फ इतना ही है कि ये तीसरे भागके लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं जिसका विषय भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंमें स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंके निर्माणका प्रश्न है।

तीसरे भागके पहले खण्डमें लीगका यह सुविचारित मत व्यक्त किया गया है कि 'ऐसा कोई भी वैधानिक ढाँचा इस देशके लिए व्यवहार्य या मुसलमानोंके लिए ग्राह्य न होगा जिसमें भौगोलिक दृष्टिसे संलग्न इकाइयोंको, आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर इस प्रकारके सीमाबद्ध प्रदेशोंका रूप देनेका मौलिक सिद्धान्त वरता गया हो जिसमें भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्र जैसे मुसलमान-प्रधान क्षेत्र आपसमें मिलकर स्वतन्त्र राज बन सकें और सम्मिलित होनेवाली इकाइयोंको स्वायत्त शासन और प्रभुसत्ता प्राप्त हो।'

दूसरे खण्डमें कहा गया है कि मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों और स्वार्थोंकी रक्षाके लिए उनकी रायसे पर्याप्त प्रभावकारी तथा आदिष्ट संरक्षणोंकी विधानमें विशेषरूपसे व्यवस्था की जाय।

तीसरे खण्डमें लीगकी कार्यसमितिको इन्हीं मौलिक सिद्धान्तोंके आधारपर एक ऐसी योजना प्रस्तुत करनेका अधिकार दिया गया है जिसमें उक्त प्रदेशोंके लिए सभी अधिकार—यथा, रक्षा, बाहरी विषय, यातायात सम्बन्ध, चुङ्गी तथा अन्य आवश्यक विषय--अन्ततः ग्रहण कर लेनेकी व्यवस्था है।

अब प्रश्न ये उठते हैं—(१) विधान कौन बनायेगा ? (२) जिस विधानका विचार किया गया है वह किस प्रकारका होगा—पुरोहिततन्त्र, लोकतन्त्र, दलतन्त्र, अधिनायकतन्त्र या और किसी प्रकारका ? (३) इन स्वतन्त्र राजोंका ब्रिटिश साम्राज्य और गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंसे क्या सम्बन्ध होगा ? (४) अल्प संख्यकोंकी रक्षा-सम्बन्धी किसी आदिष्ट संरक्षणके भङ्ग होनेकी दशामें वह संरक्षण कैसे, किसके द्वारा और किस बलके सहारे कार्यान्वित कराया जायगा ? (५) मुस्लिम राज या राजोंमें कौनसे भूभाग सम्मिलित किये जायेंगे? (६) उनके साधन और पद क्या होंगे ? (७) रक्षा, परराष्ट्र-सम्बन्ध, चुङ्गी

तथा इस प्रकारके अन्य विषय विधानके कार्यान्वित होने और अन्तमें स्वतन्त्र राजद्वारा इनके ग्रहण किये जानेके बीचकी अवधिमें किसके हाथमें होंगे।

लाहौर प्रस्ताव मनवानेके लिए श्री जिनाके हकका खयालकर मुस्लिम क्षेत्रमें सम्मिलित किये जानेवाले भूभागोंके प्रश्नके सिवा भी प्रस्तावकी व्यापकतासे सम्बन्ध रखनेवाले उक्त प्रश्नोंपर भली भाँति विचार कर लेना आवश्यक है।

(१) विधान कौन बनायेगा? प्रस्तावकी रूप-रेखा और प्रसंगसे, जिसमें नया वैधानिक ढाँचा तैयार करनेका प्रस्ताव रखा गया है, यह प्रकट होता है कि विधानकी रचना ब्रिटिश पार्लमेण्ट ही करेगी जैसे उसने १९३५ के विधानकी की थी जिसका प्रस्तावके पूर्वांशमें तिरस्कार किया गया है। भारतीयों और इस विचारसे मुसलमानोंका विधानकी रचनामें कोई हाथ न होगा, हालाँकि इसे उनके ग्रहण करने योग्य बनानेके लिए ढाँचा तैयार होनेपर उनकी स्वीकृति और सम्मति ले लेनी चाहिए। प्रस्तावके इस अंशको स्वीकार कर लेनेपर हम बहुत पीछे, यहाँतक कि क्रिप्स-प्रस्तावसे भी पीछे चले जायँगे जिसमें अपने लिए शासन-विधान स्वयं तैयार कर लेनेका भारतीयोंका अधिकार स्पष्ट-रूपसे स्वीकार किया गया था। ब्रिटिश अधिकारियोंके अन्य वक्तव्योंमें भी यह अधिकार देनेका उल्लेख है जिससे भारतके मुसलमान, हिन्दू तथा अन्य लोग लीगके प्रस्तावका यह अंश स्वीकार कर लेनेपर बञ्चित हो जायँगे।

(२) जिस विधानका विचार किया गया है वह किस प्रकारका होगा—पुरोहिततन्त्र, लोकतन्त्र, दलतन्त्र, अधिनायकतन्त्र या और किसी प्रकारका? इस विषयपर प्रस्ताव बिलकुल मौन है। लीगकी समझमें लोकतन्त्र सरकार भारतके लिए अनुकूल न होगी, लीगके अध्यक्ष कई अवसरोंपर यह मत प्रकट कर चुके हैं। श्री जिनाके भाषणों और लेखोंसे इस बातके परिचायक कुछ अवतरण यहाँ दिये जा सकते हैं—

'३$\frac{1}{2}$ करोड़ वोटरोंका खयाल करते हुए, जिनमें अधिकतर बिलकुल अज्ञान, मूर्ख और अशिक्षित, सदियों पुराने भद्दे अन्धविश्वासोंसे अभिभूत,

सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिसे परस्पर विरोधी हैं, इस विधानकी कार्य-प्रणालीसे यह बिलकुल साफ हो गया है कि भारतमें लोकतन्त्रीय पार्लमेण्टरी सरकारका चलना असम्भव है।'*

'भारतकी स्थितिके सम्बन्धमें पार्लमेण्टके सदस्य भी अभी इतने अन्धकारमें हैं कि अतीतके सारे अनुभवोंके बावजूद भी यह नहीं महसूस किया जाता कि इस प्रकारकी सरकार भारतके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इंग्लैण्ड सरीखे एक जातीय राष्ट्रकी दृष्टिसे बनी हुई लोकतन्त्र पद्धति भिन्नजातीय देशोंके लिए उपयुक्त हो ही नहीं सकती। यही मामूली बात सारी वैधानिक बुराइयोंका मूल कारण है।......पाश्चात्य लोकतन्त्र भारतके लिए नितान्त अनुपयुक्त है और भारतपर इसका लादा जाना इसके राजनीतिक शरीरके लिए रोग स्वरूप है।'†

इसलिए जिस प्रकारका राज-कायम करनेका विचार किया गया हो उसकी स्पष्ट व्याख्या कर देना आवश्यक है जिसमें लोग उसपर विचारकर निश्चय कर सकें कि उस प्रकारकी सरकार उन्हें स्वीकार होगी या नहीं। पाश्चात्य लोक-तन्त्रका साधारणतः जो रूप समझा जाता है उस रूपमें वह भारतके लिए अनुपयुक्त और मुस्लिम लीगको अग्राह्य है, फिर कौनसा दूसरा रूप या पाश्चात्य लोकतन्त्रकी रूप-कल्पनामें कौनसे संशोधन लीगको ग्राह्य होंगे—इस बातकी जानकारी मुस्लिम और गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंके अल्पसंख्यकोंके लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी बहुसंख्यकोंके लिए। पाकिस्तानके प्रमुख समर्थक लोकतन्त्र को इसलिए स्वीकार नहीं करते कि भारतकी आबादी एकजातीय नहीं है जिसमें मुसलमानोंका बहुत बड़ा अनुपात है। विभाजनके बाद भी मुस्लिम क्षेत्रोंमें

---

* 'मैंचेस्टर गार्जियन'से 'रीसेंट स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स आव मि० जिना', पृष्ठ ८६ में उद्धृत वक्तव्य।

† १९ जनवरी १९४०के 'टाइम ऐण्ड टाइड'से 'रीसेंट स्पीचेज़ ऐण्ड राइटिंग्स आव मि० जिना', पृष्ठ १११, ११३में उद्धृत लेख।

यही स्थिति बनी रहेगी क्योंकि उन क्षेत्रोंमें हिन्दुओं तथा अन्य गैर-मुसलमानोंका आबादीपर जो अनुपात होगा वह सारे भारतमें मुसलमानोंका जो अनुपात है उससे किसी भी हिसाबसे कम न होगा। ब्रिटिश भारतमें मुसलमानोंका अनुपात २६·८३ प्रतिशत है। पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें गैर-मुसलमानोंका अनुपात यदि सारा पञ्जाब मिला लिया जाय तो, ३७·९३ प्रतिशत और गैर-मुस्लिम जिले छोड़ दिये जायँ तो २४·६४ होगा। उसी प्रकार, पूर्वी क्षेत्रमें गैर-मुसलमानोंका अनुपात गैर-मुस्लिम जिलोंको सम्मिलित करनेपर ४८·३१ और पृथक् कर देनेपर ३०·५८ होगा। सङ्गति, समझदारी और न्यायके साथ ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि भारतके लिए लोकतन्त्र इसलिए अनुपयुक्त है कि मुसलमान उसमें अल्पसंख्यक हैं और स्थिति पलट जानेपर, अलग किये गये मुस्लिम क्षेत्रोंमें उनके बहुसंख्यक और गैर-मुसलमानोंके अल्पसंख्यक बन जानेपर वह उपयुक्त हो जायगा। इसलिए यह निष्कर्ष निकालना आधार-रहित न होगा कि जब लीगके अध्यक्ष यह कहते हैं कि लोकतन्त्र भारतके लिए अनुपयुक्त है तब वह अनुपयुक्त है ही और उसी तरह पाकिस्तान-के लिए भी अनुपयुक्त रहेगा, इसलिए दृष्टि विधानके किसी और रूपकी ओर है। उस विधानका स्पष्ट रूप सम्बद्ध लोगोंके सम्मुख क्यों न रखा जाय जिसमें वे लोग इसके गुण-दोषोंका विचारकर खुली आँखोंसे इसे अपना सकें।

(३) इन स्वतन्त्र राजोंका ब्रिटिश साम्राज्य और गैर-मुस्लिम राजोंसे क्या सम्बन्ध होगा? यह तो स्पष्ट है कि वे गैर-मुस्लिम राजोंसे स्वतन्त्र होंगे, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि वे ब्रिटिश साम्राज्यसे भी स्वतन्त्र होंगे। यदि उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यसे स्वतन्त्र होना है तो ब्रिटिश पार्लमेंटसे उनके या शेष भारतके लिए विधान बनानेके लिए कहने या आशा करनेका कोई अर्थ ही नहीं होगा। तीसरे भागके अन्तिम वाक्यसे पता चलता है कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी बात नहीं सोची गयी है, बीचकी कोई अवधि होगी जब रक्षा, परराष्ट्र सम्बन्ध, यातायात, चुङ्गी तथा इस प्रकारके अन्य

विषय किसी दूसरे अधिकारीके हाथमें होंगे। चूँकि लीगने ये अधिकार किसी भारतीय संस्थाके हाथमें दिये जानेके विचारको अस्वीकार कर दिया है इसलिए यही निष्कर्ष निकलता है कि वे इस बीचकी अवधिमें ब्रिटिश सरकारके ही हाथमें बने रहेंगे। प्रस्तावके तीसरे भागके उत्तरार्द्धमें आया हुआ 'अन्ततः' शब्द बिलकुल स्पष्ट कर देता है कि इन स्वतन्त्र राजोंकी आरम्भिक स्वतन्त्रता परिमित होगी। स्वतन्त्र राजोंकी स्थापना और पूर्ण अधिकार ग्रहण करनेके बीच जो समय व्यतीत होगा उसका निर्देश नहीं किया गया है। यह स्पष्ट ही परिस्थितियोंपर निर्भर होगा जिनका हिसाब लगा सकना प्रस्तावकी रूप-रेखा तैयार करते समय सम्भव नहीं समझा गया होगा। इस प्रकार आरम्भमें स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंका पद वेस्ट मिनिस्टर विधानके अनुसार सङ्कुटित सङ्घराज्यके उपनिवेशसे नीचा ही होगा। यह भी स्पष्ट नहीं है कि ये राज अगर कभी ब्रिटिश नियन्त्रणसे मुक्त होंगे भी तो कब होंगे। यहाँ जो अर्थ निकाला गया है वह निराधार नहीं है, यह बात 'अमृतबाजार पत्रिका' के ४ मार्च १९४४ के अङ्कमें प्रकाशित एक 'इण्टरव्यू' (मुलाकात) से प्रत्यक्ष हो जायगी जो श्री जिनाने लन्दनके 'न्यूज क्रानिकल'-को दी थी।

प्रश्न—'तब तो निश्चय ही गृह-युद्ध होगा। आप भारतीय अलस्टरका सर्जन करेंगे जिसपर कभी हिन्दू संयुक्त भारतके नामपर आक्रमण कर बैठेंगे।'

श्री जिना—मैं इससे सहमत नहीं हूँ, लेकिन विधानमें प्रबन्ध और व्यवस्थाके लिए जो संक्रमणकाल रखा जायगा उसमें सेना और परराष्ट्र विषयपर, ब्रिटिश अधिकारियोंका प्रभुत्व रहेगा। संक्रमणकी अवधि दोनों समुदाय और ग्रेट ब्रिटेन नये विधानके अनुसार अपनी-अपनी व्यवस्था ठीक करनेके कार्यमें जैसी प्रगति करेंगे उसपर निर्भर होगी।

प्रश्न—अगर ब्रिटेन इस बिनापर भारत छोड़नेसे इनकार कर दे कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तानका सम्बन्ध इतना अच्छा नहीं है कि वे पड़ोसियोंकी तरह रह सकें, तब क्या होगा?

श्री जिना—ऐसा हो तो सकता है, पर इसकी सम्भावना नहीं है। अगर हो तो भी कुछ अंशोंमें हम स्वशासनाधिकारका उपभोग तो कर ही सकेंगे जिससे आज हम वञ्चित हैं। पृथक् राष्ट्र और उपनिवेशके रूपमें हमारी स्थिति ब्रिटिश सरकारसे निपटने और समझौता करनेके लिए आजकी अपेक्षा अधिक अनुकूल होगी, क्योंकि जिचकी वर्तमान अवस्थामें तो हम यह भी नहीं कर सकते।

इस सिलसिलेमें यह भी ध्यान देनेकी बात है कि ऊपरके उद्धरणमें 'उपनिवेश' शब्दका जो प्रयोग किया गया है वह ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ बीचकी अवधिमें पाकिस्तानमें रक्षा और परराष्ट्र सम्बन्धके विषयोंपर ब्रिटिश सरकारका प्रभुत्व रहेगा वहाँ ब्रिटिश उपनिवेशोंमें ब्रिटिश सरकारका प्रभुत्व नहीं है और इन विषयोंमें भी उपनिवेश सरकारका ही सर्वोपरि अधिकार है। जिस प्रसङ्गमें 'स्वतन्त्र' शब्दका प्रयोग किया गया है उससे, ब्रिटिश नियन्त्रणसे पूर्णतः स्वतन्त्र होने या सम्बद्ध प्रदेशकी जनताके हाथमें सारा अधिकार सौंप देनेकी बात तो दूर रहो, औपनिवेशिक पदका भी द्योतन नहीं होता और न हो ही सकता है। यदि शेष भारत या उसका कोई भाग ब्रिटिश सरकारके नियन्त्रणसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले तो भी उसे इन भागोंमें, बहुसंख्यक मुसलमानोंके होते हुए, ब्रिटिश सरकारसे निपटना पड़ेगा। ये भूभाग स्वतन्त्र भारतमें ब्रिटिश द्वीपोंके समान होंगे। इस प्रकार जिस स्वतन्त्रताकी कल्पना की गयी है वह शेष भारतसे है, ब्रिटिश साम्राज्यसे जरा भी नहीं, कमसे कम, आरम्भिक अवस्थामें तो नहीं ही।

विभाजनसे बननेवाले नये राज्योंके पदके सम्बन्धमें दिये गये श्री जिनाके एक दूसरे वक्तव्यका भी कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। १ अप्रैल १९४० को, लाहौर-प्रस्तावके बाद शीघ्र ही प्रेसको दिये गये एक वक्तव्यमें ग्रेट ब्रिटेनके साथ मुसलमानोंके स्वदेशके सम्बन्धके विषयमें लाहौर-प्रस्तावका हवाला देते हुए श्री जिनाने कहा था 'शेष भारतमें जो क्षेत्र बनेंगे उनके साथ हमारा सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय ढङ्गका होगा। भारतके साथ बर्मा और लङ्काका सम्बन्ध पहलेसे ही

उदाहरणके रूपमें मौजूद है ।'* इससे स्पष्ट है कि पाकिस्तानको ही नहीं, हिन्दुस्तानको भी ब्रिटिश साम्राज्यका अङ्ग और उसी पदका उपभोक्ता बनाये रखनेका विचार किया गया है जो भारत, बर्मा और लङ्काका ब्रिटिश सरकारके और आपसके सम्बन्धके विचारसे आज है ।

फिर, श्री जिनाने उक्त 'इण्टरव्यू' में जहाँ सिर्फ सेना और परराष्ट्र सम्बन्धका हवाला दिया है वहाँ प्रस्तावमें 'यातायात, चुङ्गी और अन्य आवश्यक विषयों' का भी उल्लेख है । शेष भारतको किसी भी विषयमें किसी प्रकारका अधिकार न होगा और मुस्लिम क्षेत्र भी बीचकी अवधिमें इन विषयोंका अधिकार ग्रहण नहीं करेगा । इसका एक ही परिणाम सम्भव हो सकता है और वह यह कि 'यातायात, चुङ्गी और अन्य आवश्यक विषयोंके सम्बन्धमें भी ब्रिटिशसत्ता ही सर्वोपरि बनी रहेगी । ये विषय बहुत बड़ा क्षेत्र घेर लेंगे और यह भी खयालके बाहरकी बात नहीं है कि कुछ विषयोंमें मुस्लिम क्षेत्रोंके अधिकार १९३५ के शासन-विधानके अन्तर्गत मिले प्रान्तीय सरकारोंके अधिकारोंसे भी कम होंगे ।

कहा गया है कि स्वतन्त्र मुस्लिम क्षेत्र शेष भारतसे वैसी ही सन्धि करेगा जैसी दो स्वतन्त्र राजोंमें होती है । यदि मुस्लिम क्षेत्रोंमें परराष्ट्र सम्बन्धपर ब्रिटिश प्रभुत्व बना रहा तो ऐसे क्षेत्रोंकी सरकार शेष भारतके साथ कैसे सन्धि कर सकेगी ? इसलिए यदि कोई सन्धि हो भी तो वह शेष भारत और ब्रिटिश सरकारके अधीन और आज्ञानुवर्ती मुस्लिम क्षेत्रोंके बीच ठीक वैसी हो जैसी वर्तमान भारत सरकार और अफगानिस्तान जैसे स्वतन्त्र राजके बीच हो सकती है ।

(४) अल्पसंख्यकोंकी रक्षाके सम्बन्धमें आदिष्ट संरक्षणोंका पालन न किये जानेकी दशामें वे कैसे, किसके द्वारा, किस बलके सहारे कार्यान्वित कराये जायँगे ?

इस विषयके सम्बन्धमें मुस्लिम लीगका प्रस्ताव बिलकुल मौन है । चूँकि दोनों—मुस्लिम और गैर-मुस्लिम राष्ट्र एक दूसरेसे स्वतन्त्र होंगे इसलिए ऐसी कोई सामान्य केन्द्रीय सत्ता नहीं देख पड़ती जो किसी कानूनी या शासनकी

---

* 'इण्डियन प्राब्लम आव हर फ्यूचर कांस्टिट्यूशन', पृष्ठ ३१

प्रक्रियाद्वारा इन आदिष्ट संरक्षणोंको कार्यान्वित करा सके। इनका उल्लङ्घन एक राष्ट्रका दूसरे राष्ट्रके विरुद्ध शत्रुवत् कार्य समझा जायगा और मेलसे काम न चलनेपर दौत्य-प्रणालियों या अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायतद्वारा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े तै करानेके तरीकेसे निपटारा कराना पड़ेगा। क्या किसी राष्ट्रके अल्पसंख्यकोंके लिए दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्रमें रहनेवाले सहराष्ट्रियोंको इस तरहके झगड़ोंमें सहायताके लिए आह्वान कर सकना सम्भव या किसी प्रकार आसान है? भारतमें जो मुस्लिम राज बनाये जायँगे, संसारमें सिर्फ वे ही मुस्लिम राज न होंगे। भारतके पास-पड़ोसमें ही और भी मुस्लिम राज हैं। क्या भारतके अल्पसंख्यक मुसलमानोंके लिए गैर-मुसलमानोंके अनाचार और उत्पीड़नके विरुद्ध सहायताके लिए इन मुस्लिम राजोंको आह्वान करना कभी सम्भव हुआ है? यदि कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलोंद्वारा मुसलमानोंके साथ अनाचार और उत्पीड़नकी कहानीमें कोई सचाई हो और उससे नये मुस्लिम राज कायम करनेका औचित्य सिद्ध होता हो तो यह वर्तमान मुस्लिम राजोंके, अगर हस्तक्षेप नहीं तो दौत्य-प्रणालीके द्वारा विरोध प्रकट करनेका उचित कारण हुआ होता, विशेषकर उस हालतमें जबकि मुसलमान चाहे जहाँ रहते हों और अन्य कोई बात भले ही न हो पर सिर्फ धर्मके आधारपर वे सभी एक राष्ट्रके हैं। क्या भारतके अल्पसंख्यक मुसलमानोंने इस प्रकारकी सहायताके लिए कभी प्रयत्न किया है? चूँकि इन स्वतन्त्र राजोंके बीच ऐसी कोई चीज नहीं होगी जो दोनोंके लिए सामान्य हो इसलिए अगर पाकिस्तानमें अल्पसंख्यक गैरमुसलमानोंका उत्पीड़न हो तो 'हिन्दुस्तानके लिए हस्तक्षेप कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा; उसी प्रकार हिन्दुस्तानके अल्पसंख्यक मुसलमानोंका उत्पीड़न होनेपर उनके पक्षमें पाकिस्तानका हस्तक्षेप कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा।

इस स्थलपर यूरोपके अल्पसंख्यकोंके सम्बन्धमें प्राप्त अनुभवका उल्लेख कर देना अप्रासङ्गिक न होगा, जिन्हें अल्पसंख्यक जातिकी सन्धियोंके अनुसार मिले अधिकारोंके संरक्षणके लिए राष्ट्रसङ्घका आश्वासन था। 'नये और पुराने दोनों प्रकारके राजोंमें कुछ प्रशंसनीय अपवाद पाये गये हैं, पर साधारणतः

अल्पसंख्यकोंके भाग्यमें कष्ट ही बदा था। प्रायः प्रत्येक राजने अल्पसंख्यक जातिको सन्धियोंको भङ्ग किया है और इसके फलस्वरूप प्रत्येक अल्पसंख्यक जातिको कष्ट सहन करना पड़ा है। और वे दुष्कृत्य हर तरहसे निडर होकर किये गये हैं।·········इन गुणोंके होते हुए भी इस बातसे इनकार करना असम्भव है कि सङ्घका आश्वासन अल्पसंख्यकोंके लिए डूबतेको तिनकेका सहारा ही हुआ है। जिन मामलोंमें सङ्घके प्रति हस्तक्षेपके लिए आह्वान कुछ प्रभावकर हुआ है उनकी संख्या अत्यल्प है और उनमें भी अल्पसंख्यक जातिके प्रति न्याय करानेका संकल्प नहीं बल्कि और ही विचार कारण थे।'*

पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके स्वतन्त्र राजोंके अल्पसंख्यकोंके साथ उचित बर्ताव कैसे हो सकेगा, इसके लिए यह सुझाया गया है कि हिन्दू भारत और मुस्लिम राज-दोनोंमें ही अल्पसंख्यकोंका अस्तित्व होगा, इसलिए दोनोंके लिए कोई सामान्य कार्यविधि अपनाना और अल्पसंख्यकोंमें विश्वास उत्पन्न करना सम्भव हो सकेगा जिससे अन्ततः वे अपनी स्थितिके साथ सामञ्जस्य स्थापित कर लेंगे।'† भारतका विभाजन होनेपर अल्पसंख्यकोंमें अपनेको सुरक्षित समझनेका भाव उत्पन्न करने और उनका विश्वास प्राप्त करनेका बहुत बड़ा दायित्व उन क्षेत्रोंके बहुसंख्यकोंपर आ जायगा।' ‡ अल्पसंख्यकोंके प्रति बहुसंख्यकोंमें दायित्वका भाव उत्पन्न करने या अल्पसंख्यकोंका विश्वास प्राप्त करनेके लिए पार्थक्य आवश्यक नहीं है; दायित्वके भावकी वृद्धिके लिए तो वस्तुतः एकताका ही वातावरण अधिक अनुकूल होता है। विभाजन हो या न हो, यह भाव लाया जा सकता है और लाना चाहिए भी। ऊपरके उद्धरणमें वस्तुतः शुद्ध भाव उतना नहीं है जितना एक राजके बहुसंख्यकका दूसरे राजके बहुसंख्यक-

---

* सी० बी० मेकार्टनी—'नेशनल स्टेट्स ऐण्ड नेशनल माइनारिटीज' तीसरा संस्करण, पृ० ३९०।

† एम० आर० टी०—'इण्डियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कान्स्टिट्यूशन', पृष्ठ ४१।

‡ वही—श्री जिना, पृष्ठ १०।

पर होनेवाली प्रतिक्रियाका भय है। यह भय दो कारणोंसे उत्पन्न हो सकता है। एक कारण तो यह है कि दूसरे स्वतन्त्र राजकी ओरसे सक्रिय ऐसी श्रेयकी आशङ्कासे अच्छा बर्ताव किया जाय; पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस प्रकारके हस्तक्षेपकी बहुत कम सम्भावना रहती है। दूसरा यह हो सकता है कि एकके अल्पसंख्यक जातिके प्रति बुरा बर्ताव करनेपर दूसरा स्वतन्त्र राज भी अपने अल्पसंख्यकोंके प्रति वैसा ही बर्ताव कर सकता है। दूसरे शब्दोंमें, अल्पसंख्यक अपनी सरकारके हाथमें इसलिए प्रतिभूकी स्थितिमें रहेंगे कि दूसरी सरकार भी अपने अल्पसंख्यकोंके साथ अच्छा बर्ताव करे। कोई राज अपने प्रजाजनोंके साथ, जिन्होंने कोई बुराई नहीं की है और जो भले नागरिकोंकी तरह आचरण करते हैं, इसलिए बुराई करनेको उद्यत होगा कि किसी अन्य सरकारने, जिससे कोई सम्बन्ध नहीं है, दुर्व्यवहार किया है, यह विचार ही न्यायकी भावनाके लिए इतना उद्वेगजनक है कि पाकिस्तान या हिन्दुस्तान दूसरी स्वतन्त्र सरकारके कार्यके लिए अपने ही प्रजाजनोंके विरुद्ध बदलेकी कारखाई करेगा, इसका खयाल भी नहीं किया जा सकता। यदि कांग्रेसके अत्याचारकी कथाका वस्तुतः कोई आधार होता तो मुस्लिम प्रान्तोंके मुस्लिम मन्त्रिमण्डलोंने अपने प्रान्तोंमें अवश्य ही बदला लिया होता, क्योंकि भारत-शासन-विधानके अन्तर्गत सभी मन्त्रिमण्डलोंको समान अधिकार प्राप्त थे, और विधानके अन्तर्गत यदि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल मुसलमानोंका उत्पीड़न कर सकते थे तो मुस्लिम मन्त्रिमण्डल भी उन्हीं अधिकारोंका उपयोग कर अपने अधीनस्थ अल्पसंख्यक हिन्दुओंका उत्पीड़न कर सकते थे। कमसे कम उन्होंने गवर्नरके द्वारा मुस्लिम अल्पसंख्यकोंकी रक्षा करनेके लिए केन्द्रीय सरकारपर तो अपने अधिकारका प्रयोग करनेके लिए दबाव डाला ही होता। पर मुस्लिम मन्त्रिमण्डलोंने बदलनेके विचारसे कुछ किया हो या विशेषाधिकारके प्रयोगके लिए गवर्नरसे अनुरोध किया हो, ऐसी कोई बात नहीं नजर आयी। ऐसी बात नहीं है कि गैर-मुसलमानोंको मुस्लिम मन्त्रिमण्डलोंके खिलाफ कोई शिकायत न रही हो। उनकी शिकायतें सङ्गीन थीं और व्यवस्थापिका सभाओं

तथा पत्रोंमें प्रकट भी की गयी थी ; पर कभी किसीने यह नहीं कहा कि ये कार्य अन्य प्रान्तोंमें अल्पसंख्यक मुसलमानोंकी रक्षाके लिए प्रतिशोध-स्वरूप किये गये हैं। दर-असल बात तो यह थी कि उत्पीड़न सम्बन्धी आरोपोंका कोई उचित आधार नहीं था या, कमसे कम वे इतने गम्भीर नहीं थे कि मुस्लिम मन्त्रिमण्डल उनके लिए कोई कारवाई करनेको तैयार होते, हालाँ कि भारतके विभाजनकी जो माँग की जा रही है उसके वे एक प्रमुख कारण हो रहे हैं। भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंमें, जहाँ 'अत्याचार और उत्पीड़न' के सारे कालमें मुस्लिम मन्त्रिमण्डल कार्य करते रहे हैं, स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंकी स्थापना हो जानेपर स्थिति सुधर कैसे जायगी ? अगर कुछ होगा भी तो यही कि शेष भारतसे उनका विच्छेद इस विषयमें उनके लिए साधक न होकर बाधक ही विशेष होगा। पार्थक्यकी माँगके मूलमें एकमात्र यही आशङ्का है कि भारतके एक रहनेपर बहुसंख्यक हिन्दू अल्पसंख्यक मुसलमानोंका दमन और उत्पीड़न करेंगे। जब भारतकी आबादीमें मुसलमानोंका इतना अधिक अनुपात होनेपर बहुसंख्यक हिन्दू ऐसा कर सकते हैं तब हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंका समुदाय और छोटा और फलस्वरूप अन्यायी बहुसंख्यकको अच्छा बर्ताव करनेके लिए बाध्य कर सकनेमें कम समर्थ होनेपर वे अच्छा बर्ताव करेंगे, ऐसी आशा करनेका कोई युक्तियुक्त कारण नहीं देख पड़ता। अधिकांश स्थितियोंमें अन्य स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंका हस्तक्षेप असम्भव या, कमसे कम कठिन होनेके कारण स्वतन्त्र राजके विधानमें रखे गये संरक्षणोंका उसी अंशमें पालन होगा जिस अंशमें बहुसंख्यक जातिको उनका आदर करनेकी इच्छा होगी या अल्पसंख्यक जाति पालन करा सकनेकी स्थितिमें होगी। वादका आधार यह है कि बहुसंख्यक हिन्दू समुदायसे न्याय और औचित्यकी आशा नहीं की जा सकती, पर हिन्दुस्तानके अल्पसंख्यक मुसलमान तो अच्छा बर्ताव करनेके लिए बाध्य करनेकी दृष्टिसे आजसे और कमज़ोर ही होंगे। सरक्षणोंका स्वरूप आकृष्ट होते हुए भी स्वतन्त्र राज, यदि वे वस्तुतः स्वतन्त्र हों तो, उनमें परिवर्तन तो कर ही सकते हैं; यदि वे विधानमें बने भी रहें तो वे उप-

युक्त कारणोंसे मृगमरीचिका ही सिद्ध होंगे और अल्पसंख्यकोंकी रक्षामें सहायक न हो सकेंगे, जैसा कि राष्ट्रसङ्घका आश्वासन होते हुए भी अल्पसंख्यक जाति सम्बन्धी अधिकारोंके पालनके सम्बन्धमें प्राप्त उपर्युक्त अनुभवसे प्रकट होता है।

नीचेके चक्रमें ब्रिटिश भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें बसनेवाले सम्प्रदायोंकी आबादी सन् १९४१ की जनगणनाके अनुसार दी जा रही है; इसका अध्ययन देशके विभाजनका दावा समझनेमें विशेष उपयोगी होगाः—

सम्प्रदायोंकी आबादी प्रतिशत अनुपातके साथ (लाखमें)।

प्रान्त	कुल आबादी	हिन्दू (हरिजनोंको छोड़कर)	हिन्दू (हरिजन)	कुल हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	आदिम जातियाँ	अन्य
मद्रास	४९३.४२	३४७.३१	८०.६८	४२७.९९	३८.९७	२०.४६	०.०४	५.६२	०.३६
		७०.४	१६.३	८६.७	७.९	४.१	०.०	१.१	
बम्बई	२०८.५०	१४७.००	१८.५५	१६५.५५	१९.२०	३.७५	०.८	१६.१४	३.७६
		७०.५	८.९	७९.४	९.२	१.८	०.०४	७.७	
बंगाल	६०३.०७	१७६.८०	७३.७९	२५०.५९	३३०.०५	१.६६	०.१६	१८.८९	१.७०
		२९.३	१२.२	४१.५	५४.७	०.२८	०.०३	३.१	
संयुक्तप्रान्त	५५०.२१	३४०.९५	११७.१७	४५८.१२	८४.१६	१.६०	२.३२	२.८९	१.११
		६२.०	२१.१	८३.२	१५.३	०.२९	०.४२	०.५३	
पञ्जाब	२८४.१९	६३.०२	१२.४९	७५.५१	१६२.१७	५.०५	३७.५७	—	३.८९
		२२.१	४.४	२६.५	५७.०	१.७	१३.२		
बिहार	३६३.४०	२२१.७४	४३.४०	२६५.१४	४७.१६	०.३३	०.१३	५०.५६	०.०६
		६१.०	११.९	७२.९	१२.९	०.१०	०.०४	१३.९	
मध्यप्रदेश और बरार	१६८.१४	९८.८१	३०.५१	१२९.३२	७.८४	०.५८	०.१५	२९.३७	०.८७
		५८.८	१८.१	७६.९	४.६	०.३५	०.०९	१७.४	
आसाम	१०२.०५	३५.३७	६.७६	४२.१३	३४.४२	०.४१	०.०३	२४.८५	०.२०
		३४.६	६.६	४१.२	३३.७	०.४०	०.०३	२४.३	

पश्चिमोत्तर सीमान्त	३०.३८	१.८०	—	१.८०	२७.८९	०.११	०.५८	—	०.००१
		५.९		५.९	९१.७	०.३६	१.९		
उड़ीसा	८७.२९	५५.९५	१२.३९	६८.३४	१.४६	०.२८	०.०२	१७.२१	०.००६
		६४.१	१४.१	७८.२	१.६	०.३२	०.००	१९.७	
सन्ध	४५.३५	१०.३८	१.९२	१२.३०	३२.०८	०.२०	०.३१	०.३७	०.०१
		२२.९	४.२	२७.१	७०.७	०.४५	०.६८	०.८१	
अजमेरमेरवाड़ा	५.८४	३.७६	—	३.७६	०.९०	०.०६	०.००९	०.९१	०.१९
		६४.५		६४.५	१५.४	० ९९	०.१५	१५.६	
अन्दमान और निकोबार	०.३४	०.०८	—	०.०८	०.०८	०.०३	०.००७	०.११	०.०३
		२४.९		२४.९	२३.७	७.७	२.२	३२.८	
बिलोचिस्तान	५.०२	०.४०	०.०५	०.४५	४.३९	०.०६	०.१२	—	०.००१
		७.९	०.९	८.८	८७ ५	१.२	२.३		
कुर्ग	१.६९	१.०५	.२६	१.३१	०.१५	०.०३	—	०.२०	—
		६२.१	१५.३	७७.४	८.७	२.०		११.६	
दिल्ली	९.१८	४.४५	१.२३	५.६८	३.०५	०.१७	०.१६	—	०.१५
		४८.४	१३.४	६१ ७	३३.२	१.९	१.७		
पंथपिपलोदा	०.०५२	० ०३७	०.००९	०.९५	०.००३	०.००२	—	०.०००१२	०.००१
		७१.२	१७ ३	८९.७	४.७	४.१		०.२२	
योग	२९५८.००	१५०८.९०	२९९.२०	१९०८.१२	७९३.९०	३४.८२	४१.६०	१६७.१०	१२.४०
		५१.०	१३.५	६४.५	२६.८	१.१९	१.४१	५.६५	०.४२

४

मुस्लिम राजका सीमा-निर्धारण

(५) कौन कौनसे भूभाग मुस्लिम राज या राजोंमें सम्मिलित किये जायँगे ?

इन भूभागोंका स्पष्टीकरण या सीमानिर्धारण न तो प्रस्तावमें दिया गया है और न लीगके किसी अन्य अधिकारीने ही किया है। लेकिन प्रस्तावमें यह भी लघु सिद्धान्त रखा गया है कि 'भौगोलिक दृष्टिसे संलग्न इकाइयोंको आवश्यकतानुसार घटा बढ़ाकर, इस प्रकार सीमाबद्ध प्रदेशोंका रूप दिया जाय जिसमें भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी भाग जैसे मुसलमान-प्रधान क्षेत्र आपसमें मिलकर 'स्वतन्त्र राज' बन सकें और सम्मिलित होनेवाली इकाइयोंको स्वायत्त शासन और प्रभुसत्ता प्राप्त हो। कौनसी इकाई सम्मिलित की जायगी इसकी जाँच इन बातोंसे होगी—(१) क्या वह इकाई भौगोलिक दृष्टिसे मुस्लिम राजमें सम्मिलित की जानेवाली दूसरी इकाईसे संलग्न है ? (२) क्या उस इकाईमें संख्याके विचारसे मुसलमानोंका प्राधान्य है ? (३) पहली दो बातोंको पूरा करनेके लिए क्या क्षेत्रका घटाया-बढ़ाया जाना आवश्यक है ? इसके अलावा, क्षेत्रके अन्दरकी प्रत्येक इकाई स्वशासित और प्रभुसत्ता-सम्पन्न होगी।

मुस्लिम लीगके अध्यक्षने अधिकार पूर्वक कहा है कि लाहौर-प्रस्तावका देशी रियासतोंसे कोई वास्ता नहीं है। श्री जिनाने देशी रियासतोंके सम्बन्धमें कहा है 'जिन महत्वकी रियासतोंका सवाल है वे पूर्वी क्षेत्रमें न होकर पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें पड़ती हैं। वे काश्मीर, बहावलपुर, पटियाला आदि हैं। अगर ये रियासतें स्वेच्छापूर्वक मुस्लिम क्षेत्रोंके सङ्घमें सम्मिलित होना चाहें तो हम खुशीके साथ उनसे उचित और सम्मानजनक समझौता करनेके लिए तैयार हैं। हम किसी तरह बाधित करना या दबाव डालना नहीं चाहते।'*

* 'इण्डियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कान्स्टिट्यूशन' पृष्ट ३०में प्रकाशित १ अप्रैल १९४० को प्रेसको दिया गया वक्तव्य।

१९४४ के सितम्बरमें अपनी बातचीतके दौरानमें जब महात्मा गान्धीजीने यह जानना चाहा कि मूल प्रस्तावकी ही तरह पाकिस्तानमें काश्मीर सम्मिलित है या नहीं, तब श्री जिनाने कहा कि पाकिस्तानसे केवल चार प्रान्तों—सिन्ध, बिलोचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमान्त और पञ्जाबका बोध होता है। इसलिए मुस्लिम क्षेत्रोंका सीमा-निर्धारण करते समय देशी रियासतोंके सम्बन्धमें हमें विचार नहीं करना पड़ा है।

मुस्लिम क्षेत्रमें सम्मिलित किये जानेवाले भूभागोंके सम्बन्धका वाक्य कुछ उलझा हुआ है और जो भाग सम्मिलित किये जायँगे उनके लिए प्रयुक्त शब्द भी अनेक तो हैं ही, वे ब्रिटिश सरकारके कागजोंमें प्रयुक्त होनेवाली वैधानिक और शासन-सम्बन्धी भाषामें देख भी नहीं पड़ते। उसमें इकाई, क्षेत्र, प्रदेश आदि शब्द प्रयुक्त किये गये हैं जिनमेंसे कोई भी प्रचलित वैधानिक या शासन-सम्बन्धी साहित्यमें नहीं देख पड़ता। प्रान्त, जिला, तहसील, ताल्लुका, थाना आदि शब्द ही प्रचलित हैं। यदि प्रस्ताव बनानेवालोंने उन्हें ठीक-ठीक समझा था, यदि वे उन्हें हिन्दू-मुसलमान दोनोंके लिए समानतः और साथ ही ब्रिटिश सरकारके लिए भी इसे स्पष्ट करना अभिप्रेत था तो इन शब्दोंके प्रयोगद्वारा सरलतासे अर्थ व्यक्त किया जा सकता था। सन्दिग्ध भाषाका प्रयोग तथा प्रस्तावका ब्योरा बतलाने और इसकी व्यापकता स्पष्ट करनेकी अनिच्छाका परिणाम बुरा ही हुआ है। इन बातोंने लोगोंको योजनापर ध्यान केन्द्रित करनेसे रोककर तरह-तरहके मनमाने अर्थ ही लगानेको नहीं बाध्य किया है बल्कि बहुतसे लोगोंके मनमें सन्देह उत्पन्न कर दिया है जिससे वे लोग इस तरहके बहुतसे प्रश्न करने लगे हैं—इस तरहकी सन्दिग्ध भाषाका प्रयोग क्यों किया गया? क्या इसका उद्देश्य विभाजनके समर्थकोंका आपसका मतभेद अनिर्णीत छोड़ देना था जिनमें एक पक्ष तो पश्चिमोत्तर और पूर्वी भारतमें बहुत अधिक नहीं तो बड़े बहुमतके साथ एकजातीय मुस्लिम राज आग्रह कर रहा था और दूसरा अगर देशका अधिक भाग स्वतन्त्र मुस्लिम राजके अन्दर आना हो तो अत्यल्प नहीं तो थोड़ेसे मुस्लिम बहुमतसे भी सन्तुष्ट था? अथवा

सर्वसाधारणकी नजरोंमें आने और टीका-टिप्पणीके भयसे सारी योजना प्रकट करना ठीक नहीं समझा गया ? कौनसा भूभाग सम्मिलित होगा और कौन पृथक् किया जायगा, यह स्पष्ट करनेमें क्यों टाल-मटोल की गयी ? कहीं यह तो नहीं कि यह चीज इसलिए गोलमटोल छोड़ दी गयी है जिसमें मौका देखकर जो सबसे अच्छा और ठीक जान पड़ेगा वह पेश कर दिया जायगा ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि गैर-मुसलमानोंद्वारा विभाजनका सिद्धान्त स्वीकार कर लिये जानेपर सीमानिर्धारणके समय यदि उनकी ओरसे कोई आपत्ति हो तो बदनीयतीका दोषारोप करनेका भय दिखलाकर लीग उनसे मनमाने भूभागकी माँग मंजूर कराना चाहेगी ? प्रचलित शब्दोंको छोड़कर इस तरहकी अस्पष्ट भाषाका प्रयोग करनेका चाहे जो भी अभिप्राय या उद्देश्य रहा हो, पर प्रयत्न सफल नहीं हो सका है। यदि स्पष्ट वाक्य-रचना हो तो सारे प्रस्तावसे एक ही अर्थका ग्रहण होगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, ऐसा कोई भूभाग, जिसमें मुसलमानोंका संख्याकी दृष्टिसे प्राधान्य न होगा, मुस्लिम राजमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता ; इसके अलावा वह भूभाग ऐसे भूभागसे मिला हो जिसमें उसी प्रकारका मुसलमानोंका बहुमत हो।

पश्चिमोत्तर क्षेत्र

जाँचकी इन शर्तोंका प्रयोग कर देखा जाय कि कौनसे भूभाग पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंमें सम्मिलित किये जा सकते हैं जहाँ स्वतन्त्र मुस्लिम राज बननेवाले हैं। इसके लिए जिलोंके साथ प्रत्येक प्रान्तपर विचार करना होगा।

१९४१ की गणनाके अनुसार जनसंख्या इस प्रकार है—

सिन्ध

जिले	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	भारतीय ईसाई	आदिम जातियाँ	अन्य
दादू	७,३७०	३,८९,३८०	५८३७२	३,२९,९९१	७४	१५४	७८९
			१४'९९	८४'७४		०'२६	
हैदराबाद	४,४७६	७,५८,७४८	२,४५,८४९	५,०७,६२०	४९०	७६९	४,०२०
			३२'४०	६६'९०		०'६९	
करांची	८,३५७	७,१३,९००	२,२२,५९७	४,५७,०३५	११,३१०	८८४	२२,०७४
			३१'१८	६४'००		४'८०	
लारकाना	२,८५७	५,११,२०८	९१,०६२	४,१८,५४३	४९		१,५५४
			१७'८१	८१'८५		०'३१	
नवाबशाह	३,९०६	५,८४,१७८	१,४०,४२८	४,३६,४९४	२१२	१३२६	५,७९८
			२४'०४	७४'७२		१'२५	
सक्खर	५,४५०	६,९२,५५६	१,९४,४५८	४,९१,६३४	२७७	५१	५१३६
			२८'२२	७०'९८		०'७८	
थारपरकर	१३,६४९	५,८१,००४	२,४७,४९६	२,९२,०२५	८००	३३,६३५	७,०४८
			४२'५८	५०'२६		७'१४	
अपर सिन्ध सीमान्त	१,९६९	३,०४,०३४	२८,६६४	२,७५,०६३	२०		२८७
			९'४३	९०'४७		०'१०	
जोड़	४८,१३६	४५,३५,००८	१२,२९,९२६	३२,०८,३२५	१३,२३२	३६,८१९	४६,७०६
			२७'१२	७०'७५		२'१३	

ऊपरके अङ्कोंमें 'अन्य' शीर्षकके अन्तर्गत सिख, ३१,०११ या ०·६८ प्रतिशत हैं, ईसाई (भारतीय ईसाइयोंसे भिन्न) ६,९७७, जैन ३,६८७, पारसी ३,८३८, बौद्ध १११ और यहूदी १,०८२—कुल ४६,७०६ हैं जो जिलेवार नहीं दिये गये हैं।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त

जिले	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	भारतीय ईसाई	अन्य
हजारा	३,०००	७,९६,२३०	३०,२६७	७,५६,००४	३१४	९,६४५
			३·८०	९४·९४	१·२५	
मरदान	१,०९८	५,०६,५३९	१०,६७७	४,८३,५७५	३७६	११,९११
			२·१०	९५·४६	२·४२	
पेशावर	१,५४७	८,५१,८३३	५१,२१२	७,६९,५८९	३,३९७	२७,६३५
			६·०१	९०·३४	३·६४	
कोहात	२,७०७	२,८९,४०४	१७,५२७	२,६६,२२४	५९६	५,०५७
			६·०६	९१·९९	१·९५	
बन्नू	१,६९५	२,९५,९३०	३१,४७१	२,५७,६४८	४६७	६,३४४
			१०·६३	८७·०६	२·३०	
डेराइस्माइलखाँ	४,२१६	२,९८,१३१	३९,१६७	२,५५,७५७	२७६	२,९३१
			१३·१४	८५·७८	१·०७	
जोड़	१४,२६३	३०,३८,०६७	१,८०,३२१	२७,८८,७९७	५,४२६	६३,५२३
			५·९४	९१·७९	२·२६	

ऊपरके चक्रमें 'अन्य' शीर्षकमें ५७,९३९ या १'९१ प्रतिशत सिख, ५,४६३ ईसाई (भारतीय ईसाइयोंसे भिन्न), २५ बौद्ध, ७१ यहूदी, १ जैन, २४ पारसी—कुल ६३,५२३ सम्मिलित हैं।

बिलोचिस्तान

जिले	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	भारतीय ईसाई	अन्य
क्वेटा पिशिन	५,३१०	१,५६,२८९	२८,६२९	१,१३,२८८	२,२९६	१२,०७६
			१८.३२	७२'४८	९'१९	
लोरालाई	७,३७५	८३,६८५	३,१२९	७९,२७३	११८	१,१६५
			३'७४	९४'७३	१'५३	
झोब	१०,४७८	६१,४९९	४,२८६	५५,९८७	७८	१,१४८
			६'९७	९१'०४	१'९९	
बोलन	४०७	६,००९	९५०	४,८१२	२२	२२५
			१५'८१	८०'०८	४'११	
चगाई	१९,४२९	२९,२५०	१,२०४	२७,८६४	१	१८१
			४'१२	९५'२६	०'६२	
सिबी	११,४५७	१,६४,८९९	६,४२५	१,५७,७०६	११८	६५०
			३.८९	९५'६३	०'४६	
जोड़	५४,४५६	५,०१,६३१	४४,६२३	४,३८,९३०	२,६३३	१५,४४५
			८'८९	८७'५१	'६००	

ऊपरके चक्रमें 'अन्य' शीर्षकमें ११,९१८ या २'३८ प्रतिशत सिख, ३,३६९ ईसाई (भारतीय ईसाइयोंसे भिन्न), ७ जैन, ७५ पारसी, ४३ बौद्ध, १९ यहूदी और १४ अन्य—कुल १५,४४५ सम्मिलित हैं।

ऊपरके चक्रोंपर दृष्टिपात करनेपर ज्ञात होगा कि सिन्धके किसी भी जिलेमें गैर-मुसलमानोंका प्राधान्य नहीं है। दूसरी ओर प्रत्येक जिलेमें मुसलमानोंका प्राधान्य है उनका सबसे अधिक अनुपात अपर सिन्ध सीमान्तमें ९०'४७ प्रतिशत है और सबसे कम थारपरकरमें ५०'२६ है। सारे प्रान्तपर साम्प्रदायिक अनुपात मुसलमानोंका ७०'७५ प्रतिशत, हिन्दुओंका २७'१२ और अन्य-लोगोंका, जिनमें सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, यहूदी, आदिम जातियाँ सम्मिलित हैं, २'१३ प्रतिशत है जिसमें सिखोंका सारी आबादीपर ०'६८ है। सारा प्रान्त बिलोचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमान्त और पश्चिम पञ्जाबसे मिला हुआ है।

इसी प्रकार पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके प्रत्येक जिलेमें मुसलमानोंका प्राधान्य है—उनका सबसे अधिक अनुपात मरदान जिलेमें ९५'४६ प्रतिशत और सबसे कम ८५'७८ डेराइस्माइलखाँ जिलेमें है। सारे प्रान्तपर मुसलमानोंका अनुपात ९१'९७ प्रतिशत, हिन्दुओंका ५'९४ प्रतिशत और शेषका २'२६ प्रतिशत है जिसमें सिख भी शामिल हैं जिनका अनुपात सारे प्रान्तपर १'९१ प्रतिशत है। यह प्रान्त बिलोचिस्तान, सिन्ध और पश्चिमी पञ्जाबसे मिला हुआ है।

बिलोचिस्तानके भी प्रत्येक जिलेमें मुसलमानोंका ही बहुमत है। उनका सबसे अधिक अनुपात सिबी जिलेमें ९५'६३ प्रतिशत और सबसे कम क्वेटा-पिशिनमें ७२'४८ प्रतिशत है। सारे प्रान्तपर मुसलमान मतोंका अनुपात ८७'५१ प्रतिशत, हिन्दुओंका ८'८९ प्रतिशत और अन्य लोगोंका ३'६० प्रतिशत है जिसमें सिख भी शामिल हैं जो सारी आबादीपर २'३८ प्रतिशत हैं। यह प्रान्त भी सिन्ध, सीमाप्रान्त और पञ्जाबसे मिला हुआ है।

इस प्रकार ये तीनों ब्रिटिश प्रान्त पश्चिमोत्तर भारतके स्वतन्त्र मुस्लिम राजमें सम्मिलित किये जानेके सम्बन्धमें मुस्लिम लीगके लाहौर प्रस्तावकी शर्तोंको पूरा करते हैं।

पञ्जाबकी स्थिति इससे भिन्न है जो नीचे दिये गये चक्रसे स्पष्ट है—
(१९४१ की जनगणना)

अम्बाला डिवीजन—

जिला या डिवीजन	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	अन्य
हिसार	५,२१३	१०,०६,७०९	६,५२,६७६	२,८५,२०८	१,२९२	६०,७३१	६,८०२
			६४·८३	२८·३३	०·१३	६·०३	०·६७
रोहतक	२,२४६	९,५६,३९९	७,८०,४७४	१,६६,५६९	१,०४३	१,४६६	६,८४७
			८१·६१	१७·४२	०·११	०·१५	०·७१
गुरगाँव	२,२३४	८,५१,४५८	५,६०,४९८	२,८५,९९२	१,६७३	६३७	२,६५८
			६५·८५	३३·५६	०·२०	०·०७	०·३१
करनाल	३,१२६	९,९४,५७५	६,६६,०३६	३,०४,३४६	१,२४९	१९,८८७	३,०५७
			६६·९७	३०·६८	०·१३	२·००	०·३०
अम्बाला	१,८५१	८,४७,७४५	४,१०,३३३	२,६८,९९९	६,०६५	१,५६,५४३	५,८०५
			४८·४०	३१·७३	०·७१	१८·४६	०·६८
शिमला	८०	३८,५७६	२९,४६६	७,०२२	९३४	१,०३२	१२२
			७६·३८	१८·२०	२·४२	२·६७	०·३२
जोड़	१४,७५०	४६,९५,४६२	३०,९९,४८३	१३,१८,१३६	१२,२५६	२,४०,२९६	२५,२९१
			६६·०१	२८·०७	०·२६	५·१२	०·५४

जालन्धर डिवीजन—

जिला या डिवीजन	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	अन्य
कॉंगड़ा	९,९७९	८,९९,३७७	८,३८,४७९	४३,२४९	७८८	४,८०९	१२,०५२
			९३'२३	४'८१	०'०९	०'५३	१'३४
होशियारपुर	२,१९५	११,७०,३२३	४,६८,२५५	३,८०,७५९	६,१६५	१,९८,१९४	१,१६,९८०
			४०'०१	३२'५३	०'५३	१६'९४	९'९९
जालन्धर	१,३३४	११,२७,१९०	१,९८,१६०	५,०९,८०४	६,२३३	२,९८,७४१	१,१४,२५२
			१७'५९	४५'२३	०'५५	२६'५०	१०'१३
लुधियाना	१,३३९	८,१८,६१५	१,६६,६७८	३,०२,४८२	१,९१३	३,४१,१७५	६,३६७
			२०'३६	३६'९५	०'२३	४१'६८	०'७८
फीरोजपुर	४,०८५	१४,२३,०७६	२,७९,२६०	६,४१,४४८	१२,६०७	४,७९,४८६	१०,२७५
			१९'६२	४५'०७	०'८९	३३'६९	०'७२
जोड़	१८,९९२	५४,३८,५८१	१९,५०,८०२	१८,७७,७४२	२७,७०६	१३,२२,४०५	२,५९,९२६
			३५'८७	३४'५३	०'५१	२४'३१	४'७८

लाहौर डिवीजन—

जिला या डिवीजन	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	अन्य
अमृतसर	१,५७२	१४,१३,८७६	२,१६,७७८	६,५७,६९५	२५,९७३	५,१०,८४५	२,५८५
			१५'३३	४६'५२	१'८४	३६'१३	०'१८
लाहौर	२,५९५	१६,९५,३७५	२,८४,३५१	१०,२७,७७२	७०,१४७	३,१०,६४६	२,४५९
			१६'७७	६०'६२	४'१४	१८'३२	०'१५
गुरदासपुर	१,८४६	११,५३,५११	२,८३,१९२	५,८९,९२३	५१,५२२	२,२१,२६१	७,६१३
			२४'५५	५१'१४	४'४७	१९'१८	०'६६
स्यालकोट	१.५७६	११,९०,४९७	२,३१,११४	७,३९,२१८	७५,८३१	१,३९,४०९	४,९२५
			१९'४१	६२'०९	६'३७	११'७१	०'४१
गुजरानवाला	२,३११	९,१२,२३४	१,०७,८८७	६,४२,७०६	६०,८२९	९९,१३९	१,६७३
			११'८३	७०'४५	६'६७	१०'८७	० १८
शिकारपुर	२,३०३	८,५२,५०८	७७,७४०	५,४२,३४४	६०,०५४	१,६०,७०६	११,६६४
			९'१२	६३'६२	७'०४	१८'८५	१'३७
जोड़	१२,२०३	७२,१८,००१	१२,०१,०६२	४१,९६,६५८	३,४४,३५६	१४,४२,००६	३०,९१९
			१६'६४	५८'१८	४'७७	१९'९८	०'४३

रावलपिण्डी डिवीजन—

जिला या डिवीजन	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	अन्य
गुजरात	२,२६६	११,०४,९५२	८४,६४३ ७·६६	९,४५,६०९ ८५·५८	४,४४९ ०·४०	७०,२३३ ६·३६	१८ ०·००
शाहपुर	४,७७०	९,९८,९२१	१,००,७०८ १०·०८	८,३५,९१८ ८३·६८	१२,७७० १·२८	४८,०४६ ४·८०	१,४७९ ०·१५
झेलम	२,७७४	६,२९,६५८	४०,८७९ ६·४९	५,६३,०३३ ८९·४२	८९३ ०·१४	२४,६८० ३·९२	१७३ ०·०२
रावलपिण्डी	२,०२२	७,८५,२३१	८२,४६३ १०·५०	६,२८,१९३ ८०·००	९,०१४ १·१५	६४,१२७ ८·१७	१,४३४ ०·१८
अटक	४,१४८	६,७५,८७५	४३,१९० ६·३९	६,११,१२८ ९०·४२	१;३९२ ०·२१	२०,१२० २·९७	४५ ०·०१
मियाँवाली	५,४०१	५,०६,३२१	६२,७८७ १२·४०	४,३६,२६० ८६·१६	३५८ ०·०७	६,८६५ १·३६	५१ ०·०१
जोड़	२१,३८१	४७,००,९५८	४,१४,६७० ८·८२	४०,२०,१४१ ८५·९२	२८,८७६ ०·६१	२,३४,०७१ ४·९८	३,२०० ०·०७

मुलतान डिवीजन—

जिला या डिवीजन	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	अन्य
मांटगोमरी	४,२०४	१३,२९,१०३	१,९१,१८२ १४·३८	९,१८,५६४ ६९·११	२४,४३२ १·८४	१,७५,०६४ १३·१७	१९,८६१ १·४९
लायलपुर	३,५२२	१३,९६,३०५	१,६२,२९५ ११.६२	८,७७,५१८ ६२.८५	५१,९४८ ३.७२	२,६२,७३७ १८·८२	४१,८०७ २.९९
झंग	३,४१५	८,२१,६३१	१ २९,७९१ १५·८०	६,७८,७३६ ८२·६१	७६३ ०·०९	१२,२३८ १ ४९	१०३ ०·०१
मुलतान	५,६५३	१४,८४,३३३	२,४२,९८७ १६·३७	११,५७,९११ ७८·०१	१४,२९० ०·९६	६१,६२८ ४·१५	७,५१७ ०·५१
मुजफ्फरगढ़	५,६०५	७,१२,८४९	९०,५४७ १२.७०	६,१६,०७४ ८६·४२	२२७ ०·०३	५,८८२ ०·८२	११९ ०·०२
डेरागाजीखाँ	९,३६४	५,८१,३५०	६७,३९३ ११·५९	५,१२,६७८ ८८·१९	८७ ०·०१	१,०७२ ·१८	१२० ०·०२
बलूचपारसीमान्त—		४०,२४६	१६० ०·३९	४०,०८४ ९९·६०	—	२ ०·००	—
जोड़	३१,७६३	६३,६५,८१७	८,८४,३५५ १३·८९	४८,०१,५६५ ७५·४३	९१,७४७ १·४४	५,१८,६२३ ८·१५	६९,५२७ १ ०९
प्रान्तका जोड़	९९,०८९	२,८४,१८,८१९	७५,५०,३७२ २६·५७	१,६२,१७,२४२ ५७·०६	५,०४,९४१ १·७८	३७,५७,४०१ १३·२२	३,८८,८६३ १·३७

पञ्जाबके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिले

मुस्लिम बहुमतवाले डिवीजन	क्षेत्रफल (वर्ग-मीलमें)	कुल आबादी	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	सिख	अन्य	गैर-मुसलमानों-का योग
रावलपिंडी	२१,३८१	४७,००,९५८	४,१४,६७०	४०,२०,१४१	२८,८७६	२,३४,०७१	३,२००	६,८०८१७
			८.८२	८५.५२	०.६१	४.९८	०.०७	१४.४८
मुलतान	३१,७६३	६३,६५,८१७	८,८४,३५५	४८,०१,५६५	९१,७४७	५,१८,६३३	६९,५२७	१५,६४,२५२
			१३.८९	७५.४३	१.४४	८.१५	१.०९	२४.५७
लाहौर	१०,६३०	५८,०४,१२५	९,८४,२८४	३५,४१,९६३	३,१८,३८३	९,३१,१६१	२८,३३४	२२,६२,१६२
			१६.९६	६१.०२	५.४९	१६.०४	०.४९	३८.९८
जोड़	६३,७७४	१,६८,७०,९००	२२,८३,३०९	१,२३,६३,६६९	४,३९,००६	१६,८३,८५५	१,०१,०६१	४५,०७,२३१
			१३.५३	७३.२९	२.६०	९.९८	०.६०	२६.७१

गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिले या डिविज़न—

अम्बाला डिवीजन	१४,७५०	४६,५५,४६२	३०,५५,४८३ ६६'०१	१३,१८,१२६ २८'०७	१२,२५६ ०'२६	२,४०,२९६ ५'१२	२५,२९१ ०'५४	३३,७७,३२६ ७१'९३
जालन्धर डिवीजन	१८,९९२	५४,३८,५८१	१९,५०,८०२ ३५'८७	१८,७७,७८२ ३४'५३	२७,७०६ ०'५१	१३,२२,४०५ २४'३१	२,५९,९२६ ४'७८	३५,६०,८३९ ६५'४७
अमृतसर जिला	१,५७२	१४,१३,८७६	२,१६,७७८ १५'३३	६,५७,६९५ ४६'५२	२५,९७३ १'८४	५,१०,८४५ ३६'१३	२,५८५ ०'१८	७,५६,१८१ ५३'४८
जोड़	३५,३१४	१,१५,४७,९१९	५२,६७,०६३ ४५'६१	३८,५३.५७३ ३३'३५	६५,९३५ ०'५७	२०,७३,५४६ १७'९६	२,८७,८०२ २'४९	७६,९४,३४६ ६६'६३

ऊपरके चक्रमें दिये गये अंशोंका विश्लेषण करनेके पूर्व यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि अन्य लोगोंमें आदिधर्मी, जैन, पारसी, यहूदी और ऐसे लोग भी सम्मिलित हैं जिनके सम्बन्धमें किसी विशेष धर्म या सम्प्रदायका उल्लेख नहीं है। इनमें सबसे बड़ी संख्या आदिधर्मियोंकी है जो, सेंसस-कमिश्नरके कथनानुसार, दलितवर्गमें सम्मिलित तो कर लिये गये हैं पर अपनेको हिन्दू नहीं मानते इसलिए उन्होंने हिन्दुओंसे ही नहीं बल्कि दलितवर्गसे भी अपनेको पृथक् लिखाया। उनकी संख्या ३,४३,६८५ अर्थात् पञ्जाबकी कुल आबादीपर १·२१ प्रतिशत है। वे विशेषतः जालन्धर डिवीजनमें केन्द्रित हैं जहाँ उनकी आबादी २,५०,२६७ या डिवीजनकी कुल आबादीपर ४·६० प्रतिशत है। उनके दूसरे बड़े केन्द्र मुलतान और लाहौर डिवीजनोंमें हैं जहाँ उनकी संख्या क्रमशः ६८,६४१ और २०,४८८ है। अम्बाला और रावलपिण्डी डिवीजनोंमें उनकी संख्या नगण्य—क्रमशः २,७९५ और १,५३४—है। जैसा कि १९३१ की सेंसस रिपोर्टमें कहा गया है, 'धर्मकी दृष्टिसे वर्तमान जनगणना (१९३१) की विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि चमारों, चुबरों तथा अन्य अछूतोंने अपने लिए 'आदिधर्मी' शब्दको अपनाया। पहलेकी जनगणनाओंमें चुबरा लोग कोई खास धर्म न लिखानेपर हिन्दुओंमें सम्मिलित कर लिये जाते थे। १९४१ की सेंसस रिपोर्टमें यह भी कहा गया है कि वे सभी जो आदिधर्मी लिखे गये हैं, दलित जातियोंके हैं पर हिन्दू होनेका दावा नहीं करते। इस प्रकार अन्तकी दोनों जनगणनाएँ आदिधर्मियोंको हिन्दुओंसे पृथक् कर उक्त प्रान्तमें हिन्दुओंकी संख्या घटानेमें कृतकार्य हुई हैं।

पञ्जाबकी जनगणनाका अध्ययन करनेपर हम देखते हैं कि सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तानकी स्थितिसे भिन्न जहाँ मुसलमानोंका अत्यधिक बहुमत—सारी आबादीपर क्रमशः ७०·७५,९१·७९ और ८७·५१ प्रतिशत—है, पञ्जाबमें उनका बहुमत सिर्फ थोड़ा सा—पूरी आबादीपर ५७·०६ प्रतिशत—है। उन प्रान्तोंकी तरह पञ्जाबके प्रत्येक जिले या डिवीजनमें भी उनका बहुमत नहीं है। इसके विपरीत कुछ ऐसे जिले और डिवीजन भी

हैं जिनमें गैर-मुसलमानोंका अत्यधिक बहुमत है। लीगके लाहौर-प्रस्तावमें सिर्फ संख्या-प्रधान' शब्दका प्रयोग किया गया है, उसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे यह व्यक्त हो कि वह संख्या कितनी हो इसलिए इससे 'अत्यधिक' और 'अल्प' बहुमत—दोनों अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं। लेकिन विभाजनके उद्देश्य और कारणपर ध्यान देनेपर इसी परिणामपर पहुँचना पड़ता है कि अत्यधिक बहुमतकी ही बात सोची गयी होगी, अल्प बहुमतकी नहीं। पार्थक्य-का उद्देश्य मुसलमानोंके लिए ऐसा अवसर प्रस्तुत न करना है जिसमें वे अपनी धारणाके अनुसार अपनी प्रगति कर सकें। कारण यह है कि वे भिन्न राष्ट्रके हैं और उनकी संस्कृति, सामाजिक जीवन, दृष्टिकोण और धर्म इस देशके अन्य निवासियोंसे भिन्न हैं, इसलिए उनके लिए एक पृथक् देश होना चाहिए जिसमें वे ही सर्वेसर्वा हों। अल्प बहुमत होनेपर जब कि अल्पसंख्यक जाति बहुत बलवती और बहुसंख्यकमें मिल जानेके लिए तैयार न होकर अपनी धारणाके अनुसार अपनी उन्नति करनेके लिए निहित अधिकारका प्रयोग करनेको उद्यत होगी उस हालतमें मुसलमान अपनी धारणाके अनुसार अपनी प्रगति करनेमें समर्थ न हो सकेंगे। भिन्न धर्म और उसके फलस्वरूप संस्कृति, सामाजिक जीवन और दृष्टिकोण भिन्न होनेके कारण यदि अल्प बहुमतवाली जातिको अपने लिए एक पृथक् स्वदेशका अधिकार ह तो नाममात्रके लिए अल्पमतवाली जातिको इस अधिकारसे वञ्चित रखना न्याय्य और उचित नहीं कहा जा सकता। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि लाहौर-प्रस्तावमें यह मानते हुए कि चारो पश्चि-मोत्तर प्रान्तोंमें परस्पर भिन्नता है, कहा गया है कि स्वतन्त्र राजमें सम्मिलित होनेवाली इकाइयाँ स्वशासित और प्रभुसत्ता युक्त होंगी। सम्प्रति यदि इस प्रश्नपर विचार न कर कि बड़े राज्यमें सम्मिलित होनेवाली इकाई किस सीमा-तक और किस रूपमें प्रभुसत्ता-युक्त होगी, हम अपनेको केवल सम्मिलित होनेवाली इकाइयोंके आपसके सम्बन्धके प्रश्नतक ही सीमित रखें, तो इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि प्रत्येक इकाईको आन्तरिक शासनके सम्बन्धमें अपने ही ऊपर निर्भर करना पड़ेगा। दूसरे शब्दोंमें, अगर स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंके

विधानका स्वरूप लोकतन्त्रमूलक अर्थात् ऐसा हो कि राजके नागरिकोंको जाति, मत और रङ्गका कोई भेद-भाव न कर अपना शासक चुनने और इस प्रकार अपने विचारों और इच्छाके अनुसार शासन-व्यवस्था करनेका अधिकार प्राप्त हो तो राजमें कुछ ही अधिक संख्यावाले मुसलमानोंकी धारणाके अनुसार अल्प बहुमतवालेके लिए शासन चला सकना व्यवहारतः असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा। इसलिए यह दावा न्याय्य और उचित ही है कि वर्तमान पञ्जाब प्रान्त, जिसमें मुसलमानोंका अल्प बहुमत—५७ प्रतिशत—है, लाहौर-प्रस्तावकी शर्तको पूरा नहीं करता और उसे पश्चिमोत्तरके स्वतन्त्र मुस्लिम राजमें न तो सम्मिलित करना चाहिए और न वह किया ही जा सकता। यदि यह शर्त स्वीकार कर ली जाय कि कोई भूभाग पृथक् किया जा सकता है या नहीं, इसका निश्चय करते समय आबादीपर विचार करनेके लिए सारा प्रान्त इकाईके रूपमें लिया जाय, तब हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं, इसीलिए 'एक पञ्जाबी'ने अपनी 'कन्फिडरेसी आव इंडिया' नामक पुस्तकमें और श्री एम० आर० टी०ने अपने लेखमें गणना करते समय पञ्जाबके सारे प्रान्तको न लेकर उसके कुछ ऐसे भाग पृथक् कर दिये हैं जिनमें उनके अनुसार मुसलमानोंका अल्पमत है।

'अगर अम्बाला डिवीजन और पूर्वी हिन्दू और सिख रियासतें पञ्जाबसे अलग कर दी जायँ तो इसकी आबादी २ करोड़ ८५ लाखसे घटकर २ करोड़ १० लाख हो जायगी, पर मुसलमानोंकी संख्या ५५ से बढ़कर ७० प्रतिशत हो जायगी। अगर पश्चिमोत्तरका सारा मुस्लिम क्षेत्र एक साथ मिलाकर देखा जाय तो यह संख्या और भी बढ़ जायगी। अगर प्रस्तावित विधिसे पूर्वी सीमाका सुधार कर दिया जाय तो पश्चिमोत्तर क्षेत्रकी कुल आबादी ३॥ करोड़ हो जायगी जिसमें २ करोड़ ७० लाख मुसलमान और ८० लाख गैरमुसलमान होंगे। मुसलमानोंका ७७ प्रतिशत अनुपात स्थायी और दृढ़ सरकार बनाये रखनेके लिए पर्याप्त होगा; और यह उद्देश्य आबादीकी अदला-बदली किये बिना ही सिद्ध हो सकता है।' *

---

* 'इण्डियाज प्राब्लम आव हर फ्यूचर कांन्स्टिट्यूशन', पृष्ठ ३३-४।

'पञ्जाबकी पूर्वी सीमाका प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण विषय है, और हो सकता है कि इस सम्बन्धमें कभी मुसलमानोंमें मतभेद भी उत्पन्न हो जाय। कुछ लोग तो यमुना नदी या गङ्गा और सिन्धके मैदानोंको पृथक् करनेवाली उच्च भूमिको सिन्दिस्तानकी इस इकाई और पूर्वमें हिन्दू भारतके बीचकी प्राकृतिक सीमा मान सकते हैं, और कुछ लोग उक्त सीमा इस प्रकार निर्धारित करना चाहेंगे जिसमें कांगड़ाका सारा पूर्वी हिन्दू भाग होशियारपुर जिलेके कुछ भाग और सारा अम्बाला डिवीजन पञ्जाबसे अलग हो जायँ। पहले मतके सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि भौगोलिक दृष्टिसे यमुना नदी या उक्त उच्च भूमि हिन्दुस्तान और सिन्दिस्तानके बीच प्राकृतिक सीमाका काम दे सकता है, पर चूँकि 'इन्डसरीजन्स फेडरेशन' (सिन्ध-प्रदेश-संघ) का आन्तरिक अभिप्राय हिन्दू तत्वको कम कर साम्प्रदायिकता-को घटाना और मुसलमानोंका कृषि, व्यवसाय और संस्कृति सम्बन्धी स्वार्थ संरक्षित करना है इसलिए यमुना नदी या उक्त उच्च भूमिको जो दक्षिण-पूरबकी ओर दिल्ली होते हुए अरावली पहाड़ीतक चली जाती है, सीमा माननेसे इस उद्देश्यकी सिद्धि न हो सकेगी, क्योंकि इससे बहुत अधिक हिन्दू जनसंख्यावाले चीफ कमिश्नरका दिल्लीप्रान्त और अम्बाला डिवीजन आदि हमारे प्रदेशमें चले जायँगे जिससे आबादीमें हिन्दुओंका अनुपात बढ़ जायगा जो हमारे हितोंके लिए घातक सिद्ध होगा। इस प्रकारकी सीमा होनेपर हिन्दू भारतसे हमारा सांस्कृतिक बिलगाव नहीं हो सकेगा। हिन्दू-भारतके हिन्दुओंके साथ हमारे प्रदेशके अन्दर बहुत बड़ी हिन्दू आबादीका प्राकृतिक सम्बन्ध होनेके कारण हमारी कठिनाइयाँ बढ़ जायँगी। हिन्दू-भारतके अपने भाई-बन्धुओंके साथ उनकी सहानुभूति बराबर बनी रहेगी। इस महत्वपूर्ण तथ्यके विचारसे हमलोगोंके लिए दूसरा मत, जिसके अनुसार अत्यधिक हिन्दू बहुमतवाले भूभाग सम्मिलित नहीं किये जायँगे, मान लेना अधिक निरापद होगा।'* 'मुसलमानोंको पहले पञ्जाबकी पूर्वी सीमा प्रदेशके लिए दबाव डालना और उपर्युक्त पूर्वी हिन्दू भूभाग इससे अलग कर देनेकी आवश्यकतापर जोर देना चाहिए।'†

---

*'एक पञ्जाबी'—'कनफिडरेसी आव इण्डिया', २४३-४। † वही—२४६

दूसरे प्रकारसे विचार करें तो पाकिस्तानका कट्टरसे कट्टर समर्थक भी गम्भीरता पूर्वक यह नहीं चाहेगा कि ऐसा भू-भाग जिसमें संख्याकी दृष्टिसे मुसलमानोंका प्राधान्य नहीं है, पाकिस्तानमें सम्मिलित किया जाना उचित और न्याय्य होगा। इस प्रकारकी माँग लाहौर-प्रस्तावके स्पष्ट शब्दों—जिस भू-भागमें संख्याकी दृष्टिसे मुसलमानोंका प्राधान्य है—के विरुद्ध और असंगत ही नहीं होगी, बल्कि उन भूभागोंके बहुसंख्यक हिन्दुओंके प्रति भी अन्याय्य होगी और वे इसका यही अर्थ लगावेंगे कि यह गैर-मुसलमानोंपर मुसलमानोंका शासन लादनेका प्रयत्न है। डाक्टर सैयद अब्दुल लतीफने, जिन्होंने सर्वप्रथम भारतका सांस्कृतिक क्षेत्रोंमें विभाजन करने और मुसलमानोंके अधिकारों और स्वार्थोंको विधानद्वारा संरक्षित करनेकी योजना प्रस्तुत की थी, सर अब्दुल्ला हारूँ कमेटीकी योजनाके सम्बन्धमें, जिसमें पश्चिमोत्तर मुस्लिम राजमें सारा पंजाब ही नहीं बल्कि दिल्लीका प्रान्त और अलीगढ़ जिलेका कुछ हिस्सा भी सम्मिलित कर लिया गया था, १९४१में लिखा था—

'समितिकी रिपोर्टमें पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर खण्डोंके सीमा-निर्धारणके सम्बन्धमें जो सुझाव रखा गया है उससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। लाहौर-प्रस्तावका लक्ष्य एक जातीय और ठोस खण्ड या अत्यधिक मुस्लिम बहुमतवाले राज हैं। लेकिन आपकी समितिके पंजाब और अलीगढ़वाले सदस्य तत्वतः गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें साम्राज्य-विस्तारकी भावनासे पंजाबको अलीगढ़तक बढ़ाकर काश्मीरसे जैसलमेरतककी सारी गैर-मुस्लिम रियासतें छेंक लेना चाहते हैं जिससे मुसलमानोंका अनुपात घटकर ५५ प्रतिशतपर आ जायगा। इसी प्रकार पूर्वोत्तर-खण्डमें वे पूरा बंगाल, आसाम और बिहारका एक जिला सम्मिलित कर लेना चाहते हैं जिससे मुसलमानोंका अनुपात घटकर ५४ प्रतिशत हो जायगा। मेरी समझमें इस प्रकारकी सीमाबन्दी लाहौर-प्रस्तावके भाव और लक्ष्यके विपरीत है, क्योंकि पूर्वोत्तर-खण्डमें ४६ प्रतिशत और पश्चिमोत्तर खण्डमें ४२ प्रतिशत गैर-मुसलमानोंके होनेपर उन राजोंको मुस्लिम राज कहनेका कोई अर्थ नहीं होता और न उनको मुस्लिम क्षेत्र ही कह सकते हैं। इस सीमाबन्दीके लिए

मैं जिम्मेदार नहीं हूँ, क्योंकि यह विषय पूराका पूरा पञ्जाब सिन्ध और युक्त-प्रान्तके सदस्योंपर छोड़ दिया गया था ; मैं तो बल्कि छोटे राज्योंसे ही सन्तोष कर लूँगा जिसमें मुसलमानोंका ८० प्रतिशत बहुमत रहेगा और जिन्हें अपना राज कह सकूँगा।'*

हाँलाकि यह समिति, जिसने प्रकाश रूपसे लीगके लाहौर-प्रस्तावके अनुसार यह योजना प्रस्तुत की थी, लीगकी परराष्ट्र-उपसमितके अध्यक्ष हाजी सर अबदुल्ला हारूँ केण्टी.एम.एल.ए. द्वारा संघटित की गयी थी जो बराबर इसके सभापतिके रूपमें कार्य करते रहे और इसने २३ दिसम्बर १९४० को नियमित रूपसे ही अपनी रिपोर्ट लीगके अध्यक्षको दी थी, फिर भी श्री जिनाने डाक्टर लतीफको लिखे गये अपने १५मार्च १९४१, के पत्रमें इस समिति और इसकी योजनाको माननेसे इनकार कर दिया।

चाहे मुसलमानोंके स्वार्थकी दृष्टिसे विचार किया जाय, जैसा कि श्री एम. आर.टी. और 'एक पञ्जाबी' के ऊपरके अवतरणोंमें स्पष्ट किया गया है, चाहे गैर-मुसलमानोंकी दृष्टिसे जिनका उन क्षेत्रोंमें, जिन्हें मुस्लिम राजमें मिलानेकी बात कही जाती है, बहुमत है और जो इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नको तत्त्वतः गैरमुस्लिम क्षेत्रमें मुसलमानोंकी साम्राज्य-विस्तारकी भावना माननेके लिए बाध्य हैं, मुसलमानोंके अल्पमतवाले किसी क्षेत्रको मिलानेके प्रस्तावका विभाजन स्वीकार कर लेनेपर भी, न्याय और औचित्यकी दृष्टिसे न तो अनुमोदन किया जा सकता है, और न स्वीकार हो।

अब हम पञ्जाबकी स्थितिपर इसी दृष्टिकोणसे विचार करें जो तत्त्वतः लीगके लाहौर-प्रस्तावका दृष्टिकोण है। हम देखते हैं कि पञ्जाबके मुसलमान डिवीजनमें, जो सिन्ध और बिलोचिस्तानसे मिला है, मुसलमानोंका अधिक बहुमत—७९.४१ प्रतिशत—है। इस डिवीजनके प्रत्येक जिलेमें मुसलमानोंका बहुमत है ; अगर बलूच-पार-सीमान्त भागको छोड़ दें जिसकी कुल आबादी

---

* 'दि पाकिस्तान इशू', पृष्ठ ९८-९९।

४०,२४६ है और ९९.६० प्रतिशत मुसलमान है,तो डेरागाजीखाँ जिसमें उनका सबसे अधिक अनुपात—८८.१९ प्रतिशत है और लायलपुर जिलेमें सबसे कम ६२.८५ प्रतिशत है। इसी प्रकार रावलपिंडी डिवीजनमें भी जो पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तसे मिला हुआ है, मुसलमानोंका अत्यधिक बहुमत आबादीपर ८५·५२ प्रतिशत है। उनका सबसे अधिक अनुपात अटक जिलेमें ९०·४२ प्रतिशत और सबसे कम रावलपिण्डी जिलेमें ८०·०० प्रतिशत है। अगर विभाजन हुआ तो लाहौर-प्रस्तावके आधारपर ये दोनों 'डिवीजन पूर्णतः पश्चिमोत्तर मुस्लिम राजमें ले लिये जायँगे।

लाहौर डिवीजनकी स्थिति कुछ जटिल है। सारी आबादीपर मुसलमानोंका अनुपात सिर्फ ५८.१८ प्रतिशत है जो किसी भी प्रकार अत्यधिक बहुमत नहीं कहा जा सकता और इस प्रकार यह मुस्लिम क्षेत्र नहीं करार दिया जा सकता। इसके सिवा अमृतसर जिलेमें तो वे अल्पसंख्यक हैं क्योंकि वहाँ उनका अनुपात आबादीपर सिर्फ ४६·५२ प्रतिशत है और गुरुदासपुरमें उनका अनुपात लगभग बराबर—५१·१४ प्रतिशत—है। इस डिवीजनमें उनकी सबसे अधिक आबादी गुजरानवाला जिलेमें ७०·४५ प्रतिशत है तथा लाहौर, सियालकोट और शेखूपुरामें क्रमशः ६०·६२, ६२·०९ और ६३·६२ प्रतिशत है। जिन शर्तोंपर ऊपर विचार किया गया है उन्हें लागू करनेपर मुस्लिम अल्पमतवाला अमृतसर जिला किसी भी हालतमें मुस्लिम क्षेत्र नहीं माना जा सकता। गुरुदासपुरके सम्बन्धमें मुसलमानों और हिन्दुओं दोनोंका दावा समानरूपसे न्याय्य होगा। अगर अत्यधिक बहुमतका आग्रह न हो और संख्या ही निर्णायक हो तो ६० से ७० प्रतिशततक मुस्लिम बहुमतवाले अन्य जिले मुस्लिम राजकी परिधिमें आ सकते हैं।

जालन्धर डिवीजनकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट है। यहाँ आबादीपर मुसलमानोंका अनुपात सिर्फ ३४.५३ प्रतिशत है और इसके किसी भी जिलेमें संख्याकी दृष्टिसे उनका प्राधान्य नहीं है। उनकी सबसे अधिक संख्या जालन्धर जिलेमें ४५·२३ प्रतिशत है और कमसे कम संख्या कांगड़ा जिलेमें सिर्फ

४·८१ है। सारे डिवीजनमें मुसलमानोंके ३४·५३ प्रतिशतके मुकाबलेमें हिन्दू अकेले ३५·८७ प्रतिशत हैं हालाँ कि डिवीजनके ५ जिलोंमेंसे दो जिलों— जालन्धर और फीरोजपुर—में मुसलमानोंका सबसे अधिक अनुपात—क्रमशः ४५·२३ और ४५·०७ प्रतिशत—है ; फिर भी इन जिलोंमें वे अल्पसंख्यक ही हैं। इसलिए जालन्धर डिवीजनके सम्बन्धमें लीगके लाहौर प्रस्तावकी शर्त पूरी नहीं होती और वह मुलतान और रावलपिण्डी डिवीजनोंके साथ (मुस्लिम-क्षेत्रमें) नहीं जा सकता। लाहौर डिवीजनके जिलोंके बीचमें आ जानेसे यह उनसे विलग भी हो गया है।

अम्बाला डिवीजनमें मुसलमानोंका अनुपात सिर्फ २८·७ प्रतिशत है और डिवीजनके किसी भी जिलेमें उनका अनुपात ३३·५६ प्रतिशतसे अधिक नहीं है जो गुरगाँव जिलेका है। इसके मुकाबलेमें हिन्दुओंका अनुपात डिवीजनमें ६६.०१ प्रतिशत है; सबसे अधिक अनुपात रोहतकमें ८१·६१ प्रतिशत और सबसे कम अम्बालामें ४८·४० प्रतिशत है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि लीगकी शर्त लागू की गयी तो यह डिवीजन और इसका कोई भी जिला पश्चिमोत्तर मुस्लिम राजमें नहीं आ सकता।

अब सारे पश्चिमोत्तर क्षेत्रपर सामूहिक रूपसे विचार किया जा सकता है। उपर्युक्त कथनानुसार जिन क्षेत्रोंको पृथक् करना पड़ेगा उन्हें छोड़ देनेपर स्थिति इस प्रकार होगी—

प्रान्त	कुल आबादी	मुसलमान	प्रतिशत मुस्लिम संख्या
सिन्ध	४५,३५,००८	३२,०८,३२५	७०·७५
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त	३०,३८,०६७	२७,८८,७९७	९१·७९
बिलोचिस्तान	५,०१,६३१	४,३८,९३०	८७·५१

पञ्जाब (जालन्धर और अम्बाला डिवीजन तथा लाहौर डिवी-जनका अमृतसर जिला छोड़कर)	१,६८,७०,९००	१,२३,६३,६६९	७३·२८
पश्चिमोत्तर क्षेत्रका योग	२,४९,४५,६०६	१,८७,९९,७२१	७५·३६

पञ्जाबके गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंको अलग न करनेपर स्थिति यह होगी कि पश्चिमोत्तर स्वतन्त्र राजकी कुल आबादी ३,६४,९३,५२५ में मुसलमानोंकी संख्या २,२६,५३,२९४ या ६२·०७ प्रतिशत होगी। प्रश्न यह होता है कि इतना कम बहुमत होनेपर क्या यह क्षेत्र वस्तुतः मुस्लिम क्षेत्र कहा जा सकता है ?

पूर्वी क्षेत्र

अब हम पूर्वी क्षेत्रकी ओर दृष्टिपात करें। पहले बङ्गालकी स्थितिपर विचार किया जाय।

बर्दवान डिविजन—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुलआबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
बर्दवान	२,७०५	१८,९०,७३२	३,३६,६६५ १७'८१	१३,९३ ८२० ७३'७२	३,२८० ०'१७	१,५१,३५५ ८'००	५,६१२ ०'३०
बीरभूम	१,७४३	१०,४८,३१७	२,८७,३१० २७'४१	६,८६,४३६ ६५'४८	३४४ ०'०३	७४,०८४ ७'०७	१४३ ०'०१
बाँकुड़ा	२,६४६	११,८९,६४०	५५,५६४ ४'३१	१०,७८,५५९ ८३'६३	१,२१६ ०'०९	१,५४,२४६ ११'९७	५५ ०'००
मेदिनीपुर	५,२७४	३१,९०,६४७	२,४६,५५९ ७'७३	२६,८१,९६३ ८४'०६	३,८३४ ०'१२	२,५३,६२५ ७'९५	४,६६६ ०'१४
हुगली	१,२०६	१३,७७,७२९	२,०७,०७७ १५'०३	१०,९९,५४४ ७९'८१	५४३ ०'०४	६९,५०० ५'०४	१,०६५ ०'०८
हवड़ा	५६१	१४,९०,३०४	२,९६,३२५ १९'८८	११,८४,८६३ ७९'५०	११४ ०'०७	३,९१९ ०'२६	४,१०३ ०,२९
जोड़	१४,१३५	१,०२,८७,३६९	१४,२९,५०० १३'९०	८१,२५,१८५ ७८'९८	१०,२११ ०'१०	७,०६,७२९ ६'८७	१५,७४४ ०'१५

प्रेसीडेन्सी डिवीजन—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
२४ परगना	३,६९६	३५,३६,३८६	११,४८,१८०	२३,०९,९९६	२०,८२३	५१,०८५	६,३०२
			३२.४७	६५.३२	०.५९	१.४४	०.१८
कलकत्ता	३४	२१,०८,८९१	४,३७,५३५	१५,३१,५१२	१६,४३१	१,६८८	६१,७२५
			२३.५९	७२.६२	०.७८	०.०८	२.९३
नदिया	२,८७९	१७,५९,८४६	१०,७८,००७	६,५७,९५०	१०,७४९	१२,६७१	४६९
			६१.२६	३७.३८	०.६१	०.७२	०.०३
मुर्शिदाबाद	२,०६३	१६,४०,५३०	९,२७,७४७	६,८४,९८७	३९४	२६,१३८	१,२६४
			५६.५५	४१.७५	०.०२	१.५९	०.०८
जैसोर	२,९२५	१८,२८,२१६	११,००,७१३	७,२१,०७९	१,०५७	४,९७८	३८९
			६०.२१	३९.४४	०.०६	०.२७	०.०२
खुलना	४,८०५	१९,४३,२१८	९,५९,१७२	९,७७,६९३	३,५३८	२,६७५	१४०
			४९.३६	५०.३१	०.१८	०.१४	०.०१
जोड़	१६,४०२	१,२८,१७,०८७	५७,११,३५४	६८,८३,२१७	५२,९९२	९९,२३५	७०,२८९
			४४.५६	५३.७०	०.४१	०.७७	०.५५

राजशाही डिवीजन —

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिम जातियाँ	अन्य
राजशाही	२,५२६	१५,७१,७५०	११,७३,२८५	३,२९,२३०	१,१६६	६७,२९८	७७१
			७४·६४	२०·९५	०·०७	४·२८	०·०५
दीनाजपुर	३,९५३	१९,२६,८३३	९,६७,२४६	७,७४,६२२	१,४४८	१,८२,८९२	६२५
			५०·२०	४०·२०	०·०८	९·४९	०·०३
जलपाईगोड़ी	३,०५०	१०,८९,५१३	२,५१,४६०	५,५१,६४७	२,५८९	२,७९,२९६	४,५२१
			२३·०८	५०·६३	०·२४	२५·६३	०·४१
दाजलिङ्ग	१,१९२	३,७६,३६९	९,१२५	१,७८,४९६	२,५९९	१,४१,३०१	४४,८४८
			२·४२	४७·४३	०·६९	३७·५४	११·९२
रंगपुर	३,६०६	२८,७७,८४७	२०,५५,१८६	८,०२,८४९	३८९	१८,२००	१,२२३
			७१·४१	२७·९०	०·०१	०·६३	०·०४
बोगरा	१,४७५	१२,६०,४६३	१०,५७,९०२	१,८७,५३२	२८६	१४,३८७	३५६
			८३·९३	१४·८८	०·०२	१·१४	०·०३
पबना	१,८३६	१७,०५,०७२	१३,१३,९६८	३,८३,७५५	२८५	६,९०६	१५८
			७७·०६	२२·५१	०·०२	०·४०	०·०१
मालदा	२,००४	१२,३२,६१८	६,९९,९४५	४,६५,६७८	४६६	६६,४४९	८०
			५६·७८	३७·७८	०·०४	५·३९	०.०१
जोड़	१९,६४२	१,२०,४०,४६५	७५,२८,११७	३६,७३,८०९	९,२२८	७,७६,७२९	५२,५८२
			६२·५२	३०·५१	०·०८	६·४५	०·४४

ढाका डिवीजन—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
ढाका	२,७३८	४२,२२,१४३	२८,४१,२६१	१३,६०,१३२	१५,८४६	४,०२९	८७५
			६७ २९	३२·२१	०·३८	०·१०	०·०२
मैमनसिंह	६,१५६	६०,३३,७२८	४६,६४,५४८	१२,९६,६३८	२,३२२	५९,७२२	५२८
			७७·४४	२१·५२	०·०४	०·९९	०·०१
फरीदपुर	२,८२१	२८,८८,८०३	१८,७१,३३६	१०,०६,२३८	९,५४९	१,३६३	३१७
			६४·७८	३४·८३	०·३३	०·०५	०·०१
बाकरगञ्ज	३,७८३	३५,४९,०१०	२५,६७,०२७	९,५८,६२९	९,३५७	२८४	१३,७१३
			७२·३३	२७·०१	०·२६	०·०१	०·३९
जोड़	१५,४९८	१,६६,८३,७१४	१,१९,४४,१७२	४६,२१,६३७	३७,०७४	६५,३९८	१५,४३३
			७१·५९	२७·७०	०·२२	०·३९	०·०९

चटगाँव डिवीजन—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
त्रिपुरा	२,५३९	३८,६०,९३९	२९,७५,९०१	८,७९,९६०	४२८	१,५२४	२,३२६
			७७.०९	२२.८०	०.०१	०.०४	०.०६
नवाखाली	१,६५८	२२,१७,४०२	१८,०३,९३७	४,१२,२६१	५३५	३४	६३५
			८१.३५	१८.५९	०.०२	०.००	०.०३
चटगाँव	२,५६९	२१,५३,२९६	१६,०५,१८३	४,५८,०७४	३९५	६,३४८	८३,२९६
			७४.५५	२१.२७	०.०२	०.२९	३.८७
चटगाँव पहाड़ी भूभाग	५,००७	२,४७,०५३	७,२५०	४,८८१	६०	२,३३,३९२	१,४५०
			२.९४	१.९८	०.०२	९४.४७	०.५९
जोड़	११,७६५	८४,७७,६९०	६३,९१,२९१	१७,५५,१७६	१,४१८	२,४१,२९८	८७,७०७
			७५.४०	२०.७०	०.०२	२.८४	१.०३
कुल जोड़ बंगाल	७७,४४२	६,०३,०६,५२५	३,३०,०५,४३४	२,५०,५९,०२८	१,११,९२३	१८,८९,३८९	२,४१,७५५
			५४.७३	४१.५५	०.१८	३.१३	०.४०

बंगालके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिले—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य	कुल गैर-मुस्लिम
नदिया	२,८७९	१७,५९,८४६	१०,७८,००७	६,५७,९५०	१०,७४९	१२,१७१	४६९	६,८१,८३९
			६१'२६	३७'३८	०'६१	०'७२	०'०३	३८'७४
मुर्शिदाबाद	२,०६३	१६,४०,५३०	९,२७,७४७	६,८४,९८७	३९४	२६,१३८	१,२६४	७,१२,७८३
			५६'५५	४१'७५	०'०२	१'५९	०'०८	४३'४४
जैसोर	२,९२५	१८,२८,२१६	११,००,७१३	७,२१,०३९	१०५७	४,९७८	३८९	७,२७,५०३
			६०'२१	३९'४४	०'०६	०'२७	०'०२	३९'७९
राजशाहीडि. (जलपाईगोड़ी और दार्जिलिङ्ग छोड़कर)	१५,४००	१,०५,७४,५८३	७२,६७,५३२	२९,४३,६६६	४,८४०	३,५६,१३२	३,२१३	३३,०७,०५१
			६८'७२	२७'८४	०'०४	३'३७	०'०३	३१'२८
ढाकाडिवीजन	१५,४९८	१,६६,८३,७१४	१,१९,४४,१७२	४६,२१,६३७	३७,०७४	६५,३९८	१५,४३३	४७,३९,५४२
			७१'५९	२७'७०	०'२२	०'३९	०'०९	२८'४०
चटगाँवडिवी.	११,७६५	८४,७१,८९०	६३,९२,२९१	१७,५५,१७६	१,४१८	२,४१,२९८	८७,७०७	२०,८५,५९९
			७५'४०	२०'७०	०'०२	२'८४	१'०३	२४'५९
मुस्लिम बहुमतवाले जिलोंका जोड़	५०,५३०	४,०९,६४,७७९	२,८७,१०,४१२	१,१३,८४,४९५	५४,७३२	७,०६,६१५	१,०८,४७५	१,२२,५४,३१७
			७०'०९	२७'७९	०'१३	१'७२	०'२६	२९'९०

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिम जातियाँ	अन्य	कुल गैर-मुस्लिम
बर्दवान	१४,१३५	१,०२,२७,३६९	१४,२९,५००	८१,२५,१८५	१०,२११	७,०६,७२९	१५,७४४	८८,५७,८६९
डिवीजन			१३.९०	७८.९८	०,१०	६.८७	०.१५	८६.१०
२४ परगना	३,६९६	३५,३६ ३८६	११,४८,१८०	२३,०९,९९६	२०,८२३	५१,०८५	६,३०२	२३,८८,२०६
			३२.४७	६५.३२	०.५९	१.४४	०.१८	६७.५३
कलकत्ता	३४	२१,०८ ८९१	४,९७,५३५	१५,३१,५१२	१६,४३१	१,६८८	६१,७२५	१६,११,३५६
			२३.५९	७२.६२	०.७८	०.०८	२.९३	७६.४१
खुलना	४,८०५	१९,४३,२१८	९,५९,१७२	९,७७,६९३	३,५३८	२,६७५	१४०	९,८४,०४६
			४९.३६	५०.३१	०.१८	०.१४	०.०१	५०.६४
जलपाईगोड़ी	३,०५०	१०,८९,५१३	२,५१,४६०	५,५१,६४७	२,५८९	२,७९,२९६	४ ५२१	८,३८,०५३
			२३.०८	५०.६३	०.२४	२५.६३	०.४१	७६.९१
दार्जिलिंग	१,१९२	३,७६,३६९	९,१२५	१,७८,४९६	२ ५९९	१,४१,३०१	४४,८४८	३,६७,२४४
			२.४२	४७.४३	०.६९	३७.५४	११.९२	९७.५८
गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिलोंका जोड़	२६,९१२	१,९३,४१,७४६	४२,९४,९७२	१३६७४५२९	५६१९१	११८२७७४	१३३२८०	१५०४६७७४
			२२.२१	७०.७०	०.२९	६.११	०.६९	७७.७९

ऊपरके चक्रपर दृष्टिपात करनेपर देख पड़ेगा कि बर्दवान डिवीजनमें मुसलमान थोड़ेसे ही हैं—आबादीपर उनका अनुपात डिवीजनमें १३.९० प्रतिशतसे अधिक नहीं है और किसी भी जिलेमें उनकी संख्या २७.४१ प्रतिशतसे अधिक नहीं है और सबसे कम तो ४.३१ प्रतिशत है। वीरभूम और बर्दवानको छोड़कर डिवीजन-के सभी जिले बिहार, बङ्गाल, और उड़ीसाके गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिलोंसे घिरे हुए हैं और पहले दो जिलोंके भी एक तरफ तो बङ्गालके मुस्लिम बहुमतवाले जिले और दूसरी तरफ गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिले हैं। यह डिवीजन लाहौर-प्रस्तावकी किसी शर्तको पूरा नहीं करता और किसी भी हालतमें पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें नहीं माना जा सकता।

कलकत्ता नगर सहित प्रेसिडेन्सी डिवीजनमें मुसलमानोंका अल्पमत है—हिन्दुओंके ५३.७० प्रतिशतके मुकाबलेमें वे सिर्फ ४४.५६ प्रतिशत हैं। पर इसके कुछ जिलोंमें मुसलमानोंका बहुमत है। ये जिले नदिया, मुर्शिदाबाद और जैसोर हैं जहाँ उनकी संख्या क्रमशः ६१.२५, ५६.५५ और ६०.२१ प्रतिशत है। २४ परगना और खुलना जिलोंमें क्रमशः ३२.४७ और ४९.३६ प्रतिशत मुसलमानोंके मुकाबलेमें अकेले हिन्दू ६५.३२ और ५०.३१ प्रतिशत हैं। कलकत्तेमें अकेले ७२.६२ प्रतिशत हिन्दुओंके मुकाबलेमें मुसलमानोंकी संख्या सिर्फ २३.५९ प्रतिशत अर्थात् कुल आबादीका चतुर्थांश ही है। आबादीके बलपर यह डिवीजन मुस्लिम क्षेत्रोंमें नहीं जा सकता। अगर जिलेके विचारसे देखा जाय तो भी २४ परगना, कलकत्ता और खुलना उस क्षेत्रमें नहीं जाते। जहाँतक कलकत्तेका सम्बन्ध है, यह चारो ओरसे गैर-मुस्लिम बहुमत-वाले क्षेत्रोंसे परिवेष्टित है और सीमा सम्बन्धी कोई परिवर्तन इसे मुस्लिम क्षेत्र-में परिवर्तित नहीं कर सकता। इस डिवीजनके सभी जिले गैर-मुसलिम और मुस्लिम जिलोंसे भी मिले हुए हैं, पर कलकत्ता इसका अपवाद है जिसका किसी भी मुसलमान क्षेत्रसे सम्पर्क नहीं है।

राजशाही डिवीजनमें जलपाईगोड़ी और दार्जिलिङ्ग जिलोंमें मुसलमानोंकी संख्या कम ही है—आबादीपर उनका अनुपात क्रमशः २३·०८ और २·४२

प्रतिशत है। पर उनकी सीमापर दीनाजपुर जिला है जिसमें सिर्फ ५०.१९ प्रतिशत मुसलमान हैं। डिवीजनके दूसरे जिलोंमें मुसलमानोंका बहुमत है। उनकी सबसे अधिक संख्या बोगरा जिलेमें है जो प्रतिशत ८३.९३ है और सबसे कम मालदा जिलेमें है जो प्रतिशत ५६.७८ है। मुसलमानोंकी इतनी कम अबादीवाले जलपाईगोड़ी और दार्जिलिंग जिलोंको मुस्लिम क्षेत्र कहना उचित न होगा और दीनाजपुर जिला भी, जिसमें मुसलमान सिर्फ ५० प्रतिशत हैं, मुस्लिम क्षेत्र नहीं समझा या करार दिया जा सकता।

ढाका डिवीजनकी स्थिति भिन्न है। यहाँ मुसलमानोंकी संख्या ७१.५९ प्रतिशत है और डिवीजनके प्रत्येक जिलेमें बहुसंख्यक मुसलमान ही हैं। उनकी सबसे अधिक संख्या मैमनसिंह जिलेमें ७७.४४ प्रतिशत और कमसे कम संख्या फरीदपुर जिलेमें ६४.७८ प्रतिशत है।

इसी प्रकार चटगाँव डिवीजनमें भी बहुसंख्यक मुसलमान ही हैं; उनकी संख्या ७५.४० प्रतिशत है। चटगाँवमें पहाड़ी भूभागको छोड़कर जहाँ उनकी संख्या सिर्फ २.९४ प्रतिशत है सभी जिलोंमें वे ही बहुसंख्यक हैं। पहाड़ी भूभागमें आदिम जातियाँ बहुसंख्यक हैं जिनकी संख्या ९४.४७ प्रतिशत है।

अगर सारे बङ्गाल प्रान्तकी दृष्टिसे विचार किया जाय, जैसा कि इस समय वह पाँच डिवीजनों—बर्दवान, प्रेसीडेंसी, राजशाही, ढाका और चटगाँव—से बना हुआ है—तो मुसलमानोंकी संख्या ५४.७३ प्रतिशत होती है जो इतनी अधिक नहीं है कि मुसलमान इसे मुस्लिम क्षेत्र कह सकें और स्वतन्त्र मुस्लिम राज बनानेका दावा कर सकें। लोकतन्त्रात्मक ढंगकी कोई सरकार इस राजमें स्थायी नहीं हो सकती और ऐसा कोई कारण नहीं देख पड़ता जिससे ५४.७३ प्रतिशत आबादी शेषपर अपनी इच्छा लाद सके, सो भी एक ऐसे क्षेत्रको पृथक् करने जैसे मौलिक विषयके सम्बन्धमें जिसका मनुष्यके स्मृतिकालमें कभी भारतसे विच्छेद हुआ ही नहीं।

अगर हम जिलोंपर विचार करें तो बर्दवान डिवीजनके जिलोंको मुस्लिम क्षेत्रसे अलग कर देना पड़ेगा और उसी प्रकार प्रेसिडेंसी डिवीजनके २४परगना,

खुलना और कलकत्तेको भी जलपाईगोड़ी और दार्जिलिंगके गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिले भी छोड़ देने पड़ेंगे और सीमावर्ती दीनाजपुर जिलेपर हिन्दू-मुसलमान दोनोंका बराबर हक है। ढाका तथा चटगाँव पहाड़ी भू-भागको छोड़कर चटगाँव डिवीजनोंके जिले, जिनमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं, लीगके प्रस्तावके अनुसार मुस्लिम क्षेत्रके भीतर समझे जा सकते हैं।

सन्दिग्ध स्थितिवाला दीनाजपुर तथा चटगाँव पहाड़ी भू-भाग यदि मुस्लिम क्षेत्रमें मान लिये जायँ तो बङ्गालके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम जिलोंका जो रूप होगा वह ऊपरके चक्रोंसे स्पष्ट हो जायगा।

यदि दीनाजपुर और चटगाँवके पहाड़ी भूभागके जिले मुस्लिम क्षेत्रसे पृथक् रखे जायँ तो दोनों क्षेत्रोंकी स्थितिमें कुछ अन्तर आ जायगा।

जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, मुस्लिम क्षेत्रमें आबादीपर मुसलमानोंकी संख्या ७०.०९, हिन्दुओंकी २७.७९ और आदिम जातियोंकी १.७२ प्रतिशत होगी; गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें हिन्दुओंकी संख्या ७०.७० या मुस्लिम क्षेत्रके मुसलमानोंसे थोड़ा अधिक, मुसलमानोंकी २२.२१ या मुस्लिम क्षेत्रके हिन्दुओंसे बहुत कम और आदिम जातियोंकी ६.११ प्रतिशत होगी, सारे प्रान्तमें आदिम जातियोंकी कुल आबादी १८, ८९, ३८९ या कुल आबादीपर ३.१३ प्रतिशत है, उनकी स्थितिपर पृथक् विचार करना पड़ेगा। आसामके अंकोंपर विचार करते समय उनकी इस स्थितिपर भी साथ ही विचार किया जायगा क्योंकि बङ्गालकी अपेक्षा वहाँ इनकी समस्या और भी प्रधानता ग्रहण कर लेती है और दोनोंपर एक ही सिद्धान्त लागू होता है।

अब देखा जाय कि आसामकी स्थिति क्या है—

सुरमाघाटी और पहाड़ी डिवीजन—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुलआबादी	मुसलमान	हिन्दू	ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
कचार	३,८६२	६,४१,१८१	२,३२,९५०	२,२५,८१६	३,९७१	१,७८,२६४	१७२
			३६·३३	३५·२२	०·६२	२७·८०	०·०३
सिलहट	५४७८	३१,१६,६०२	१८,९२,११७	११,४९,६१४	३,०५५	६९,९०७	२,००९
			६०·७१	३६·८८	०·०९	२·२४	०·०६
खासी और जैनिया पहाड़ियाँ	२,३५३	१,१८,६६५	१,५५५	१२,७३९	४२४	१,०३,५६७	३८०
			१·३१	१०·७४	०·३६	८७·२७	०·३२
नागा पहाडियाँ	४,२८९	१,८९,६४१	५३१	४,११८	३०	१,८४,७६६	११६
			०·२८	२·२१	०·०२	९७·४३	०·०६
लुसाई पहाडियाँ	८,१४२	१,५२,७८६	१०१	२,४४७	५१	१,४७,०४२	३,१४५
			०·०६	१·६०	०·०३	९६·२४	२·०६
जोड़	२४,१२४	४२,१८,८७५	२१,२७,२५४	१३,९४,७१४	७,५३९	६,८३,५४६	५,८२२
			५·४२	३३·०६	०·१८	१६·२०	०·१४

आसामघाटी डिवीजन—

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
ग्वालपारा	३,९६९	१०,१४,२८५	४,६८,९२४	३,०६,२२३	२८५	२,३७,९९३	८६०
			४६·२३	३०·१९	०·०३	२३·४६	०·०८
कामरूप	३,८४०	१२,६४,२००	३,६७,५२२	६,९६,५४९	१,१६८	१,९७,९२६	१,०३५
			२९·०७	५५·०९	०·०९	१५·६५	०·०८
दरांग	२,८०४	७,३६,७९१	१,२०,९९५	३,४७,७१८	६,६४३	२,६०,७४८	६४७
			१६·४२	४७·१९	०·९०	३५·३८	०·०९
नवगाँव	३,८९८	७,१०,८००	२,५०,११३	२,८८,३५१	४,१४७	१,६६,५२५	१,६६४
			३५·१८	४०·५६	०·५८	२३·४२	०·२३
शिवसागर	५,१२८	१०,७४,७४१	५१,७६९	६,४३,१९१	१५,७०७	३,६०,७६८	३,३०६
			४·८१	५९·८४	१·४६	३३·५६	०·३१
लखीमपुर	४,१५६	८,९४,८४२	४४,५७९	५,०१,०३६	४,७४५	३,३५,२३०	९,२५२
			४·९८	५५·९८	०·५३	३७·४६	१·०३
गारो-पहाड़ियाँ	३,१५२	२,२३,९६९	१०,३९८	१४,३०७	२९	१,९८,४७४	३६१
			४·६५	६·३९	०·०१	८८·७७	०·१६
जोड़	२६,९४७	५९,१९,२२८	१३,१४,३००	२७,९७,४१५	३२,७२४	१७,५७,६६४	१७,१२५
			२२·१२	४७·२६	०·५५	२९·७०	०·२९

डिवीजन या जिला	क्षेत्रफल (वर्गमीलमें)	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य
सदिया सीमान्त भूभाग	३,३०९	६०,११८	८६४	१८,५०६	५१६	३९,९७४	२५८
			१·४३	३०·७८	०·८६	६६·४९	०·४३
बालीपारा सीमान्त भूभाग	५७१	६,५१२	६१	२,५८८	३१	३,८१२	२०
			०·९४	३९·७४	०·४८	५८·५३	०·३१
कुल आसामका जोड़	५४,९५१	१,०२,०४,७३३	३४,४२,४७९	४२,१३,२२३	४०,८१०	२४,८४,९९६	२३,२२५
			३३·७३	४१·२९	०·४०	२४·३५	०·२३

आसामके मुस्लिम और गैर-मुस्लिम जिले—

जिला या	क्षेत्रफल	कुलआबादी	मुसलमान	हिन्दू	ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य	कुल गैर-मुसलमान
मुस्लिम बहुमतवाला जिला—								
सिलहट	१५,४७८	३१,१६,६०२	१८,९२,११७	११,४९,५१४	३,०५५	६९,९०७	२,००९	१२,२४,४८५
			६०·७१	३६·८८	०·०९	२·२४	०·०६	३९·२७
गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिले—								
सिलहटको	४९,४७३	७०,८८,१३१	१५,५०,३६२	३०,६३,७०९	३७,७५५	२४,१५,०८९	२१,२१६	५५,३७,७६९
छोड़कर सारा आसाम			२१·८७	४३·२२	०·५३	३४·०७	०·३०	७८·१३

ऊपरके चक्रपर ध्यान देते हुए यह समझना कठिन हो जाता है कि किस आधारपर आसाम प्रान्तके मुस्लिम क्षेत्र होनेका दावा किया जाता है। जहाँ सारे प्रान्तमें मुसलमानोंकी आबादी सिर्फ ३३·७३ प्रतिशत है वहाँ हिन्दुओंकी आबादी ४१·२९ प्रतिशत है। अगर जिलोंकी दृष्टिसे विचार करें तो सिर्फ एक सिलहट जिला ऐसा है जहाँ मुसलमानोंकी संख्या ६·७१ प्रतिशत है। दूसरे किसी भी जिलेमें वे बहुसंख्यक नहीं हैं—हालाँ कि कचार और ग्वालपारा जिलोंमें उनकी संख्या अन्य किसी भी सम्प्रदायसे अधिक क्रमशः ३६·३३ और ४६·२३ प्रतिशत है। इसलिए अधिकसे अधिक सिर्फ सिलहट जिलेके मुस्लिम क्षेत्रमें होनेका दावा किया जा सकता है, हालाँकि ६०·७१ प्रतिशतका बहुमत अत्यधिक बहुमत नहीं है। कुछ छोटे जिलोंमें आदिम जातियोंका अत्यधिक बहुमत है और जिन जिलोंमें हिन्दू बहुसंख्यक नहीं हैं वहाँ वे आदिम जातियोंके साथ मिलकर बहुसंख्यक हो जाते हैं। प्रान्तके १४ जिलोंमेंसे ८ जिलोंमें मुसलमानोंकी संख्या ५ प्रतिशतसे कम और तीनमें तो १ से भी कम है। किसी क्षेत्रके मुस्लिम क्षेत्रमें होनेका दावा लीग उसी हालतमें कर सकती है जब कि वहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हों, पर जहाँ ऐसा बहुमत नहीं है वहाँ यह दावा, अकेले अन्य किसी भी सम्प्रदायसे संख्यामें अधिक होते हुए भी, नहीं टिक सकता, क्योंकि वहाँ अन्य समुदाय आपसमें मिलकर बहुसंख्यक बन जाते हैं। अन्य किसी सम्प्रदायने भारतसे पृथक् होनेका दावा नहीं किया है, बल्कि औरोंने इस प्रकारके पार्थक्यका विरोध ही किया है। इसलिए केवल मुस्लिम बहुमतके बलपर लीग यह दावा कर सकती है।

इस सम्बन्धमें आदिम जातियोंकी स्थितिपर भी विचार करना आवश्यक है। निम्नाङ्कित चक्रसे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार धर्मके आधारपर इस बहुत बड़ी संख्याका वर्गीकरण करनेके स्थानपर जातीय मूल दिखलाकर हिन्दुओंकी संख्या इस प्रान्तमें घटायी गयी है। उसमें हम यह भी देखेंगे कि किस प्रकार इस प्रान्तमें मुसलमानोंकी संख्या बढ़ गयी है।

सन् १९०१, १९११, १९२१, १९३१ और १९४१ की जनगणनामें

मुख्य सम्प्रदायोंका वितरण-सूचक चक्र

न्त	कुल आबादी १९४१	प्रति १०,००० आबादीपर														
		हिन्दू					मुसलमान					आदिमजातियाँ				
		१९४१	१९३१	१९२१	१९११	१९०१	१९४१	१९३१	१९२१	१९११	१९०१	१९४१	१९३१	१९२१	१९११	१९०१
टिश साम	१,०२,०४,७३३	४१२९	५७२०	५४३३	५४१८	५५७८	३३७३	३१९६	२८९६	२८१०	२६८९	२४३५	८२५	१८७९	१६५२	१६५२
ामी यासत	७,२५,६५५	४५१६	४३६२	५९९४	५८१६	५९९६	४३६	३९३	४५५	४१९	३६५	४६७४	४४९१	३४३३	३७५८	३६३२
कुल ासाम	१,०९,३०,३८८	४१५४	५६२८	५४६१	५४३८	५५९८	३१७८	३००७	२७७८	२६९३	२५८१	२५८४	१०७३	१५७३	१७५५	१७४४

इससे देख पड़ेगा कि जहाँ हिन्दुओंकी आबादी ब्रिटिश आसाममें १९३१ के ५७.२० प्रतिशतसे घटकर १९४१ में ४१.२९ प्रतिशत और रियासतों सहित सारे आसाममें ५६.२८ प्रतिशतसे बढ़कर ४१.५४ प्रतिशत हो गयी है वहाँ आदिम जातियोंकी संख्या १९३१ और १९४१ की जनगणनाओंके बीच ब्रिटिश आसाममें ८.२५ प्रतिशतसे बढ़कर २४.३५ और रियासतों सहित सारे आसाममें १०.७३ प्रतिशतसे बढ़कर २५.८४ प्रतिशत हो गयी है। इस अचानक और महान् अन्तरका कारण बतलाते हुए जनगणनाके आसामके सुप-रिण्टेण्डेण्ट श्री० के० डब्ल्यू०पी० मरारने लिखा है—

'तथ्य तो यह है कि इस चक्रसे केवल मूल समुदायका पता चलेगा, धर्मका नहीं। अगर समय और धन पर्याप्त होता तो और ब्योरे भी १९४१से सम्बन्ध मिलानेके लिए दिये गये होते; पर इस कटी-छँटी जनगणनामें यह सम्भव नहीं था। बहुतसे लोग समुदाय और धर्मको एक ही और परस्पर अभेद्य समझते हैं और प्रायः ऐसा होता भी है। पर आदिम जातियोंके सम्बन्धमें धर्म और समुदायका एक होना कोई जरूरी नहीं है। वर्तमान जनगणनामें उनका वर्गीकरण धर्मके आधारपर न कर समुदायके ही आधारपर किया गया है। गत जनगणनामें जहाँ किसी खासियाने अपने धर्मके अनुसार हिन्दू, ईसाई, मुसलमान या अनीमीके खानेमें अपना नाम दर्ज कराया होगा, वहाँ इस बार वह खासीके ही वर्गमें रखा गया है। ईसाइयों और कुछ कम अंशोंमें हिन्दुओं और बौद्धोंकी आबादीमें जो प्रकाश रूपसे इनकी कमी आ गयी है उसका यही कारण है। साथ ही उस अनुपातसे कुछ अधिक ही आदिम जातिवालोंकी आबादीमें वृद्धि हो गयी है।······अगर उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखकर अङ्कोंकी जाँच की जाय तो पता चल जायगा कि कोई 'भयङ्कर' प्रवृत्ति नहीं है। सभी समु-दायोंमें भिन्न भिन्न अंशोंमें स्वाभाविक वृद्धि हुई है और किसी भी जिलेमें प्रवासके अतिरिक्त और किसी कारणसे पूर्ववर्ती साम्प्रदायिक अनुपातमें उल्लेखनीय परि-माणमें अन्तर नहीं पड़ा है।

'हिन्दुओं या ईसाइयोंके हटाये जानेका कोई प्रश्न नहीं है। ईसाइयोंके

सम्बन्धमें एक अलग नोट दिया जा रहा है। हिन्दुओंका अनुपात पहले ही जैसा बना हुआ है। वर्ण या धर्मके अभावमें १९३१ की विधि काममें लानेका यही अर्थ होता है कि आदिम जातियोंकी संख्याका, जो आसामके लिए महत्त्वपूर्ण विषय है और प्रान्तमें विस्तृत भूभाग संरक्षित रखे जानेका एक प्रधान कारण है, कोई लेखा प्रस्तुत नहीं है।' *

आदिम जातियोंको अलग खानेमें दर्ज करनेके विचारसे, अगर साथ ही उनका धर्म भी दर्ज कर दिया जाता तो, किसीको झगड़नेकी जरूरत नहीं थी। सेंसस सुपरिण्टेण्डेण्टका कहना है कि 'हिन्दुओंका अनुपात पहले ही जैसा बना हुआ है। पर चक्रमें अङ्कित उनकी संख्या और अनुपातपर दृष्टिपात करनेपर स्थितिका जो चित्र प्राप्त होता है वह नितान्त अशुद्ध और भ्रमोत्पादक है। सेंसस-सुपरिण्टेण्डेण्टने ईसाइयों और हिन्दुओंकी संख्याके अधिक ह्रासपर उक्त विवरण देनेके अनन्तर १९४१की इस कटी-छँटी जनगणनामें भी ईसाइयोंकी संख्या निश्चित करनेका भरसक प्रयत्न किया है। उन्होंने सारे आसाम—ब्रिटिश और रियासती—में ईसाइयोंकी संख्या ३,८६,००० होनेका अनुमान लगाया है। ईसाइयोंकी जो संख्या दर्ज है वह सिर्फ ६७,१८४ है; शेष ३,१९,००० ईसाई आदिम जातिवाले होंगे जिनकी संख्याका अनुमान १९३१ की जनगणनाके आधारपर किया गया होगा। इस प्रकार जहाँ रिपोर्टमें ईसाइयोंकी संख्या अल्पाधिक शुद्ध रूपमें देनेका प्रयत्न किया गया है वहाँ हिन्दुओंकी संख्याके सम्बन्धमें नोटमें दिये गये इन अस्पष्ट शब्दोंसे ही पाठकको सन्तोष करना पड़ता है कि हिन्दुओंका अनुपात पहले ही जैसा बना हुआ है।'

भारतकी १९४१ की सेंससके कमिश्नर श्री एम. डब्ल्यू. एम. यीट्स, सी. आइ. ई., आइ. सी. एस. ने आदिम जातिवालोंका धर्म न दर्ज कर मूल-जाति दर्ज करनेका जो १९४१ में नियम बदला गया, उसकी आवश्यकता बतलाते हुए लिखा है—'इस्लाम या ईसाई धर्म और अन्य धर्मोंके बीच एक निश्चित दीवार या घेरा होता है जिसे धर्म परिवर्तन करनेवालेको पार करना ही

*** सेंसस आव इण्डिया, १९४१, खण्ड ९, आसाम टेबल्स, पृष्ठ २१-२२।**

पड़ता है पर अनीमी (प्रेतवादी) और वैसे ही अस्पष्ट हिन्दू धर्मके बीच ऐसी कोई रोक नहीं है। दोनोंके बीच एक चौड़ा भू-भाग है जो किसीका भी नहीं कहा जा सकता। आदिम जातियोंको हिन्दू धर्ममें प्रविष्ट होनेके लिए न तो धर्म-का परिवर्तन करना पड़ता है, न किसी विशेष मतका ग्रहण और न अलग समझे जानेवाले किसी विशेष मतका ग्रहण और न अलग समझे जानेवाले किसी विशेष समाजमें प्रवेश; उसे क्रमशः उक्त भू-भागसे गुजरना पड़ता है जिसमें प्रायः एकसे अधिक पीढ़ियाँ लग जाती हैं। कोई विशेषज्ञ ही बतला सकता है कि किस काल या किस पीढ़ीमें कोई व्यक्ति उस स्थानपर पहुँच जायगा जहाँ वह कह सके कि अर्द्धाधिक भाग पार कर चुका।......इसी दृष्टि-से यह समुदाय इस रूपमें दर्ज किया गया है और उसके सहायकोंकी जाँच भी इसी दृष्टिसे होनी चाहिए। इस प्रकार ब्रिटिश भारतमें कुल आबादीपर ६४½ प्रतिशत हिन्दू, २७ प्रतिशत मुसलमान और १ प्रतिशत भारतीय ईसाई हैं। आदिम जातियाँ ५½ प्रतिश हैं, पर इस ५½ प्रतिशतका अनुमानतः २०वाँ हिस्सा धर्मके विचारसे ईसाई होगा और शेष अल्पाधिक मात्रामें हिन्दुओंकासा रहन-सहन होनेके कारण हिन्दू धर्मकी ओर पड़ेगा। इनमें एक छोरपर तो आदिम जातियोंका जीवन बना हुआ है और दूसरे छोरपर पूर्ण रूपसे हिन्दुत्वका रंग है। दोनों रूपोंके बीचमें संक्रमणकी प्रायः प्रत्येक अवस्था या दरजा है। प्रत्येक प्रान्त या रियासतमें यह अवस्था भिन्न-भिन्न है और वस्तुतः परिणति किस सीमातक हुई है इसका ठीक-ठीक अन्दाजा स्थानीय व्यक्ति ही लगा सकते हैं।"*

वे पुनः कहते हैं 'आदिम जातियोंके वर्गीकरणका यह सिद्धान्त मान लेनेपर बङ्गालमें हिन्दुओं और मुसल्मानोंका अनुपात बहुत कुछ १९३१ जैसा ही है।······बिहार, मध्यप्रान्त और आसामके अङ्कोंसे आदिम जाति-वालोंके वर्गीकरण और हिन्दू धर्म ग्रहण करनेका प्रश्न स्पष्ट रूपसे सामने आ जाता है। लेकिन अगर वर्गीकरणमें १९३१ का धार्मिक आधार रखा

---

* 'सेंसस आव इण्डिया, १९४१, जिल्द १, इण्डिया पृ० २८–२९।

जाता तो इसके फलस्वरूप हिन्दुओंके अनुपातमें कुछ भिन्नांशकी कमी पड़ जाती।*

विशेषज्ञोंके मतानुसार आदिम जातिवालोंका रहन-सहन जितना हिन्दुओंसे मिलता है उतना अन्य किसी धार्मिक दलसे नहीं और हिन्दुत्व ग्रहण करनेकी उनकी प्रक्रिया भी न-जाने किस युगसे चली आ रही है। आदिम जातिवालोंको हिन्दू धर्ममें आत्मसात् करनेका कार्य गत सदियों और सहस्राब्दोंमें बड़े पैमानेपर हुआ है और अतीतसे प्रत्यक्ष या विषम रूपमें उनका सम्बन्ध-विच्छेद भी नहीं हुआ है। इसलिए उनका हिन्दुओंके साथ गिना जाना उचित ही है, कमसे कम उन्हें तो हिन्दूवर्गमें रखना ही चाहिए जो अपनेको हिन्दू कहते हैं। जैसा कि १९४१ के पहलेकी गणनाओंमें होता रहा है।

श्री वेरियर एलविन एम. ए. (आक्सन), एफ. आर. ए. आइ., एफ. एन. आइ., जो कई वर्षोंसे मध्यप्रान्तमें आदिम जातिवालोंके साथ रहकर उनकी संस्कृतिका अध्ययन करते रहे हैं, साइन्स कांग्रेस (विज्ञान सम्मेलन) के १९४४ में दिल्लीमें हुए ३१वें अधिवेशनके जाति-विज्ञान और पुरातत्व विभागके अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने अभिभाषणका विषय 'जातीय विज्ञानमें सत्य' रखा था और कार्यक्षेत्रमें सत्यको ऊँचा स्थान देनेकी आवश्यकता बतलायी थी जिसमें भारतमें जाति-विज्ञानकी स्थापना हो सके। उनका कहना है 'इसपर जोर देना आवश्यक है क्योंकि भारतमें जाति-विज्ञान सन्देहकी दृष्टिसे देखा जाता है। इसके कई कारण हैं। जनगणनाके अवसरपर कुछ विद्वानों और राजनीतिज्ञोंके आदि-वासियोंको हिन्दुओंसे पृथक् करनेके प्रयत्नसे लोगोंकी यह धारणा हो गयी है कि विज्ञान राजनीतिक और साम्प्रदायिक प्रयोजनोंकी सिद्धिकी दिशामें लगाया जा सकता है। पूर्वकालमें जनगणनाके अधिकारी अनीमी हिन्दुत्वको विभिन्न धर्म बतलानेका प्रयत्न कर चुके हैं। बादमें 'आदिवासीय धर्मानुयायी' का प्रयोग किया जाने लगा और इस समुदायके व्यक्तिसे धर्म-निर्णयके लिए यह प्रश्न करनेका प्रस्ताव किया

* वही, पृ० ३०।

गया कि वह हिन्दू देवताकी पूजा करता है या आदिवासियोंके देवताओंकी। यह जाँच बिलकुल अर्थहीन थी। कमसे कम दक्षिण भारतके आदिवासियोंका धर्म तो प्रत्यक्ष ही वही है जो किसी हिन्दू परिवारका है। हिन्दुत्वमें ऐसे कई तत्व हैं जिन्हें धर्म-विज्ञानी प्रतवाद (अनीमी) कह सकता है। इसलिए आरम्भसे ही आदिवासियोंको हिन्दू धर्मके खानेमें दर्ज करना चाहिए था। और किसी प्रकारका वर्गीकरण बिलकुल बुरा होगा। भिन्न भिन्न आदिवासियोंके धर्मका ठीक रूप निश्चित कर सकना अनुभवी धर्म-विज्ञानीके लिए भी कठिन ही होगा, जनगणनाके समय गिनती करनेवाले मूर्ख और अज्ञान व्यक्तिके लिए तो यह कार्य असम्भव ही है। हम यह जानना चाहते हैं कि भारतमें कितने आदिवासी हैं जिसमें हम इस बातपर जोर दे सकें कि देशके सम्बन्धमें उनकी भी राय समानरूपसे ली जानी चाहिए। पर हमें न तो धर्मके आधारपर उनकी वास्तविक स्थितिका पता है और न जातिके आधारपर। दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि बहुतसे जाति-विज्ञानवेत्ता आदि-वासियोंका हिन्दूधर्मसे अन्तर ठीक-ठीक कैसे दिखलाया जाय, इस जटिल प्रश्नमें ही उलझ गये जिससे लोगोंकी दृष्टिमें हमारे विज्ञानका आदर घट गया है।'*

जनगणनाके अधिकारियोंने जो सारी गड़बड़ी की है, जैसा कि ऊपरके उद्धरणोंमें उन्होंने स्वीकार भी किया है, उसके फलस्वरूप कुछ प्रान्तों और रियासतोंकी, और इस प्रकार सारे भारतकी आबादीमें हिन्दुओंकी संख्या और अनुपात बहुत घट गया है। भारतके सेंसस कमिश्नर श्री यीट्सका कहना है 'आदिम जातिवालोंकी जाति दर्ज करनेके कारण मुसलमानोंकी संख्यामें प्रायः कोई फर्क नहीं पड़ा है। गत दशाब्दोंकी तरह ही उनकी संख्यामें क्रमशः वृद्धि ही देख पड़ती है जिसके कारणोंपर उन वर्षोंकी रिपोर्टोंमें कुछ विस्तारके साथ विचार भी किया गया है। बङ्गालके अंशमें कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है, पञ्जाबमें ½ या १ प्रतिशतकी वृद्धि हुई है। सबसे अधिक वृद्धि

---

* साइन्स कांग्रेसके ३१वें अधिवेशनका कार्यविवरण पृष्ठ ९१

आसाममें देख पड़ती है जो मैमनसिंह या पूर्वी बङ्गालसे लोगोंके प्रवास करनेका सूचक है। *

ऊपरके चक्रमें आसामकी आबादीके प्रमुख तत्वोंकी प्रतिशत संख्या दी गयी है। हिन्दुओंकी संख्यामें एकाएक कमी आ जानेका कारण भी ऊपर बतलाया गया है। इसमें देख पड़ेगा कि मुसलमानोंका अनुपात निश्चित रूपसे बढ़ता ही गया है। १९११ में ब्रिटिश आसाममें जहाँ उनका अनुपात सिर्फ २६·८९ प्रतिशत था, वहाँ १९४१ में वह बढ़कर ३३·७३ हो गया। इस वृद्धिका कारण पूर्वी बङ्गाल, विशेषकर मैमनसिंह जिलेसे आसामके जिलोंमें मुसलमानोंका प्रवास है। १९३१ की सेन्सस-रिपोर्टमें पूरे एक अध्यायमें इस प्रवासके प्रश्नपर विचार किया गया है और यह दिखलाया गया है कि आसाम प्रवासके तीन मुख्य प्रवाह रहे हैं—(१) आसामके चायके बागीचोंमें प्रवास, (२) पूर्वी बङ्गालवालोंका प्रवास, (३) नेपालियोंका प्रवास। १९३१ की गणनासे आसामके सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री सी० एस० मुल्लान एम० ए० आइ० सी० एस० का कहना है 'वर्तमान जनगणनामें काफी अन्तर पड़ा है। बङ्गालसे आसाममें प्रवास करनेवालोंका सिलसिला तो पहले दशाब्दों जैसा ही रहा है, पर कुलियोंकी भर्तीवाले प्रान्तोंसे बहनेवाला स्रोत पहलेसे कुछ मन्द पड़ गया है।'† पूर्वी बङ्गालसे आसाममें प्रवास करनेवालोंके सम्बन्धमें आसामकी सेन्सस-रिपोर्टसे एक विस्तृत उद्धरण देना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है।

'गत २५ वर्षोंके अन्दर इस प्रान्तमें जो शायद सबसे मतत्वपूर्ण घटना घटित हुई है—ऐसी घटना जो आसामके भविष्यको ही स्थायी रूपसे बदल दे सकती है और आसामी संस्कृति और सभ्यताके ढाँचेको १८२० के बर्मी आक्रामकोंसे भी अधिक चकनाचूर कर दे सकती है—वह है जमीनके भूखे बङ्गाली प्रवासियोंके, जिनमें अधिकांश पूर्वी बङ्गाल और विशेषकर मैमनसिंह जिलेके मुसलमान हैं, विशाल झुण्डका हमला। यह हमला १९११ के पहले

---

* सेन्सस आव इण्डिया, १९४१ जिल्द १ इण्डिया टेबल्स पृष्ठ २९

† सेंसस आव इण्डिया, १९३१, जिल्द ३ आसाम रिपोर्ट भाग, १ पृष्ठ ४४।

ही आरम्भ हो गया था और पहले पहल उसी सालकी सेन्सस-रिपोर्टमें इस आनेवाले दलका उल्लेख है। लेकिन, जैसा कि हमें अब विदित है, १९११ की गणनामें ग्वालपाराकी चर-भूमिसे पहले पहल अपना नाम दर्ज करानेवाले ये बङ्गाली प्रवासी पीछे पीछे आनेवाली एक बड़ी सेनाके अग्रसैनिक या स्काउट थे। १९२१ तक पहली सेना आसाममें प्रवृष्ट हो गयी थी और ग्वालपारा जिलेपर प्रायः कब्जा भी कर चुकी थी। १९११ और १९२१ के बीचके घटनाक्रमका १९२१ की सेंसस-रिपोर्टमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

"१९११ में पूर्वी बङ्गालसे आनेवाला शायद ही कोई कृषक ग्वालपाराके बाहर गया हो; आसाम-घाटीके दूसरे जिलोंमें गणनामें जिन लोगोंने अपना नाम दर्ज कराया उनकी संख्या सिर्फ कुछ हजार ही थी और उनमें अधिकांश किरानी, व्यापारी और पेशेवर लोग ही थे। गत दशाब्द (१९११–१९२१) में ये लोग ऊपरकी घाटीमें दूरतक फैल गये तथा निम्न और मध्यभागके चार जिलोंमें आबादीका एक विशिष्ट अङ्ग हो गये हैं। ऊपरके दो जिले (शिवसागर और लखीमपुर) अभी अछूते हैं। ग्वालपाराकी आबादीमें ये प्रवासी लगभग २० प्रतिशत हो गये हैं। इनका दूसरा प्रिय जिला नवगाँव है जहाँ इनकी संख्या आबादीपर १४ प्रतिशत है। कामरूपमें, विशेषकर बारपेटा सब-डिविजनमें परती बड़ी तेजीसे जोतमें लायी जा रही है। दराङ्गमें खोज और बसनेका कार्य अभी आरम्भिक अवस्थामें है, ब्रह्मपुत्रके तटसे वे अभी बहुत दूरतक नहीं बढ़े हैं।······लगभग प्रत्येक ट्रेन और स्टीमरसे इन प्रवासियोंका दल पहुँचता है और ऐसा जान पड़ता है कि कुछ ही दिनोंके अन्दर ये प्रवासी ऊपरकी घाटीमें नदीसे दूरतक फैल जायँगे।"

"अब हम १९२१ के बादकी हमलेकी प्रगतिकी छान-बीन करें। स्मरण रखनेकी पहली बात तो यह है कि इन प्रवासियोंके बच्चे, जिनका जन्म आसाममें हुआ, 'आसाममें उत्पन्न' दर्ज किये गये हैं, इसलिए अङ्कोंमें उनका कोई अलग उल्लेख नहीं है और नीचेके चक्रमें उन लोगोंकी कुल संख्या दी गयी है जो बङ्गालमें पैदा हुए थे, केवल प्रवासियोंकी नहीं।"

"आसाम घाटीके प्रत्येक जिलेमें बसनेवाले बङ्गालमें उत्पन्न व्यक्तियोंकी १९११, १९२१ और १९३१ की संख्याओंका सूचक चक्र। (म= मैमनसिंह जिला ; अन्तके ००० छोड़ दिये गये हैं।)

वर्ष	ग्वालपारा	कामरूप	दराङ्ग	नवगाँव	शिवसागर	लखीमपुर
१९११	७७(म ३४)	४(म १)	७(म १)	४ म १)	१४(म ०)	१४(म ०)
१९२१	१५१(म ७८)	४४(म ३०)	२०(म १२)	५८(म ५२)	१४(म ०)	१४(म ०)
१९३१	१७०(म ८०)	१३४(म ९१)	४१(म ३०)	१२०(म १०८)	१२ म ०)	१३(म ०)

"ऊपरके चक्रमें मैमनसिंह जिलेके अंक कोष्ठकोंके भीतर रखे गये हैं क्योंकि यही एक जिला इस बहुत बड़े प्रवासका मुख्य कारण हुआ है।"

"ये अंक विस्मयजनक हैं और इस बातके सूचक हैं कि किस आश्चर्य-जनक शीघ्रताके साथ आसाम घाटीके निम्न जिले मैमनसिंहके उपनिवेश बनते जा रहे हैं।......मैं पहले ही कह चुका हूँ कि १९२१ तक पहली सेनाने ग्वालपारापर कब्जा कर लिया था। १९२१—३१ में आनेवाली दूसरी सेनाने उस जिलेमें अपनी जड़ मजबूत कर ली है और चटगाँवपर कब्जा करनेका काम भी पूरा कर लिया है। कामरूपके बारपेटा सब-डिवीजनका भी पतन हो चुका है और दरांगपर हमला जारी है। शिवसागर अभी पूरा पूरा बचा हुआ है, पर ऊपर लखीमपुरके कुछ हजार मैमनसिंहिया अगली चौकीके रूपमें हैं जो अगले दशाब्दमें बड़े पैमानेपर कारवाई करनेके लिए आधारका काम दे सकते हैं।"

"पूर्वी बङ्गालके इन प्रवासियों (आसाममें उत्पन्न बच्चों सहित) की, जो इस समय आसामघाटीमें आबाद हैं, संख्याका ठीक-ठीक अनुमान कर सकना कठिन है। १९२१ में श्री लायडने उनकी संख्या, आसाममें उत्पन्न बच्चोंके साथ, कमसे कम ३लाख होनेका अनुमान किया था। मेरे अनुमानसे इस समय यह संख्या ५लाखसे अधिक ही होगी, सिर्फ मैमनसिंहके नये प्रवासियोंकी संख्या १लाख ४०हजार है, पहले आये हुए लोगोंकी संख्या बढ़ती ही रही होगी। जैसा कि १९२१ की सेंसस-रिपोर्टमें कहा गया है, ये प्रवासी एकाकी नहीं बल्कि सपरिवार आकर बसे हैं। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि ३लाख ३८हजार व्यक्तियोंमें जो मैमनसिंहमें उत्पन्न और आसामकी गणनामें लिये गये, १लाख ५२हजारसे अधिक स्त्रियाँ हैं। भविष्यमें क्या होगा? लक्षण तो यही देख पड़ता है कि अभी आक्रमणका अन्त नहीं हुआ है। अभी आसाममें, विशेषकर उत्तर लखीमपुर सब डिवीजनोंमें बहुतसी जमीन खाली पड़ी हुई है, और काम-रूपमें बहुत बड़ी संख्यामें प्रवासियोंके आबाद हो जानेपर भी अभी बहुतोंके लिए गुञ्जाइश है। मङ्गलादाई सब-डिवीजनमें भी बहुत कुछ प्रगति हो सकती है। ग्वालपारा और नवगाँवकी अधिकांश परती अब आबाद हो चुकी

है इसलिए प्रवासियोंका रुख कामरूप, मङ्गलादाई और उत्तर लखीमपुरकी ही दिशामें अधिक होगा। यदि प्रवासियोंके मुख्य दलको इस बादवाले सब-डिवीजनकी गैर-आबाद जगहोंका पता चला तो उसके इन्तजार करते हुए हलोंके लिए वे सचमुच 'स्वर्णभूमि' सिद्ध होंगी।

'यह बात दुःखद तो अवश्य है पर किसी प्रकार असम्भव नहीं कि अगले ३० वर्षोंमें केवल शिवसागर एक ऐसा जिला बच रहेगा जहाँ आसामीको चैन और आराम मिल सकेगा।''*

१९४१ की सेंसस-रिपोर्टके एक छोटेपर अर्थ-गर्भ वाक्यसे उपर्युक्त कथाका अन्त होता है 'सबसे अधिक वृद्धि (मुसलमानोंकी आबादीमें) आसाममें हुई है और यह मैमनसिंह तथा पूर्वी बङ्गालसे होनेवाले प्रवासको प्रकट करती है।''†

आसामको बङ्गालके मुसलमानोंका उपनिवेश बनानेकी नीति आसामके सादुल्ला लीगी मन्त्रि-मण्डल ओर बङ्गालके नाजिमुद्दोन लीगी मन्त्रि-मण्डलके संरक्षणमें बराबर जारी रही है जो अक्टूबर, १९४४ के अन्तिम सप्ताहमें प्रकाशित निम्नलिखित प्रेस-विज्ञप्तिसे स्पष्ट हो जाता है।

"आसाम सरकारने अपने २१ जून १९४० के निश्चयद्वारा १ जनवरी १९३८ के बाद बाहरसे प्रान्तमें आये हुए लोगोंके साथ जमीन बन्दोबस्त करनेपर रोक लगा दी है। इस निश्चयका मैमनसिंह जैसे सीमावर्ती जिलोंपर गहरा असर पड़ा है जहाँसे इस प्रान्तमें खेतीके लायक जमीनकी तङ्गी होनेके कारण बहुतसे किसान जमीनकी तलाशमें आसाम जाया करते हैं। बङ्गालकी व्यवस्थापिका सभाके गत अधिवेशनमें गवर्नरको इस आशयका आवेदनपत्र देनका निश्चय किया गया है कि वे भारत सरकारपर फौरन ऐसी काररवाई करनेके लिए दबाव डालें कि आसाम सरकार यहाँसे जानेवाले किसानोंके साथ आसाम घाटीमें जमीन बन्दोबस्त करनेपर जो

---

* **सेंसस आव इण्डिया, १९३१, जिल्द ३, आसाम-रिपोर्ट, भाग १, पृष्ठ ४९–५२।**

† **सेंसस आव इण्डिया, १९४१, इण्डिया टेबल्स, पृष्ठ २९।**

पाबन्दियाँ लगायी गयी हैं उन्हें उठा ले। इसके अनुसार, बङ्गाल सरकारने अन्तः प्रान्तीय सद्भावना तथा बङ्गालकी पीड़ित जनताको सहायता पहुँचानेकी दृष्टिसे लगी पाबन्दियाँ उठा लेने या स्थगित करनेकी प्रार्थना की।

"इसके उत्तरमें आसाम सरकारने कहा कि प्रवासियोंके साथ जमीन बन्दोबस्त करनेकी नीति पहलेसे कुछ नरम कर दी गयी है और आम चरागाहोंके रूपमें कुछ जिलोंमें जो जमीनें सुरक्षित हैं उनमेंकी फाजिल जमीन लेकर इस कार्यमें और शीघ्रता लानेका प्रयत्न किया जा रहा है। फिर भी आसाम सरकार इन पाबन्दियोंको, कमसे कम उन क्षेत्रोंसे जहाँ जरायम पेशावाले बहुत बड़ी संख्यामें है, बिलकुल उठा लेनेमें असमर्थ है, क्योंकि इन लोगोंको अशङ्का है कि वहाँ प्रवासियोंका कुछ ही दिनोंमें आगमन हो जायगा जिसके कारण वे पहले कष्ट सह चुके हैं। पर उस सरकारने आश्वासन दिया है कि पाबन्दियाँ धीरे-धीरे उठाते रहने और प्रान्तके अपने निवासियोंके लिए जमीनकी आवश्यकता और आदिम जातियोंकी रक्षाका खयाल करते हुए आगन्तुकोंको नयी जमीनें देते रहनेका कार्य चलता रहेगा।"

यहाँ सिर्फ इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रकारके कार्यद्वारा सादुल्ला-मन्त्रिमण्डल लौटकर पुनः आसामके भूतपूर्व गवर्नर सर राबर्ट रीडके ही निर्णयपर पहुँच गया जिन्होंने बन्दोबस्त-सम्बन्धी नीतिपर पुनः विचारकर सर सादुल्लाके पूर्वगामी मन्त्रिमण्डलकी एक उन्नति-योजना वापस ले ली। हालके एक लेखमें सर राबर्ट रीडने लिखा है—'आसामके आदिवासियोंने, जो इस क्षेत्र (आसामघाटी) में आरम्भमें बसे हुए थे, बङ्गालके मैमनसिंह जिलेसे चलनेवाली मुसलमान प्रवासियोंकी शक्तिशाली धारासे दबनेके बजाय नयी शक्ति प्राप्त कर ली है। इससे मुसलमानोंको तो सन्तोष है पर हिन्दू-समुदायको नहीं ; क्योंकि आसाममें मुसलमानोंकी संख्या जितनी बढ़ेगी, पाकिस्तानका पक्ष उतना ही प्रबल होता जायगा।'* प्रचलित सीमापद्धति-(लाइन सिस्टम)

* १९ दिसम्बर १९४४ के 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' में प्रकाशित 'दि बैक ग्राउण्ड आव इमिग्रेशन इन टू आसाम' शीर्षक लेखमें उद्धृत।

के अनुसार आगन्तुक उन्हीं क्षेत्रोंतक सीमित रखे गये थे जहाँके स्थायी-निवासियोंके स्वार्थोंको किसी तरहकी आँच न पहुँचती, पर अब उक्त पद्धति-वाली सीमाके बाहर पड़नेवाली जमीनोंपर ही नहीं बल्कि उन सुरक्षित आम चरागाहोंपर भी उनके हिस्से ले लेकर हमला शुरू कर दिया गया है जिनकी पवित्रताकी रक्षा ब्रिटिश शासनके आरम्भसे अभी हालतक होती आयी है। उन्हीं सुरक्षित स्थानोंको लक्ष्यकर विज्ञप्तिमें कहा गया है कि आसाम सरकारने धीरे-धीरे प्रतिबन्धोंको हटाने और आगन्तुकोंके लिए नयी जमीनें प्रस्तुत करते जानेका आश्वासन दिया है।

इस प्रकार आसामके हिन्दुओंके विरुद्ध दोतरफा हमला जारी है—जिसका परिणाम हिन्दू और आदिम जाति दोनोंके लिए एकसा होगा—जिनमेंसे एकमें तो पूर्वी बङ्गाल, विशेषकर मैमनसिंह जिलेके मुसलमानोंको आसाममें प्रवास करने और उन जमीनोंको लेनेके लिए प्रोत्साहन दिया जाता है जो स्वयं वहाँके निवासियोंके प्रसारके लिए आवश्यक है और जिन्हें पृथक् कर देनेपर उनका काम चल सकना मुश्किल है, और दूसरेमें आदिमजातियोंको पृथक् किया जाता है जिससे हिन्दुओंकी संख्याका ह्रास हो जाय और आगे चलकर वे अल्प-संख्यक हो जायँ, या कमसे कम ऐसी स्थिति प्रस्तुत हो जाय जिसमें प्रान्तमें कोई समुदाय बहुसंख्यकके रूपमे न रह जाय। स्थितिका विपर्यय तो यह है कि १९४१ के सेंसस-कमिश्नर श्री यीट्स आदिमजातियोंकी पृथक् गणना इस बिना-पर उचित ठहराते हैं कि आदिमजातियोंकी पूरी संख्या प्राप्त करना आवश्यक था जिनके हितके लिए भारत शासन-विधानमे धारा ९१ और ९२ की व्यवस्था की गयी और उन सुरक्षित या अंशतः सुरक्षित क्षेत्रोंका निर्माण किया गया जिनका विशेष दायित्व गवर्नरोंपर है।* पर आसामके क्षेत्रोंके सम्बन्धमें इस दायित्वका निर्वाह कैसा किया जा रहा है यह आसामके एक अनुभवी आई. सी. एस., श्री एस. पी. देसाईकी रिपोर्टके निम्नलिखित अवतरणसे स्पष्ट हो जायगा।—

"आसामका जोत और माल-सम्बन्धी कानून, जहाँतक आगन्तुक दखलकारोंका

* सेंसस आव इण्डिया, १९४१, इण्डिया टेबल, पृष्ठ २८

सम्बन्ध है वस्तुतः उठसा गया है। आगन्तुक स्थानीय कर्मचारियों और अफसरोंको अपनी मुट्ठीमें कर लेनेकी बात खुल्लमखुल्ला कहते हैं। सुरक्षित क्षेत्रोंमें रोज ही नये-नये बाँसके टट्टर और स्थायी झोपड़े खड़े किये जाते देख पड़ते हैं। मैंने देखा कि आगन्तुक लोग स्थानीय अफसरों (सब-डिवीजनल अफसरसे लेकर नीचेतक) की जरा भी परवाह नहीं करते, यहाँतक कि प्रश्न करनेपर उत्तर-तक नहीं देते। जो थोड़ेसे नेपाली चरवाहे और आसामी पामुआ हैं वे कहीं बचाव-की सूरत न देखकर सम्राट्के नामकी दोहाई देते हैं। कहा जाता है कि इसके उत्तरमें कुछ नासमझ आगन्तुकोंने कहा था कि राजा तो मैं ही हूँ। वस्तुतः आसामियोंके निर्दलनका घड़ा भर गया है, वे यही महसूस करते हैं कि सारे कानून उन्हींके लिए हैं, आगन्तुकोंके लिए एक भी नहीं; और सरकार जो उनके हितोंकी देखभाल और रक्षा करनेवाली है, अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं कर सकी। वहाँके सभी वर्गोंके लोग अधीर हो गये और उनकी बातोंसे गहरी कटुता व्यक्त होती है।"*

लीग मन्त्रिमण्डलकी नीतिसे प्रोत्साहन और व्यवस्थापिका सभाके प्रवासी सदस्योंकी सहायता पाकर आगन्तुकोंके ये आक्रमणकारी दल तरह-तरहके गैर-कानूनी और उत्पीड़नके काम—ढोरों और भैंसोंके अङ्ग भङ्ग करने और चरवाहोंपर हमले और कभी-कभी हत्यातक कर देने जैसे—करने लगे। इससे स्वभा-वतः सारे प्रान्तमें क्षोभ और क्रोधकी लहर फैल गयी। नवम्बर १९४४ के व्यवस्थापिका सभाके अधिवेशनमें विरोध पक्षने जो ढाई वर्षके बाद संयोगियोंके साथ मिलकर पहले पहल इस रूपमें प्रकट हुआ, सरकारकी बहुत बड़ी आलो-चना की। सर सादुल्लाके सामने यह सुझाव रखा गया कि एक कान्फ़रेन्स कर बन्दोबस्तकी सारी समस्याओंपर विचार कर लिया जाय और जनताका गहरा असन्तोष दूर करनेके लिए सरकार उचित कारवाई करे। गवर्नरने समुदायोंमें परस्पर सद्भाव और शान्तिकी इच्छा प्रकट करते हुए इस विषयपर व्यवस्था-

---

***१९ दिसम्बर, १९४४ के 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्डमें प्रकाशित' 'दि बैक ग्राउण्ड आव इमिग्रेशन इन् टू आसाम' शीर्षक लेखमें उद्धृत।**

पिका सभामें भाषण किया। सर सादुल्लाने विरोध-पक्षका सुझाव मान लिया और उसके अनुसार १९४४ के दिसम्बरमें एक कान्फरेन्स की गयी जिसमें दो बातोंके विचारसे बन्दोबस्तके सारे प्रश्नपर विचार किया गया। एक बात तो प्रवासियोंके साथ-साथ, जिनके प्रति अबतक पक्षपात होता रहा था, प्रान्तके भूमि-हीन निवासियोंके साथ योजनानुसार परती बन्दोबस्त करने और आदिमजातियोंके निमित्त पट्टीनुमा जमीन (बेल्ट) सुरक्षित रखनेकी नीति अपनानेकी थी और दूसरी, रक्षित चरागाहोंसे दखलकारोंको निकाल बाहर कर उनकी अखण्डता बनाये रखनेकी थी। पर कान्फरेन्सके बाद जनवरी १९४५ में सरकारने जो निश्चय किया उनमें कान्फरेन्समें स्वीकृत संरक्षण सम्मिलित नहीं किये गये थे और कुछ बातें तो कान्फरेन्सद्वारा निर्धारित मौलिक सिद्धान्तोंके ही विपरीत थीं। उदाहरणार्थ, कान्फरेन्सने निश्चय किया था कि परती जमीनपर उन्हीं प्रवासियोंका हक होगा जो १९३८ के पहले आसाममें आये होंगे पर सरकारके निश्चयमें रक्षित चरागाहोंके कुछ ऐसे दखलकार बरी कर दिये गये थे जो १९३७ के भी बाद आये थे और रक्षित चरागाहोंपर जो दखलकार तीन सालतक काबिज रहकर खेती कर रहे थे उनका कब्जा बनाये रखनेके सम्बन्धमें निश्चय करनेका काम स्थानीय अधिकारियोंको सौंप दिया गया। परती जमीनके बन्दोबस्तके सम्बन्धमें यह निश्चय हुआ कि जिन लोगोंके पास ५ बीघे जमीन है वे बन्दोबस्तके हकदार न माने जायँ। वहाँके पुराने कृषकोंमें अधिकाशके पास इतनी जमीन होते हुए भी उन्हें कोई आर्थिक लाभ नहीं था, पर इस नियमके अनुसार वे बन्दोबस्तके हकसे वञ्चित रह गये। इसी तरह आदिम जातिवालोंके लिए जो जमीन रक्षित रखी जाने को थी उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया, इसलिए अनिश्चित गड़बड़ीकी गुञ्जाइश बनी रही। मार्च १९४५ में व्यवस्थापिका सभाके वजटवाले अधिवेशनमें यह विषय फिर पेश हुआ। इस समयतक विरोध-पक्ष कुछ और सबल हो गया था और सर मुहम्मद सादुल्लाको हार और पदत्यागकी आशंका होने लगी थी, इसलिए उन्होंने विरोध-पक्षसे समझौता कर लिया। उन्होंने लोगी माल-मन्त्रीको पृथक् करना स्वीकार कर लिया और विरोध पक्ष

द्वारा चुने गये व्यक्तिको उनके स्थानपर मन्त्रिमण्डलमें रख भी लिया। पर व्यवस्थापिका सभाका कार्यकाल बढ़ जानेपर सर सादुल्लाने समझौतेको शीघ्र कार्यान्वित करनेके बजाय नये निश्चयकी शब्दावली ठीक कर उसे प्रकाशित करनेमें ही तीन महीने लगा दिये। सुनते हैं कि वे तथा मन्त्रिमण्डलके अन्य लीगी सदस्य उनके द्वारा स्वीकृत नीतिके कार्यान्वित किये जानेमें हर तरहके अड़ंगे लगाते रहे और यह भी पता चला है कि मुस्लिम लीगके नेता श्री मुहम्मद-अली जिनाने मन्त्रिमण्डलद्वारा प्रयुक्त किये जानेके लिए कुछ आदेश भी निकाले थे जो समझौतेकी मूलनीतिके विरुद्ध थे। मार्च, १९४५ में सादुल्ला-मन्त्रिमण्डल-की प्रवास-सम्बन्धी नीतिपर हार हो गयी और संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाया गया जिसने इस नीतिमें सुधार करनेका वचन दिया। इधर व्यवस्थापिका सभा भी भङ्ग हो गयी है। कहा नहीं जा सकता, बादमें यह सारी स्थिति क्या रूप ग्रहण करेगी।

इन सब बातोंके बावजूद भी प्रान्तमें हिन्दुओंकी संख्या मुसलमानोंसे अधिक है। अगर आदिमजातिवालोंको भी हिन्दुओंके साथ जोड़ लिया जाय तो हिन्दुओं-का और अधिक बहुमत हो जाता है। लीगके प्रस्तावमें कहा गया है कि दोनों क्षेत्रोंमें सम्मिलित होनेवाली इकाइयाँ स्वशासित और प्रभुसत्तायुक्त होंगी। यह बात समझमें नहीं आती कि किस प्रकार आसाम, जिसमें बहुसंख्यक समुदाय गैर-मुसलमान और सिर्फ ३३·७३ प्रतिशत मुसलमान होंगे, 'स्वशासित और प्रभुसत्तायुक्त' मुस्लिम राज बन सकेगा। अगर कुछ हो सकता है तो वह पूर्वी क्षेत्रमें स्वशासित और प्रभुसत्तायुक्त गैर-मुस्लिम राज हो सकता है। अगर बहु-संख्यक मुसलमानवाला सिलहट जिला पृथक् कर दिया जाय तो प्रान्तके अन्य जिलों और सिलहटका जो रूप होगा वह ऊपरके चक्रोंसे स्पष्ट है।

लेकिन पाकिस्तानके समर्थकोंकी सूझका अन्त होनेवाला नहीं है, और भिन्न-भिन्न कारणोंके आधारपर आसामका दावा किया जाने लगा है। वे हैं— (१) आसाम उस क्षेत्रकी परिधिके भीतर है जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हैं। (२) गैर-मुसलमानोंमें आदिमजातिवालोंका प्राधान्य है। (३) प्रान्तमें

मुसलमान बहुसंख्यक हैं। वे इस प्रकार इस परिणामपर पहुँचते हैं—आसाम प्रान्तकी आबादी १ करोड़ ९ लाख है जिसमें हिन्दू केवल ४५ लाख या ४१·५ प्रतिशत हैं। इस प्रकार सारी आबादीके लिहाजसे हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। कुल आबादीमें २९ लाख या २६·७ प्रतिशत आदिमजातिवाले हैं जो सभ्य राजके सदस्योंकासा जीवन नहीं व्यतीत कर सकते इसलिए सारे वैधानिक विषयोंके विचारमें उन्हें छोड़ देना पड़ेगा। अल्पसंख्यकका वैधानिक अधिकार आबादीमें जो सभ्य वर्ग है उसके हाथमें होना चाहिए जो हिन्दुओं या मुसलमानोंका है जिनकी सम्मिलित संख्या ८० लाख है। आसामके बागों और तेलकी खानोंमें मजदूरोंकी बहुत बड़ी आबादी है पर वे प्रान्तके निवासी नहीं हैं और स्थायी भी नहीं हैं। इस अनधिवासी और विजातीय आबादीको वैधानिक दृष्टिसे छोड़ ही देना पड़ेगा। इन लोगोंकी कुल संख्या १५·२ लाख है। इस संख्याको अलग कर देनेपर राजनीतिक अधिकार केवल ६५ लाख व्यक्तियोंतक सीमित रह जाता है। इस प्रकार प्रान्तमें मुसलमान ही, जिनकी संख्या ३४·७५ लाख है, बहुसंख्यक ठहरते हैं। (४) 'बङ्गालके सीमावर्ती जिलोंके किसान अपर आसामके जोतमें न आये हुए भूभागमें आकर बसते जा रहे हैं। ये किसान अधिकांशतः मुसलमान हैं उन्हें धन देने और उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके निमित्त मध्यम वर्गके लोग, जो हिन्दू हैं, दूकानदार, व्यापारी, महाजन, डाक्टर आदिके रूपमें उनके मध्य बसते जा रहे हैं। संक्षेपमें, पूर्वी बङ्गालके जिले आसामतक फैलते जा रहे हैं। (५) सारे प्रान्तकी ही दृष्टिसे नहीं बल्कि उसके हर डिवीजनमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं। सुरमाघाटी डिवीजनमें सारी आबादीपर मुसलमानोंका अनुपात ५१ प्रतिशत है। यदि आदिमजातियोंको छोड़ दिया जाय तो राजनीतिक अधिकारोंके हकदार लोगोंमें मुसलमानोंका अनुपात ६५ प्रतिशतसे अधिक ही होता है। आसाम घाटीमें कुल आबादीपर हिन्दुओंका अनुपात ४७ प्रतिशत है इसलिए वे वहाँ स्पष्ट ही अल्पसंख्यक हैं। लगभग सारे अस्थायी श्रमिक आसाम घाटीमें काम करते हैं और वे सबके सब हिन्दू हैं, इसलिए वास्तविक साधारण हिन्दू निवासियोंकी संख्या सिर्फ १२·९८ लाख होती है। यहाँ भी

सारी आबादीके लिहाजसे मुसलमान ही बहुसंख्यक हैं और वे ही राजनीतिक अधिकारोंके हकदार हैं।'*

(६) पूर्वी पाकिस्तानकी बहुत बड़ी आबादीके लिए पर्याप्त भूभाग होना चाहिए, इसके विस्तारके लिए आसाममें क्षेत्र मिल सकेगा।

(७) आसाममें जङ्गल और खनिज पदार्थ—कोयला, पेट्रोल आदि—बहुतायतसे प्राप्य हैं, इसलिए पूर्वी पाकिस्तानमें आसामको सम्मिलित करना पड़ेगा जिसमें वह आर्थिक और साम्पत्तिक दृष्टिसे शक्तिशाली हो सके।

(८) आसामकी अधिकांश जनता बँगला-भाषी है। अब इन कारणोंपर विचार किया जाय—

संख्या १—खयाल यह किया गया होगा कि मुस्लिम क्षेत्र वही होगा जिसमें मुसलमान बहुसंख्यक होंगे। पर ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम क्षेत्र इससे भिन्न कोई चीज है और उसमें एक ऐसा प्रान्त है जिसमें वे अल्पसंख्यक हैं पर चूँकि वह मुस्लिम क्षेत्रके अन्दर पड़ता है इसलिए वह पाकिस्तानमें सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए।

संख्या २—दलीलके लिए मानकर पर किसी प्रकार यह स्वीकार न कर कि आदिमजातियाँ हिन्दू नहीं हैं, आसाममें बहुसंख्यक गैर-मुसलमान आदिमजातियाँ नहीं बल्कि हिन्दू हैं।

संख्या ३ और ५—श्री मजीबुर्रहमानके दिये हुए अङ्कोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार २९ लाख आदिमजातिके लोग केवल हिन्दुओंसे पृथक् नहीं किये जाते बल्कि सभ्य राजके सदस्य होनेके अयोग्य घोषित किये जाते हैं जिसमें सभ्य भागकी संख्या १०९ लाखसे घटकर ८० लाख हो जाय। तिसपर भी हिन्दुओंकी संख्या ४५ लाख होती है और उनका पूरा बहुमत ठहरता

---

* 'एच० एन० बरुआद्वारा 'रिफ्लेक्शन्स आन आसाम कम पाकिस्तान' पृष्ठ ८२-८३ में मुजीबुर्रहमानके ईस्टर्न पाकिस्तान, इट्स पॉपुलेशन, डिलिमिटेशन एण्ड इकनामिक्स'का उद्धरण।

है और मुसलमानोंसे तो उनकी संख्या कहीं अधिक है जो सिर्फ ३४·७५ लाख है। जो हिन्दू चायके बागों या तेलकी खानोंमें काम करते हैं और जिनकी संख्या १५.२ लाख है, उनको भी पृथक् कर देना चाहिए जिसमें मुसलमानोंके बारेमें यह घोषित किया जा सके कि वे बहुसंख्यक हैं। इससे बढ़कर अङ्कोंकी भूल-भुलैयाकी कल्पना भी कर सकना कठिन है।

इस तर्कमें दोष सिर्फ यह है कि अगर हिन्दुओंकी संख्या घटानेके निमित्त यही या इसी प्रकारकी प्रक्रिया प्रयोगमें लायी जाय तो सारे भारतमें ही हिन्दू घटकर अल्पसंख्यक हो जायँगे और इस प्रकार सारा भारत ही पाकिस्तान बन जायगा, पश्चिमोत्तर या पूर्वोत्तर क्षेत्रोंको शेष भारतसे पृथक् कर पाकिस्तानके निमित्त सीमित करनेकी कोई बात ही नहीं रह जायगी।

संख्या ४,६ और ७—आसाममें जमीन है और मुसलमानोंको जमीनकी जरूरत है। आसाममें जङ्गल, खानें, पेट्रोलियम, कोयला तथा अन्य प्राकृतिक साधन हैं और पाकिस्तानको इनकी आवश्यकता है। क्या यही काफी नहीं है? पाकिस्तानकी जरूरतोंको पूरा करनेके लिए ही क्यों न आसाम पाकिस्तानमें मिला लिया जाय? किसी साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक राष्ट्रने किसी दूसरी बिनापर किसी दूसरे देशपर अधिकारका दावा नहीं किया है। पाकिस्तान ऐसा क्यों न करे? हमें यह भी मालूम हुआ कि भारतको केवल विभाजन नहीं स्वीकार करना है बल्कि पाकिस्तानके लिए आवश्यक पदार्थोंको प्राप्त और प्रस्तुत भी करना है।

अब जो दावा किया जाता है उसके मुताबिक बङ्गाल आसाम दोनों ब्रिटिश प्रान्त एकमें मिला दिये जायँ तो पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रकी साम्प्रदायिक स्थिति इस प्रकार होगी—

नाम	कुल आबादी	मुसलमान	हिन्दू	ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य	कुल गैर-मुसलमान
बंगाल	६,०३,०६,५२५	३,३०,०५,४३४	२,५०,५९,०२४	१,६६,५०९	१८,८९,३८९	१,८६,१६९	२,७३,०१,०९१
		५४·७२	४१·५५	०·२८	३·१३	०·३१	४५·२७
आसाम	१,०२,०४,७३३	३४,४२,४७९	४२,१३,२२३	४०,८१०	२४,८४,९९६	२३,२२५	६७,६२,२५४
		३३·७३	४१·२९	०·४०	२४·३५	०·२३	६६·२७
जोड़	७,०५,११,२५८	३,६४,४७,९१३	२,९२,७२,२४७	२,०७,३१९	४३,७४,३८५	२,०९,३९४	३,४०,६३३४५
		५१·६९	४१·५१	०·२९	६·२०	०·३०	४८·३०

अगर दोनों प्रान्तोंके सिर्फ मुस्लिम बहुमतवाले जिले लिये जायँ तो पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रकी साम्प्रदायिक स्थिति इस प्रकार होगी—

नाम	कुलआबादी	मुसलमान	हिन्दू	भारतीय ईसाई	आदिमजातियाँ	अन्य	कुल गैर-मुसलमान
बङ्गाल—							
गैर-मुस्लिम	४,०९,६४,७७९	२,८७,१०,४६२	१,१३,८४,४९५	५४,७३२	७,०६,६१५	१,०८,४७५	१,२२,५४,३१७
बहुमतवाले		७०'०९	२७'७९	०'१३	१'७२	०'२६	२९'९०
जिले छोड़कर							
आसाम—							
गैर-मुस्लिम							
बहुमतवाले	३१,१६,६०२	१८,९२,११७	११,४९,५१४	३,००५	६९,९०७	२,००९	१२,२४,४८५
जिले छोड़कर		६०'७१	३६'८८	०'०९	२'२४	०'०६	३९'२७
(सिलहट-जिला)							
जोड़							
प्रत्येक जिलेमें	४,४०,८१,३८१	३,०६,०२,५७९	१,२५ ३४,००९	५७,७८७	७,७६,५२२	१,१०,४८४	१,३४,७८,८०२
मुस्लिमबहुमतवाले		६९'४२	२८.४३	०'१३	१'७६	०'२५	३०'५७
पूर्वी क्षेत्रका—							

यदि बङ्गाल और आसाम पूर्णतः ले लिये जायँ तो इसका परिणाम यह होगा कि बङ्गालमें मुसलमानोंका जो थोड़ा-सा ५४·७३ प्रतिशत—बहुमत है वह घटकर नाममात्रका बहुमत—५१·६९ प्रतिशत—हो जायगा और यदि गैर-मुस्लिम बहुमतवाले क्षेत्र अलग कर दिये जायँ तो बङ्गाल और आसाममें प्रत्येक जिलेमें मुसलमानोंके बहुमतके साथ, मुसलमानोंका बहुमत ६९·४२ प्रतिशत हो जायगा ; इस प्रकार यदि दोनों प्रान्त पूर्णतः पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें सम्मिलित कर लिये जाते हैं तो वह वस्तुतः मुस्लिम क्षेत्र नहीं कहा जा सकता। पूर्वी क्षेत्रमें मुसलमानोंकी ६९·४२ प्रतिशत संख्या किसी भी हालतमें ५१·६९ प्रतिशतसे, जो गैर-मुस्लिम भागको पृथक् किये बिना दोनों प्रान्तोंको मिलानेपर होती है, ७५ प्रतिशतके अधिक निकट तो है ही जो श्री जिनाने ऊपर उद्धृत श्री चैपमैनकी 'इण्टरव्यू'में बतलायी थी।

जनगणनाके आधारपर जो स्थिति प्रकट होती है वह संक्षेपमें इस प्रकार है—

(१) सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमान्त और बिलोचिस्तान प्रान्तोंमें प्रत्येक प्रान्त और प्रत्येक जिलेमें संख्याकी दृष्टिसे मुसलमानोंका प्राधान्य है।

(२) पंजाबके रावलपिंडी और मुल्तान डिवीजनोंके प्रत्येक जिलेमें और फलतः दोनों डिवीजनोंके—जिनमें १२ जिले, और यदि बलूच सीमान्त भाग भी एक जिला मान लिया जाय तो १३ जिले हैं प्रत्येक जिलेमें संख्याकी दृष्टि-से मुसलमानोंका प्राधान्य है।

(३) लाहौर डिवीजनमें संख्याकी दृष्टिसे मुसलमानोंका प्राधान्य है, पर अमृतसर जिलेमें वे अल्पसंख्यक हैं—उनकी आबादी सिर्फ ४६·५२ प्रतिशत है और गुरुदासपुर जिलेमें उनका नाममात्रका बहुमत है।

(४) जालन्धर डिवीजनमें वे अल्पसंख्यक हैं ; ३५·८७ प्रतिशत हिन्दुओं और २४·३१ प्रतिशत सिखोंके मुकाबलेमें उनकी संख्या सिर्फ ३४·५३ प्रति-शत है। यदि आदि धर्मी, जो दलित जातियोंमें हैं, हिन्दुओंके साथ गिने जायँ तो हिन्दुओंकी स्थिति बहुत उन्नत हो जाय।

(५) अम्बाला डिवीजनमें मुसलमान अल्पसंख्यक हैं ; ६६·०१ प्रतिशत हिन्दुओंके मुकाबलेमें वे सिर्फ २८·०७ प्रतिशत हैं।

(६) अगर पश्चिमोत्तर क्षेत्रमें सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमान्त, बिलोचिस्तान और पंजाब—ये चारो प्रान्त पूर्णतः सम्मिलित किये जायँ तो मुसलमानोंकी संख्या ६२·०७ प्रतिशत होगी।

(७) अगर अम्बाला और जालन्धर डिवीजन और लाहौर डिवीजनका अमृतसर जिला छोड़ दिये जायँ और पश्चिमोत्तर क्षेत्र सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमान्त और बिलोचिस्तान—इन तीन प्रान्तों और मुस्लिम बहुमतवाले पंजाबके भागों—रावलपिण्डी और मुलतान डिवीजन और अमृतसर जिलेको छोड़कर लाहौर डिवीजन—को मिलाकर बनाया जाय तो मुसलमान ७५·३६ प्रतिशत होंगे।

(८) पूर्वी क्षेत्रमें मुसलमान आसाम प्रान्तमें अल्पसंख्यक हैं। ४१·२९ प्रतिशत हिन्दुओं और २४·३५ प्रतिशत आमदिजातियोंके मुकाबलेमें उनकी संख्या सिर्फ ३३·७३ प्रतिशत है। यदि आदिमजातियोंका सिर्फ वह भाग जिसने हिन्दुत्वको अपना लिया है और अपनेको हिन्दू कहता है, हिन्दुओंके साथ जोड़ दिया जाय तो हिन्दुओंकी संख्या ५० प्रतिशतसे बहुत अधिक हो जायगी। सिर्फ सिलहट जिलेमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं, अन्य सभी जिलोंमें वे अल्पसंख्यक हैं।

(९) सारे बङ्गाल प्रान्तकी आबादीमें मुसलमान ५४·७३ प्रतिशत हैं।

(१०) चटगाँव और ढाका डिवीजनोंमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं और चटगाँव पहाड़ी भूभागको छोड़कर इन डिवीजनोंके प्रत्येक जिलेमें भी वे बहुसंख्यक हैं।

(११) पूरे राजशाही डिवीजनके विचारसे वे बहुसंख्यक हैं पर डिवीजनके जलपाईगोड़ी और दार्जिलिङ्ग जिलोंमें वे अल्पसंख्यक हैं—इन जिलोंमें वे क्रमशः २३·०८ और २·४२ प्रतिशत हैं। दीनाजपुर जिलेमें वे सीमान्त रेखापर—सिर्फ ५०·२० प्रतिशत हैं।

(१२) कलकत्ता सहित सारे प्रेसिडेन्सी डिवीजनमें वे अल्पसंख्यक हैं—

५३·७० प्रतिशत हिन्दुओंके मुकाबलेमें वे सिर्फ ४४·५६ प्रतिशत हैं। किन्तु नदिया, मुर्शिदाबाद और जैसोर जिलोंमें वे बहुसंख्यक हैं और खुलना जिलेमें वे आधेसे कुछ ही कम, ४९·३६ प्रतिशत हैं।

(१३) अगर बङ्गालके मुस्लिम क्षेत्रमें सिर्फ वे ही जिले हों जिनमें मुसलमानोंका बहुमत है तो उनकी संख्या ७०·०९ प्रतिशत होगी।

(१४) जिन जिलोंमें वे अल्पसंख्यक हैं वहाँ उनकी संख्या २२·२१ प्रतिशत होगी।

(१५) यदि बङ्गाल और आसाम प्रान्त सम्पूर्णतः पूर्वी क्षेत्रमें सम्मिलित किये जायँ तो मुसलमान कुल आबादीपर ५१·६९ प्रतिशत होंगे।

(१६) यदि उन जिलोंको जिनमें मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, पूर्वीक्षेत्रसे अलग रखें तो उनकी संख्या ६९·४२ प्रतिशत होगी।

५

विभाजन : सिख और बङ्गाली

विभाजनका दावा इस बिनापर किया जाता है कि भारतके कुछ खण्डोंकी आबादीमें मुसलमान बहुसंख्यक हैं। यदि भारतको एक अखण्ड रूपमें देखें, जैसा कि प्रकृतिको भी अभिप्रेत जान पड़ता है और अबतकके ज्ञान इतिहाससे भी जिसका समर्थन होता है, तो देशी रियासतोंको मिलाकर भारतकी कुल आबादीमें मुसलमानोंकी संख्या २३·८ प्रतिशत और गैर-मुसलमानोंकी ७६·८ प्रतिशत है, और रियासतोंको छोड़कर ब्रिटिश भारतकी आबादीमें मुसलमान २६·८ प्रतिशत और गैर-मुसलमान ७३·२ प्रतिशत हैं। यदि पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रोंके गैर-मुसलमानोंसे, जिनकी संख्या मुस्लिम अल्पमतवाले जिलोंको मिलाकर क्रमशः ३८ और ४८ तथा उन्हें छोड़कर २५ और ३२ प्रतिशत है, उक्त क्षेत्रोंका शेष भारतसे पृथक् किया जाना मान लेनेको कहा जाता है, तब क्यों न मुसलमानोंसे, जो सारे भारतकी आबादीमें सिर्फ २३·८ प्रतिशत और ब्रिटिश

भारतकी आबादीमें २६·७ प्रतिशत हैं, भारतके अन्दर ही रहनेको कहा जाय जैसे वे इतने दिनोंसे रहते आये हैं ? अगर मुसलमान, जो कुछ भागोंमें ७५ प्रतिशत या इससे भी कम हैं, उन भागोंको जिनमें उनका प्राधान्य है शेष भारतसे पृथक् करनेकी माँग न्याय्य और उचित ठहराते हुए मान लेनेको बाध्य कर सकते हैं तो गैर-मुसलमान जिनकी आबादी सारे भारतमें ७६·२ और ब्रिटिश भारतमें ७३·२ प्रतिशत है, इस न्याय और औचित्यके आधारपर विभाजनको और किसी दृष्टिसे नहीं तो शासनगत ऐतिहासिक सम्बन्धकी ही दृष्टिसे क्यों न माननेसे इनकार कर दें ?

पूर्वके पृष्ठोंमें मैंने उन भूभागोंकी सीमा निर्धारित करनेका प्रयत्न किया है जो लीगके मार्च, १९४०के लाहौर-प्रस्तावमें रखी गयी शर्तोंके मुताबिक पश्चिमोत्तर और पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रोंमें पड़ सकते हैं। कोई यह न समझ ले कि मैं अपनी धारणाके अनुसार सीमानिर्धारण कर रहा हूँ। यह तो तभी हो सकता है जब पार्थक्यके लिए प्रस्तावित क्षेत्रोंके अधिवासी विभाजन स्वीकार कर लें, पर अधिवासीका अभिप्राय उक्त क्षेत्रोंके केवल मुसलमानोंसे नहीं बल्कि गैर-मुसलमानोंसे भी है। तर्कके लिए मैंने मान लिया है कि पश्चिमोत्तर और पूर्वके उक्त क्षेत्रोंके बहुसंख्यक मुसलमान विभाजनके पक्षमें हैं, इसलिए मैंने सिन्ध, पश्चिमोत्तर सीमान्त और बिलोचिस्तान प्रान्तोंको पूरा पूरा और पञ्जाबके पश्चिमी जिलों, बङ्गालके पूर्वी और उत्तरी जिलों और आसाममें सिलहट जिलेको मुस्लिम क्षेत्रोंके अन्तर्गत माना है। पर जबतक वे किसी उपायसे स्पष्ट और निःसन्दिग्ध शब्दोंमें विभाजनके पक्षमें अपनी इच्छा नहीं प्रकट करते तबतक यह कहना बिलकुल अकारण और बिना बलके नहीं होगा कि हो सकता है कि इन क्षेत्रोंके बहुसंख्यक मुसलमान भी विभाजनके पक्षमें न हों। मुसलमानोंकी बात अगर अलग छोड़ दें तो भी ऐसे और लोग हैं जो उपेक्षित होनेके लिए तैयार नहीं हैं।

सिखोंका ही प्रश्न ले लिया जाय जो ब्रिटिश पञ्जाब और पञ्जाबकी रियासतोंमें केन्द्रित हैं। उन्होंने पञ्जाबके किसी भागको शेष भारतसे पृथक् करनेकी जो भी योजना हो उसका विरोध किया है और सर्वस्वकी बाजी लगाकर इसका

प्रतिरोध करनेका सङ्कल्प घोषित कर दिया है। पर यदि विभाजन और पार्थक्यके लिए मुसलमानोंने बाध्य किया तो उनका यह आग्रह है कि जिन क्षेत्रोंमें उनकी आबादी और उनके पवित्र स्थान हैं जिनके साथ उनका धार्मिक और ऐतिहासिक सम्बन्ध है, वे पृथक् राज बना दिये जायँ। उनका दावा है कि यह क्षेत्र पश्चिममें चनाब नदीतक, पूरबमें यमुना नदीतक, दक्षिणमें राजपूतानाकी सीमातक और उत्तरमें काश्मीर राज तथा पर्वतीय भूभागोंतक विस्तृत है। श्री वी० एस० भट्टी खालिस्तान नामक पुस्तिकामें इस राजको जो पश्चिममें पाकिस्तान और पूरबमें हिन्दुस्तानके बीच पड़ता है, निवारक राज (बफरस्टेट) मानते हुए इसकी सीमा यह रखते हैं—'प्रस्तावित सिख राज उत्तरमें काश्मीर उत्तर-पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिममें चनाब नदी और मुलतानके पीछेके पञ्जाब, दक्षिणमें राजपूताना और कच्छकी खाड़ी और पूरबमें यमुना तथा उत्तर-पूरबमें शिमला पहाड़ीकी रियासतों और कुल्लूतक विस्तृत होगा। चूँकि यह सिख राज खालसाका निवासस्थान होगा इसलिए इसे खालिस्तान कहना अनुपयुक्त न होगा। इसमें मोटे तौरसे पटियाला, नाभा, झींद, फरीदकोट, कपूरथला, कलसिया, मालेरकोटला, शिमला पहाड़ीकी सिख रियासतें और लुधियाना, जालन्धर, कुल्लू, अम्बाला, फीरोजपुर, लाहोर, अमृतसर, लायलपुर, गुजरानवाला, शेखूपुरा, मांटगोमरी, हिसार, रोहतक, करनाल, मुलतानके डिवीजन या जिले और दिल्ली सम्मिलित होंगे। एक गलियारा भी होगा जिसमें सिन्धकी, बहावलपुर और राजपूतानाकी पतली पट्टियाँ होंगी जिसमें कच्छकी खाड़ीतक सिखोंके पहुँचनेका मार्ग मिल जाय क्योंकि बन्दरगाह न होनेपर वे अपने देशमें बन्द हो जायँगे और व्यापारके लिए उन्हें दूसरोंपर निर्भर रहना पड़ेगा।' * श्री सन्तनिहालसिंहने 'हिन्दुस्तान रिव्यू'में प्रकाशित 'ए प्रोजेक्ट फार पार्टीशनिंग दि पंजाब' (पञ्जाबके विभाजनकी योजना) शीर्षक लेखमें यह निर्देश किया है कि सिखोंका आग्रह है कि यदि पाकिस्तान बनेगा तो सिखोंका आजाद पञ्जाब भी बनेगा जिसमें इसके उद्भावकोंके अनुसार

---

* वी० एस० भट्टी 'खालिस्तान', पृष्ठ ४।

३५ लाख सिख ब्रिटिश भारतके और १२॥ लाख रियासतोंके अर्थात् १९४१ की गणनाके अनुसार ५१ लाख सिखोंमेंसे लगभग ४८ लाख सिख होंगे। इस योजनाके अनुसार आजाद पञ्जाबकी सीमाकी तफसील भी बना ली गयी है पर अभी उसका रूप निश्चित नहीं हुआ है। कहा जाता है कि सीमा निर्धारणका कार्य एक कमीशनको सौंपा जाय जिसमें ऐसे व्यक्ति हों जो ऐसे अत्यधिक विवादग्रस्त प्रश्नपर निष्पक्ष होकर विचार कर सकें। ५ जून १९४३ को इस निश्चयकी घोषणा करते समय इस योजनाके जनक—अकाली दलने यह शर्त रखी है कि सीमाका निश्चय करते समय आबादी, सम्पत्ति, लगान, सांस्कृतिक परम्परा और ऐतिहासिक सम्बन्धोंपर उचित रूपसे विचार करना आवश्यक होगा। इस योजनाके अनुसार इस राजमें चार कमिश्नरियाँ होगीं—मुलतान (केवल कुछ हिस्सा), लाहौर, जालन्धर और अम्बाला।

जिन जिलोंपर इसका असर होगा वे हैं—

मुलतान डिवीजन—मुलतान (कुछ हिस्सा), मांटगोमरी, लायलपुर, झङ्ग और मुजफ्फरगढ़।

लाहौर डिवीजन—लाहौर, शेखूपुरा, गुजरानवाला, अमृतसर, गुरुदासपुर, और स्यालकोट।

जालन्धर डिवीजन—जालन्धर, होशियारपुर, काङ्गड़ा, लुधियाना और फीरोजपुर।

अम्बाला डिवीजन—अम्बाला, करनाल, हिसार, रोहतक, गुरगाँव, और शिमला।

आजाद पञ्जाब—मांटगोमरी जिलेसे मिले हुए मुलतान जिलेके कुछ भागको छोड़कर—बसनेवाले लगभग २ करोड़ मनुष्योंमें भिन्न-भिन्न समुदायोंकी संख्या इस प्रकार होगी—

मुसलमान	...	...	९१,९१,६०८
सिख	...	...	३४,४२,५०८
अन्य गैर-मुसलमान (अधिकांशतः हिन्दू)			७२,४५,३३६
जोड़	...	...	१,९८,७९,४५२

श्री सन्तनिहालसिंहका कहना है "हिन्दुओंके अविश्वाससे मुसलमानोंका मस्तिष्क विषाक्त हुआ।—'पाकिस्तान' सामने आया।

मुसलमानोंके अविश्वाससे सिखोंका मस्तिष्क विषाक्त हुआ—पञ्जाबके विभाजनकी योजना सामने लायी जा रही है। योजनाके मूलमें जो लोग हैं वे दृढ़ संकल्प भी उतने ही हैं जितने राजनीतिक भावनासे अनुप्राणित और सङ्घटन-शक्तिसे सम्पन्न हैं।"

इसलिए अगर पाकिस्तानके लिए आग्रह किया जाता है तो सिख भी उपेक्षित होनेसे इनकार करते हैं और अपनी ही शर्तोंपर विभाजन करानेपर तुले हुए हैं।

स्मरण दिलाया जा सकता है कि १९०५ में लार्ड कर्जनने बङ्गालका विभाजन कर दो प्रान्तीय सरकारें बनायीं—एक आसाम और बङ्गालके पूर्वी और उत्तरी जिलोंको मिलाकर और दूसरी बङ्गालके शेष जिलों,बिहार और उड़ीसाको मिलाकर। इस विभाजनसे साधारणतः बङ्गालके हिन्दुओं और कुछ प्रभावशाली मुसलमानोंको बड़ा क्षोभ हुआ जिससे वर्तमान शताब्दीके प्रथम दशाब्दमें बड़ी खलबली मच गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे देशमें राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो गयी और ब्रिटिश वस्तुओंका बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुएँ अपनानेका आन्दोलन चल पड़ा। ब्रिटिश सरकारने अन्ततः विभाजन रद्द कर दिया, हाँलाकि वह घोषित कर चुकी थी कि यह बात पक्की हो चुकी है। इससे मुसलमानोंमें असन्तोष उत्पन्न हो गया जिनके लिए यह विभाजन उस समय लाभदायक घोषित किया गया था जबकि इसके विरोधमें उठा आन्दोलन एक सीमातक पहुँच चुका था। इस स्थलपर निर्देश यह करना है कि मार्च १९४० के मुस्लिम लीगके प्रस्तावके आधारपर जो विचार हुआ है उसमें बङ्गालका जो भू-भाग अलग किया जानेवाला है वह १९०५ के विभाजनवाले पूर्वी बङ्गालसे न्यूनाधिक रूपमें मिलता-जुलता है। जिन बङ्गाली

हिन्दुओंने अपने जोरदार आन्दोलनके बलपर १९११ में बङ्ग-भङ्ग रद्द कराया, वे सम्भवतः अब भी इसे चुपचाप नहीं स्वीकार कर लेंगे। इसकी तो और भी सम्भावना नहीं है कि वे बङ्गालका भारतसे बिलकुल पृथक् किया जाना सहन कर लेंगे, और इसमें तो उन्हें भारतके अन्य भागोंके हिन्दुओंका भी समर्थन प्राप्त होगा। इसलिए मैंने लीगके लाहौर-प्रस्तावकी व्यापकताका निर्देश भर करके सन्तोष कर लिया है।

पंचम भाग

मुस्लिम राजोंकी उत्पादक योग्यता

१

कृषि

अब हमें मुस्लिम राज्योंकी उत्पादक योग्यताके बारेमें विचार कर लेना चाहिए। भारत कृषि-प्रधान देश है और जनसंख्याके बहुसंख्यक लोग—चाहे वे मुस्लिम-क्षेत्रके निवासी हों या गैर-मुस्लिम क्षेत्रके—अपने भरण-पोषण और जीविकाके लिए कृषिपर ही निर्भर करते हैं। इसलिए सबसे पहले दोनों क्षेत्रोंकी कृषिकी अवस्थापर ही विचार कर लेना उचित होगा।

क—पूर्वी क्षेत्र—

हम पहले पूर्वी क्षेत्रकी समीक्षा करेंगे। यह क्षेत्र उपजाऊ तो है पर साथ ही इसकी आबादी बहुत घनी है। इसमें प्रति वर्गमील ७८७ व्यक्ति बसते हैं। इसका परिणाम यह है कि जमीन उपजाऊ होते हुए भी इतनी आबादीके भोजनकी पूरी सामग्री नहीं पैदा करती, जैसा कि नीचे दिखलाया जायगा।

१९४१ में बङ्गालकी कुल आबादी ६ करोड़ ३ लाखसे कुछ अधिक थी और जङ्गल तथा ऊसर और बञ्जर भूमिको छोड़कर १९३६–३७ में ३५,१०७०,४९ एकड़ खेती लायक जमीन थी। इसमेसे २४,४६६,३०० एकड़ भूमिमें फसल पैदा हुई थी। यदि खेतीके लायक सभी जमीन जोती बोयी जाय तो १०,६४०,७४९ एकड़ भूमि और मिल सकती है जो परती रह जाती है। जितनी जमीनमें अभी खेती होती है वह प्रति व्यक्ति ०·४० एकड़ पड़ती है और यदि परती जमीनको भी जोता बोया जाय तो ०·१७ एकड़ प्रति व्यक्ति और मिल सकती है। इस तरह यदि कुल जमीन जोती बोयी जाय तो भी १९४१ की जनसंख्याके अनुसार प्रति व्यक्ति ०·५७ एकड़ जमीनसे ज्यादा नहीं मिल सकती। यदि मुस्लिम और गैर मुस्लिम क्षेत्र अलग कर दिये जायँ तो इस परिणामपर पहुँचा जाता है।

	खेतीके योग्य कुल जमीन		जो जोतमें है		जो जोतमें आ सकती है		जोतमें जमीनका औसत	जोतमें आने लायक जमीनका औसत
	एकड़	प्रतिव्यक्ति	एकड़	प्रतिव्यक्ति	एकड़	प्रतिव्यक्ति		
मुस्लिम क्षेत्र	२,३९,४८,४६२	०'५८	१,७८,३३,६००	०'४३	६१,१४,८६२	०'१४	७४'४	२५'६
गैर-मुस्लिम क्षेत्र	१,११,५८,५८७	०'५७	६६,३२,७००	०'३४	४५,२५,८८७	०'२३	५९'४	४०'६

इस तालिकासे प्रकट होता है कि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों क्षेत्रोंमें खेतीके लायक जमीन करीब करीब बराबर है। लेकिन गैर-मुस्लिम क्षेत्रकी अपेक्षा मुस्लिम क्षेत्रमें खेती योग्य जमीनका अधिकांश भाग काममें लाया जा रहा है परती जमीन बहुत कम है; पर गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें परती जमीन बहुत अधिक है। यह स्थिति उस हालतकी है जब हम चटगाँव पहाड़ी इलाकोंको भी शामिल कर लेते हैं। यह इलाका विरल बसा हुआ है और यहाँ ज्यादातर आदिमजातियाँ बसी हैं इनके पास आबाद खेत अनुपातसे कहीं ज्यादा है और परती खेत तो २४७,०५३ की आबादीपर १४२२०१७ एकड़ है। अर्थात् इस जिलेमें प्रत्येक निवासीको ५'७५ एकड़ जमीन और मिल जाती है जहाँ मुस्लिम क्षेत्रमें प्रति व्यक्तिको केवल ०'१४ एकड़ मिल सकती है। यदि यह जमीन यहाँके निवासियोंके लिए ही सुरक्षित रख दी जाय, जिसकी बहुत अधिक सम्भावना है तब तो खेतीके काममें लायी जानेवाली जमीनका औसत ऊपरकी तालिकाकी अपेक्षा और भी कम हो जायगा।

यह खयाल रखनेकी बात है कि जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है और सबसे ज्यादा वृद्धि पूर्वी क्षेत्र अथवा मुस्लिम क्षेत्रमें हुई है। ढाका (१,५४५ प्रति वर्गमील) मैमनसिंह (९७९ प्रति वर्गमील) फरीदपुर (१,०२४ प्रति वर्गमील) त्रिपुरा (१,५२५ प्रति वर्गमील) नोआखाली (१,३३७ प्रति वर्ग-मील) जिलोंकी आबादी सबसे घनी है। १९३६-३७ में इन जिलोंमें क्रमशः ९५'६ प्रतिशत ८४ प्रतिशत, ५९ प्रतिशत, ९३ प्रतिशत और ९२ प्रतिशत खेत जोतके अन्दर थे। ढाका और चटगाँव कमिश्नरियाँ पूर्णरूपसे मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ती हैं। १८८१ और १९३१ के बीच यहाँकी आबादीमें क्रमशः ६० और ८८ प्रतिशत और १९३१ तथा १९४१ के बीच क्रमशः १९'९ तथा २५'२ की वृद्धि हुई है। राजशाही कमिश्नरीकी भी यही हालत है। इसके दो जिलोंको छोड़कर बाकी सब जिले मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ते हैं। १८८१ और १९३१ के बीच यहाँकी आबादीमें २६ फीसदी और १९३१ तथा १९४१ के बीच १२'८ फीसदी वृद्धि हुई है। कलकत्ता और २४परगनाको छोड़कर

प्रेसिडेंसी कमिश्नरीमें भी इसी तरहकी वृद्धि हुई है। यानी १९३१ और १९४१के बीच १५·६ फीसदी।

इससे स्पष्ट है कि बङ्गालमें खेतीके लिए और जमीन मिलनेकी सम्भावना अत्यन्त सीमित है। मुस्लिम क्षेत्रमें तो प्रायः शून्य है। इसलिए आबादीकी वृद्धिका साथ खेती नहीं दे सकती। यदि सम्प्रति जनसंख्याकी भावी वृद्धिके प्रश्नको अलग रख दें तो भी क्या खेतीकी पैदावारसे वर्तमान जनसंख्याका पूरी तरह भरण-पोषण हो सकता है?

नीचे यह दिखलाया गया है कि खाद्य सामग्रीकी बङ्गालमें हमेशा कमी रहती है और इसका करुणाजनक अभाव १९४३ के अकालमें हुआ था। उस महासङ्कटके अन्य कारणोंके अतिरिक्त एक कारण यह भी था। इसमें किसी तरहकी गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। सर अजीजुल हकने 'मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ' में लिखा है:—'इस प्रान्तके निवासियोंका प्रधान खाद्य चावल है। इनका मुख्य भोजन चावल और मुट्ठीभर दाल तथा लेशमात्र तरकारी, मछली या मांस है। इनका भोजन, जलपान सबकुछ चावल ही है। बङ्गालकी राष्ट्रीय रक्षा और स्वास्थ्यके लिए चावलकी पैदावार आवश्यक है। लेकिन खेद है कि बङ्गालकी आवश्यकताभरके लिए भी चावल यहाँ नहीं पैदा होता।*

१९३१ की जनसंख्याके आधारपर उन्होंने यह दिखलानेका यत्न किया है कि यदि भात न खानेवाली जातियोंको छाँट दें और बच्चोंके लिए कम हिस्सा रखें क्योंकि वे बालिगोंकी अपेक्षा कम खाते हैं—तो भी बङ्गालमें चावल खाने-वालोंकी संख्या ५,१८,७३,४३६ होगी जिन्हें दोनों वक्त पूरी खूराक चाहिए। "यदि प्रति व्यक्ति प्रतिदिन १४ छटाँक चावल भी लगे तो कुल ३१९ लाख मन चावल सालभरके लिए चाहिए। यदि जेलका हिसाब याने १२ छटाँक प्रति व्यक्ति ले लें तो भी सालभरके लिए २७३ लाख मन चावल चाहिए। इतने चावलके लिए क्रमशः ४७९ तथा ४१० लाख मन धान १४ छटाँक

---

*'दि मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ' पृष्ठ ५१

प्रति व्यक्तिकी पूर्तिके लिए चाहिए ।''* १९३६–३७ में २२ लाख एकड़ जमीन आबाद हुई थी। उनके लिए प्रति एकड़ एक मनके हिसाबसे २२ लाख मन बीज भी चाहिए। इस तरह यदि प्रत्येक बालिगका भोजन १४ छटाँक माना जाय तो ५०१ लाख मन और यदि १२ छटाँक माना जाय तो ४३२ लाख मन धान सालभरके लिए चाहिए। १९२७–२८ से १९३६–३७ तकके आँकड़ोंका हिसाब लगाकर सर अजीजुलहक इस परिणामपर पहुँचे हैं कि १४ छटाँक चावल प्रतिदिनके हिसाबसे १६१ और १२ छटाँक चावल प्रति-दिनके हिसाबसे ९३ लाख मनका घाटा पैदावारमें रहा। अर्थात् बङ्गालमें जितने चावलकी जरूरत है उसमें हरसाल कमी रहती है। इस पैदावारमेंसे पुनः निर्यात निकालकर यदि वार्षिक आयातको जोड़ दें तो हमें ढाई लाख टन चावल अर्थात् ३$\frac{3}{4}$ लाख टन धान और मिलता है जो १० लाख मन धानके बराबर है अर्थात् १६१ लाख मनकी कमीको पूरा करनेके लिए १० लाख मन मिलता है। इससे स्थितिमें कोई आशाजनक सुधार नहीं होता।†

श्रीकालीचरण घोषने अपनी पुस्तक "फेमिन्स इन बङ्गाल १७७०-१९४३" में हिसाब लगाकर दिखलाया है कि बङ्गालको प्रतिवर्ष २५७ लाख मन या ९३ लाख ७० हजार टन चावलकी जरूरत पड़ती है। यह आँकड़ा प्रति-व्यक्ति प्रतिवर्ष ५·५ मनके हिसाबसे है। इस आँकड़ेमें लड़कों, विद्यार्थियों तथा अन्य उन लोगोंका हिस्सा कम कर दिया गया है जिन्हें दोनों वक्त चावलकी जरूरत नहीं पड़ती। इस आवश्यकताकी पूर्त्ति करनेके लिए केवल ८५ लाख टन ही चावल हरसाल पैदा होता है। इस तरह १० लाख ४६ हजार टन या ३६७ हजार मन चावलकी कमी हरसाल

---

* वही पृष्ठ ५२ सर अजीजुल हक।

† सर अजीजुल हक—'दि मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ' पृष्ठ ५५–५६। ऊपरके आंकड़ेमें छपाईकी स्पष्ट भूल मालूम होती है। १० लाख मन धानकी जगहपर १ करोड़ मन धान होना चाहिए।

पड़ती है। सर अजीजुल हकके अनुसार १६०० या ९२० लाख मन चावल की कमी पड़ती है। उससे तो ये आँकड़े कम ही हैं। इसका कारण यह है कि जहाँ सर अजीजुल हकने प्रत्येक बालिगके लिए १४ या १२ छटाँक चावल प्रतिदिन माना है वहाँ श्री घोषने १० ही छटाँक रखा है।

हमलोग ऊपर देख आये हैं कि बङ्गालमें खासकर मुस्लिम क्षेत्रमें जन-संख्याकी वृद्धिके अनुपातसे नये खेतोंकी वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिए बङ्गालमें अन्नकी कमी पूरी करनेके लिए एक ही उपाय है कि खेतोंकी पैदावार बढ़ायी जाय। वर्तमान अवस्थामें मुस्लिम क्षेत्रमें नहर या अन्य तरीकोंसे सिंचाईकी सुविधा नहीं है क्योंकि इस प्रान्तकी दोनों नहरें बर्दवान तथा मिदनापुर जिलोंमें हैं। इसलिए मुस्लिम क्षेत्रकी खेती मौसिम और वर्षापर ही निर्भर करती है। पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें सिंचाईका कोई प्रबन्ध हो सकता है या नहीं, यह भी सन्देहास्पद है। यदि कोई प्रबन्ध किया भी जाय तो उससे समुचित लाभ होनेकी कम ही आशा है; क्योंकि इस क्षेत्रकी अधिकांश भूमि नम है और बाढ़ तथा तूफान यहाँ ज्यादा आया करते हैं, सूखा कम पड़ता है। लेकिन विज्ञानके इस युगमें यह आशा करना व्यर्थ नहीं होगा कि जो नदियाँ सङ्कटका कारण बन रही हैं उन्हें वशमें लाकर पैदावार बढ़ानेकी कोशिश की जायगी।

खेतीकी पैदावार बढ़ानेके मार्गमें एक दूसरी कठिनाई भी है। खेत छोटे छोटे टुकड़ोंमें बँटे हैं और उनका बँटवारा भी होता ही रहता है। सर अजी-जुल हकने दिखलाया है कि ५ व्यक्तियोंके परिवारके पास औसतन ७ एकड़ जमीन है उसमेंसे ५·३ एकड जोतमें है और १·७ एकड़ परती है। कुछ खेत ऐसे भी हैं जिनमें दो फसल पैदा की जाती है। दोफसिला खेतोंकी गिनती दूने खेतोंमें कर देनेसे प्रति परिवार ६·५ एकड़ भूमि जोतमें आती है। इसमेंसे ५ एकड़ धान, ½ एकड़में पाट तथा १ एकड़में अन्य फसलें बोयी जाती हैं। * एक परिवारके पास ७ एकड़ जमीन होनेपर भी वह छोटे छोटे

---

* दि मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ पृ० ९३-९४।

कई टुकड़ोंमें बँटी है और इन टुकड़ोंके बीचमें अन्य किसानोंके खेत भी हैं। खादके अलावा और कोई दूसरा उपाय नहीं दिखाई देता जिससे इन छोटे टुकड़ोंकी पैदावार बढ़ायी जा सके। अधिक वर्षाके कारण हरसाल खादका अधिक अंश बह जाता है और बहुतसी जमीनें अधिक कालतक पानीके अन्दर पड़ी रहती हैं। इसलिए खादसे उत्पादन बढ़ानेकी गुञ्जायश भी कम ही है। यदि खेती बड़े पैमानेपर की जाय तो खादद्वारा पैदावार बढ़ानेकी अपेक्षा इससे कहीं अधिक पैदावारकी गुञ्जायश है क्योंकि यहाँके किसान खेतोंके मालिक हैं और उन्हें नियत मालगुजारी देनी पड़ती है। लेकिन इसके लिए सामूहिक खेतीका प्रचार करना होगा। यह सहज काम नहीं है क्योंकि भारतीय किसानोंको—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान—अपने खेतोंसे इतना प्रेम रहता है कि वे दूसरोंके खेतोंमें उसे मिला देनेके लिए जल्दी राजी नहीं होंगे।

ऊख, दाल, तेलहनकी पैदावारके बारेमें विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि इनकी पैदावार यहाँ बहुत कम होती है और प्रान्तकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए दूसरे स्थानोंसे ये सामान मँगाने पड़ते हैं।

मनुष्यके भोजनमें चीनीका प्रमुख स्थान है। एक समय था जब बङ्गालमें बहुत ज्यादा चीनी पैदा होती थी। लेकिन अब वह बात नहीं रही। भारतमें जो चीनी पैदा होती है या बाहरसे आती है उसका १३ फीसदी भाग बङ्गालमें खर्च होता है लेकिन बङ्गालमें केवल २·८ फीसदी चीनी पैदा होती है। १९३५–३६ में इस प्रान्तमें २०,७९,४९४ मन गुड़, और २९,४३,३११ मन सफेद चीनी बाहरसे आयी थी। १९३६-३७ में यहाँ चीनीकी पैदावार ६,२५,१७५ मन थी लेकिन खर्च ३५,३९,२५० मन।*

समुचित खूराकके लिए तेल भी बहुत आवश्यक पदार्थ है। सर अजीजुल हकने लिखा है—बङ्गालमें आज सबसे अधिक सरसोंके तेलकी खपत है। तो भी १९१४-१५ में केवल १४,५०,१०० एकड़ भूमिमें तेलहनकी खेती की गयी थी और १९३४-३५ में यह घटकर ७२३८०० एकड़ हो गयी अर्थात्

* सर अजीजुल हक—'मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ' पृ० ९१।

२० सालमें आधा घट गयो।* इसलिए यह अचरजकी बात नहीं है यदि १९३०-३१ से १९३९-४० तक तेलहनकी पैदावार केवल २०५००० टन हुई। तेलहनसे एक तिहाई तेल निकलता है। इस हिसाबसे कुल १८, ६५५०० मन तेल निकला अर्थात् प्रान्तकी पैदावारसे प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष सिर्फ सवासेर तेल मिला। इस तरह प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष करीब १० सेर तेलकी कमी रह गयी। यह आँकड़ा प्रतिदिन प्रति व्यक्तिके लिए आधी छटाँकसे कम पर ही निकाला गया है जो जेलोंमें कैदियोंको प्राप्त तेलसे कम है। कहनेका मतलब यह कि बङ्गालमें आवश्यकताके अनुसार केवल १२·५ प्रतिशत तेल पैदा होता है और पैदावारका अठगुना तेल बाहरसे मँगाना पड़ता है।

दालका हिसाब लगाया जाय तो मालूम होगा कि जरूरतसे पैदावारमें ८० फीसदीकी कमी रहती है और यह बाहरसे मँगानी पड़ती है। यदि १९४३के अकालसे इस बातका थाह लग सका कि भोजनकी सामग्रीके मामलेमें बङ्गालकी हालत बड़ी नाजुक है तो उसके साथ ही यह भी प्रकट हुआ कि बिहारके १९३४ के भूकम्पके समान सारा भारत बङ्गालकी मददके लिए किस तरह दौड़ पड़ा। बङ्गालके अकालकी यह दर्दनाक कहानी बिहारके भूचालकी भीषणतासे कहीं क्रूर थी। जो कुछ करना था भूचालने दो मिनटमें ही कर डाला था यद्यपि उसका असर बहुत दिनोंतक रहा, लेकिन इस अकालमें तो कलकत्ता नगरकी सड़कों तथा गलियोंमें और देहातोंमें महीनोंतक लोग अन्नके अभावमें भूखकी ज्वालासे तड़प तड़पकर मर रहे थे। अभी भी बङ्गाल उस सङ्कटके प्रभावसे मुक्त नहीं हुआ है और उससे जो शिक्षा हमलोगोंको मिली है उसे भूल जाना हानिकर होगा। सङ्कटकालमें जिस तरहकी तात्कालिक सहायता बङ्गालके आसपास तथा दूरके नगरोंसे मिली उस तरहकी तात्कालिक सहायता शायद किसी स्वतन्त्र देशमें भी नहीं पहुँच पाती। इस सहायताके कार्यमें हमने सरकारी और गैरसरकारी दोनों सहायक समितियोंकी गणना की है।

२४ जुलाई १९४४को बङ्गाल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें एक प्रश्नका उत्तर

---

* सर अजीजुल हक—मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ पृष्ठ ३९।

देते हुए खाद्य-मन्त्री श्री सुहरावर्दीने कहा था कि १९४३ की जनवरी और दिसम्बरके बीचमें ५४३३४३७ मन चावल तथा ५२७९३४ मन धान अन्य प्रान्तोंसे बंगालमें आया। इसमेंसे २६१८००९ मन चावल और ३३८५३२ मन धान केवल बिहार और उड़ीसासे आया। १९४३ के अप्रैल और दिसम्बरके बीच बङ्गालमें २१,१८,७४,१६५ रुपयेकी हर तरहकी खाद्य-सामग्री आयी।

केन्द्रीय असेम्बलीमें २८फरवरी १९४५ के अधिवेशनमें श्री ए. एन. चट्टोपाध्यायके प्रश्नका उत्तर देते हुए खाद्य विभागके सदस्य सर जे०पी० श्री-वास्तवने कहा था कि १९४४ में बंगालकी सरकारने कुल १० लाख टन चावल खरीदा था और नवम्बर १९४३ तथा नवम्बर १९४४के बीच २३५४७०टन चावल तथा १९४३ की पहली अप्रैल और १९४४ की ३०अप्रैलके बीच ४६९,१२७ टन गेहूँ देनेका प्रबन्ध भारत-सरकारने किया था।"*

भारतका एक अङ्ग होने तथा एक केन्द्रीय शासनके अधीन रहनेका लाभ तो बगालको इस घोर सङ्कट-कालमें मिला। भविष्यमें भी इसी तरहकी सहायता-की आशा की जा सकती है।

बङ्गालमें पाट खूब पैदा होता है। पाटसे नगदी आमदनी अच्छी होती है। १९३६-३७ में बङ्गालमें २१,५४,८०० एकड़ खेतोंमें पाटकी खेती की गयी थी उसमें २०,११,८०० एकड़ भूमि केवल पूर्वी बङ्गाल अर्थात् मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ती है। १९३६-३७ में पाटकी कुल पैदावार ४०० पौण्डकी १०४ लाख गाँठें हुई थीं। इसमेंसे ५९ लाख गाँठें देशी जिलोंमें खप गयीं और बाकी विदेश भेजी गयीं। १९३६-३७ के पहलेके १५ सालोंकी औसत पैदावार प्रायः ९५ लाख गाँठ रही है। भारतीय मिलों तथा निर्यातका औसत भी प्रायः वही रहा है लेकिन इन पन्द्रह सालोंके बीच पाटके मूल्यमें अत्यधिक अन्तर रहा है। जहाँ १९२५-२६ में पाटका मूल्य प्रतिमन १८॥।-) था वहाँ

* हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड २-३-४५

१९३३-३४ में यह गिरकर ३॥) प्रतिमन हो गया था।''* पाट बेची जाने-वाली फसल है। इसीकी आमदनीसे किसानका सारा खर्च—मालगुजारी कपड़ा-लत्ता तथा अन्य आवश्यक खर्च-चलता है, इसी लिए देहातोंके लिए यह महत्वपूर्ण मद है। लेकिन जैसा देखा गया है इसके मूल्यमें बहुत ज्यादा चढ़ाव उतार हो सकता है और इस विषयमें चढ़ाव उतारका कारण आमद और माँगकी घटा-बढ़ी नहीं है बल्कि व्यापारियोंकी चालें हैं। किसान गरीब हैं। उनके पास साधन नहीं हैं कि वे अपने मालको अत्यधिक दिनतक रोक कर रख सकें। इसलिए उनकी लाचारीसे फायदा उठाकर देशी मिलोंके मालिक तथा विदेशी खरीददार जो भी दाम लगाते हैं उसीपर गरीब किसानोंको पाट बेच देना पड़ता है। इसलिए पाट किसानोंकी आमदनीका एकदम अनिश्चित साधन रह गया है और बर्तमान अवस्थामें यह आशा नहीं की जा सकती कि उसकी आमदनीसे किसान अपने भोजनकी सामग्रीकी कमी पूरी कर लेंगे, जिसके वे शिकार बने हुए हैं जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। देशी मिलें और विदेशी खरीददार दोनों पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रके दायरेसे बाहर हैं। ऐसी अवस्थामें यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह स्वतन्त्र मुस्लिम राज यदि वह पूर्वी क्षेत्रमें स्वतन्त्र खुदमुख्तार राज भी बन जाय तो पाटका मूल्य नियत कर किसानोंकी सहायता किस प्रकार करेगा।

यदि पाटसे इतनी आमदनी न हो कि किसान उससे कमसे कम उतना गल्ला भी खरीद सके जितना कमसे कम गल्ला वह उस खेतमें पैदा कर सकता है जिसमें वह पाटकी खेती करता है, तब तो अधिक गल्ला पैदा करनेकी आव-श्यकताके कारण पाटकी खेती निश्चय ही बन्द हो जायगी। सर अजीजुल हकके हिसाबके अनुसार—"यदि बर्तमान बाजारकी अवस्थामें ५) फी मन भी पाटका दाम न मिले तो उसके उपजानेमें किसानको नुकसान है"। (१९३६-३७)* उन्होंने यह भी साबित किया है कि १९२८-२९

* दि मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ पृ० ६६-६८

* 'दि मैन बिहाइण्ड दि प्लाउ' पृष्ठ ६२

तथा १९३४-३५ के बीच पाटकी खेतीसे किसानोंको बड़ी हानि उठानी पड़ी है।

ऊपर दिखलाया गया है कि आसामका एक ही जिला सिलहट, पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ता है। १९४१ की गणनाके अनुसार इसका क्षेत्रफल ५४७८ वर्ग-मील तथा जनसख्या ३१,१६०२ अर्थात् प्रति वर्गमील ५६९ है। १९३१ में इसकी आबादी ४९७ प्रति वर्गमील थी अर्थात् पिछले दस सालमें १४.४ प्रतिशतकी वृद्धि हुई है। इस प्रान्तके किसी भी जिलेकी जन-संख्या ३२९ प्रति वर्गमीलसे कम नहीं है। प्रान्तभरकी औसत आबादी प्रति वर्गमील १८६ है। इससे स्पष्ट है कि बङ्गालकी भाँति आसामके सिलहट जिलेकी आबादी भी घनी है। १९३४-३७ में आसाम प्रान्तमें कुल ५६,८३,७७४ एकड़ भूमिमें खेती हुई थी। इसमें हर माहकी फसलोंके खेत शामिल हैं। इसका औसत प्रति वर्गमील १०८ एकड़ हुआ। उसी साल सिलहट जिलेमें ९९८२५६६ एकड़ भूमिमें खेती हुई थी। इसका औसत ०.६३ एकड़ प्रतिवर्ष हुआ। यदि औसत पैदावार ८९६ पौण्ड प्रति एकड़ मान लिया जाय क्योंकि १९३६-३७ का यही पञ्चवर्षीय औसत है तो चावलकी पैदावार प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष ५६४ पौण्ड अर्थात् प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन १.५ पौण्डके लगभग होगी। यह स्मरण रखना चाहिए कि खेतीके योग्य सभी खेतको हमने धानकी खेतीमें शामिल कर लिया है। यह बढ़ा चढ़ाकर दिया हुआ आँकड़ा भी स्वस्थ-मनुष्यके भरण-पोषणके लिए पर्याप्त नहीं है। यहाँ यह भी लिख देना आवश्यक है कि बङ्गालके मुस्लिम क्षेत्रके अन्य जिलोंके विपरीत इस जिलेमें पाटकी खेती बहुत कम होती है। केवल एक इसी जिलेसे बङ्गालकी खाद्य समस्या हल नहीं हो जायगी।

पीछे दिखाया गया है कि गत १५ सालोंसे किस तरह लोग बङ्गाल छोड़ छोड़कर आसाममें जा रहे हैं। इससे आसामकी मुसलमान आबादीकी बढ़ती अवश्य हुई है लेकिन बङ्गालकी खाद्य समस्यापर इसका कोई असर नहीं पड़ा है और इससे कोई आशा भी नहीं की जा सकती जब हम यह देखते हैं कि

उसी अवधिमें बङ्गालकी आबादीमें प्रायः १ करोड़की वृद्धि हुई है और १९३१-४१ के बीच प्रायः १ करोड़ २ लाखकी वृद्धि हुई है जो कि समूचे आसाम प्रान्तकी जनसंख्याके बराबर है ।

चाय भी महत्वपूर्ण वस्तु है जो बङ्गाल और आसाममें पैदा होती है। लेकिन इससे भी बंगालके मुसलमानी जिलोंको कोई सन्तोषप्रद लाभ नहीं है। १९३६-३७ में बङ्गालमें २०३१०० एकड़ भूमिमें चायकी खेती हुई थी। इसमेंसे केवल ७,७०० एकड़ भूमि मुस्लिम क्षेत्रोंमें पड़ती है। बाकी खेत गैर-मुस्लिम क्षेत्रके जलपाईगोड़ी और दार्जिलिङ्ग जिलोंमें पड़ते हैं। इस विषयमें आसामकी हालत इससे कहीं अच्छी है। १९३६-३७ में आसाम प्रान्तमें ४३८९२५ एकड़ भूमिमें चायकी खेती हुई थी उसमेंसे ८८९५७ एकड़ भूमि केवल सिलहट जिलेमें पड़ती है जो मुस्लिम क्षेत्रमें लिया जा सकता है। बाकी चायकी खेतीके सबसे बड़े जिले सिवसागर, लखीमपुर, दरांग और कचार हैं जो मुस्लिम क्षेत्रसे सर्वथा बाहर हैं।

ख—उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र—

जहाँतक खेती और अन्नका सम्बन्ध है उत्तर-पश्चिम मुस्लिम क्षेत्रकी हालत कहीं अच्छी है।

पञ्जाब प्रान्तके जो जिले मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ते हैं उनकी कुल आबादी १६८,७०,९०० और क्षेत्रफल ६३,७७५ अर्थात् २६४ प्रति वर्ग-मील है। सीमाप्रान्तकी आबादी २१३ प्रति वर्गमील, सिन्धकी ९४ और बिलोचिस्तानकी ९ है। पञ्जाब, सीमाप्रान्त, सिन्ध तथा बिलोचिस्तानकी सम्मिलित आबादी १३८ प्रति वर्गमील है जहाँ पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रकी ८१० तथा सिलहट जिलेकी ५६९ प्रति वर्गमील है।

नीचेकी तालिकामें उत्तर पश्चिमी क्षेत्र तथा बिलोचिस्तानकी खेतीका विवरण दिया जाता है। इसमें समूचा पञ्जाब प्रान्त शामिल है। पञ्जाबके मुस्लिम क्षेत्रमें पड़नेवाले जिलोंकी जोतका विवरण आगे दिया जायगा। यह तालिका १९३९-४० के आधारपर बनायी गयी है :—

प्रान्त	जितनी भूमिमें खेती हुई (एकड़में)	चावल		गेहूँ	
		खेत एकड़में	पैदावार टनमें	खेत एकड़में	पैदावार टनमें
पञ्जाब	२,५७,४४,१२९	९,७६,५५२	२,८७,०००	९५,६५,९७६	३,७६,०००
प्रति जनसंख्या	०·९	—	—	—	—
सीमाप्रान्त	२०,००,६१७	३६,४२३	—	९,३१,३७३	२,६०,०००
प्रति जनसंख्या	०·६६	—	—	—	—
सिन्ध	४९,४५,८४३	१३,२८,७१३	४,४३,०००	१२,७०,५६३	३,२६,०००
प्रति जनसंख्या	१·१	—	—	—	—
प्रान्तोंका कुल जोड़	३,२६,९०,५८९	२३,४१,६८८	७,३०,०००	१,१७,६७,९१२	४३,४६,०००
प्रति जनसंख्याका जोड़	०·९०	—	—	—	—

(इस चक्रका शेषांश आगेके पृष्ठपर)

(पीछेके पृष्ठका शेषांश)

प्रान्त	अन्य खाद्य सामग्री		खाद्य सामग्रीके मदमें जोड़		कपास	
	खेत एकड़में	पैदावार टनमें	खेत एकड़में	पैदावार टनमें	खेत एकड़में	पैदावार गाँठमें (४०० पौंडकी एक गाँठ)
पञ्जाब	९३,५५,८६९	१४,७२,०००	१,९८,९८,३९७	५५,१९,००० (१५,०६,६८,७००) मन	२६,४१,१०५	१०,१७,०००
प्रति जनसंख्या	—	—	०·७	५·३ मन	०·०९	—
सीमाप्रान्त	९,७७,२३५	३,२३,०००	१९,४५,०३१	५,८३,००० (१,५९,१५,९००) मन	१७,३५१	३,०००
प्रति जनसंख्या	—	—	०·६५	५·२ मन	—	—
सिन्ध	१६,४५,०१०	१,९०,०००	४२,४४,२८६	९५९,००० (२,६१,८० ७००) मन	८,५४,३९०	३,०९,०००
प्रति जनसंख्या	—	—	०·९३	५·८ मन	०·१८	—
प्रान्तोंका कुल जोड़	२,०७,७८,११४	१९,८५,०००	२६०,८७,७१४	७,०६१,००० (१९,२७,६५,३००) मन	३५,१२,८४६	१३,२९,०००
प्रति जनसंख्याका जोड़	—	—	०·७	५·४ मन	०·१०	—

पञ्जाबके मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें जन-संख्याके प्रतिव्यक्तिके हिसाबसे जो जोत पड़ती है वह सन् १९३७–३८ के अङ्कोंके आधारपर नीचे लिखी तालिकामें दिखायी गयी है :—

	कुल भूमि एकड़में	जो भूमि खेतीके लिए प्राप्य नहीं है एकड़में	खेतीके लिए प्राप्त कुल भूमि एकड़में	खेतीके लायक होनेपर भी जिस भूमिमें खेती नहीं होती—एकड़में	जितनी भूमिमें खेती हुई एकड़में	जिनमें खाद्य सामग्री बोयी गयी एकड़में
पञ्जाबके गैर-मुस्लिम जिले	२,१८,९२,३३८	६७,३९,५७६	१,५१,५२,७६२	३७,६८,६४९	१,१३,८४,११३	९७,७८,९८१
पञ्जाबके मुस्लिम जिले	३,८२,६२,३८६	८२,५७,५५३	३,००,०४,८३३	१,४०,९२,०६९	१,५९,१२,७६४	१,१६,३२,१०७
सिन्ध	३,०१,७९,४८६	१,४२,६६,३४७	१,५९,१३,१३९	५८,९९,५१२	४८,७३,२४८	४२,९६,२११
सीमाप्रान्त	८४,३७,५८२	३०,३९,९८४	५३,९७,५९८	२८,५१,७००	२१,०९,०२१	२१,१२,९२९

	तेलहनके खेत एकड़में	गन्नेके खेत एकड़में	कपासके खेत एकड़में	जनसंख्या	प्रतिव्यक्ति खेतीमें जमीन एकड़में	प्रतिव्यक्ति खेतीके लिए प्राप्यभूमि एकड़में	प्रतिव्यक्ति खाद्य सामग्रीके लिए भूमि एकड़में
पञ्जाबके गैर-मुस्लिम जिले	४,१२,७७१	२,५६,५५०	७,७९,७७९	१,१५,४७,९१९	०·९८	०·३२	०·८४
पञ्जाबके मुस्लिम जिले	४,८८,७८३	२,५३,४६४	२३,५५,५७२	१,६८,७०,९००	०·९४	०·८३	०·६९
सिन्ध	२,१३,५१२	७,४२०	९,७०,१७४	४५,३५,००८	१·०८	१·३०	०·९४
सीमाप्रान्त	९१,७३९	७०,०८४	२२,१९५	३०,३८,०६७	०·६९	०·९३	०·६९

ऊपरकी तालिकासे प्रकट होता है कि बङ्गालकी अपेक्षा पञ्जाब, सिन्ध तथा सीमाप्रान्तमें प्रति व्यक्ति अधिक खेती ही नहीं होती है बल्कि खेतीका काम बढ़ानेके लिए खेती करने योग्य परती जमीन भी ज्यादा है। इसका एकमात्र कारण पञ्जाब और सिन्धमें बड़े पैमानेपर सिंचाईकी व्यवस्था है।

अन्य प्रान्तोंकी तरह बिलोचिस्तानके सारे आँकड़े नहीं प्राप्त हो सके हैं। १९३३-३४ के आँकड़ेसे पता चलता है कि उस साल ४,४९,०९४ एकड़ भूमि वहाँ जोती बोयी गयी थी लेकिन फसल केवल २,७३,८७८ एकड़ भूमिमें हुई थी। हिसाब लगानेसे यह १९३१ की जनसंख्याके आधारपर प्रति-व्यक्ति क्रमशः १-१ तथा ०-७ एकड़ एवं १९४१ की जनसंख्याके अनुसार ०-८१ तथा ०·५४ एकड़ आता है।

पञ्जाब और सिन्धमें नहरोंका सिलसिला बहुत बढ़िया है, इससे इन प्रान्तोंमें केवल जोत बढानेके लिए ही नहीं, बल्कि पैदावार बढ़ानेकी भी काफी गुञ्जायश है।

नीचेकी तालिकासे १९३९-४० की खेती तथा सिचाईकी स्थितिका दिग्दर्शन हो जाता है:—

	जिनमें फसल बोयी गयी एकड़में	जो खेत सींचे गये एकड़में	आबाद खेतोंमें सिंचाईका औसत	नहरों तथा उनकी शाखाओंका फैलाव मीलमें	१९३९–४० के अन्ततक जो पूँजी लगायी गयी रुपयोंमें
पञ्जाब	२,५७,४४,१२९	१,३५,२१,८८९	६२·५	२०,१९३	३९,२६,९०,२६८
सिन्ध	४९,४५,८४३	४२,४३,९४९	८५·८	९,६२०	३०,००,८८,७६०
सीमाप्रान्त	२०,००,६१७	४,७५,४१३	२३·५	९७९	३,१५,२१,४४४
बिलोचिस्तान	४,४९,०९४	१,४५,४०२	३२·३	२५२	१,४५,११,२७६
उत्तर पश्चिमी क्षेत्रका जोड़	३,३१,३९,६८३	१,८३,८६,६५३	५५·४	३१,०४४	७३,८८,११,७४८
ब्रिटिश भारतका जोड़	२०,९३,५९,७८६	२,८२,९२,९३८	१३·४	७४,९११	१,५३,८९,४२,४३३
ब्रिटिश भारतके मुकाबले उत्तर पश्चिमी क्षेत्रका औसत	१५·६	६१·४	—	४१·४	४७·९

	कुल आमदनी रुपयोंमे	निगरानीका खर्च रुपयोंमें	शेष आमद रुपयोंमें	कुल लगी पूंजी का औसत रुपयोंमें	सिचाईसे प्राप्त कुल फसलका मूल्य रुपयोंमें	सिंचाईकी कुल फसलका औसत प्रतिव्यक्ति रुपयोंमें
पञ्जाब	७,१०,९०,१४८	१,५३,९८,२२२	५,५६,९१,९२६	१४'१९	५०,७४,५७,६९६	१७≡)
सिन्ध	१,६८,६१,२९३	६८,८५,५५४	९९,७५,७३९	३'३२	११,०२,१२,६७७	२४।-)
सीमाप्रान्त	२३,२२,५५७	९,८०,०७१	१३,४२,४८६	०'४२	२,६६,८२,९१२	८।॥)
बिलोचिस्तान	३,९४,५४०	२,५५,९५५	१,३८,५८५	०'९५	४,४८,३९८	॥=)
उत्तर पश्चिमी क्षेत्रका जोड़	९,०६,६८,५३८	२,३५,१९,८०२	६,७१,४८,७३६	९'०८	६४,४८,०१,९८३	१७॥=)
ब्रिटिश भारतका जोड़	१४,६०,४२,१२७	४,५६,९३,४७१	१०,०३,४८,६५६	६'५२	१,३६,२९,०८,३७३	३॥)
ब्रिटिश भारतके मुकाबले उत्तर पश्चिमी क्षेत्रका औसत	६२'४	५१'४	६६'९	—	४७'३	—

सरकारी तथा गैर सरकारी साधनोंद्वारा पञ्जाब प्रान्तके मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें सिंचाईकी तुलनात्मक समीक्षा करें तो नीचे परिणामपर पहुँचा जाता है:—

	सरकारी नहरोंसे	कुल सिंचाईका औसत
पञ्जाबका मुस्लिम क्षेत्र	८७,०८,०८९ एकड़	७८ फीसदी
गैर मुस्लिम क्षेत्र	२४,९५,१९९ ,,	२२ ,,
	१,१२,०३,२८८ ,,	

ऊपरकी तालिकासे प्रकट होता है कि सरकारकी ओरसे सिचाईकी जो व्यवस्था है उसका सबसे ज्यादा लाभ पञ्जाबके मुस्लिम क्षेत्रको ही है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जहाँतक सिंचाईका सम्बन्ध है समस्त ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा उत्तर पश्चिमी क्षेत्रकी हालत अच्छी है। पञ्जाबकी खेती समस्त ब्रिटिश भारतकी खेतीका सिर्फ १५.६ फीसदी है लेकिन सिंचाई समस्त ब्रिटिश भारतको सिंचाईसे ६१.४ फीसदीसे कममें नहीं होती। समूचे ब्रिटिश भारतमें नहरों, उनकी शाखाओं तथा उपशाखाओंकी लम्बाई ७४,९११ मील है। इसमेंसे ३१,०४४ मील या ४१.४ फीसदी केवल उत्तर पश्चिमी क्षेत्रमें पड़ता है। इस मदमें १५३ करोड़ ८९ लाख कुल सरकारी पूँजी लगी है जिसमेंसे ७३ करोड़ ८८ लाख या ४७.९ फीसदी पूँजी केवल उत्तर पश्चिमी क्षेत्रकी सिंचाईकी व्यवस्थामें लगी हुई है। सिंचाई विभागसे समस्त ब्रिटिश भारतकी सालाना आमदनी १० करोड़ ३ लाख है। इसमें केवल उत्तर पश्चिमी क्षेत्रकी आमदनी ६ करोड़ ७१ लाख या ६६.९ फीसदी है। समूचे ब्रिटिश भारतमें सिंचाईसे पैदा की गयी समस्त फसलका मूल्य १३६ करोड़ २९ लाख है। इसमें केवल पञ्जाबका हिस्सा ६४ करोड़ ४८ लाख या ४७.३ फीसदी होता है। उत्तर पश्चिमी क्षेत्रमें जहाँ सिंचाईकी फसलका मूल्य प्रति व्यक्ति १७॥=) पड़ता है वहाँ ब्रिटिश भारतमें केवल ३॥)

पड़ता है। पञ्जाबकी कुल सरकारी आमदनीका ४२ फीसदी केवल सिंचाईसे मिलता है। उसी तरह सिन्धसे १३·४ और सीमाप्रान्तसे ७·५ मिलता है। यदि केवल सिन्ध और पञ्जाबके ही आँकड़े लिये जायँ तो प्रकट होगा कि इन प्रान्तोंकी हालत और भी अच्छी है। सिन्धमें कुल जोतका ८५·८ फीसदी तथा पञ्जाबमें कुल जोतका ६२·५ फीसदी नहरोंद्वारा सींचे जाते हैं। जहाँ ब्रिटिश भारतमें कुल जोतका केवल १३·४ फीसदी खेत नहरोंद्वारा सिंचाईके अन्दर है वहाँ उत्तर-पश्चिम क्षेत्रमें ५५·४ फीसदीसे कम नहीं है। यदि ब्रिटिश भारतसे उत्तर पश्चिमी क्षेत्रको अलग करके केवल उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रकी तुलना शेष भागसे की जाय तो उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रकी हालत और भी अच्छी प्रकट होगी। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र निकाल देनेके बाद समूचे भारतकी नहरसे सिंचाई केवल ५·५ फीसदी खेतोंकी होती है।

इन सुविधाओंके होते हुए भी उत्तर-पश्चिम क्षेत्रकी गिनती उन प्रान्तोंमें नहीं हो सकती जो अपनी जरूरतसे ज्यादा अन्न पैदा कर लेते हैं। जो कुछ भी थोड़ा-बहुत अन्न बच जाता है उसकी खपत पहाड़ी जिलोंमें ही हो जाती है। सरकारी खेती अनुशीलन विभागने १९३४ के क्राप प्लैनिंग कान्फरेन्स, शिमलामें प्रत्येक प्रान्तकी चावल तथा गेहूँकी पैदावारकी स्थिति पेश की थी। पञ्जाबमें न तो ज्यादा चावल होता हो है और न उसकी ज्यादा खपत ही होती है। गेहूँके सम्बन्धमें कहा गया था कि गेहूँकी पैदावारको अधिक नहीं कहा जा सकता। जो कुछ गेहूँ फाजिल होता है उसकी खपत आसानीसे पड़ोसी जिलों तथा कलकत्तामें हो जाती है। जब सिन्धमें २०,००,००० एकड़ भूमिमें गेहूँकी खेती होने लगेगी तभी वास्तविक फाजिल पैदावार हो सकेगी।* ऊपर जो तालिका दी गयी है उसके आँकड़ोंसे प्रकट होगा कि १९३९-४० तक तो सिन्धमें ऊपरके अंकोंतक गेहूँकी खेती नहों पहुँची है।

पञ्जाबके डेबलपमेण्ट (उन्नति विभाग) के मन्त्री सरदार बलदेव सिंह-

---

* प्रोसीडिंग्स आव दि क्राप प्लैनिंग कान्फरेन्स (दिल्ली १९३४) पृ० ७-१०

ने जनवरी १९४५ में कलकत्तामें अपने एक वक्तव्यमें कहा था कि तीन साल पहलेतक पञ्जाबमें चावलकी पैदावारकी कमी रहती थी लेकिन अब तो पञ्जाबमें चावलकी पैदावार भी फाजिल होती है; १९४४-४५ में ३० लाख टन फाजिल चावल पैदा हुआ। इससे प्रकट है कि पंजाब और सिन्ध दोनों प्रान्त खेतीके काममें तेजीसे आगे बढ़ रहे हैं और आशा की जाती है कि शीघ्र ही वे भारतके अन्य प्रान्तोंको अधिक तादादमें फाजिल अन्न देने लगेंगे। पैदावारकी इस अचानक बढ़तीको युद्धसे भी प्रोत्साहन मिला है।

यह मानकर कि पञ्जाबकी आबादीमें ७५ प्रतिशत बालिग हैं और प्रत्येक बालिगके लिए प्रतिदिन १४ या १२ छटाँक अन्नकी जरूरत पड़ती है हमलोग नीचे लिखे परिणामपर पहुँचते हैं—

प्रान्त	जनसंख्या	भोजन करनेवाले बालिग जनसंख्याके ७५ फीसदी	प्रति वर्ष पैदावार मनोंमें	प्रतिबालिग १४ छटाँक प्रतिदिनके हिसाबसे सालभर का खर्च मनोंमें	कमी मनोंमें	प्रतिबालिग १२छ० प्रतिदिनके हिसाबसे सालभर का खर्च मनोंमें	फाजिल मनोंमें
पंजाब	२८४५८८१९	२१३१४११४	१५०६६८७००	१७०१७९७९०	१९५११०९० ११'४२	१४५८६८२३५	४८००४६५ ३'२९
सिन्ध	४५३५००८	३४०१२५६	२६१८०७००	२७१५६७३०	९७६०३० ३'५९	२३२७७५१०	२९०३१९० १२'४७
सीमाप्रान्त	३०३८०६७	२२७८५५०	१५९१५९००	१८१९२६९५	२२७६७९५ १२'५१	१५५९३८९५	३२२००५ २'०६

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रकी आबादी भी अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा अधिक दरसे बढ़ रही है। नीचेकी तालिकामें १८९१ तथा १९४१ और १९३१-१९४१ के बीचकी जनसंख्याकी ५० सालकी वृद्धि दिखलायी गयी है—

प्रान्त	जनसंख्या १९४१में	जनसंख्या १८९१में	१९४१ तथा १८९१का अन्तर		जनसंख्या १९३१में	१९४१ तथा १९३१का अन्तर	
			संख्या	फीसदी		संख्या	फीसदी
पञ्जाब	२८,४१८,८१९	१८,६५२,६१४	९,७६६,२०५	५२'३	२३,५८०,८६४	४,८३७,९५५	२०'५
सिन्ध	४,५३५,००८	२,८७५,१००	१,६५९,९०८	५७'०	३,८८७,०७०	६४७,९३८	१६'७
सीमाप्रान्त	३,०३८,०६७	१,८५७,५१९	१,१८०,५४८	६३'५	२,४२५,०७६	६१२,९९१	२५'२
बिलो· चिस्तान	५०१,६३१	३८२,१०६	११९,५२५	३१'२	४६३,५०८	३८,१२३	८'२
ब्रिटिश भारतके प्रान्त	२९५,८०८,७२२	२१२,९७०,६१६	८२,८३८,१०६	३८'८	२५६,७५७,८१८	३,९०,५०,९०४	१५'२

नहरोंके व्यापक फैलावके कारण पैदावारमें काफी वृद्धि हुई है और वृद्धि होनेकी सम्भावना है। लेकिन आबादीमें जिस तेजीके साथ वृद्धि हो रही है उसका मुकाबला पैदावारकी वृद्धि नहीं कर सकती। विगत ५०वर्षों में पञ्जाबकी आबादीमें ५२ फीसदी, सिन्धमें ५७ तथा सीमाप्रान्तमें ६३ फीसदीकी वृद्धि हुई है। ब्रिटिश भारतके अन्य प्रान्तोंके साथ साथ इन प्रान्तोंको भी इस समस्याका मुकाबला करना है लेकिन अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा इसे हल करनेकी सुविधा भी इन प्रान्तोंको प्राप्त है।

अन्नकी पैदावारके अलावा पञ्जाब और सिन्धमें कपासकी खेती बहुत अधिक होती है। १९३९-४० में पञ्जाबमें १०१७००० गाँठ, सिन्धमें ३०९०००, गाँठ तथा सीमाप्रान्तमें ३००० गाँठ रुई पैदा हुई थी। एक गाँठ ४०० पौंडकी होती है। तीनों प्रान्तमें क्रमशः २६४१,१०५ तथा ८५४३९० और १७३५१ एकड़ भूमिमें कपासकी खेती हुई थी।* कपास किसानोंका नगद आमदनीका जरिया है। इस फसलका महत्व उस दृष्टिसे प्रकट होगा कि जहाँ समस्त भारतमें कपासकी पैदावार ३३८१,००० गाँठ है वहाँ केवल उत्तर-पश्चिम क्षेत्रमें १३२९००० गाँठ या ३९.३ सैकड़ा है, और सिन्धप्रान्तके सक्खरके सिंचाई क्षेत्रमें उत्तम कपासकी खेतीका दिनोदिन विस्तार होता जा रहा है। सक्खर बाँधके पहले १९३२-३३ में जहाँ सिन्धमें केवल ३४२,८६० एकड़ भूमिमें कपासकी खेती होती थी वहाँ १९३९-४० में ८५५२७७ एकड़ भूमिमें कपासकी खेती हुई। यह सिंचाईके निश्चित प्रबन्धका फल है। कपासकी फसलमें जो वृद्धि हुई है सब अमेरिकाकी किस्में हैं जो बाजारमें महँगी बिकती हैं।† यद्यपि सिन्धके समान नहीं, तो भी

---

* अनुएल रिपोर्ट आव दि डिपार्टमेण्ट आव एग्रिकलचर, सिन्ध १९३९-४० पृ० ७-८

† स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट फार ब्रिटिश इण्डिया १९३०-३१ १९३९-४०, पृ० ५५४

पञ्जाबमें कपासकी खेती और उत्तम फसलकी पैदावारमें दिनोदिन उन्नति हो रही है।

४०० पौण्डकी एक गाँठका दाम १९३९ में १०५)रु० था। इस हिसाबसे पञ्जाबको कपाससे १९३९ में ९ करोड़ और सिन्धको ३$\frac{1}{4}$ करोड़की आमदनी हुई जहाँ समूचे भारतको ३५$\frac{1}{2}$ करोड़की आमदनी इस बरस हुई थी।

इस कपासका अधिकांश भाग या तो दूसरे प्रान्तोंको भेजा जाता है या विदेश चला जाता है क्योंकि इन प्रान्तोंमें रुईकी मिलें बहुत ही कम हैं। पञ्जाबमें चर्खेका प्रचलन यद्यपि बहुत अधिक है तथापि उसमें कपासकी बहुत ज्यादा खपत नहीं हो सकती। १९३८-३९ में समूचे भारतमें ३८० सूती मिलें थीं जिनमें १० लाखसे ज्यादा चर्खे काम करते थे, लेकिन इनमेंसे केवल ७ मिलें पञ्जाब तथा सिन्धकी मिलाकर थीं जिनमें केवल ७००० चर्खे और २००० करघे चलते थे। सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तानमें तो इसका नामोनिशानतक नहीं है।"*

ऊपरके प्रसङ्गमें उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रसे अभिप्राय पञ्जाब, सिन्ध तथा सीमाप्रान्तोंसे है। इसमें पञ्जाबके वे जिले भी शामिल हैं जिनमें ग़ैर-मुसलमानोंका बहुमत है।

२

जङ्गल

प्रत्येक देशके लोग जङ्गलको सबसे बड़ी सम्पत्ति मानते हैं। लेकिन भारतमें जङ्गलोंका पूरा विकास नहीं किया गया है और उनसे बहुत ज्यादा आमदनी

---

* एम.पी. गांधी—इण्डियन टेक्सटाइल काटन इण्डस्ट्री (१९३९अनुएल) पृ० ६२ ऐण्ड अपेण्डिक्स १

नहीं है। इसलिए इस विषयपर विस्तारसे विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, यहाँ केवल दिग्दर्शन-मात्र करा दिया जाता है।

पूर्वी क्षेत्र (बङ्गाल) में जंगल विभागने जङ्गलोंको दो क्षेत्रोंमें बाँट दिया है—उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी क्षेत्रसे जङ्गल कुलके कुल बङ्गालके गैर-मुस्लिम क्षेत्र तथा दक्षिणी क्षेत्रके दो तिहाई मुस्लिम क्षेत्र और एक तिहाई गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ते हैं। १९३९-४० में प्रान्तभरकी आमदनी इस मदसे ६५८०३३) थी। दोनों भागोंकी आमदनी अलग अलग कर देनेपर गैर-मुस्लिम क्षेत्रकी आमदनी ४½ लाख तथा मुस्लिम क्षेत्रकी आमदनी दो लाखके करीब होगी।*

पञ्जाबमें ५१८४ बर्गमील जङ्गल है। इसमेंसे पूर्वी भागमें जो मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर पड़ता है, ३८७७ वर्गमील तथा पश्चिमी भाग यानी मुस्लिम क्षेत्रमें १३०७ वर्गमील जङ्गल पड़ता है। १९३९-४० में दोनों भागोंकी कुल आमदनी २३६०१९२) रु० की थी और खर्च २२८५००७) अर्थात् कुल बचत ७५,१८५) रु० की थी।†

इस विषयमें सिन्धकी हालत अच्छी है। सिन्धमें ११३४ वर्गमील जङ्गल हैं जिनसे ७,७४,३४८) रु० की सालाना आमदनी है। २६२७४१) रु०के सालाना खर्चके बाद भी १९३९-४० में इस विभागसे सिन्ध प्रान्तको ४१-३६०५) रु० की आमदनी हुई थी।‡

३
खनिज

संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके कोलम्बिया विश्वविद्यालयके भूगर्भ शास्त्रके अध्यापक श्री चार्ल्स एच० बेहरेने फारेन अफेयर्समें लिखा था:—"बर्माको छोड़कर

* बङ्गालके जङ्गल महालकी रिपोर्टके आधारपर—१९३९-४०

† पञ्जाबके जङ्गल महालकी रिपोर्टके आधारपर—१९३९-४०

‡ सिन्ध प्रान्तके जङ्गल महालकी रिपोर्टके आधारपर १९३९-४०

अब भारत कोयला, पेट्रोल, कच्चा लोहा, मैंगनीज, क्रोम, सोना, बाक्साइट, नमक मैगनेसाइट, अभ्रक, जिप्सम, अनेक तरहके जवाहरात, मोनाजाइट तथा अन्य खनिज पदार्थोंका बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र होने जा रहा है।

वर्तमान युगमें औद्योगिक प्रभुता कोयला, लोहा और तेलपर निर्भर करती है। वर्तमान युगमें कोयला और लोहा उद्योगके सबसे बड़े साधन माने जाते हैं। मानव-शरीरके विकासके लिए जितना जरूरी आक्सिजन तथा हाइड्रोजन है, उद्योगके विकासके लिए उतना ही जरूरी कोयला और लोहा है। दोनोंका साथ साथ पाया जाना नितान्त आवश्यक है। तेल भी आवश्यक है परन्तु अनिवार्य नहीं। शान्तिके युगमें कोई भी राष्ट्र तेलके बिना अपना काम चला सकता है यदि खनिज पदार्थोंके परिवर्तनपर कोई रोकटोक न हो। यदि वह तेल न भी पैदा करता हो तो जर्मनीकी तरह वह कोयलेसे तेल पैदा कर सकता है। फौलाद बनानेमें तेलका कोई महत्व नहीं है और लोहेके कारखानोंमें यह कोयलेका काम नहीं दे सकता। इसलिए कोयलेका बहुत ज्यादा महत्व है।

हमारा पहला परिणाम तो स्पष्ट है कि भारतमें तेलकी अधिकता नहीं है लेकिन उसके पास सबसे प्रधान खनिज अर्था कोयले और लोहेकी अधिकता है इसलिए वह अपना औद्योगिक विकास भलीभाँति कर सकता है। यद्यपि संसारके बड़े बड़े औद्योगिक देशोंकी अपेक्षा प्रति व्यक्ति आमद कम है तो भी आवश्यक खनिज पदार्थोंके वर्तमान संचित कोषको किसी तरहका धक्का निकट भविष्यमें पहुँचाये बिना भी प्रति व्यक्ति खर्च बढ़ाया जा सकता है।

नीचेकी तालिकामें हम यह दिखलाना चाहते हैं कि खनिजोंका बँटवारा किस प्रकार है और उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रोंके मुस्लिम क्षेत्रमें अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा उनका कितना अंश पड़ता है :—

१९३८ का उत्पादन

खनिज	बंगाल (मुस्लिम क्षेत्र)		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		बिलोचिस्तान	
	वजन	मूल्य	वजन	मूल्य (रुपयोंमें)	वजन	मूल्य	वजन	मूल्य	वजन	मूल्य (रुपयोंमें)
कोयला (टनोंमें)	—	—	१,८४,०२८	१०,२०,८५६	—	—	—	—	१४,३८८	६१,८१२
पेट्रोल (गैलनोंमें)	—	—	२,११,१३,४२०	५२,७८,३५५	—	—	—	—	—	—
क्रोमाइट (टनोंमें)	—	—	—	—	—	—	—	—	२१,८९२	३,२६,०१४
ताँबा कच्चा (टनोंमें)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
लोहा कच्चा (टनोंमें)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
मैंगनीज़ कच्चा ,,	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
मैगनेसाइट (टनोंमें)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
अभ्रक (हराटरमें)	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—

खनिज	मुस्लिमक्षेत्रका कुल जोड़		ब्रिटिश भारत		मुस्लिमक्षेत्रको बाद देकर ब्रिटिश भारत	
	वजन	मूल्य (रुपयोंमें)	वजन	मूल्य (रुपयोंमें)	वजन	मूल्य (रुपयोंमें)
कोयला (टनोंमें)	१,९८,४१६	११,१२,६६८	२,५२,७८,२१८	९,४६,३०,७१८	२,५०,७९,८०२	९,३५,१८,०५०
पेट्रोल (गैलनोंमें)	२,११,१३,४२०	५२,७८,३५५	८,७०,८२,३७१	१,६५,४३,१४२	६,५९,६८,९५१	१,१२,६४,७८७
क्रोमाइट (टनोंमें)	२१,८९२	३,२६,०१४	२७,०८६	४,२५,९४२	५,१९४	९९,९२८
ताँबा कच्चा और माटे (टनोंमें)	—	—	२,८८,०७६	३२,४०,६४०	२,८८,०७६	३२,४०,६४०
लोहा कच्चा (टनोंमें)	—	—	१४,२१,७०१	२६,९१,८२९	१४,२१,७०१	२६,९१,८२९
मैंगनीज कच्चा ,,	—	—	७,६६,३४१	३,२०,९३,७०९	७,६६,३४१	३,२०,९३,७०९
मैगनेसाइट (टनोंमें)	—	—	२३,०५२	१,३४,८७६	२३,०५२	१,३४,८७६
अभ्रक (हण्डरमें)	—	—	१,०८,८३४	४०,८९,४८८	१,०८,८३४	४०,८९,४८८
कुल जोड़	—	६७,७०,९३७	—	१५,३८,५०,३४४	—	१४,७१,३३,३०७

ऊपरकी तालिकामें मैंने उन खनिजोंको शामिल नहीं किया है जिनका उत्पादन बहुत अधिक नहीं है, जैसे नमक (६४०७४ टन) कुलका कुल पञ्जाब प्रान्तके पश्चिमी क्षेत्रमें पैदा होता है और बाक्साइट (१०१३४ टन) कु लका कुल गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें उत्पन्न होता है तथा इसी तरहके अन्य छोटे-मोटे खनिज पदार्थ हैं ।

खनिज पदार्थोंमें कोयलेका स्थान सबसे ऊपर है । कोयलेकी अधिकांश खानें गैर मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ती हैं । पञ्जाब तथा बिलोचिस्तानके मुस्लिम क्षेत्रमें कुछ कोयला अवश्य पैदा होता है, लेकिन वह बहुत थोड़ा है । बङ्गालकी अधिकांश कोयलेकी खानें बर्दवान जिलेमें हैं । इस ज़िलेकी मुस्लिम आबादी मुश्किलसे १८ फीसदी है । स्वभावतः यह मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर पड़ता है । आसामकी तेलकी खानें भी मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर पड़ती हैं ।

खनिज तेल थोड़ा-बहुत पञ्जाब, सीमाप्रान्त तथा बिलोचिस्तानमें पैदा होता है । जियालाजिकल सर्वे आव इण्डियाके सुपरिण्टेण्डेण्ट डाक्टर जे० काजिन ब्राउनने इण्डियाज मिनरल वेल्थ (India's Mineral Wealth) नामक अपनी पुस्तकमें भारतकी १९०० से १९३३ (जब बर्मा भी भारतमें शामिल था) तकके खनिज तेलकी पैदावारका औसत आँकड़ा दिया है । १९२९-३२ में बर्मामें ८१·४ आसाममें १५·५ तथा पञ्जाबमें ३·१ फीसदी तेलकी पैदावार थी । उन्होंने श्री सर एडविन पास्कोईका निम्न अवतरण दिया है :—"पञ्जाब तथा बिलोचिस्तानके अनेक भागोंमें बाढ़ तथा भूकम्पसे पथरीली भूमिमें इस तरहका परिवर्तन हो गया है कि वहाँ तेलका जो खजाना था वह गायब हो गया है । तेलके चिह्न तो अवश्य पाये जाते हैं लेकिन वे दिखावा मात्र हैं । तेलके खजानेसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है जिससे अप्राकृतिक ढङ्गसे भी तेल निकाला जा सके । * तेल निकालनेके उपाय किये भी गये लेकिन कुछ परिणाम नहीं निकला । लेकिन खौरका तेलका कारखाना सफलतापूर्वक चल

* ब्राउन मिनरल वेल्थ आफ इटण्डिया पृ० ६० ।

रहा है। १९३८ में ब्रिटिश भारतकी कुल आमदनी खनिज पदार्थोंसे १५,३८,५०,००० थी। इसमेंसे उत्तर-पश्चिम क्षेत्रसे केवल ७६,१७,००० या ४·३ फीसदी रकमका खनिज प्राप्त हुआ था और पूर्वी-क्षेत्रसे एक पैसेका भी खनिज पदार्थ नहीं मिला था। यदि ब्रिटिश भारतके साथ देशी रियासतोंकी इस मदकी आमदनीको मिला दिया जाय तो मुस्लिम क्षेत्रकी हालत और भी खराब प्रतीत होगी। यदि प्रोफेसर वेहरे निम्नलिखित परिणामपर पहुँचे हैं तो कोई अचरजकी बात नहीं:—भारतके खनिज पदार्थ भिन्न भिन्न भागोंमें इस तरह पाये जाते हैं कि यदि भारतका बँटवारा हिन्दू और मुस्लिम भारतमें हो जाय तो हिन्दू भारत खनिजके मामलेमें बहुत सम्पन्न रहेगा और मुस्लिम भारत बहुत ही दरिद्र। यह असमानता इतनी ज्यादा है कि यदि घनी आबादीको काट छाँटकर इधर-उधर बसाया जाय तो भी इसमें किसी तरहका अन्तर नहीं पड़ सकता। खनिज पदार्थोंकी वर्तमान पैदावारके कारण ही इसका उद्योग ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा त्यों त्यों इसका महत्व भी बढ़ता जायगा। पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तानमें भारतके बँटवारेके प्रश्नका निर्णय करनेके पहले इसका पूरा अध्ययन कर लेना उचित होगा। हिन्दुस्तान (हिन्दू भारत) में कोयले तथा लोहे-की अधिकता है। इसमें अन्य जलाये जानेवाली धातु तथा अधातविक खनिज और सोनाकी भी अधिकता है। बहुत ज्यादा बाक्साइट तथा थोड़ा बहुत ताँबा भी यहाँ पाया जाता है। इसके विपरीत पाकिस्तानमें कोयला और लोहा बहुत कम है, गलानेवाली धातुएँ भी नगण्य हैं, बाक्साइट तो प्रायः शून्य है। लेकिन पाकिस्तानमें मैंगनीज और क्रोमियमको छोड़कर अन्य जलाये जानेवाले खनिज उतने ही पाये जाते हैं जितना हिन्दुस्तानमें हैं। मैगनेसाइटको छोड़कर यहाँ (हिन्दुस्तानमें) अन्य सहायक खनिजका संचित लोहा बहुत ज्यादा है और तेल बहुत ज्यादा तादादमें यहीं है······

जिस दूसरे परिणामपर हम पहुँच चुके हैं, वह यह कि भारतके हिन्दू और मुस्लिम क्षेत्र एक दूसरेपर निर्भर करते हैं। देशके औद्योगिक विकासके लिए केवल हिन्दुस्तानको ही पाकिस्तानका मुखापेक्षी नहीं होना पड़ेगा बल्कि पाकि-

स्तानको हिन्दुस्तानका बहुत अधिक सहारा लेना पड़ेगा।" अन्तमें प्रोफेसर वेहरेने यह लिखकर समाप्ति की है:—

"मेरे इस रिपोर्टके लिखनेका यह अभिप्राय नहीं है कि भारत तथा ब्रिटिश सरकारके बीच समझौता होनेमें विलम्बकी जिम्मेदारी कहाँ और किसपर है और न मैं दोनों सम्प्रदायोंके धार्मिक विश्वासोंकी ही किसी प्रकार अवहेलना करना चाहता हूँ। मैंने तो केवल यह दिखलानेका यत्न किया है कि जहाँतक खनिज पदार्थोंका सम्बन्ध है मुस्लिम तथा हिन्दूभारत एक दूसरेमें गुथे हैं और आर्थिक मामलोंमें एक दूसरेपर निर्भर करते हैं। जहाँ आर्थिक निर्भरता इतनी अनिवार्य हो वहाँ राजनीतिक समस्याको हल कर डालनेकी ओर ही ये बातें प्रेरित करती हैं। इससे प्रकट है कि यदि हिन्दुस्तानका बँटवारा धार्मिक आधारपर हुआ तो इससे हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंकी हानि कहीं अधिक होगी। इससे यह परिणाम भी निकलता है कि भारतकी आर्थिक समस्या समस्त एशियाके साथ सम्बद्ध है।"

सर होमी मोदी तथा डाक्टर मथाई भी इसी परिणामपर पहुँचे हैं:—

आबादी, क्षेत्र तथा साधनकी दृष्टिसे आर्थिक विभागके लिए संयुक्त भारतको जो सुविधाएँ प्राप्त हैं वह अमेरिका तथा सोवियत रूसको छोड़कर संसारके अन्य किसी देशको प्राप्त नहीं है। पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तानमें भारतका बँटवारा दोनोंको कमजोर बना देगा। इनमें भी हिन्दुस्थानकी अपेक्षा पाकिस्तानको अधिक क्षति उठानी पड़ेगी।......जहाँतक खनिज पदार्थोंका सम्बन्ध है, कोयला, लोहा, गलानेवाली धातुकी कमीके कारण दोनों क्षेत्रोंमें पाकिस्तानकी हालत ज्यादा खराब हो जायगी और उसकी विशाल भावी औद्योगिक उन्नतिके लिए जिन खनिज पदार्थोंकी जरूरत है उसका उसे सदा अभाव बना रहेगा।"*

*** सर होमी मोदी ऐण्ड डा० मथाई—ए मेमोरण्डम आन दि इकनामिक ऐण्ड फाइनेन्सल ऐस्पेक्ट ऑव पाकिस्तान पृ० २५-२६**

मुस्लिम क्षेत्रका एक लाभ अवश्य रहेगा। भारतमें जल-शक्तिसे बिजली निकालनेके लिए जो अनुसन्धान किया गया था उससे प्रकट होता है कि पाकिस्तानको हिन्दुस्तानकी अपेक्षा यह जल-शक्ति बहुत अधिक प्राप्त होगी। पूर्वी क्षेत्रमें १०८४ हजार किलोवाट तथा पश्चिमी क्षेत्रमें १७९३ हजार किलोवाट अर्थात् कुल २८७७ हजार किलोवाटकी जल-शक्ति प्राप्त है। इसके विपरीत हिन्दुस्तानमें केवल १३४३ किलोवाट प्राप्त होगा।"†

४

उद्योग-धन्धे

अब हमलोगोंको यह देखना है कि उद्योग-धन्धोंकी क्या हालत है—

उद्योग-धन्धे—१९३९

१—सरकारी तथा स्थानीय पूँजीसे चलाये गये कारखाने—

† वही पृ० १६

उद्योग-धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		ब्रिटिश बिलोचिस्तान		ब्रिटिश-भारत	
(क) स्थायी	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
कपड़ा	—	—	१	१०९	—	—	—	—	—	—	२	२,१५७
शराब दारू	—	—	—	—	१	३४	—	—	—	—	२	१७५
लकड़ीका काम	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	३	५४९
सूतकी मिलें	१	१९	१	१९५	—	—	—	—	—	—	५	१,७०१
जहाज-घाट	४	२,०४८	—	—	—	—	—	—	—	—	८	४,९४३
बिजलीके कारखाने	९	१,११५	९	१,००९	१	४३	५	१४८	—	—	३४	३,५९२
इञ्जीनियरिङ्ग	१०	१,९१२	५	९२०	३	५८१	—	—	१	४८	५२	७,७४५
फोरेज प्रेसें	—	—	—	—	—	—	—	—	१	४३	१	४३
टकसाल	१	९३३	—	—	—	—	—	—	—	—	२	१,८३६
लड़ाईके सामानके कारखाने	३	९,२७५	६	६,५५६	१	५३५	५	२७०	१	१,०७५	२५	३०,७०९
छापाखाने	११	३,५२१	६	१,४८०	१	१७५	१	१०५	—	—	४५	१२,५५५
रेलके कारखाने	१६	१५,१७३	७	११,४०२	५	१,७३६	—	—	—	—	७४	५५,७८४
चिराईके कारखाने	१	२५	१	८	१	—	—	—	—	—	६	२४५

उद्योग-धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सामाप्रान्त		ब्रिटिश बिलोचिस्तान		ब्रिटिश-भारत	
(क) स्थायी	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
चमड़ेके कारखाने	२	३२	—	—	—	—	—	—	—	—	१	३२
तारके कारखाने	१	१,११८	—	—	—	—	—	—	—	—	२	१,३३१
पानी पम्प करनेके कारखाने	५	७७०	१	६५	२	६२	१	२२	—	—	२६	२,१०१
ऊनकी मिलें	१	१६१	—	—	—	—	—	—	—	—	३	६२६
फुटकर कारखाने	४	५६७	६	५२६	२	९७	—	—	५	४२३	५४	४,९४२
जोड़ स्थायी	६८	३६,६६९	४३	२२,२७०	१७	३,२६३	१२	५४५	८	१,५८९	३४५	१३१०६६
(ख) मौसमी (अस्थायी)												
फोरेज प्रेसें	—	—	४	१०८	—	—	६	२२५	—	—	१९	१,०४८
फुटकर	—	—	१	२४	—	—	—	—	—	—	१०	३३२
जोड़ (मौसमी)	—	—	५	१३२	—	—	६	२२५	—	—	२९	१,३८०
सरकारी तथा स्थानीय कारखानोंका जोड़	६८	३६,६६९	४८	२२,४०२	१७	३,२६३	१८	७७०	८	१,५८९	३७४	१३२४४६

२. अन्यान्य कारखाने—

उद्योग धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		ब्रिटिश बिलोचिस्तान		ब्रिटिश-भारत	
(क) स्थायी	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
१—बीननेवाली मिलें (सूती मिलें)	३३	३१,८५९	१८	९,२११	—	—	—	—	—	—	८३६	४,८६,८५३
पाटकी मिलें	९७	२,८१,२२९	—	—	—	—	—	—	—	—	१०६	२,९८,९६७
मोजा बनानेके कारखाने	४१	१,९४५	६२	१,८६३	१	३०	—	—	—	—	१५२	७,७०८
रेशमकी मिलें	६	१,८८६	४	५६३	२	७०	—	—	—	—	१०७	६,२५१
ऊनी मिलें	—	—	६	२,६६१	—	—	—	—	—	—	१३	६,८०७
फुटकर	६	९९१	२१	१,९३६	—	—	—	—	—	—	८९	१०,४९१
जोड़	१८३	३,१७,९१०	१११	१६,२३४	३	१००	—	—	—	—	१३०३	८,१७,०७७
२—इञ्जीनियरिङ्ग	२५९	६५,२४७	५५	३,११६	२९	२२२८	२	९४	४	२६५	१००१	१,४८,४२४
३—खनिज और धातु फाउण्डरी	—	—	४६	१,५५४	२	६४	—	—	—	—	११०	६,०६६
लोहा और फौलाद गलाने तथा ढालने की मिलें	६	१६,९१४	—	—	—	—	—	—	—	—	१०	४०,७९०

उद्योग-धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		ब्रिटिश बिलोचिस्तान		ब्रिटिश-भारत	
(क) स्थायी	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
शीशा गलाने तथा ढालनेकी मिलें	१	२६२	—	—	—	—	—	—	—	—	१	२६२
पेट्रोल साफ करनेकी मिलें	—	—	२	८०३	—	—	—	—	—	—	४	२,९८१
फुटकर	६	४५७	२३	१,१०८	—	—	—	—	—	—	५३	५,०२४
कुल जोड़	१३	१७,६३३	७१	३,४६५	२	६४	—	—	—	—	१८७	५५,१२३
४—खाद्य, पेय व तम्बाकू												
आटाकी मिलें	११	१,९८१	१८	१,१७८	१३	७८९	—	—	—	—	८०	५,७९४
चावलकी मिलें	४००	१८,७४२	४३	१,०५६	—	—	—	—	—	—	११५८	४५,४०९
सुर्तीकी मिलें	४	१,३३९	१	५०	१	७७	—	—	—	—	१६५	१९,८३९
फुटकर	२७	२,९२४	२६	९९५	९	३०१	४	९६	—	—	४७७	२६,३६५
कुल जोड़	४४२	२४,१८६	८८	३,२७९	२३	११६७	४	९६	—	—	१८८०	९७,४०७
५—रसायन तथा रंग	११८	१७,२१२	३२	१,५५४	९	१६४२	—	—	—	—	५८८	५५,९४५
६—कागज तथा छपाई कतरन तथा पल्पकी मिलें	४	६,२६८	१	९९५	—	—	—	—	—	—	१६	११,५५३

उद्योग-धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		ब्रिटिश बिलोचिस्तान		ब्रिटिश-भारत	
(क) स्थायी	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
छपाई तथा जिल्दसाजी	९६	६,५७५	४४	२,०१९	१६	५०९	—	—	—	—	६५५	३०,९४२
फुटकर	१७	१,०९६	२	५६	—	—	—	—	—	—	४०	१,८८२
कुल जोड़	११७	१३,९३९	४७	२,०७०	१६	५०९	५	१०९	—	—	७०९	४४,३७७
प्रोसेस, पत्थर, लकड़ी, काँच, ईंट, टाइल, कुर्सी-टेबुल वगैरह	१५	१,३५७	७	१,०१७	६	३२५	—	—	—	—	१८६	२०,५५३
सीमेण्ट, चूना तथा बर्तन	१३	३,५१४	५	८३५	२	५२४	—	—	—	—	४६	१३,०८८
काँच	१२	२,२८०	३	२०४	—	—	—	—	—	—	७४	८,९३४
लकड़ी चीरने, पत्थर खरादने तथा फुटकर	१८	१,१३७	४	१५१	१	४१	—	—	२	१०९	१५९	९,७१५
कुल जोड़	५८	८,२८८	१९	२,२०७	९	८९०	—	—	२	१०९	४६५	५२,२९०

उद्योग-धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		बिलोचिस्तान		ब्रिटिश-भारत	
	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
(क) स्थायी												
८—चमड़ा सिझाने के कारखाने	५	४,०१७	२	१५५	१	१६	—	—	—	—	६६	१२,९०६
९—कपास काटने तथा गाँठ बाँधनेकी मिलें	३३	१९,१५५	—	—	—	—	—	—	१	६०	१८१	२५,९८७
१०—रस्सा बनाने तथा फुटकर मिलें	५८	९,६६५	२	१८७	६	२३२	—	—	—	—	२१८	१९,७१२
जोड़	१२८६	४,९७,२५२	४७	३३,२६७	९८	६,८४८	११	२९९	७	४३४	६५९८	१३,२९,२४८
(ख) मौसमी												
खाद्य, पेय तथा तम्बाकू												
चावलकी मिलें	—	—	—	—	१०२	२,०३७	—	—	—	—	१०२	२,०३७
चीनीकी मिलें	१३	३,५५८	४	१,३०३	१	१७७	—	—	—	—	२५४	७४,८७२
चाय	२८८	१८,८२८	१०	२९५	—	—	—	—	—	—	१०५५	६७,३०३

उद्योग धन्धे	बंगाल		पञ्जाब		सिन्ध		सीमाप्रान्त		बिलोचिस्तान		ब्रिटिश भारत	
(क) स्थायी	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या	कारखानोंकी संख्या	मजदूरोंकी औसत दैनिक संख्या
काफी, सुरती, चाय, सोडावाटर वगैरह	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१७	५,८३६
जोड़	३०१	२२,३८६	१४	१,५१८	१०३	२,२१४	—	—	—	—	१५०८	१,५०,०४८
रसायन तथा रंग	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	२:	१,९८९
ओटाई तथा गाँठ बँधाई	८	२,३६३	३११	२१,११५	१०३	१२,५६५	७	१९९	—	—	१८७९	१,२३,८७९
पाटकी गाँठ बँधाई वगैरह	६२	१२,८६९	—	—	३	१०५	—	—	—	—	८५	१३,५२७
जोड़	३७१	३७,६१८	३२५	२२,६३३	२०९	१४,८८४	७	१९९	—	—	३४९४	२,८९,४४३
समस्त अन्य फैक्टरियोंका जोड़	१६५७	५,३४,८७०	७५२	५५,९००	३०७	२१,७३२	१८	४९८	७	४३४	१००९२	१६,१८,६९१
कुल जोड़	१७२५	५,७१,५३९	८००	७८,३०२	३२४	२४,९१५	३६	१२६८	१५	२०२३	१०४६६	१७,५१,१३७

ऊपरकी तालिकामें बङ्गाल और पञ्जाबके जो आँकड़े दिये गये हैं वे केवल उन जिलोंके नहीं हैं जो मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ते हैं, बल्कि समूचे प्रान्तोंके हैं। इसलिए उन्हें देखकर धोखा होनेकी सम्भावना है—खासकर जहाँतक बङ्गालका सम्बन्ध है क्योंकि बङ्गालके सभी उद्योग-धन्धे कलकत्ताके इर्दगिर्द केन्द्रित हैं जो मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर पड़ता है। पाटकी पैदावार मुस्लिम क्षेत्रमें अवश्य होती है लेकिन पाटकी सभी मिलें हुगली नदीके किनारे कलकत्ताके निकट हैं। बङ्गालमें कपासकी ३० मिलें हैं। उनमेंसे केवल सात मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ती हैं, बाकी सब पश्चिमी बङ्गालमें हैं जो मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर हैं। इनमें केवल १ लाख १२ हजार चर्खे और २६०० करघे हैं जहाँ समूचे भारतमें प्रायः १० लाख चर्खे और २ लाख करघे हैं। यहाँके अधिकांश मजदूरोंकी जीविकाका साधन पाटकी मिलें हैं। लोहेके हर तरहके कारखाने पश्चिमी गैर-मुस्लिम जिलोंमें हैं। इसी तरह सिवा पाटकी गाँठें बाँधनेके कारखानोंको छोड़कर सभी प्रधान कारखाने कलकत्ताके आसपास हैं। सरकारी तथा स्थानीय पूँजीसे चालू कारखानोंमें हथियार (गोला बारूद) के कारखाने, रेल कम्पनीके कारखाने, जहाज-घाट तथा छपाईके कारखाने सबसे महत्वपूर्ण हैं। ये सबके सब कल-कारखाने कलकत्ताके आसपास हैं। इसलिए इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऊपरके आँकड़ोंसे बङ्गालमें उद्योग धन्धोंकी स्थिति अच्छी और सन्तोष-जनक प्रतीत होती है, इसके साथ ही इन आकड़ोंसे यह भी प्रकट हो जाता है कि इन उद्योग-धन्धोंका सम्बन्ध गैर-मुस्लिम क्षेत्रसे है, मुस्लिम क्षेत्रसे नहीं।

प्रोफेसर कूपलैण्डने भी इस स्थितिका संक्षेपमें इस प्रकार वर्णन किया है—"ब्रिटिश भारतके कुल कारखानोंका ३३ प्रतिशत बङ्गालमें है और ब्रिटिश भारतकी आबादीके २० फीसदी लोग इनमें काम कर रहे हैं। (यह आँकड़ा कारखानोंमें काम करनेवालोंके औसतसे निकाला गया है) कलकत्ताको अलग करके पूर्वी बङ्गालमें ब्रिटिश भारतीय उद्योगोंका केवल २·७ प्रति सैकड़ा पड़ता है।

पञ्जावकी हालत इससे एकदम भिन्न है। लाहौर मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ता है इसलिए लाहौरके इर्दगिर्दके सभी कल-कारखाने मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ते हैं। अतः पञ्जाबके आँकड़ेको थोड़ी अतिशयोक्तिके साथ मुस्लिम क्षेत्रका आँकड़ा मान लिया जा सकता है। इसलिए यदि बङ्गालके आँकड़ेको अलग रख दिया जाय और पञ्जाब, सीमाप्रान्त, सिन्ध तथा बिलोचिस्तानके आँकड़ोंपर विचार किया जाय तो हमलोगोंको भारतके मुस्लिम क्षेत्रकी औद्योगिक स्थितिका वास्तविक ज्ञान हो जायगा। पञ्जाब, सीमाप्रान्त, बिलोचिस्तान तथा सिन्धमें कुल मिलाकर ११७५ कारखाने हैं। इसमें सरकारी, अर्धसरकारी तथा गैरसरकारी सभी तरहके कारखाने शामिल हैं। इन कारखानोंमें १०६५८८ आदमी काम करते हैं। समस्त भारतके कारखानोंके मुकाबलेमें यहाँके कारखानोंका आकार छोटा है। ब्रिटिश-भारतमें कुल १०४६६ कारखाने हैं और उनमें १७५११३७ व्यक्ति काम करते हैं। इस तरह समस्त ब्रिटिश-भारतकी अपेक्षा जहाँ उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रके कारखानोंके औसत ११·२३ फी सैकड़े आते हैं वहाँ काम करनेवालोंका औसत ६·१ फीसदी आता है। दूसरे शब्दोंमें जहाँ ब्रिटिश-भारतके प्रत्येक कारखानेमें काम करनेवालोंका औसत १६७ होता है वहाँ उत्तर-पश्चिम क्षेत्रके कारखानोंमें काम करनेवालोंका औसत प्रति कारखाना केवल ९० आता है। इन कारखानोंमेंसे सीमाप्रान्तके कारखाने अधिकांश सरकारी या गैर सरकारी हैं। उनकी संख्या ९१ है और उनमें २८०२४ आदमी काम करते हैं। इससे यह प्रकट होता है कि कारखानोंका औसत केवल ७·७ फी सैकड़ा होते हुए भी काम करनेवालोंका औसत २६.३ सैकड़ा है। दूसरे शब्दोंमें बड़े बड़े कारखाने या तो सरकारी हैं या गैर-सरकारी। बड़े सरकारी कारखाने या तो गोला-बारूदके हैं या रेलवे कारखाने हैं। गैरसरकारी कारखानोंमें, रुईके ओटनेवाले तथा गाँठ बाँधनेवाले कारखानोंको छोड़कर एक भी ऐसे कारखाने पञ्जाब या सिन्धमें नहीं हैं जिनमें सरकारी गोला-बारूद या रेलवे कारखानोंके बराबर आदमी काम करते हों। पञ्जाबके सबसे बड़े गैरसरकारी कारखाने गाँठ बाँधने और ओटनेके हैं।

ऊपर जो लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र उद्योगके खयालसे पूरा विकसित प्रान्त नहीं है। उतना भी नहीं जितना ब्रिटिश-भारत है, क्योंकि बड़े बड़े कल-कारखाने सरकारी हैं।

यदि बङ्गालके कल-कारखानोंको अलग कर दिया जाय क्योंकि ये मुस्लिम क्षेत्रके बाहर पड़ते हैं तब तो उत्तर-पश्चिम तथा पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रकी औद्योगिक हालत समस्त ब्रिटिश-भारतके मुकाबले और भी असन्तोप-जनक प्रतीत होगी। बङ्गाल, पञ्जाब, सीमाप्रान्त सिन्ध तथा बिलोचिस्तानके मुस्लिम क्षेत्रोंकी आबादी समूचे ब्रिटिश भारतकी आबादीका २६'७ सैकड़ा है। लेकिन सरकारी, अर्ध-सरकारी तथा गैरसरकारी कल-कारखानोंका कुल औसत सिर्फ १३'९ सैकड़े है और उनमें काम करनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या ब्रिटिश-भारतके मुकाबले केवल ७'३६ सैकड़े है। जैसा ऊपर बताया गया है बड़े बड़े कारखाने गोला-बारूद या रेलवेके हैं।

जिन उद्योगोंमें भारतकी अधिकाधिक पूँजी लगी है, वे कपास, पाट तथा चीनीके कारखाने हैं। कपासकी पैदावार सबसे ज्यादा पञ्जाब तथा सिन्ध और पाटकी पैदावार सबसे ज्यादा बङ्गालमें होती है। लेकिन इन्हें कात, बुनकर माल तैयार करनेवाले अधिकांश कारखाने दोनों क्षेत्रोंमें मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर हैं। १९३९-४० में भारतमें सूती मिलोंकी लिमिटेड कम्पनियोंकी लागत पूँजी ३३ करोड़ ९३ लाख रुपये थी जिनकी रजिस्टरी भारतमें हुई थी। ऊनकी उन सभी मिलोंकी लिमिटेड कम्पनियोंको जोड़ देना चाहिए जिनकी रजिस्टरी विदेशोंमें हुई थी लेकिन जिनकी मिलें भारतमें थीं और १९३८-३९में जिनमें २७१,७७८ पौंड पूँजी लगी हुई थी। इसी तरह पाटके कारखानोंमें लगी पूँजी क्रमशः २० करोड़ ४६ लाख रु० तथा ३२९५५८७ पौंड है और चीनीके कारखानोंमें लगी पूँजी १० करोड़ ९७ लाख रु० तथा ३०६,६५६ पौंड है। इन कारखानोंका बहुत कम भाग मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ता है। इसी तरह खानों तथा पत्थर तोड़नेके कारखानोंमें १९ करोड़ ९८ लाख रु०देशी तथा ११,१०५६४४ पौंड विदेशी पूँजी लगी है। इन उद्योग-धन्धोंमें मुस्लिम क्षेत्रोंका कोई हाथ

नहीं है क्योंकि कोयला, लोहा, ताँबा आदिका एक भी कारखाना उनके हाथमें नहीं है, केवल पेट्रोलमें उनका थोड़ा हिस्सा है ।

फारेन अफेयर्समें प्रकाशित प्रोफेसर चार्ल्स एच० बेहरेकी रिपोर्टसे ऊपर जो अवतरण दिया गया है वह इन आँकड़ोंके अध्ययनसे साबित हो जाता है । यहाँ एक बात और जान लेना जरूरी है कि प्रोफेसर बेहरेने अपना परिणाम इस आधारपर निकाला है कि समस्त बङ्गाल और आसाम अर्थात् पेट्रोलियमके वे क्षेत्र भी जो आसामके एकदम उत्तर-पूर्व पड़ते हैं, पूर्वी क्षेत्रमें सम्मिलित होंगे । लेकिन जैसा ऊपर बतलाया गया है कि लीगके प्रस्तावसे यह बात नहीं प्रकट होती है । इसी प्रकार उन्होंने उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें समस्त पञ्जाबको शामिल कर लिया है । यदि उन्होंने अपने विचारणीय विषयसे बङ्गालका वह पश्चिमी भाग जहाँ कोयला तथा उद्योगके सारे कारखाने केन्द्रित हैं, सिलहट जिलाको छोड़कर तेलके क्षेत्रों सहित समस्त आसाम तथा पञ्जाबके वे पूर्वी जिले जिनमेंसे कई एकमें कल-कारखाने हैं—निकाल दिया होता तो मुस्लिम क्षेत्रोंके कल्याणकी दृष्टिसे ही धर्मके आधारपर भारतके बँटवारेके प्रस्तावके विरुद्ध उनके परिणाम और भी जोरदार होते ।

भारतके सम्बन्धमें आक्सफोर्डद्वारा प्रकाशित अपनी पुस्तक 'अटलस ऑव इण्डिया' में डाक्टर ए० एम० लारेंजोने भारतके कल-कारखानोंकी स्थितिका बहुत बढ़िया संक्षिप्त विवरण दिया है:—

"भारतके औद्योगिक विकास और उन्नतिके दो आधार हैं—एक तो कच्चे मालका उत्पत्ति स्थान तथा दूसरा वातावरण । भारतके प्रधान उद्योग एक निर्दिष्ट क्षेत्रमें केन्द्रित हैं । बङ्गाल और बिहारके कोयला तथा लोहाकी खानोंके आसपास लोहेके कारखाने केन्द्रित हैं । इसके उत्पादनके केन्द्र जमशेदपुर, कुलटी, बर्नपुर तथा मनोहरपुर हैं । सूती कपड़ेकी मिलें बम्बई प्रान्तमें केन्द्रित हैं क्योंकि यहाँका जलवायु नर्म है और कच्चे मालकी सुविधा है । उत्पादनके केन्द्र बम्बई, शोलापुर, हुबली, और अहमदाबाद हैं । पाटके कारखाने बङ्गालमें

कलकत्ताके इर्दगिर्द, चीनीके कारखाने रेलवे लाइनोंके सन्निकट संयुक्तप्रान्त तथा बिहारके ऊख पैदा होनेवाले जिलोंमें केन्द्रित हैं। इसी तरह सीमेण्टके कारखाने दक्खिनके उस पठारमें हैं जहाँ कच्चा माल मिलता है। उदाहरणके लिए चूना, जिपसम तथा खड़िया। कागजके कारखाने प्रधानतः बङ्गाल, बम्बई तथा संयुक्तप्रान्तमें हैं, चमड़ेके कारखाने संयुक्तप्रान्त तथा मद्रासमें और काँचके कारखाने गङ्गाके पठारके उत्तरी तथा मध्य क्षेत्रमें हैं।"*

स्थितिको एकदम स्पष्ट कर देनेके लिए केवल इतना और जोड़ देनेकी आवश्यकता है कि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें पड़नेवाले किसी भी प्रान्तका नाम इसमें नहीं आता है और बङ्गालके जिन स्थानोंका नाम आता है वे प्रायः सबके सब मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर पड़ते हैं।

यह भी स्मण रखनेकी बात है कि वर्तमान स्थिति भविष्यमें और भी सङ्गीन होती जायगी। जिन भौगोलिक अवस्थाओं तथा वातावरणोंने कल-कारखानोंको इस तरह स्थान-विशेपमें केन्द्रित होनेकी प्रेरणा दी है, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। प्रान्तोंकी सीमामें किसी तरहके हेरफेरसे अथवा अलग स्वतन्त्र राष्ट्र कायम करनेसे भी खनिज पदार्थोंकी स्थितिमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं होगा।

नीचेकी तालिकामें उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें शामिल किये जानेवाले प्रान्तों तथा भारतके अवशिष्ट प्रान्तोंके बीच कतिपय प्रधान वस्तुओंके आन्तर्प्रान्तीय व्यवसायका व्यौरा दिखलाया गया है। ये आँकड़े १९३९-४० के हैं। अङ्क हजार मनोंमें हैं। बाहर भेजनेकी अपेक्षा जितना भी माल बाहरसे अधिक मँगाया गया है उसे ऋण चिह्न (—) तथा बाहरसे मँगानेकी अपेक्षा जो माल बाहर अधिक भेजा गया है उसे धन चिह्न (+) से व्यक्त किया गया है!

---

* ए० एम० लोरेंओ—अटलस ऑव इण्डिया सेक्सन ८।

अ–आयात, ब–निर्यात, स–बचत

१ प्रान्त	२ कोयला और कोक अ	 ब	 स	३ कपास अ	 ब	 स	४ सूती कपड़ा अ	 ब	 स
आसाम	७०	३,३४५	—	१२३	२	—	२	२६६	—
बंगाल	१,४७,०४३	६३,४८७	—	१४३	२०७	—	१२९	९५७	—
कलकत्ता	३,९६३	१,५३,६११	—	६२	४२९	—	१,७३७	१,५६२	—
पूर्वी प्रान्तोंका जोड़	१,५१,०७६	२,२० ४४३	–६९,३६७	३२८	६३८	–३१०	१,८६८	२,७८६	–९१८
पञ्जाब	७०६	४४,८६६	—	६,६२७	१२	—	१७६	१,३५८	—
सीमाप्रान्त	१	२,५२९	—	१३३	१	—	४	३००	—
सिन्ध तथा बिलोचिस्तान	२५	८,९४३	—	२,१६३	४१	—	४२	४६७	—
करांची	८८९	१,५८६	—	२	६,२७१	—	६५४	५५	—
उत्तर पश्चिमी प्रान्तों का जोड़	१६२१	५७,९३४	–५६,३१३	८,९३५	६,३२५	+२६१०	८७६	२,१८०	–१,३०४

अ–आयात, ब–निर्यात, स–बचत

१ प्रान्त	५ अनाज, दाल, आटा			६ गेहूँ		
	अ	ब	स	अ	ब	स
आसाम	२०७	१,१८०	—	—	७३	—
बंगाल	७,२९१	७,६५२	—	२९	२३०	—
कलकत्ता	८,५०४	३,००२	—	१७८	३,४६४	—
पूर्वी प्रान्तोंका जोड़	१६,००२	११,८३४	+४१६८	२०७	३,७६७	–३,५६०
पञ्जाब	१,४८३	१,३१०	—	१३,५४२	७९	—
सीमाप्रान्त	२९	१७४	—	१८	२७८	—
सिन्ध तथा बिलोचिस्तान	५,५०८	४८	—	६,४७३	४३	—
करॉंची	१	२,९५२	—	१	८,३३५	—
उत्तर पश्चिमी प्रान्तों का जोड़	७,०२१	४,४८४	+२५३७	२०,०३४	८,७३५+	११२९९

अ–आयात, ब–निर्यात, स–बचत

प्रान्त	लोहा फौलाद			तेलहन			नमक		
	अ	ब	स	अ	ब	स	अ	ब	स
आसाम	११२	१,२६६	—	४७३	२०	—	२	१,२९०	—
बंगाल	४,०४०	६,४०९	—	३७४	१,८२३	—	५९४	५,८२२	—
कलकत्ता	७,२७९	७,९६३	—	४१७	७,२१६	—	१०,६०७	११०	—
पूर्वी प्रान्तोंका जोड़	११,४३१	१५.६३८	–४,२०७	१,२६४	९,२३९	–७,९७५	११,२०३	७,२२२	३९८१
पञ्जाब	३९२	३,०१०	—	२,२५२	४६२	—	१,९४६	३१३	—
सीमाप्रान्त	१३	२६०	—	४३	५६	—	—	३३४	—
सिन्ध तथा बिलोचिस्तान	१८७	९४६	—	२,९२२	९३१	—	११	२८०	—
करांची	१,४६६	१७७	—	३८	२,४८०	—	२३२	१२	—
उत्तर पश्चिमी प्रान्तों का जोड़	२,०४७	४,३९३	–२,३३६	५,२५५	३,११९	२१३६	२,१८९	९३९	१२५०

अ-आयात, ब-नियात, स-बचत

प्रान्त	चीनी अ	चीनी ब	चीनी स	पाट अ	पाट ब	पाट स
आसाम	४	४७५	—	२,८५१	२	—
बंगाल	३७८	१,५४०	—	२६,०५२	१३७	—
कलकत्ता	८०४	१,०५६	—	२०९	३०,६८७	—
पूर्वी प्रान्तोंका जोड़	१,१८६	३,०७१	−१८८५	२९,११२	३०,८२६	−१,७१४
पञ्जाब	६४	३,६२४	—	६	२	—
सीमाप्रान्त	५३	३२२	—	—	७५	—
सिन्ध तथा बिलोस्तान	१३	३२२	—	—	१	—
करांची	१,०५६	९०४	—	—	४	—
उत्तर पश्चिमी प्रान्तों का जोड़	१,१८६	५,१७२	−३९८६	६	८२	−७६

दोनों क्षेत्रोंमें कोयला, कोक, सूती कपड़ा, लोहा, फौलाद और चीनीका आयात निर्यातकी अपेक्षा कहीं अधिक है और पूर्वी क्षेत्रमें नमक तथा अनाजका निर्यात दालको शामिल कर तथा गेहूँको बाद देकर आयातकी अपेक्षा अधिक है। ये आँकड़े समूचे प्रान्तोंके हैं। यदि गैर-मुस्लिम-प्रधान जिलोंको इनमेंसे अलग कर दिया जाय तो पूर्वी क्षेत्रकी हालत कोयला, कोक, लोहा और फौलादके सम्बन्धमें और भी खराब हो जायगी क्योंकि उस हालतमें बङ्गालके मुस्लिम-प्रधान पूर्वी तथा उत्तरी जिलोंसे इन वस्तुओंका निर्यात एकदम नहीं होगा तथा गैर-मुस्लिम-प्रधान पश्चिमी जिलोंमें इन चीजोंका आयात नहीं होगा। इस तरह मुस्लिम क्षेत्रका कुल आयात बहुत अधिक बढ़ जायगा। इसी आधारपर पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें पाटके व्यापारकी स्थिति अच्छी प्रकट होगी। पाटके आयातका अर्थ यह है कि विदेशोंमें भेजनेके लिए पाट मँगाया जाता है। इसका कारण यह है कि कोयला, कोक, लोहा और फौलाद गैर-मुस्लिम-प्रधान पश्चिमी जिलोंमें पाया जाता है और पाट मुस्लिम-प्रधान जिलोंमें पैदा होता है। गेहूँ पञ्जाबकी सबसे बड़ी निर्यातकी वस्तु है। उसके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि गैर-मुस्लिम भारत पञ्जाबके गेहूँपर उतना ज्यादा आश्रित नहीं रहेगा जितना ज्यादा मुस्लिम भारत गैर-मुस्लिम भारतके कोयला, लोहा तथा फौलादपर आश्रित रहेगा। क्योंकि गैर-मुस्लिम भारत अपनी वर्तमान आवश्यकताभरके लिए गेहूँ पैदा कर लेता है। पञ्जाबके गेहूँको आस्ट्रेलियाके गेहूँका कड़ा मुकाबला करना पड़ेगा। आस्ट्रेलियाके गेहूँकी आमद भारतमें दिनोंदिन बढ़ रही है। १९३५-३६ में जहाँ आस्ट्रेलियासे १३००० टन गेहूँ आया था वहाँ १९३८-३९ में वहाँसे १,५०,००० टन गेहूँ आया।

जब श्री हर्बर्ट एल. मैथ्यूजने बातचीतके सिलसिलेमें श्री जिनाका ध्यान इन कठिनाइयोंकी ओर आकृष्ट किया, जिनपर उन लोगोंका भविष्य निर्भर करता है जिन्हें उन प्रदेशोंमें रहना है जो समस्त भारतसे अलग किये जायँगे—और स्पष्ट सवाल किया तब श्री जिनाने कहा :—"अफगानिस्तान गरीब देश है तो भी उसका निर्वाह हो ही जाता है। ईराककी भी वही हालत है यद्यपि उसकी

आबादी हमारी सात करोड़की आबादीका एक छोटा हिस्सा ही है। यदि हम-लोग आजाद होकर गरीब ही रहना चाहते हैं तो इसमें हिन्दुओंको क्या आपत्ति है ?···अर्थशास्त्र अपनी देखभाल आप कर लेगा।"* बहसके लिए इस तरहके उद्गार भले ही प्रकट किये जा सकते हैं लेकिन जिस प्रश्नपर सात करोड़ मुसलमानोंका सारा भविष्य निर्भर करता है उसे हल करने तथा जिसे बनानेमें सैकड़ों साल लग गये हैं उसे इस निर्दयताके साथ तोड़ देनेके लिए यह उत्तर उपयुक्त नहीं कहा जा सकता।

५

मालगुजारी तथा खर्च

१—प्रान्तीय

इसके बाद यह देखना होगा कि दोनों मुस्लिम क्षेत्रोंकी आमद और खर्चकी क्या हालत होगी। लीगका प्रस्ताव है कि भारतके उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रोंमें दो स्वतन्त्र मुस्लिम राज कायम हों जिनका रक्षा, विदेशी मामले, यातायात, चुङ्गी, सिक्का तथा एक्सचेंज वगैरहपर पूरा अधिकार हो। राज 'शब्द' का प्रयोग बहुवचनमें लीगके प्रस्तावमें भी किया गया है तथा श्री जिनाने १९४१ के मद्रास अधिवेशनमें अपने सभापतिके भाषणमें भी किया है। इससे विदित होता है कि दोनों मुस्लिम राज केवल भारतसे ही अलग नहीं किये जायँगे बल्कि परस्पर एक दूसरेसे भी स्वतन्त्र रहेंगे। लीगके प्रस्तावमें इस बातका भी इशारा है कि दोनों राजोंमें शामिल होनेवाली इकाइयाँ भी स्वतन्त्र और खुदमुख्तार होंगी। इससे यह परिणाम निकलता है कि स्वतन्त्र राजोंका

---

* न्यूयार्क टाइम्स २१ सितम्बर १९४२

एक संघ उत्तरपश्चिममें तथा स्वतन्त्र राज्योंका दूसरा संघ उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें होगा। प्रत्येक संघको संघ-शासन तथा स्वतन्त्र संघ-राष्ट्रके प्रत्येक उपकरणको कायम रखना होगा। इसके अलावा उनमें शामिल होनेवाली प्रत्येक इकाईको भी अपनी शासन-व्यवस्था आप करनी होगी। अर्थात् प्रत्येक संघकी व्यवस्था वर्तमान केन्द्रीय सरकार तथा प्रत्येक इकाई की व्यवस्था वर्तमान प्रान्तीय सरकारकी भाँति या इन्हींसे मिलती-जुलती होगी। इसीके अनुसार आमद और खर्चके भी प्रत्येक राजके दो बजट होंगे—एक संघ या केन्द्रका तथा दूसरा प्रत्येक इकाई या प्रान्तका। हमलोग यह जानते हैं कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकारका अपनी आमदनीका अलग अलग जरिया है, जैसे, मालगुजारी, प्रान्तीय आबकारी वगैरह और इसी आमदनीसे प्रान्तीय शासन-यन्त्रको चलाना पड़ता है तथा शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि राष्ट्रके हितके कामोंको करना पड़ता है। केन्द्रीय सरकारके लिए अपनी आमदनीका अलग जरिया है, जैसे चुङ्गी वगैरह और इससे केन्द्रीय शासनके साथ केन्द्रकी अन्य जिम्मेदारियोंको निभाना पड़ता है, जैसे, रक्षा, विदेशी मामले वगैरह। यह मान लिया जा सकता है कि संघ-राष्ट्र तथा उसकी प्रत्येक इकाईका शासन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासनके अनुरूप ही होगा। इसलिए दोनोंकी आमदनीका जरिया और खर्चकी मदें भी करीब करीब समान ही होंगी। इसलिए उनकी आर्थिक दशाका अन्दाजा हमलोग मुस्लिम स्वतन्त्र राजोंमें पड़नेवाले प्रान्तोंकी आर्थिक अवस्थाका विचार कर, लगा सकते हैं और यह भी देख सकते हैं कि प्रत्येक क्षेत्रका केन्द्रीय आमदनी और खर्च क्या होगा। लेकिन इस सम्बन्धमें दो कठिनाइयाँ हैं, जिनका उल्लेख कर देना आवश्यक है। एक पूरे प्रान्तका बजट प्राप्त करना तो सम्भव है, पर जिलेवार आँकड़ा नहीं प्राप्त हो सकता, इसलिए जहाँ पूरा प्रान्त मुस्लिम क्षेत्रके अन्दर नहीं आता बल्कि उस प्रान्तके कुछ जिले या हिस्से ही मुस्लिम क्षेत्रमें आते हैं, और बाकी प्रान्त मुस्लिम क्षेत्रसे बाहर रह जाता है, वहाँ उतने हिस्सेकी आमद और खर्चका आँकड़ा प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। जहाँतक केन्द्रीय सरकारका सम्बन्ध है, यह काम और भी जटिल हो जाता है

कि इस तरह अलग किये गये प्रान्तोंकी आमदनीका केन्द्रीय हिस्सा किस प्रकार निर्धारित किया जाय। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रान्तीय या केन्द्रीय आमदनी और खर्चके बारेमें जो कुछ भी यहाँ लिखा जायगा वह अन्दाजा मात्र होगा इसलिए अस्थायी होगा। युद्धके कारण जो अवस्था उत्पन्न हो गयी है और भविष्यमें भी जिस अवस्थाके उत्पन्न होनेकी सम्भावना है उसका खयाल करते हुए पिछले बजटोंके अनुसार कोई भी गणना स्थायी या पक्की नहीं हो सकती। इन कठिनाइयोंके रहते हुए भी वर्तमान आमदनी और खर्चके आँकड़ोंकी सहायतासे हम इस काममे आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए इन्हींके आधारपर हम उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंकी प्रान्तीय तथा केन्द्रीय आमद और खर्चके विषयपर विचार करेंगे।

सबसे पहले प्रान्तीय बजटपर विचार करेंगे। द्वितीय विश्व-युद्धके पूर्वके साधारण वर्ष १९३८-३९ तथा १९३९-४० हैं। इसलिए इन्हीं आँकड़ोंको लेना उचित होगा :—

प्रान्तीय आमदनी (हजार रुपयोंमें)

मद	बंगाल		आसाम		पञ्जाब	
	१९३८–३९	१९३९–४०	१९३८–३९	१९३९–४०	१९३८–३९	१९३९–४०
चुंगी	२२,१२७	२२,१९७	१,१६९	१,३३९	—	—
इन्कम टैक्स	३,०००	५,५८०	३००	६४१	१,२००	२,२३२
नमक	१२	—	२	—	—	—
मालगुजारी	३२,४१०	३८,६१०	११,२६४	१३,६९०	२६,३५३	२३,४२०
आबकारी	१५,९३५	१६,५२८	३,५३३	३,३९६	१०,१५९	१०,४९८
स्टाम्प	२५,७७७	२५,६४४	१,८१२	१,७६३	७,८१२	७,४५५
जंगल	२,२४१	२,३९८	१,६६९	१,७४६	२,३०३	२,५३९
रजिस्टरी	२,४१२	२,७३२	१७७	२०१	८३६	८५०
मोटर गाड़ियोंका लाइसेंस	२,१९०	२,१३०	३७१	४०९	१,२८३	१,३४९
अन्य कर तथा चुंगी	३,८९४	४,६६१	६	२३७	२८१	१,१४४
जोड़	१,०९,९९८	१,२०,४८१	२०,३०३	२३,४२२	५०,२२७	४९,४८७
रेल	१४	१४	—	—	—	—
सिंचाई	४६५	—	—	१	४५,११७	५०,८७०
शासन	९,०९३	९,३९८	१,३३५	१,३३७	८,०७९	९,०३२
सिविल	२,९०९	३,५५०	१,०३३	१,०९१	४,३४७	३,९६५
फुटकर	२,१०९	२,५७७	१६२	४५२	३,१२४	२,८३१
ऋण और सूद	२,९३५	२,९६२	१२	२६	४६१	३७६
जोड़	१७,५२५	१८,४७१	२,५४२	२,९०७	६१,१२८	६७,०७४
सहायता	३०	३०	३,००३	३,००४	३०७	३८५
असाधारण	१०८	४,१८५	—	—	१,९२४	४,१६३
कुल जोड़	१,२७,६६१	१,४३,१६७	२५,८४८	२९,३३३	१,१३,५८६	१,२१.१०९

प्रान्तीय आमदनी (हजार·रुपयोंमें)

मद	सीमाप्रान्त		सिन्ध	
	१९३८–३९	१९३९–४०	१९३८–३९	१९३९–४०
चुंगी	—	—	—	—
इन्कम टैक्स	१५०	२७९	३००	५५८
नमक	—	—	—	—
मालगुजारी	१,८४१	१,८५९	३,६०४	३,६८५
आबकारी	८७६	८८७	३,७४६	३,६३३
स्टाम्प	७४०	७०६	१,६८९	१,७१६
जंगल	५९७	५२२	४६५	७७६
रजिस्टरी	६७	६९	२००	२०७
मोटर गाड़ियोंका लाइसेंस	२०८	२३८	२१०	२६८
अन्य कर तथा चुंगी	५९	११३	३६४	६६६
जोड़	४,५३८	४.६७३	१०,९७८	११,५०९
रेल	—	—	—	—
सिंचाई	१,२४७	१,३८१	७,२३९	८,८७१
शासन	८३४	८०७	१,०५६	१,४७६
सिविल	१,१२०	१,०१३	१,०६०	९९६
फुटकर	२८६	३२३	१६३	२९१
ऋण और सूद	५८	६३	४७३	७३१
जोड़	३,५४५	३,५८७	९,९९१	१२,३६५
सहायता	१०,००१	१०,००१	१०,५०४	१०,५१२
असाधारण	—	—	५,५५६	८.५११
कुल जोड़	१८,०८४	१८,२६१	३७,०२९	४२.८८७

प्रान्तीय व्यय (हजार रुपयोंमें)

मद	बङ्गाल १९३८–३९	बङ्गाल १९३९–४०	आसाम १९३८–३९	आसाम १९३९–४०	पञ्जाब १९३८–३९	पञ्जाब १९३९–४०	सीमाप्रान्त १९३८–३९	सीमाप्रान्त १९३९–४०	सिन्ध १९३८–३९	सिन्ध १९३९–४०
आमदनी पर खर्च	९,७६४	१०,४६५	३,५९२	४,८५८	८,६४६	८,५०६	८५३	८५१	२,६०३	२,८२६
सिंचाई	३,८९२	३,८९७	६९	५९	१४,९८२	१५,८२६	४७७	४५८	१२,७९८	१७,०६७
ऋण	१,५७३	१,७१५	३,३९०	४१२	२,१०२	१,७४६	२४०	१८२	१६७	५१७
शासन										
क–साधारण	५१,९७१	५३,४७१	७,९८६	८,२११	३२,९५८	३२,८७४	७ २१२	७,८१६	८,३००	८,५००
ख–सामाजिक कार्य	३०,८०९	३२,४८८	७,१४१	७,३८६	३२,३८४	३२,५८८	३,६६८	३,८२५	५,२५२	५,५८५
सिविल	१२,८६९	१४,२३२	४,३८३	४,७८४	१४,०३७	९,२३४	३,९५४	३,७५१	२,३९९	३,०३४
फुटकर	१५,४६४	१९,४७७	३,३८७	३,५२३	१५,२२३	१९,५४७	१,२६३	१,५२९	२,८६२	२,७६०
आमदनी मदके खर्चमें फुटकर	१,३२०	१,०८२	—	—	—	—	१६३	७४	१९९	२१९
बिजली स्कीममें पूँजीपर सूद	—	—	—	—	—	२,७३२	—	—	२०९	—
असधारण	—	२९७	—	—	—	—	—	—	—	—
जोड़	१२७६६२	१३७१२४	२९९४८	२९२३३	११६१२८	११९५६१	१७८३०	१८६९५	३४५८०	४०५०८

सार्वजनिक उपयोगमें व्ययका ब्यौरा (हज़ार रुपयोंमें)

मद	बङ्गाल १९३८-३९	बङ्गाल १९३९-४०	आसाम १९३८-३९	आसाम १९३९-४०	पञ्जाब १९३८-३९	पञ्जाब १९३९-४०	सीमाप्रान्त १९३८-३९	सीमाप्रान्त १९३९-४०	सिन्ध १९३८-३९	सिन्ध १९३९-४०
विज्ञानविभाग	२९	३०	४	५	३६	२९	५	५	—	—
शिक्षा	१५,५१८	१६,२६०	३,६०५	३,८६७	१६,१३५	१६,३५१	२,२२५	२,३३८	३,०६१	३,१३१
दवादारू	५,५९६	५,६३३	१,४५४	१,४४०	५,२५८	५,०६०	६७५	७७६	७८८	८५४
स्वास्थ्य	४,०६०	३,९३९	८८६	८२१	२,०३७	१,८०१	१७७	१५९	२५७	२६६
कृषि	१,४०३	२,१६४	५७८	६३०	३,५५०	३,६६२	२३७	२४१	७७२	९६७
पशुचिकित्सा	५३०	५८३	१५८	१६३	१,७६०	१,८४९	१६०	१५३	११९	१२३
सहयोगसमिति	१,३३८	१,४४९	९६	९२	१,४९२	१,७८१	१२१	१२१	१२८	१२३
उद्योगधन्धा	१,८३२	२,०२२	२७३	२७८	१,९३६	१,८८०	६२	२५	८५	९१
हवाई	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
रेडियो	—	—	—	—	—	—	—	—	४	—
फुटकर	५०३	४०८	८७	९०	१८०	१७५	६	३	४२	३०
जोड़	३०,८०९	३२,४८८	७,१४१	७,३८६	३२ ३८४	३२,५८८	३,६६८	३,८२५	५,२५२	५,५८५

ऊपरकी तालिकाका अध्ययन करनेसे विदित होगा कि प्रत्येक प्रान्तकी आमदनी और खर्च बराबर है। अलग किये जानेपर भी यदि इन प्रान्तोंको इसी सतहपर रखा जायगा तो इनकी आमदनी और खर्च बराबर रहेगी। लेकिन आसाम, सीमाप्रान्त तथा सिन्धकी आमदनी वहाँके खर्चको तब पूरा कर पाती है जब केन्द्रीय सरकारसे इन्हें क्रमशः ३० लाख, एक करोड़ तथा एक करोड़ और पाँच लाख सालाना मिलता है। इनकी अपनी आमदनीसे इनका खर्च पूरा नहीं हो सकता था और यदि केन्द्रीय सरकार इन्हें उपर्युक्त मदद न दे तो इन्हें सदा घाटा रहेगा। *

आसाम प्रान्तमें सामाजिक सेवाके मदमें १९३८-३९ में ७१·४१ लाख तथा १९३९-४० में ७३·८६ लाख प्रान्तीय सरकारका खर्च था। और यह स्पष्ट है कि यदि केन्द्रीय सरकारसे सहायता न मिले तो इस मदमें आसाम प्रान्त आधी रकम खर्च नहीं कर सकेगा। इस सहायताके बिना सीमाप्रान्तकी हालत डावाँडोल हो जायगी। सीमाप्रान्त अपना शासन-खर्च भी नहीं सँभाल सकता। केवल इस मदमें १९३८-३९ में २२$\frac{1}{4}$ लाख तथा १९३९-४० में २८$\frac{1}{2}$ लाखकी कमी रही। परिणाम यह होगा कि सामाजिक सेवा तथा नागरिक उपयोगिताके मदके खर्चको एकदम घटाकर इन विभागोंको बन्द कर देना

---

* १९४० के लाहौरवाले प्रस्तावसे यह स्पष्ट नहीं होता कि उत्तर-पश्चिमी प्रान्तोंसे जो मुस्लिम राज बनेंगे तथा पूर्वमें मुस्लिम-प्रधान प्रान्तोंसे जो राज बनेंगे, वे अपना एक संघ-राष्ट्र कायम करेंगे अथवा अलग अलग स्वतन्त्र और खुदमुख्तार बने रहेंगे। प्रस्तावकी शब्दावलीसे तो अन्तिम बातकी ही ध्वनि निकलती है। ऐसी हालतमें पाकिस्तानके गरीब तथा पिछड़े प्रान्तोंके ऊपर बजटका बहुत अधिक बोझ पड़ेगा और वर्तमान भारत सरकारकी भाँति उनकी कमीको पूरा करनेके लिए उनकी कोई केन्द्रीय सरकार भी नहीं होगी।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि कर्ज चुका देनेके बाद सिन्धको केन्द्रीय सहायताकी जरूरत नहीं पड़ती। १९४३-४४ से वह बन्द कर दी गयी है।

(शेष टेबिल अगले पृष्ठपर)

गवर्नमेण्ट ऑव इण्डिया (आमदनीका बँटवारा) संशोधित आर्डरके अनुसार केन्द्रीय सरकारद्वारा प्रान्तोंको जो सहायता या अन्य आमदनी प्राप्त होती है।

पानेवाले प्रान्त	आमदनीपर कर		पाटपर ड्यूटी		सहायता	
	१९३८–३९ (अकाउण्ट्स)	१९४५–४६ (बजट)	१९३८–३९ (अकाउण्ट्स)	१९४५–४६ (बजट)	१९३८–३९ (अकाउण्ट्स)	१९४५–४६ (बजट)
बंगाल	३०·००	४६५·८०	२२१·२७	१२१·२२	—	—
बम्बई	३०·००	४६५·८०	—	—	—	—
मद्रास	२२·५०	३४९·३५	—	—	—	—
संयुक्तप्रान्त	२२·५०	३४९·३५	—	—	२५·००	—
पञ्जाब	१२·००	१८६·३२	—	—	—	—
मध्यप्रान्त बरार	७·५०	११६.४५	—	—	—	—
बिहार	१५·००	२३२·९०	१७·१२	७·८०	—	—
आसाम	३·००	४६·५८	११·६९	१०·०८	३०·००	३०·००
उड़ीसा	३·००	४६·५८	०·९२	०·९०	४३·००	४०·००
सीमाप्रान्त	१·५०	२३·२९	—	—	१००·००	१००·००
सिन्ध	३·००	४६·५८	—	—	१०५·००	—

होगा। उसी तरह सिन्धमें भी शासन खर्चके मदमें कमी पड़ेगी, किन्तु सीमा-प्रान्तके समान नहीं। लेकिन यदि केन्द्रीय सरकारसे सहायता नहीं प्राप्त होगी तो सामाजिक तथा नागरिक उपयोगिताके कामोंको एकदम बन्द कर देना पड़ेगा! बिलोचिस्तानका सारा भार केन्द्रीय सरकारपर है। १९३२-३३ में उसकी आमदनी २०'५४ लाख तथा खर्च ९१'५६ लाख था। ७१ लाखसे कुछ ऊपर घाटा केन्द्रीय सरकारको पूरा करना पड़ा था। इस तरह हम देखते हैं कि यदि आसाम, सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान अलग कर दिये जायँ तो दोनों क्षेत्रोंकी संघ-सरकार को यह सहायता बराबर देते रहना पड़ेगा अर्थात् पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रको ३० लाख सालाना और पश्चिमी मुस्लिम क्षेत्रको २ करोड़ ७६ लाख सालाना। तभी ये राज १९३८-३९ अथवा १९३९-४० की सतहपर अपनी शासन-व्यवस्था कायम रख सकेंगे।

यहाँ यह भी लिख देना आवश्यक है कि उस सतहपर सार्वजनिक कार्यके लिए व्यय करना असम्भव होगा क्योंकि नीचेकी तालिकासे प्रकट होगा कि वे बहुत नीची सतहपर थे :—

प्रान्त	सार्वजनिक कार्यमें औसत व्यय १९३८-३९, १९३९-४०		जनसंख्याके अनुसार प्रति व्यक्तिपर औसत खर्च	
		रु०	आ०	पा०
बङ्गाल	३१६'४८ लाख रुपये	—	८	५
आसाम	७२'६३ ,,	—	११	३
पञ्जाब	३२४.८६ ,,	१	२	३
सीमाप्रान्त	३७'४६ ,,	१	३	८
सिन्ध	५४'१८ ,,	१	३	१

इन मदोंमें किसी तरहका खर्च बढ़ानेका मतलब होगा आमदमें वृद्धि करना, चाहे वह वृद्धि सङ्घ-सरकारसे मददके रूपमें हो अथवा प्रान्तमें कर लगाकर हो। शासनके व्ययमें किसी तरहकी कटौतीकी आशा नहीं की जा सकती। सीमाप्रान्तके सिवा अन्य किसी प्रान्तने इस तरहके कोई लक्षण अबतक तो नहीं

प्रकट किये। सीमाप्रान्तमें भी यह भावना अल्पकालिक थी कि शासन-व्यय अधिक है और उसे घटाकर कम करना चाहिए। यह साधारण बात है कि भारतकी राष्ट्रीय जनताकी आयके मुकाबले यहाँके ऊँची श्रेणीके कर्मचारियोंका वेतन बहुत ज्यादा है। यदि शासनका व्यय कम करनेकी नीयतसे नहीं तो कमसे कम इस उपर्युक्त विषयपर जोर देनेकी नीयतसे ही कांग्रेसने मन्त्रियोंका वेतन बहुत कम नियत किया था। मुस्लिम लीगके मन्त्रियोंने उस नीतिको कबूल नहीं किया। इससे यही परिणाम निकलता है कि शासनके व्ययमें कमी करनेकी ओर उन्होंने लेशमात्र भी प्रवृत्ति नहीं दिखलायी। यदि शासन विभागके लम्बी तनखाह पानेवाले कर्मचारी शासन-व्ययमें किसी तरहकी किफायतशारीकी प्रवृत्ति नहीं दिखलाते तो कम वेतन पानेवालोंसे इस तरहकी कोई आशा करना व्यर्थ है। इसलिए इस परिणामपर पहुँचना अनुचित नहीं होगा कि शासन-व्ययमें किसी तरहकी कमीकी आशा नहीं करनी चाहिए। अतएव सार्वजनिक कार्यके मदमें खर्चकी किसी तरहकी वृद्धिकी पूर्ति प्रान्तमें नया कर बिठाकर अथवा सङ्घ-सरकारसे मदद लेकर ही हो सकेगी।

प्रान्तीय बजटके सम्बन्धमें एक बात और कह देना आवश्यक है। ऊपरकी तालिका तथा उसके विश्लेषणमें यह मान लिया गया है कि आसाम, बङ्गाल तथा पञ्जाब प्रान्तका समूचा भाग मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ेगा। लेकिन पीछे एक अध्यायमें हम यह दिखला आये हैं कि इन प्रान्तोंके केवल हिस्से ही मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ेंगे। ऐसी हालतमें इन प्रान्तोंकी आमदनी और खर्च दोनोंमें कमी हो जायगी लेकिन यह बतलाना कठिन है कि यह कमी कितनी होगी। जिले-वार आँकड़े प्राप्त नहीं हैं और प्रत्येक जिलेका ठीक ठीक आँकड़ा निकालनेमें बहुत कठिनाई है। एक मोटा तरीका यह हो सकता है कि प्रत्येक प्रान्तकी आमदनी और खर्चको उस प्रान्तकी हिन्दू और मुसलमान जनसंख्याके आधार-पर बाँट दिया जाय। लेकिन इस उपायसे आमदनीका अन्दाज ठीक ठीक भले ही लगे पर खर्चका एकदम गलत अङ्क प्राप्त होगा। किसी स्वायत्त और खुद-मुख्तार प्रान्त या सङ्घको चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, भिन्न भिन्न

विभागोंके शासनके लिए सदर हाकिम तो रखते नहीं होंगे। उदाहरणके लिए यदि बङ्गालको मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम दो क्षेत्रोंमें बाँट दिया जाय तो दोनों क्षेत्रोंके लिए अलग अलग शासक रखने होंगे और उसी तरह उनके अधीनस्थ कर्मचारी भी रहेंगे अर्थात् जहाँ पहले एक शासकसे काम चलता था, वहाँ अब दो शासक रखे जायँगे। एकके बजाय दो प्रान्तीय सेक्रेटेरियट कायम करना पड़ेगा। किसी भी प्रान्तको दो क्षेत्रोंमें बाँट देनेपर जिलेका खर्च भले ही ज्योंका त्यों रह जाय लेकिन प्रान्तका खर्च तो निश्चय ही दूना हो जायगा। वास्तविक खर्चका अन्दाजा लगाना तो कठिन है लेकिन इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जनसंख्याके आधारपर वर्तमान खर्चको प्रति व्यक्ति बाँट देनेसे जो परिणाम निकलेगा उससे कहीं ज्यादा खर्च प्रान्तके मुस्लिम जिलोंके ऊपर पड़ेगा। इस-लिए बङ्गाल और पञ्जाबके व्ययपर विचार करते समय हमलोगोंको यह स्वीकार कर लेना होगा कि प्रान्त तथा प्रान्तीय सदर अफसर (शासक) तथा प्रान्तीय सेक्रेटेरियटका खर्च जनसंख्याके अनुपातके हिसाबसे वर्तमान व्ययके हिस्सेसे कहीं ज्यादा होगा। आसामके सम्बन्धमें यह कठिनाई नहीं उपस्थित होती क्योंकि उसका केवल एक जिला अर्थात् सिलहट जिला मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ेगा और वह भी बङ्गाल मुस्लिम प्रान्तोंमें मिला लिया जायगा इसलिए उसके लिए अलग प्रान्तीय शासन स्थापित करनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। कहनेका मतलब यह है कि ऊपरकी तालिकामें पञ्जाब और बङ्गालका जो बजट आय-व्ययके लिहाजसे बराबरका बजट दिखलाया गया है वह उस वक्त वर्तमान आयके आधार-पर बराबरका बजट नहीं रहेगा जब इन प्रान्तोंके गैर-मुसलमान जिले अलग कर दिये जायँगे। घाटेका ठीक ठीक अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता लेकिन इतना तो निश्चय है कि बहुत बड़ी कमीका सामना करना पड़ेगा। ब्रिटिश शासन-कालमें ही जो प्रान्त एक प्रान्तसे अलग कर लिये गये हैं उनका उदाहरण सामने मौजूद है। हमारे सामने उड़ीसा और सिन्धका उदाहरण है। अलग किये जानेके बाद इनमेंसे एक प्रान्त भी अपना व्यय नहीं सँभाल सका और भारत सरकारको इन प्रान्तोंकी बहुत अधिक सहायता करनी पड़ी। हमने देखा

कि सिन्धको १ करोड़ ५ लाख सालाना मिलता है और उड़ीसाको १९३८-३९ और १९३९-४० में ४३ लाख सालाना मिला था। प्रान्तीय आय-व्ययके इस पहलूपर अधिक जोर इसलिए देनेकी आवश्यकता है कि प्रोफेसर कूपलैण्डने पाकिस्तानके आय-व्ययकी आलोचना करते हुए यह लिख दिया है कि "अखण्ड भारतमें आय-व्ययकी जो हालत प्रान्तोंकी है, वही हालत पाकिस्तानमें भी रहेगी।"* और इसलिए उन्होंने इसका विस्तृत दिग्दर्शन नहीं कराया है। सर होमी मोदी तथा डाक्टर मेथाईने सप्रू कमेटीके सामने जो व्यवस्था पत्र (मेमोरेण्डम) उपस्थित किया है उसमें वे लोग भी इस पहलूको छोड़ गये हैं।

जनसंख्याके आधारपर बङ्गाल, आसाम तथा पञ्जाब प्रान्तके मुस्लिम जिलोंकी आय और व्ययका अलग अलग ब्योरा देना आवश्यक है। यहाँ इतना लिख दिया जा सकता है कि बङ्गालके मुस्लिम जिलोंकी आबादी ६७.९ फीसदी, आसामकी ३०.५ सदी और पञ्जाबकी ५९.४ फीसदी प्रत्येक प्रान्तकी वर्तमान आबादीकी होगी।

२—सङ्घका आय-व्यय

अब यह देखना है कि भारतके केन्द्रीय सरकारके आय-व्ययका कौन हिस्सा उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्वी मुस्लिम राष्ट्रसङ्घके जिम्मे पड़ेगा। ऊपर कहा जा चुका है कि ठीक ठीक आँकड़ोंका पता लगाना कठिन काम है। बहुत बड़ी उलझनदार गणनाके बाद प्रोफेसर कूपलैण्डने अपनी पुस्तक "दि फ्यूचर ऑव इण्डिया" में सर होमी मोदी और डाक्टर मेथाईने कुछ आँकड़े निकाले हैं। मैं भी उन्हीं आँकड़ोंके आधारपर जहाँ जहाँ सम्भव है आगे बढ़नेकी कोशिश करूँगा। प्रोफेसर कूपलैण्डने १९३८–३९ के आधारपर आँकड़ा तैयार किया है और सर होमी मोदी तथा डा० मैथाईने प्रोफेसर कूपलैण्डके तरीकेमें कुछ रद्दोबदल कर १९३९–४० के आधारपर आँकड़ा तैयार किया है। इस तरह जिन सालोंके हमें प्रान्तीय आँकड़े मिले हैं उन्हीं सालोंके लिए

---

* प्रोफेसर कूपलैण्ड—दि फ्यूचर ऑव इण्डिया पृष्ठ ९१

ये केन्द्रीय आँकड़े भी मिल जाते हैं। इन आँकड़ोंको तालिकाके रूपमें इस प्रकार दिया जा सकता है :—

आमदनी (लाख रुपयोंमें)

	१९३८–३९ *		१९३९–४० †	
मद	केन्द्रीय	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	पूर्वी क्षेत्र
चुङ्गी	४०५०·५३	४४८·०६	५८२·९	१२३६.३
आबकारी	८६५·७३	१००·९२	७८·०	१२१·१
कारपोरेशन टैक्स	२०३·७२	१५·२८	१७·१	७३·५
अन्य टैक्स	१३७४·४४	१२१·१०	१५०·४	२९७·५
नमक	८१२·०४	७६·६५	११९·१	२०७·६
अफीम	५०·८९	—	—	—
रेल	१३७·३२	१५०·००	–१११·८	–१४०·८
तार, डाक, टकसाल और करेन्सी	४१·४०	५·१७	२१·३	३६·०
अन्य मद	१०३·२०	१८·८७	१९·८	१·६
जोड़	७६३९·२७	९३६·०५	८७६·८	१८३२·८

खर्च (लाख रुपयोंमें)

१९३८–३९ *

मद	केन्द्रीय	उत्तर-पश्चिम क्षेत्र
आमदनीपर खर्च	४२३·६०	५१·४९
सिंचाई	९·२४	१७·०२
ऋण	१३३८·५४	१८६·००
शासन	९८४·६९	१४५·५६

* कूपलैण्ड—फ्यूचर ऑव इण्डिया पृ० ९२

† मेमोरैण्डम टू सप्रू कमेटी बाई सर होमी मोदी ऐण्ड डाक्टर मथाई पृ० ७

सिविल	२१९'५८	१०'८३
फुटकर	२०४'३२	३३'१३
रक्षा	४६१८'००	—
लेन-देन	३०६'३२	२०५'००
जोड़	८१०४'१९	६३९'०३

१९३९–४० †

मद	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	उत्तर-पूर्वी क्षेत्र
शासन	१४५'८	२०३.१
ऋण	२१६'४	४४१'७
पेन्शन	४०'७	६५'५
प्रान्तोंको मदद	२०५'०	३०'०
अन्य मद	३०'४	४७'६
जोड़	६३८'३	७८७'९

ऊपरकी तालिकामें १९३८-३९ तथा १९३९-४० के आँकड़े हैं। आगेकी तालिकाके आँकड़े और भी हालके हैं। ये भारत सरकारके १९४५-४६ के बजटके व्याख्यात्मक व्यवस्था-पत्र (एक्सप्लेनेटरी मेमोरैण्डम)से लिये गये हैं। प्रान्तोंके आँकड़े एक-एक प्रान्तके अलग-अलग न होकर सभी प्रान्तोंके एकमें मिलाकर दिये गये हैं। लेकिन युद्धके कारण इनकी साधारण गतिमें कोई अन्तर नहीं आया है यद्यपि इससे पंजाब और सिन्धकी आमदनीमें अस्थायी वृद्धि हो गयी है। जहाँ बङ्गालमें घाटा बहुत ज्यादा बढ़ गया है वहाँ सिन्धने अपना कर्ज अदा कर दिया है और अब उसे सहायताकी जरूरत नहीं रह गयी है जो १९४३-४४ से बन्द कर दी गयी है। लेकिन सीमाप्रान्त तथा आसाममें सहायताके मदमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं हुआ है।

† मेमोरैण्डम टू-सप्र कमेटी बाई सर होमी मोदी ऐण्ड डा० मथाई पैरा १२

भारतका आय-व्यय और कर्ज १९३८-३९ तक (करोड़ रुपयोंमें)

१ केन्द्रीय सरकारका बजट	१९३८–३९	१९३९–४०	१९४४–४५ (संशोधित)	१९३९–४०से १९४४–४५ तकका जोड़	१९४५–४६ बजट
१—आमदनी	८४.५२	९४.५७	३५६.८८	१,१२२,६१	३६२.३४ ®
२—खर्च	८५.१५	९४.५७	५१२.६५	१५,९९.५५	५१७.६३
३—फाजिल (+) या कमी (–)	–०.६३	...	–१५५.७७	–४७६.९४	–१५५.२९
४—(१) और (२) की फीसदी	९९.३	१००.००	६९.७	७०.२	७०.०
२ क. भारतके नाम लगी कुल पूँजी	८५.१५	९४,५७	५७२.०६	१४७८.९३	५३५.३९
१—शासन व्यय	३८.९७	४५.०३	११५.४२	४०२.२२	१२३.४०
२—रक्षा व्यय	४६ १८	४९.५४	४५६.६४	१३४६.७१	४११.९९
(क) पूँजीपर	...	...	५९.४१	१४९.३८	१७.७६
(ख) आमदनीपर	४६.१८	४९ ५४	३९७.२३	११९७.३३	३९४.२३
(१) साधारण बजट	३८.०७	३६.७७	३६.७७	२२०.६२	३६.७७
(२) महँगी	...	१.१९	१६.९२	४७.४८	१९.७६
(३) युद्ध जनित	...	३.५२	३३४.२२	८७८.४६	३२८ ५१
(४) नान-एफेक्टिव चार्ज	८.११	८.०७	९.३२	५०.८०	९.१९
३–(आमदनीपर) रक्षा व्ययका कुल व्ययपर औसत	५४.२	५२.४	७७.५	७४.९	७६.२

	ख. युद्ध खर्च जो वापस होगा	...	४·००	४३९·५२	१३९३·८८	४८८·८०
३	केन्द्रीय सरकारका कुल ऋण जिसपर सूद दिया जाता है (इसमें बिना मदके कर्ज और जमा की गयी रकम भी शामिल है)	१२०५·७६	१२०३·८६	१८१९·०२	...	२१८०·५७
४	प्रान्त					
	(१) आमदनी	८४·७४	९०·८३	२००·७८	७८४·१२	१८८·१७
	(२) खर्च	८५·७६	८९·२२	२०८·०५	७६७·९६	१९१·७४
	(३) फाजिल (+) कमी (–)	–१·०२	+१·६१	–७·२७	+१६·१६	–३·५७
	(४) कर्जकी स्थिति† (कुल कर्ज)	१६३·२०	१६७·६१	२१५·४९	५२·२९	...

* इसमें नये कर भी शामिल हैं ।

† इसमें स्थायी कर्ज, अस्थायी कर्ज, बिना मदके कर्ज तथा केन्द्रीय सरकारसे लिये गये कर्ज शामिल हैं ।

ऊपरकी दोनों तालिकाओंका मिलान करनेसे प्रकट होता है कि प्रोफेसर कूपलैण्ड, सर होमी मोदी और डा० मथाईने जो आँकड़े दिये हैं उसमें रेलवेकी आमदनीमें बहुत ज्यादा अन्तर है। प्रोफेसर कूपलैण्डने लिखा है, कि "पाकिस्तान क्षेत्रमें १२८ लाखका लाभ हुआ और युद्ध-क्षेत्रमें १८२ लाखका घाटा।" युद्ध-क्षेत्रमें इस मदसे जो घाटा हुआ उसे वह गणनामें नहीं रखते क्योंकि उनकी गणना रक्षा विभागमें की जायगी। प्रोफेसर कूपलैण्डने नफेकी रकमको बढ़ाकर १५० लाख इस आधारपर माना है कि यात्रियोंसे आमदनी बढ़ेगी। लेकिन वह १५० लाखका आँकड़ा कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि प्रोफेसर कूपलैण्डने जो तरीका अपनाया है और उससे आमदनीकी जो बढ़ती दिखायी है उसका समर्थन कहींसे भी नहीं हो सकता क्योंकि उनके दिये गये आँकड़ोंके अनुसार ही वास्तविक आमदनी (१२८-१८२)= −५४ लाख होनी चाहिए। और उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रकी कुल आमदनी १९३८-३९ में ९३६.०५ लाखके बजाय ७०२.०५ लाख होनी चाहिए।

व्ययका हिसाब लगानेमें प्रोफेसर कूपलैण्डने अनेक मदोंपर विचार नहीं किया है जिनका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने किया है और यह आशङ्का की जाती है कि एक स्वतन्त्र खुदमुख्तार राजके विभिन्न- विभागोंको चलानेके लिए अनुमानित व्ययसे बहुत ज्यादा व्यय होगा क्योंकि एक स्वतन्त्र संघ-शासनको चलानेमें वे ही व्यय होंगे जो एक नये प्रान्तीय शासनके चलानेमें पड़ते हैं। लेकिन जो आँकड़े दिये गये हैं उन्हें सही मान लेनेपर हमलोग यह देखते हैं कि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें १९३८—३९ में ९३·०२ तथा १९३९—४० में २३८·५ लाख की बचत होगी। ऊपरके आँकड़ेमें रक्षाका व्यय नहीं शामिल है। अब यह देखना है कि क्या बचतकी इस रकमसे उत्तर-पश्चिमी स्वतन्त्र मुस्लिम राजके रक्षा-विभागका व्यय पूरा हो जायगा।

मुस्लिमलीगकी विचारधाराका समर्थन प्रोफेसर कूपलैण्डने अपनी पुस्तकमें आदिसे अन्ततक किया है, लेकिन वे भी इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि बचतकी

इस रकमसे उत्तर-पश्चिमी स्वतन्त्र मुस्लिम राजकी रक्षाका व्यय पूरा नहीं हो सकता। उन्हींके शब्दोंको यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा—"प्रतीत होता है कि पाकिस्तानकी सबसे बड़ी कठिनाई और सबसे बड़ा खतरा उसकी रक्षाका प्रश्न है। ऊपर जिन सम्भावनाओंकी चर्चा की गयी है यदि वे वास्तविक हैं तब तो उन्हें अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमाकी रक्षाकी व्यवस्था हिन्दू भारतकी सहायताके बगैर ही करनी होगी। जिस पैमानेपर अतीतमें इस क्षेत्रकी रक्षाकी व्यवस्था की गयी थी, उस पैमानेपर भी रक्षाकी व्यवस्था करना—आधुनिक ढङ्गके अस्त्र-शस्त्रकी बढ़ती कीमतको छोड़कर भी—उसकी शक्तिसे बाहरकी बात होगी। इसके लिए एक तरफ कर लगाकर इतनी अधिक आमदनी खड़ी करनी पड़ेगी और दूसरी ओर शासन-व्यय तथा सार्वजनिक मदके व्ययमें इतनी ज्यादा कटौती करनी पड़ेगी कि रहन-सहनके साधारण मापदण्डको एकदम गिरा देना पड़ेगा और इन पिछड़ी जातियोंको और भी पीछे ही ढकेल नहीं दिया जायगा बल्कि अनेक वर्षोंके लिए इनके भाग्यका फैसला कर दिया जायगा। पर शायद इतनेसे ही काम न चले। पाकिस्तानके पूर्वीय क्षेत्रकी सीमाकी रक्षाकी व्यवस्था करनेकी भी चिन्ता अब शायद करनी पड़े।

इस अध्यायके आरम्भमें भारतके बँटवारासे जो लाभ होगा उसका दिग्दर्शन जितना व्यवहारतः सम्भव हो सकता है, कराया जा चुका है, इसलिए उससे जो हानि होगी उसका भी व्यावहारिक दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है। तब रक्षाके इस अनिवार्य विषयपर आँकड़े और उचित सम्भावनाएँ किस परिणामपर ले जाती हैं? क्या यह बात एकदम स्पष्ट नहीं है कि भारतका अङ्ग रहकर पाकिस्तानकी जितनी पूरी रक्षा हो सकी है, उसे वह कायम नहीं रख सकेगा? रक्षाके साधारण साधन भी उसकी आमदनीका बहुत बड़ा अंश अपनी ओर खींच लेंगे और जनताकी सामाजिक उन्नति रुक जायगी। पाकिस्तानको यह खतरा सिरपर उठाना पड़ेगा।* अपने मतके समर्थनमें उन्होंने पञ्जाब एसेम्बलीमें

* प्रोफेसर कूपलैण्ड—"दि फ्यूचर ऑव इण्डिया" पृ० १९५–९६।

दिये गये सर सिकन्दर हयात खाँके भाषणका एक अंश उद्धृत भी किया है।

प्रोफेसर कूपलैण्डने न तो उत्तर-पूर्वी मुस्लिम क्षेत्र और न गैर-मुस्लिम जिलों को ही अलग कर समस्त मुस्लिम क्षेत्रोंकी दशाका दिग्दर्शन कराया है। सर होमी मोदी तथा डाक्टर मथाईने दोनोंपर विचार किया है। ऊपरकी तालिकामें उत्तर-पूर्वी क्षेत्रके जो आँकड़े दिये गये हैं वे सम्पूर्ण बङ्गाल और आसाम प्रान्तके हैं। नीचेकी तालिकामें उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रोंको—गैर-मुस्लिम जिलोंको निकालकर—आयव्ययका जिलेवार व्योरा दिया गया है :—

(लाख रुपयोंमें)
(१९३९-१९४०)❀

मद	आमदनी पूर्वी क्षेत्र	आमदनी उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र	मद	व्यय पूर्वी चेत्र	व्यय उत्तर-पश्चिमी चेत्र
चुंगी	७७५'०	४०२'२	शासन	१२६'८	१००'६
केन्द्रीय आबकारी	७५'५	५३'८	ऋण	२७६'७	१४९'५
कारपोरेशन टैक्स	४६'०	१२'०	पेंशन	४१'०	२८'०
अन्य टैक्स	१८६'५	१०३'७	प्रान्तोंको मदद	१८'८	१४१'४
नमक	१३०'०	८३'२	अन्य मद	३०'०	२१'०
डाक तथा तार	२२'०	१४'७			
रेलोंसे घाटा	–८८'५	–७७'२			
फुटकर	१'०	१३'६			
जोड़	११४७'५	६०५'०	जोड़	४९३.३	४४०'५

❀ मेमोरैण्डक टू सप्रू कमेटी बाई, सर होमी मोदी ऐण्ड डा० मथाई पैरा १३

इससे प्रकट होगा कि फाजिलमें तो कमी हो जायगी लेकिन रक्षाकी आवश्यकताओंमें कमी नहीं होगी। इसपर दूसरे पहलूसे विचार किया जा सकता है। रक्षाकी समस्यापर विचारनेके लिए यह उचित नहीं होगा कि दोनों क्षेत्रोंकी जनसंख्याके अनुपातसे इस मदके खर्चको दोनोंपर बाँट दिया जाय। दोनों मुस्लिम क्षेत्र सीमापर हैं इसलिए स्थल-मार्गद्वारा विदेशी आक्रमणोंसे देशकी रक्षाका सारा भार उन्हें ही सँभालना होगा। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तकी ओरसे आक्रमणकी आशङ्का केवल ब्रिटिश शासनकालमें ही नहीं, बल्कि मुसलमानोंके शासनकालसे लेकर समस्त मुस्लिम शासनकालतक बनी रही। इस दूसरे विश्वयुद्धने इस बातकी सम्भावना भी प्रकट कर दी कि उत्तर-पूर्वी क्षेत्रकी ओरसे भी आक्रमण हो सकते हैं और भविष्यमें उधरसे असावधान नहीं रहा जा सकता। यद्यपि मुस्लिम क्षेत्रमें जो समुद्री किनारे पड़ते हैं वे बहुत लम्बे नहीं होंगे तो भी जहाजी बेड़ेका समुचित प्रबन्ध तो करना ही होगा। यदि रक्षाका व्यय उतना ही मान लिया जाय जितना युद्धके पहले था, और जनसंख्याके अनुसार उसे बाँट दिया जाय—यद्यपि यह तरीका असन्तोषजनक और गलत होगा—तो हमलोग निम्नलिखित परिणामपर पहुँचते हैं। यह रक्षाकी दृष्टिसे बहुत बड़ी कमी प्रकट करता है यद्यपि इस परिणामपर पहुँचनेमें रक्षाके वर्तमान साधनोंके बढ़े हुए मूल्यका खयाल नहीं किया गया है:—

पूर्वी क्षेत्र (लाख रुपयोंमें)

	प्रान्तवार			जिलावार		
सन्	रक्षाके लिए प्राप्य आयका अंश	रक्षापर व्यय	कमी	रक्षाके लिए प्राप्य आय	रक्षापर व्यय	कमी
१९३९-४०	१०४४·९;	११९७·८;	१५२·९;	६४४·२;	७४८·९;	१०४·७

पश्चिमी क्षेत्र (लाख रुपयोंमें)

१९३८-३९	९३·०२;	६४२·०१;	५४८·९९			
१९३९-४०	२३८·५;	६१९·७६;	३८१·२६;	१६४·५;	४२३·७३;	२५९·२३

रक्षाके प्रश्नका दूसरा पहलू भी है जिसकी अवज्ञा नहीं की जा सकती। जब हम स्वतन्त्र मुस्लिम राज कायम कर लेंगे तब हमें अपने ही नागरिकोंमेंसे सैनिक रखकर उन्हें वेतन देना होगा और भारतके बाकी हिस्सेको अपने नागरिकोंमेंसे सैनिक रखकर उन्हें वेतन देना होगा। जहाँतक रक्षा विभागकी नौकरीका सम्बन्ध है, इस बँटवारेकी आर्थिक उलझन उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम राजके लिए बहुत ही हानिकर साबित होगी। डाक्टर अम्बेडकरने दिखलाया है कि १९३० में सेनाका जो सङ्गठन था उसमें ५८·५ फीसदी सैनिक उन प्रदेशोंके थे जो उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम क्षेत्रमें पड़ते हैं।* भारतीय सेनामें मुसलमान सैनिकोंके अनुपातका हिसाब स्वतन्त्र रूपसे किया गया है और डाक्टर अम्बेडकरने दिखलाया है कि पैदल सेनामें ३६ प्रति सैकड़े और घुड़सवारोंमें ३० प्रति सैकड़े मुसलमान हैं और प्रायः वे सबके सब पञ्जाब अथवा सीमाप्रान्तके निवासी हैं।† इस क्षेत्रको समस्त भारतसे अलग कर उसे एक स्वतन्त्र राज बना देनेपर, जब बाकी भारतके लोग अपने यहाँके नागरिकोंको अपनी सेनामें भर्ती करने लगेंगे तब वे सैनिक अपने पदसे हटा दिये जायँगे। यदि उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम स्वतन्त्र राज इन्हें अपनी सेनामें न रखेगा तब इनका क्या होगा? विद्वान डाक्टरने यह भी दिखलाया है कि पाकिस्तान—जिसके सबसे अधिक नागरिक वर्तमान भारतीय सेनामें भर्ती होते हैं—केन्द्रीय कोषमें सबसे कम रकम देता है जो नीचे दिये आँकड़ोंसे स्पष्ट हो जायगा—

	केन्द्रीय कोषमें जो रकम दी जाती है
पञ्जाब	१,१८,०१,३८५ ००
सीमाप्रान्त	९,२८,२९४ ,,
सिन्ध	५,८६,४६,९१५ ,,
बिलोचिस्तान	०
जोड़	७,१३,७६,५९४ ,,

* डा० अम्बेडकर—थाट्स आन पाकिस्तान पृ० ७० ।

† वही पृ० ७६-७७

इसके मुकाबलेमें हिन्दुस्तानके अन्य प्रान्त इस प्रकार रकम देते हैं—

मद्रास	९,५३,२६,७४५ रु०
बम्बई	२२,५३,४४,२४७ ,,
बङ्गाल	* १२,००,००,००० ,,
संयुक्तप्रान्त	४,०५,५३,००० ,,
बिहार	१,५४,३७,७४२ ,,
मध्यप्रान्त बरार	३१,४२,६८२ ,,
आसाम	१,८७,५५,९६७ ,,
उड़ीसा	५,६७,३४६ ,,
जोड़	५१,९१,२७,७२९ रु०

इन आकड़ोंसे प्रकट होता है कि पाकिस्तानके प्रान्तोंसे बहुत थोड़ी रकम केन्द्रीय सरकारको मिलती है। प्रधान रकम तो हिन्दुस्तानसे ही मिलती है। यदि वास्तवमें देखा जाय तो हिन्दुस्तानके प्रान्तोंकी आमदनीसे केन्द्रीय सरकार पाकिस्तानके प्रान्तोंमें काम करती है। पाकिस्तानके प्रान्त हिन्दुस्तानके प्रान्तोंपर भार-स्वरूप हैं। वे केन्द्रीय सरकारको केवल थोड़ी रकम ही नहीं देते, बल्कि उससे बहुत बड़ी रकम पाते भी हैं। केन्द्रीय सरकारकी सालाना आमदनी १२६ करोड़ है। इसमेंसे ५२ करोड़ प्रतिवर्ष केवल सेनापर व्यय किया जाता है। इस ५२ करोड़ रकमका बहुत बड़ा अंश उस मुसलमान सेनापर व्यय किया जाता है जिसके अधिकांश सैनिक पाकिस्तानके प्रान्तोंके हैं। इस रकमका बहुत बड़ा भाग तो हिन्दुस्तानके प्रान्तोंसे मिलता है लेकिन वह उस सेनापर व्यय किया जाता है जिसके अधिकांश सैनिक गैर-हिन्दू हैं। †

---

* बङ्गालकी केवल आधी रकम दिखायी गयी है क्योंकि प्रायः आधी जनसंख्या हिन्दू है।

† डा० अम्बेडकर—पाकिस्तान या पार्टिशन ऑव इण्डिया पृ० ८६-८७।

इससे यह स्पष्ट है कि उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम क्षेत्रको केवल उस बड़ी रकमके लाभसे ही वञ्चित होना नहीं पड़ेगा जो केन्द्रीय सरकार अन्य प्रान्तोंसे वसूल कर उसपर व्यय करती है बल्कि अपनी सेनाको वेतन देनेके लिए उसे रुपयोंकी भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। उस क्षेत्रके लोग सेनामें भर्ती होकर जो रकम वेतनके रूपमें पाते हैं, वह तो बन्द हो ही जायगी साथ ही अपनी सेना रखनेके लिए उन्हें अतिरिक्त कर देना पड़ेगा। श्री के० टी० शाहने लिखा है:—
"इस अदृश्य पारितोषिककी बहुत बड़ी रकम हो जाती है, क्योंकि भारतीय सेनामें सबसे अधिक संख्या पञ्जाबियोंकी है, उन सैनिकों और अफसरोंकी तनखाहें, भत्ता, पेंशन तथा कैम्पके साथ रहनेवाले मजदूरोंका वेतन और ठीकेदारोंका नफा सब मिलाकर बहुत बड़ी रकम हो जाती है। इस मदमें युद्धके पहले जो व्यय होता था उसमेंसे ऊपरकी सब रकमोंको मिलाकर कमसे कम दस करोड़की रकम केवल पञ्जाबको इस 'अदृश्य पुरस्कार' के रूपमें मिल जाती है। युद्धने तो इसे और भी बढ़ा दिया है। युद्धके बाद यह रकम २५ करोड़से कम किसी भी हालतमें नहीं होगी।"*

पञ्जाब प्रान्तकी इस सम्भावित हानिको सर सिकन्दर हयात खाँ भलीभाँति समझते थे इसीलिए बँटवारेकी अपनी योजनामें उन्होंने इस बातपर बहुत अधिक जोर दिया है कि यदि भौमिक आधारपर भारतका किसी तरह बँटवारा हो तो सेनामें कमसे कम उतने मुसलमान अवश्य रहें जितने ता० १ जनवरी १९३७ को थे। इस युद्धमें भी उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रने भारतीय सेनाको बहुत अधिक सैनिक प्रदान किया है और इस तरह यह लाभ उठाया है जिसकी चर्चा श्री के० टी० शाहने की है। केन्द्रीय व्यवस्थापक सभामें एक प्रश्नका उत्तर देते हुए मार्च १९४५ में युद्धमन्त्रीने बतलाया था कि भारतीय सेनामें जितने सैनिक भर्ती किये गये हैं उनमें २९·९ सैकड़े पञ्जाबी ४ सैकड़े अफगानी (सीमाप्रान्तके) और ०·४ सैकड़े सिन्धी अर्थात् कुल ३४·३ सैकड़े हैं।

---

* के० टी० शाह—ह्वाई पाकिस्तान ह्वाई नाट पृ० १६४

सार्वजनिक ऋण (१९३९-४०)

१९३९-४० के अन्तमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंका सार्वजनिक ऋण इस प्रकार था:—

केन्द्रीय सरकार

भारतमें	५,०५,५१,१०,८१६ रु०
इङ्गलैण्डमें	९,४४,६१,५५,३९९ ,,

(३२९,३२८,३९४ पौ०, एक पौंड़ १३ रु०के बराबर माना गया है)

प्रान्तीय सरकारें:—

बङ्गाल	३०,००,००० रु०	
आसाम	५०,००,००० ,,	
पञ्जाब	३४,०५,५०,५१५ ,,	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रका जोड़ ६३,११,५१,१६७ रु०
सीमाप्रान्त	५७,२४,९०० ,,	
सिन्ध	२३,५६,७६,७५२ ,,	
कुर्ग	३,६२,५२८ ,,	
मद्रास	११,९६,९२,३१९ ,,	
बम्बई	३१,१८,७३,७२० ,,	
संयुक्तप्रान्त	३१,१३,९२,८८६ ,,	
बिहार	० ,,	
मध्यप्रान्त बरार	४,८८,४०,८६३ ,,	
उड़ीसा	० ,,	
जोड़	१४३,२१,१२,९३७ ,,	

कुल प्रान्तोंको मिलाकर १४३ करोड़का जो सार्वजनिक ऋण है उसमेंसे ६३ करोड़ केवल पञ्जाब, सीमाप्रान्त तथा सिन्धके ऊपर है। कर्जकी इस

रकमका अधिकांश भाग सिंचाईके प्रबन्धमें लगा हुआ है जिससे पञ्जाबको खासी आमदनी है और सिन्धको भी इससे खासी आमदनी होगी। पूर्वी क्षेत्रके ऊपर कर्जका कोई ऐसा बोझ नहीं है।

यदि भारतका विभाजन मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें हो और इस सार्वजनिक ऋणको दोनों क्षेत्रोंमें बाँटना पड़े तो यह हिसाब भी एक उलझनकी वस्तु हो जायगा। लेकिन इसमें तो सन्देह नहीं कि उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्रपर इसका जो बोझ पड़ेगा वह हल्का नहीं होगा।

इसके अलावा युद्धके कारण केन्द्रीय सरकारका सार्वजनिक ऋण बहुत ज्यादा बढ़ गया है। १९३९-४० के अङ्कके आधारपर कोई हिसाब लगाना गलत होगा। १९३९-४० में जो ऋण ९४४½ करोड़ था वह इस वक्त २००० करोड़के लगभग होगा। यदि पुराने आँकड़ेके अनुसार ही केन्द्रीय कर्जका बँटवारा दोनों क्षेत्रोंके मुस्लिम जिलोंके अनुसार कर दिया जाय तो भी प्रान्तीय कर्जको मिलाकर उनका हिस्सा ५०० करोड़से कम नहीं होगा। ३ प्रति सैकड़ाके हिसाबसे इस रकमका सालाना सूद १५ करोड़ होगा। रक्षाके अलावा शासनके खर्चके बाद जो रकम दोनों क्षेत्रोंके पास बचेगी उसकी करीब करीब दूनी यह सूदकी रकम हो जायगी। लेकिन जैसा ऊपर कहा गया है कि पावनाका यह रूप इतना सीधासादा नहीं होगा बल्कि बहुत जटिल होगा। इस सम्बन्धमें सर अर्देशिर दलालने लिखा है:—

"ब्रिटिश भारतकी इस इकाईको भिन्न-भिन्न टुकड़ोंमें बाँटना अर्थ-शास्त्रीय और आर्थिक दृष्टिसे बहुत कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव होगा। रेल विभाग, डाक तथा तार विभाग, सिंचाई तथा जल कलके विभागको टुकड़ोंमें बाँटना पड़ेगा। इन सभी राष्ट्रीय कामोंके लिए जो कर्ज लिये गये हैं उन्हें बाँटना पड़ेगा और इनके स्थानपर नये आँकड़े खड़े करने होंगे। इसी तरह सेनाको तोड़ना पड़ेगा और अतीतका देना तथा भविष्यके व्ययको ठीक करना होगा। केन्द्रीय सरकारकी आमदनीसे बहुत ज्यादा रुपया सिन्धके सक्खर बाँधमें व्यय किया गया है। इस व्ययको तथा पाकिस्तानके अन्दर भारत सरकारने अन्य बड़े बड़े

कामोंके लिए जो व्यय किये हैं उसे पाकिस्तानको देना पड़ेगा। पाकिस्तानके हिस्सेसे भारत सरकारने हिन्दुस्तानमें इस तरहके बड़े बड़े कामोंके लिए जो व्यय किये हैं वह रकम इसमेंसे घटा दी जायगी। जब यह सब, जटिल, कठिन और हृदय-विदारक काम सम्पन्न हो जायँगे—यदि बिना किसी मुसीबत और असम्भव कठिनाइयोंके ये सम्पन्न हो गये—तब प्रकट होगा कि पाकिस्तान एक बहुत ही गरीब और साधन-विहीन राष्ट्रके रूपमें प्रकट हुआ है। अलग होनेके साथ ही उसके सामने अनेक समस्याए उपस्थित होंगी, जिन्हें हाथमें लेना आवश्यक होगा। इसके साथ ही कर्जका वह बोझ सिरपर होगा, जिसे अदा करना कठिन हो जायगा। ऐसी अवस्थामें उसे उस आर्थिक और औद्योगिक उन्नतिसे अपनेको वञ्चित रखना पड़ेगा जिसकी आशा स्वतन्त्र भारतमें की जाती है।"*

---

* नीचेकी तालिकामें कर्जकी स्थितिका पूरा पूरा हवाला मिल जाता है। इस तालिकाका अध्ययन करते समय इस बातको ध्यानमें रखना होगा कि १९४५–४६ के बजटमें कर्जकी जो रकम दिखायी गयी है उसमें ३१–३–४६ तकके कर्जका पूरा ब्योरा नहीं है क्योंकि अनुमानित समयसे पहले ही अचानक युद्ध बन्द हो जानेके कारण, कर्जकी वास्तविक रकम बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। यह २००० करोड़से भी ज्यादा होगी और उसी अनुपातसे प्रान्तोंका हिस्सा भी होगा।

प्रान्तोंके सिरपर अपने कर्जका बोझ अलग है। प्रान्तके सभी कर्जोंसे आमदनीका जरिया नहीं है। बँटवाराके बाद भारत सरकारके कर्जका जो हिस्सा उनके जिम्मे पड़ेगा, वह प्रान्तीय कर्जके अतिरिक्त होगा। प्रान्तीय कर्जकी अपेक्षा केन्द्रीय सरकारके कर्जका बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जिससे किसी तरहकी आमदनी नहीं होती है।

देनाके मुकाबले पावनाकी जो तालिका है, उससे बहुत अंशोंमें आमदनी-की कोई गुञ्जायश नहीं है। उदाहरणके लिए पौंडपावना (स्टर्लिङ्ग सिक्योरिटी) तथा बर्माको दिये गये कर्ज हैं। यदि इनमेंसे कर्जकी कोई रकम प्राप्त न हो सके या अपना बोझ सँभालने लायक भी सूद इनसे प्राप्त न हो सके तो प्रत्येक प्रान्तपर पहलेकी अपेक्षा बोझ बढ़ जायगा। अन्तिम बँटवारा करनेसे पहले प्रत्येक पावनाकी जाँच-पड़ताल आवश्यक होगी।

अक्तूबर १९३९ के शर्तनामाके अनुसार युद्धका जो व्यय सीधे भारतके जिम्मे होगा उससे सम्बन्ध रखनेवाले पेंशन वगैरहकी रकमोंका अभीतक कोई निपटारा नहीं हुआ है।

भारत-सरकारका १९४५–४६ का एक्स प्लेनेटरी मेमोरैण्डम बजट

भारत सरकारका वह ऋण जिसपर सूद देना पड़ता है तथा वह जिसपर सूद मिलता है। (करोड़ रुपयोंमें)

सभी प्रान्तोंको मिलाकर कर्जकी स्थितिका आजतकका व्योरा इस तालिकामें दिया गया है।

१९३६–३७ से प्रान्तोंकी ऋणकी स्थिति (करोड़ रुपयोंमें)

१—सार्वजनिक ऋण	१९३८–३९के अन्तमें	१९४४–४५
(क) स्थायी ऋण	१५'०७	५०'९२
(ख) चलता ऋण	१'५०	६८'२३
(ग) केन्द्रीय सरकारका ऋण	१२३'२४	६६'५७
२—अस्थायी ऋण	२३'३९	२९'७७
३—कुल कर्ज (१ और २ का जोड़)	१६३'२०	२१५'४९
४—कर्ज (प्रान्तीय सरकारोंद्वारा दिये गये कर्ज और पेशगीको काटकर)	१०२'४८	१८५'७९

भारतमें

सार्वजनिक ऋण	१९३८–३९ (युद्धके पहले)	१९४५–४६ (प्रस्ताविक बजट)
कर्ज	४३७'८७	१,४८४'४३
ट्रेजरी बिल और वेतन आदि	४६,३०	८६'६१
	४८४,१७	१५७१'०४

अनफण्डेड ऋण (अर्थात् जो कर्ज किसी मद्के लिए नहीं है)		
नौकरीका	१·०३	·७४
पोस्टआफिस सेविंग्स बैंक (इसमें डिफेंस सेविंग्स बैंक शामिल है।)	८१·८८	११०·२०
पोस्टआफिसमें नकद और डिफेंस सेविंग्स	५९·५७	४३·९०
स्टेट प्राविडेण्ट फण्ड	७२·४०	९७·२०
नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट	...	५१·६५
अन्य	१०·२५	१३·०८
जोड़	२२५·१३	३१६·७७
जमा		
घिसाई तथा संचित कोष	२७·३४	१२५·८९
अन्य जमा रकम	...	१२९·२८
भारतमें कुल देनाका जोड़	७३६·६४	२१,४२·९८
इङ्गलैण्डमें		
सार्वजनिक ऋण कर्ज	३९६·५०	१३·४२
युद्धका चन्दा	२०·६२	२०·६२
रेलवे खरीदनेमें मावजेकी रकम	४७·८२	२६·०१
	४६४·९४	६०·०५
बिना किसी मद्का कर्ज नौकरीका	४·१८	३·५५
इङ्गलैण्डमें कुल देना	४६९·१२	६३·६०
कुल देना जिसपर सूद देना पड़ता है	१२०५·७६	२२०६·५८

(शेषांश अगले पृष्ठके नीचे)

रेलवे

ब्रिटिश भारतकी इन प्रधान रेलवे लाइनोंमेंसे ईस्टर्न बङ्गाल रेलवे तथा आसाम बङ्गाल रेलवेका कुल हिस्सा प्रायः पूर्वी क्षेत्रमें पड़ता है। इनमें कुल ७९·५५ करोड़ पूँजी लगी हुई है और इनसे सालाना नफा १२८ करोड़ ४५ लाख है अर्थात् १.६ फीसदी है। नार्थ वेस्टर्न रेलवे प्रायः उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें पड़ता है इसमें १५३ करोड़ २६ लाख रुपया लगा है और इसका सालाना नफा ४ करोड़ ९३ लाख ३४ हजार है अर्थात् लागत पूँजीपर ३·२२ फीसदी नफा मिलता है। इससे प्रकट होता है कि ब्रिटिश भारतकी अन्य प्रधान रेलोंकी अपेक्षा इन दोनों क्षेत्रोंमें पड़नेवाली रेलोंसे कम नफा है। इस विषयमें भी ब्रिटिश भारतके अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा मुस्लिम क्षेत्रोंकी हालत खराब रहेगी। रेलवेकी आमदनीका यह पहलू अब महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि यदि कुल नहीं तो अधिकांश प्रधान रेलवे—सरकारकी हो गयी हैं और उनसे जो आमदनी होगी वह

पावना जिसपर सूद मिलता है		
रेलवेमें लगी पूँजी	७२५·२४	७९७·३८
अन्य व्यावसायिक विभागको दी गयी पूँजी	२७·४२	४२·१०
प्रान्तोंको दी गयी पूँजी	१२३·२८	७६·९७
देशीनरेशोंको दी गयी पूँजी तथा अन्य	२०·७१	१८·६५
वर्मापर ऋण	४९·७३	४८·१५
रेलवेका देना अदा करनेके लिए एच० एम० जी०के पास जमानत	...	२६·०१
	९४६·३८	१००९·२६
खजानेमें नकद जमा	३०·३०	५४७·०२
अन्य	२२९·०८	६५०·३०

(क) ऊपरकी तालिकामें प्रत्येक सालके अन्तकी बाकी दी गयी है।

(ख) पौण्ड पावनेको १ शि० ६ पें० की दरसे रुपयेमें बदल दिया गया है।

रेलवे (१९३९–४०) (हजार रुपयोंमें)

रेलवे	कुल लगी पूँजी	कुल आमदनी	खर्च	लाभ	कुल आमदनी पर खर्चका औसत	लगी पूँजी पर लाभका औसत
आसाम बंगाल	२,६४,८७४	२१,३३५	१६,८२६	४,५०६	७८.८६	१·७०
बी. एन डब्ल्यू (प्रो.टी.)	२,२८,४९४	३६,२९०	१८,४८२	१७,८०८	५०,९३	७·७९
बंगाल नागपुर	७,८४,५९७	१,१०,४४६	७४,३४४	३६,१०२	६७·३१	४ ६०
बी. बी. ऐण्ड सी. आई.	७,७५,०२०	१,२८,७०३	७४,१००	५४,६०३	५७·५७	७·०५
ईस्टर्न बंगाल	५,३०,६४६	६३,६५९	५५,३२०	८,३३९	८६·९०	१·५७
ईस्ट इण्डियन	१४,९९,४१७	२,१५,५४६	१,३१,०८४	८४,४६२	६०·८२	५·६३
जी. आई. पी.	११,७७,९७०	१,४२,२९८	९१,१०१	५१,१९७	६४·०२	४·३५
एम. एस. एम.	५,६३,४६०	८०,१७१	४८,९२६	३१,२४५	६१·००	५·५५
नार्थ वेस्टर्न※	१५,३२,६०२	१,६८,९७९	१,१९,६४५	४९,३३४	७०·८०	३·२२
रुहेलखण्ड कमायूँ	४७,५९१	७,६९३	३,७१९	३,९७४	४८·३४	८·३५
साउथ इण्डियन	४,८६,८५३	५५,१२६	३८,६८८	१६,४३८	७०·१८	३·३८
※नार्थ वेस्टर्न (कर्मसल)	११,९४,४३१	१,५५,०४३	१००,७००	५४,३४३	६४·९५	४·५५
※नार्थ वेस्टर्न (मिलिटरी)	३,३८,१७१	१३,९३६	१८,९४५	–५,००९	१३५·९५	–१·४८

उसी राष्ट्रको प्राप्त होगी जिसमें वे होंगी और उनसे जो हानि होगी उसे भी उसी राष्ट्रको बर्दाश्त करना पड़ेगा।

५

विभाजनके प्रस्तावकी आलोचना

१—बँटवाराके पक्षकी दलीलें

मुस्लिम और गैर-मुस्लिम राजोंमें भारतके बँटवारेके दावेके मौलिक सिद्धान्तों पर अर्थात् यह सिद्धान्त कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग राष्ट्र हैं दूरतक विचार किया गया। सांस्कृतिक और राजनीतिक आधारपर बँटवारेकी अनेक योजनाओंकी भी समीक्षा की गयी। हमलोगोंने यह भी देखा कि भारतके उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी भागमें स्वतन्त्र मुस्लिम राज कायम करनेके उद्देश्यसे अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके प्रस्तावने जो मौलिक आधार नियत किया है उसमें ये योजनाएँ कहाँतक मेल खाती हैं और कहाँ इनमें भेद है। लीगने बँटवारेका कोई विस्तृत ब्योरा नहीं उपस्थित किया है, केवल बँटवारेके आधारका सरकारी तौरसे निर्देशभर कर दिया है। इसलिए हमलोगोंको इस बातपर विचार करना आवश्यक हो गया कि लीगके प्रस्तावमें जो सिद्धान्त दिये गये हैं उनके अनुसार किन क्षेत्रोंमें मुस्लिम राज कायम हो सकते हैं और इन स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंकी आमदनीका साधन क्या है और क्या हो सकता है। अब हम मुस्लिम और गैर-मुस्लिम भिन्न भिन्न क्षेत्रोंके आधारपर बँटवाराके प्रश्नपर साधारण तौरसे विचार कर सकते हैं और यह दिखला सकते हैं कि संसारकी वर्तमान स्थितिका उसपर क्या प्रभाव पड़ेगा।

प्रोफेसर रेजिनल कूपलैण्डने बँटवाराके पक्षका समर्थन बड़ी ही जोरदार भाषामें की है। इसलिए बँटवाराके पक्षके समर्थनके लिए उसीसे यहाँ अवतरण दे देना सबसे ज्यादा उपयुक्त होगा—

(१) "हिन्दू और मुसलमानोंके बीच दिनपर दिन बढ़ते हुए वैमनस्यका कारण भय और अभिमान है। पाकिस्तान इसे सदाके लिए हल कर देगा।

पाकिस्तान आधेसे ज्यादा भारतीय मुसलमानोंके दिलसे हिन्दूराजका भय दूर कर देगा क्योंकि पाकिस्तान कायम होनेसे उन्हें यह आशा हो जायगी कि आज या कल वे उनके चंगुलसे सदाके लिए छुटकारा पा जायँगे। आज जहाँ वे एक बड़े राजमें अल्पमत समुदाय बनकर रहते हैं वहाँ बँटवारा होते ही वे दो छोटे राजोंमें बहुमत समुदाय बन जायँगे। यह मुसलमानोंके लिए कम अभिमानकी बात नहीं होगी। साथ ही उन्हें इस बातका दावा हो जायगा कि एक संयुक्त भारतीय राष्ट्रमें वे महज एक सम्प्रदाय न होकर, एक स्वतन्त्र राष्ट्र हैं और अपने स्वतन्त्र राष्ट्रके अन्दर उन्हें हर तरहकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त है। इसके साथ ही संसारमें उन्हें कदम आगे बढ़ानेका मौका मिलता है······यह स्वतन्त्र मुस्लिम राज मध्य पूर्वके अन्य स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रोंका सहयोगी राष्ट्र होगा। आजकी अपेक्षा उस दिन उनके दिलोंमें यह भावना अधिक व्यापक रूपसे जागरित होगी कि वे ऐसे देशोंके साथ भ्रातृभावमें बँधे हैं जिसकी सीमा भारतसे कहीं दूरतक फैली हुई है। और दूसरी तरफ यदि वे संसारसे मुँह मोड़ लेते हैं और हिन्दू बहुमतके अधीन हमेशाके लिए रहनेको राजी हो जाते हैं तो उनकी यहाँ वही हालत होगी जो यूरोपमें किसी भी अल्पमत समुदायकी हो रही है।

(२) "दूसरे, भारतभरके अल्पमत समुदायकी समस्या जिस खूबीके साथ पाकिस्तानद्वारा हल हो जाती है, वैसी किसी अन्य उपायसे हल नहीं हो सकती। पाकिस्तान बराबरीके सिद्धान्तको जिस रूपमें ग्रहण करता है, वही उसका उचित रूप है। जब एक या अधिक हिन्दू राजोंकी बराबरीमें मुस्लिम राज कायम किये जाते हैं तब उनका आकार कितना ही छोटा क्यों न हो राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे सभी समान हैं। इतनेपर भी सभी राष्ट्रोंमें अल्पमत समुदाय रह जायँगे······। यद्यपि साम्प्रदायिक एकरूपता अव्यावहारिक है, यद्यपि अन्य अल्पमत समुदायके अतिरिक्त भी हिन्दू राजमें लाखों मुसलमान रह जायँगे, लेकिन उनसे समस्यामें किसी तरहकी जटिलता नहीं उपस्थित होगी; क्योंकि उदासीन ब्रिटिश अधि-कारसे भारतको मुक्त करनेमें उलझे रहनेके कारण इन विभक्त राजोंमें अधिकारके

लिए साम्प्रदायिक कलह रुक जायगी। मुस्लिम राजोंके लिए लीगके कार्यक्रममें संयुक्त शासन तथा अल्पसंख्यकोंके लिए रक्षणकी व्यवस्था है लेकिन वे प्रधानतः मुस्लिम राज रहेंगे और मुस्लिम संस्कृति तथा मुस्लिम नीतिकी वहाँ व्यापक प्रधानता रहेगी—जिस तरह हिन्दू राज सभी बातोंके लिए प्रधानतः हिन्दू रहेंगे। इन स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें बसनेवाले अल्पसंख्यकोंको अपने बहुसंख्यक समुदायके साथ कलह जारी रखनेके लिए किसी तरहका प्रोत्साहन नहीं मिल सकता ताकि उन्हें केन्द्रमें प्रधानता प्राप्त हो······। क्योंकि उस हालतमें इस तरहका कोई केन्द्रीय शासन नहीं रहेगा।······कहा जाता है कि बहुमत सम्प्रदायवाले अपनी जिम्मेदारीका पालन ईमानदारीसे करेंगे और अल्पसंख्यकोंसे आशा की जाती है कि वे अपनी अवस्थापर सन्तुष्ट रहेंगे। क्योंकि सङ्घ प्रान्तोंकी अपेक्षा स्वतन्त्र राजोंमें इस बातका सदा भय बना रहेगा कि यदि कोई राज अपने यहाँके अल्पसंख्यक समुदायको तङ्ग करेगा तो दूसरे राजोंमें बसे उस सम्प्रदायके लोगोंपर भी उस राजद्वारा जुल्म होने लगेंगे।

(३) तीसरे, विभाजनसे समस्त भारतकी रक्षाका प्रश्न हल हो जाता है। ······उत्तर-पश्चिम सीमापर स्वतन्त्र मुस्लिम राज स्थापित होते ही उधरसे भयकी शङ्का सदाके लिए जाती रहती है। सीमाके उस पारके सभी निवासी मुसलमान हैं। जहाँ उन्हें एक बार यह मालूम हो गया कि उन्हें अपने ही इस्लामी भाइयोंका मुकाबला करना पड़ेगा वहाँ उनका गैरमुसलमानोंके खिलाफ जेहादका धार्मिक और राजनीतिक जोश सदाके लिए ठंढा पड़ जायगा।··· इसके अलावा पाकिस्तान तथा पड़ोसके अन्य स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंके साथ सन्धिद्वारा मैत्रीसे भी इस आशङ्काको दूर किया जा सकता है। १९३७में जिस स-आदाबादकी सन्धिके अनुसार तुर्की, ईरान, फारस तथा अफगानिस्तान एक सूत्रमें बँध गये थे उसमें एक और साथीका प्रवेश क्यों नहीं हो सकता?

(४) चौथे, अविच्छिन्न भारतमें जब सैनिक संगठन भारतीयों और प्रधानतः हिन्दुओंके हाथमें हो जायगा उस समय भारतीय सेनामें मुसलमानोंकी संख्या निश्चय ही घटा दी जायगी।······वैसी हालतमें मुसलमान सैनिकोंकी संख्या जो

१९३९में एक तिहाईसे ज्यादा थी और इस समय भी ३०.८ फीसदी है, वह घट-कर चौथाईसे भी कम हो जायगी। इसका असर पञ्जाबके निवासियोंकी केवलमात्र रहन-सहन और जीविकापर ही नहीं पड़ेगा—जैसा दिखलाया गया है कि पंजाब-निवासियोंकी जीविकाका प्रधान जरिया सेनामें नौकरी तथा पेंशन है—बल्कि इससे सैनिक शक्ति हिन्दुओंके हाथमें चली जायगी।

(५) कहा जाता है कि एकमात्र विभाजनद्वारा ही मुसलमानोंको आर्थिक आत्म-निर्णयका अधिकार प्राप्त हो सकता है। हिन्दू मुस्लिम वैमनस्यका एक कारण यह भी रहा है, और हिन्दू राजसे मुसलमानोंके भयभीत होनेका एक प्रधान कारण यह भी है कि इससे हिन्दुओंके हाथमें जो अधिकार चला जायगा उसके सहारे वे समस्त भारतमें अपनी आर्थिक प्रभुता कायम कर लेंगे। ··· जिन प्रान्तोंमें मुसलमानोंका बहुमत है वहाँ भी खुदरा चीजोंकी दूकानें हिन्दुओंकी ही पायी जाती हैं, शहरी जीवनमें हिन्दुओंकी ही प्रधानता है, पंजाब तथा सिन्धमें भी नये पेशे तथा मध्यमश्रेणीके व्यवसायोंमें हिन्दुओंकी ही प्रधानता है··· यह तो बुरा था ही, लेकिन औद्योगिक विभागने परिस्थितिको और भी बुरा बना दिया है···। उत्तर-पश्चिमी प्रान्तका मुस्लिम-क्षेत्र कृषि-प्रधान है। इसकी आबादी ब्रिटिश भारतकी आबादीका १२.३ सैकड़े है। लेकिन ब्रिटिश भारतमें जितने कल-कारखाने हैं उनका ५.१ प्रतिशत ही यहाँ है और खनिज पदार्थ भी केवल ५.४ सैकड़े हैं। बङ्गालका औद्योगिक विकास बहुत ज्यादा हुआ है। ब्रिटिश भारतकी जनसंख्याके मुकाबले यहाँकी जनसंख्या २० प्रति सैकड़े है और यहाँके कल-कारखानोंमें काम करनेवालोंके हिसाबसे यहाँ तमाम भारतके ३३फी सदी कल-कारखाने हैं। लेकिन जिन क्षेत्रोंमें अधिकांश कल-कारखाने हैं वह प्रधानतः हिन्दू-प्रधान कलकत्ता नगर और उसका पड़ोस है। कलकत्ताको अलग कर देनेपर उत्तर-पूर्वी मुस्लिम क्षेत्र उत्तर-पश्चिमी मुस्लिम क्षेत्रकी अपेक्षा कहीं ज्यादा कृषि-प्रधान हो जाता है। भारतीय कल-कारखाने हिन्दू क्षेत्रमें ही सम्मिलित हैं और इनमें पूँजी भी हिन्दू पूँजीपतियोंकी ही लगी है तथा इनमें काम करनेवाले मजदूर भी अधिकांश हिन्दू ही हैं···कमसे कम अपनी आर्थिक स्थितपर तो

पाकिस्तानका अधिकार रहेगा। कमसे कम उत्तर-पश्चिममें तो वह अपना कल-कारखाना स्थापित कर उनकी रक्षा कर सकेगा। अपने यहाँकी कपासको बम्बई न भेजकर वह ज्यादासे ज्यादा मिलें खड़ी करेगा और कड़ी चुंगी लगाकर अपने यहाँकी पैदावारकी रक्षा करेगा। समय पाकर अधिक पूँजी हो जानेपर वह अपने औद्योगिक विकासके लिए अपने यहाँकी सुरक्षित जल-शक्तिका उपयोग करेगा। उत्तर-पश्चिम भारतके लिए माल मँगानेके बन्दरगाहके रूपमें करांची बन्दरगाहको उन्नत कर बम्बई बन्दरगाहको गौण बना दिया जा सकता है।······*"

२—पाकिस्तानके पक्षके तर्कोंका उत्तर

ऊपर जो अवतरण दिये गये हैं उनकी एक एक करके समीक्षा कर लेना उचित होगा।

(१) आरम्भमें ही यह लिख देना उचित होगा कि जहाँ भावुकता और दुर्भावनाको इतनी ऊँचाईतक चढ़ा दिया गया है वहाँ इस तरहकी महत्वपूर्ण समस्याओंपर शान्तचित्त और निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करना, असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। साधारणतः अभिमानकी भावना भयकी भावनाको दबा देती है, लेकिन प्रोफेसर कूपलैण्डके विश्लेषणके अनुसार भारतीय मुसलमानोंमें दोनों वर्तमान हैं। आखिर इस भयकी भावनाका कारण क्या है? भारतपर अधिकार प्राप्त करने तथा उसके शासनकी बागडोर अपने हाथमें लेनेके बादसे इस देशपर ब्रिटिश सरकार शासन कर रही है। यदि मुसलमानोंकी प्रभुता और लाभोंको हानि पहुँची है तो वह ब्रिटेनके कारण न कि हिन्दुओं अथवा अन्य गैर-मुस्लिमोंके कारण क्योंकि मुसलमानोंके साथ ही साथ वे भी अपने सारे अधिकारोंसे वञ्चित कर दिये गये। इसलिए उनके द्वारा अधिकारोंके दुरुपयोगका प्रश्न ही कहाँ उठता है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि ब्रिटिश शासनके आरम्भिक युगमें हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंपर शासकोंकी कड़ी निगाह रहती थी और उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देखा जाता था और यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कुछ वर्षोंतक हिन्दुओंकी अपेक्षा उन्हें अधिक सताया और तङ्ग किया गया।

* आर० कूपलैण्ड : दि फ्यूचर ऑव इण्डिया, पृष्ठ ७५-९।

लेकिन साथ ही यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जब ब्रिटिश अधिकारियोंने यह देखा कि हिन्दुओंने उनकी शक्तिका मुकाबला करना आरम्भ कर दिया है तब उन्होंने यह तै किया कि वह समय आ गया है जब हिन्दुओंकी पीठ ठोंकना बन्द कर देना चाहिए और उसके स्थानमें मुसलमानोंकी पीठ ठोंकना आरम्भ कर देना चाहिए। ब्रिटिश अधिकारियोंके इस नीति-परिवर्तनका फल यह हुआ कि हिन्दू तथा मुसलमान एक दूसरेको अविश्वास तथा सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे और तीसरे दलके हाथमें अक्षुण्ण और निर्विघ्न अधिकार छोड़ दिया। यदि घटनाओंका अध्ययन शान्तचित्तसे और स्थितिका अध्ययन विवेक-शीलताके साथ किया गया होता तो अविश्वास उस तीसरे दलके उद्देश्यके प्रति होता। लेकिन दुर्भाग्यवश विचार-धाराका प्रवाह ही उलट दिया गया। यदि मुसलमान पिछड़े रह गये तो उसकी जिम्मेदारी किसी भी प्रकार हिन्दुओंपर नहीं है। उसकी सारी जिम्मेदारी उस ब्रिटिश सरकारपर है जिसने १५० वर्षोंसे सारा अधिकार अपने हाथोंमें बटोर रखा है। उन अधिकारोंमेंसे जो कुछ भारतीयोंको मिला है वह १९१९ तथा १९३५ के शासन-विधानके अनुसार जिसके निर्माणकी सारी जिम्मेदारी ब्रिटेनके ऊपर है। १९३५ के शासन-विधानके अनुसार कुछ प्रान्तोंमें मुसलमानोंका अधिकार रहा जहाँ उनका बहुमत है। कमसे कम भारतके दो बड़े बडे प्रान्तों—बङ्गाल तथा पञ्जाब—और सिन्धमें शासन-विधानके प्रयोगकाल अप्रैल १९३७ से मुसलमानोंका अक्षुण्ण शासन कायम रहा। केन्द्रीय शासन सदा ब्रिटेनके हाथमें ही रहा। उन प्रान्तोंमें भी जहाँ मुसलमानोंका अल्पमत था, २७ महीने छोड़कर हिन्दू बहुमतको शासन करनेका कोई अवसर नहीं मिला। यदि मुसलमान पिछड़े रह गये तो इसके लिए हिन्दू बहुमतके मत्थे दोष किस तरह मढ़ा जा सकता है? केन्द्रमें शासन करनेका उन्हें कभी अवसर नहीं मिला और हिन्दू बहुमत प्रान्तोंमें शासन करनेका अल्पकालिक अवसर ही उन्हें मिला। प्रश्न यह उठता है कि प्रगतिशील मुसलमानोंके मार्गकी बाधाएँ दूर करनेके लिए उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रोंके मुसलमान मन्त्रियोंने क्या किया है? यदि इसके उत्तरमें यह कहा जाय कि हिन्दू अल्पमत-

वालोंके विरोधके कारण वे कुछ नहीं कर सके—जो किसी भी प्रमाणद्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता—तब क्या यह पूछना उपयुक्त नहीं होगा कि भारतके विभाजनमें भी इस अवस्थामें किस तरह सुधार किया जायगा यदि आजकलकी तरह अल्पमत समुदाय उस समय भी कायम रहेंगे। यदि यह स्थिर कर लिया गया हो कि उनके सारे राजनीतिक अधिकार छीन लिये जायँगे अथवा उन्हें इस तरह दबा दिया जायगा कि वे बहुमतका मुकाबला या विरोध वैधानिक रीतिसे भी नहीं कर सकें तब तो बातें ही दूसरी हैं। यदि उत्तर-पश्चिमी तथा पूर्वी स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंसे—खासकर पञ्जाब और बङ्गालसे—अल्पमत समुदायके लोग किसी भी उपायसे गायब कर दिये जाँय तब भी बात दूसरी है। लेकिन इस तरहका कोई भी सुझाव नहीं पेश किया गया बल्कि मुस्लिम लीगके प्रस्तावमें जो कुछ कहा गया है यदि उसे सही मान लिया जाय तब तो उसके अनुसार,—"अल्पमत समुदाय कायम रहेंगे और उनकी धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों तथा स्वार्थोंकी रक्षाके लिए शासन-विधानमें गैर-मुस्लिम राजोंके आधारपर उनकी सहमतिसे पर्याप्त, प्रभावपूर्ण तथा अनिवार्य संरक्षणकी व्यवस्था की जायगी।" जैसा हमलोगोंने ऊपर देखा है पञ्जाबमें भी अल्पमत समुदाय नगण्य नहीं होंगे जहाँ मुसलमानोंकी आबादी ७५ फी सदीसे अधिक नहीं होगी। उसी तरह उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें यदि समूचा बङ्गाल और आसाम प्रान्त उसमें मिला दिया गया तो मुसलमानोंकी आबादी ५१ या ५२ फी सदीके बीचमें होगी और यदि गैर-मुसलमान-प्रधान जिले उससे निकाल भी दिये जायँ तो भी मुसलमानोंकी आबादी ६९ फी सदीसे ज्यादा किसी भी हालतमें कम नहीं होगी। यह बात समझमें नहीं आती कि इन क्षेत्रोंको मुस्लिम-राज किस तरह कहा जायगा, क्योंकि मुस्लिम राजका तो यही अर्थ होगा कि उस राजमें मुसलमानोंका अत्यधिक बहुमत है। इससे मुसलमानोंको केवल इस बातका सन्तोष हो सकता है कि एक बृहत् राजमें अल्पमत बनकर रहनेकी अपेक्षा वे दो छोटे छोटे राजोंमें बहुमत बने रहेंगे। इस तरहके अभिमानको जागृत करना तथा उसे सन्तुष्ट करनेके लिए जितने बड़े त्यागकी आवश्यकता है उसपर मुसलमानोंको गौरसे विचार करनेकी आवश्यकता है।

रही विश्वके अन्य राष्ट्रोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी बात। वह भी बहुत कुछ मुस्लिम राज होनेपर ही निर्भर करता है। संसारमें आज एक भी ऐसा देश नहीं है जिसपर मुसलमानोंका शासन हो और जिसमें इतना जबर्दस्त गैर-मुस्लिम अल्पमत हो जैसा कि उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें होगा। लेकिन अन्य देशोंके मुसलमानोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेमें भारतके मुसलमानोंको बाधा कब पड़ी? जहाँतक हिन्दुओंका प्रश्न है वे कभी भी मुसलमानोंके रास्तेमें बाधक नहीं बने, यद्यपि इन्हें इस बातकी स्वभावत: आशा रही है कि आवश्यकता पड़नेपर और भारतपर विपत्ति आनेपर मुसलमान अपनी सारी शक्तिका उपयोग इसकी रक्षामें करेंगे। बहुत दिनकी बात नहीं है जब खिलाफत आन्दोलनके समय दुनियाके दूसरे भागके मुसलमानोंके स्वत्वोंकी रक्षाके लिए भारतमें गैर-मुसलमान बिना किसी भेद-भावके एक साथ खड़े हो गये और मुसलमानोंके खलीफाके अधिकारोंकी रक्षाके लिए उतना ही त्याग किया और यातनाएँ सहीं जितना पंजाबके हिन्दू, मुसलमान तथा सिक्खोंके ऊपर किये गये अत्याचारोंके निवारणके लिए। किसी भी मुसलमानी राजके खिलाफ हिन्दुओंने कभी कुछ नहीं किया है और कोई कारण नहीं है कि पारस्परिक लाभके लिए मध्यपूर्वके मुसलमानी राष्ट्रोंके साथ भारत मैत्री सम्बन्ध स्थापित न करे और इस तरहकी किसी सन्धिपर हस्ताक्षर न करे। सबकुछ कहने और करनेके बाद भी यह मुसलमानोंपर ही निर्भर करता है कि वे क्या चाहते हैं। भारतके साथ अपने दीर्घ-कालीन सम्बन्धको कायम रखकर उसे अक्षुण्ण और बलशाली बने रहने देना और उसकी बरकतोंका उपभोग करते रहना अथवा अपने अभिमानकी तुष्टिके लिए छोटे स्वतन्त्र राजके रूपमें परिवर्तित होना जो संयुक्त भारतसे निश्चय ही कमजोर होगा और जो समस्त भारतको कमजोर बना देगा। जिस बातका उनके जीवनपर ऐसा व्यापक प्रभाव पड़ेगा और जो विभाजन भारतवर्षके ८०० सालोंके इतिहासपर पानी फेर देगा उस सम्बन्धमें गैर-मुसलमानोंको अपना मत प्रकट करनेसे वञ्चित नहीं किया जा सकता।

जिन क्षेत्रोंमें स्वतन्त्र मुस्लिम राजकी स्थापनाकी चर्चा हो रही है, वहाँके तथा समस्त भारतके गैर-मुस्लिम—विभाजनका उनपर जो प्रभाव पड़ेगा तथा विभाजनके समर्थक मुसलमानोंने समय समयपर विभाजनका जो अन्तिम ध्येय बतलाया है, उसे दृष्टि-पथपर रखते हुए—यदि इसे सन्देहकी दृष्टिसे देखें तो उसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। यह तो किसी भी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि संयुक्त भारतकी अपेक्षा विभाजित भारत कमजोर रहेगा और अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घोंमें उसकी उसी तरह सुनवायी नहीं हो सकती जैसी संयुक्त भारतकी हो सकती है।

अपने औद्योगिक विकास तथा सैकड़ों अन्य कामोंके लिए और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायके लिए दूसरे देशोंसे वह सुविधाएँ उसे नहीं प्राप्त हो सकतीं। मुस्लिम क्षेत्रकी हालत और भी असुविधा-जनक होगी क्योंकि वह बाकी भारतसे कहीं ज्यादा छोटा होगा। लेकिन विभाजनका बुरा प्रभाव गैर-मुस्लिम भारतपर भी काफी पड़ेगा।

विभाजनके समर्थकोंने जो घोषणाएँ की हैं उन्हें दृष्टिमें रखते हुए भयकी आशङ्का और भी दृढ़ हो जाती है। यहाँ मैं कुछ अवतरण दे देना चाहता हूँ जिससे प्रकट होगा कि यह शङ्का निर्मूल नहीं है कि विभाजनकी आड़में भारतमें मुसलमान राजको पुनः स्थापित करनेकी चेष्टा की जा रही है। श्री. एफ. के.-खाँ दुर्रानीने अपनी पुस्तक 'दि मीनिङ्ग ऑव पाकिस्तान'की भूमिकामें जो—१२ नवम्बर १९४३ को लिखी है—लिखा है :—"भारतकी एक इञ्च भी भूमि ऐसी नहीं है जिसे हमारे पूर्वजोंने अपना रक्तदान कर नहीं प्राप्त किया हो। हमलोग उनके उस रक्तके प्रति विश्वासघात नहीं कर सकते। भारत—समस्त भारत—हमलोगोंकी विरासत है और इस्लामके लिए उसे पुनः जीतना होगा। धार्मिक दृष्टिसे इस्लामका प्रचार अनिवार्य आवश्यक है और इसका मतलब हिन्दुओंके प्रति द्वेष और घृणा नहीं है बल्कि उसके एकदम विपरीत है। हमलोगोंका अन्तिम ध्येय इस्लामके झण्डेके नीचे धार्मिक तथा राजनीतिक दृष्टिसे

भारतका एकीकरण होना चाहिए। क्योंकि भारतका राजनीतिक उद्धार किसी दूसरी तरह सम्भव नहीं है।"*

पञ्जाबीने लिखा है :—"यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दू भारतसे मुस्लिम प्रदेशको अलग कर देना ही अन्तिम ध्येय नहीं है, बल्कि एक आदर्श इस्लामी राज स्थापित करनेके लिए यह साधनमात्र है। प्रस्तावित विभाजनसे हम हिन्दुओंकी आर्थिक दासतासे मुक्त हो जायँगे। चूँकि हमलोगोंका उद्देश्य आदर्श इस्लामी राजकी स्थापना है, इसलिए यह पूर्ण स्वाधीन राष्ट्रका भी द्योतक है। स्वाधीनता प्राप्त करनेके बाद, अपने इस्लामी राजके आदर्शको गैर-इस्लामी संसारमें बहुत दिनोंतक कायम रहने देना असम्भव होगा। ऐसी अवस्थामें हमलोगोंको इस्लामी आदर्शपर विश्व-क्रान्तिके लिए यत्न करना होगा। इस तरह यह स्पष्ट है कि हमलोगोंका अन्तिम ध्येय इस्लामी आदर्शके आधारपर विश्व-क्रान्ति है। विभाजन हिन्दुओंकी आर्थिक दासतासे मुक्ति तथा ब्रिटेनकी राजनीतिक गुलामीसे छुटकारा तो उस अन्तिम ध्येयकी प्राप्तिके लिए कतिपय साधनमात्र है।"†

"अल्पसंख्यक मुस्लिम सम्प्रदाय अतीतमें अनेक राज्योंमें अन्य धर्माव-लम्बियोंके साथ पूर्ण सद्भावनाके साथ रहे हैं, लेकिन जब कभी उन्होंने स्वतन्त्र मुस्लिम राज स्थापित करनेकी क्षमता अपनेमें, अपनी संख्या या शक्तिके अनुसार महसूस की, उन्होंने अल्पसंख्यक बने रहना कबूल नहीं किया।......स्वतन्त्र मुस्लिम राज कायम करनेका भारतमें यह आन्दोलन चीन तथा रूस आदिके अल्पसंख्यक मुसलमानोंको इसी तरहका आन्दोलन जारी करनेके लिए बहुत अधिक प्रोत्साहन देगा।"

"मध्य एशियामें २ करोड़की आबादीमें मुसलमानोंकी संख्या ९५ फीसदी है। इतना बहुमत होते हुए भी वे रूस तथा चीनकी अधीनतामें पड़े हुए हैं।"

---

* एफ०के० खाँ दुर्रानी—मीनिङ्ग ऑव पाकिस्तान, १०

† कान्फेडरेसी इन इण्डिया पञ्जाबी पृ० २६९–७०

"प्रत्येक देशमें इस्लाम सम्बन्धी राजनीतिक समस्या समान है। इसलिए एक मुसलमानी देशके उद्धारका प्रभाव दूसरेपर निश्चित रूपसे पड़ेगा। भारतके मुसलमानोंके स्वभाग्य-निर्णयका प्रभाव संसारके अन्य देशोंके मुसलमानोंपर निश्चित रूपसे पड़ेगा—खासकर चीनके पश्चिमी तथा रूसके पूर्वी प्रदेशके मुसलमानोंपर जहाँ वे बहुसंख्यक हैं। भारत उपद्वीपमे यदि मुसलमान अल्प-संख्यक समुदायकी स्थिति स्वीकार कर लेगे तो उसका फल यह होगा कि भारतके ९ करोड़ मुसलमानोंके भाग्यका सदाके लिए निपटारा तो हो ही जायगा इसके साथ ही सोवियत रूसके ३ करोड़ तथा पश्चिमी चीनके ५ करोड़ मुसल-मानोंको सदाके लिए दासताके गर्तमें ढकेल देना होगा।

"यह तो स्वाभाविक और निश्चित है कि यदि कांग्रेसके प्रयाससे भारत स्वाधीन हो गया तब भविष्यमें चीन और रूसके साथ मैत्री स्थापित कर तीनों देशोंके मुसलमानोंको अधीनतामें रखनेका प्रयत्न किया जायगा। भारतकी भावी कांग्रेस सरकार मध्यएशियामें किसी भी स्वतन्त्र मुस्लिम राजकी स्थापनाके प्रयासको सन्देहकी दृष्टिसे देखेगी क्योंकि उसका असर यह होगा कि भारतके मुसलमान भी अपना अलग स्वतन्त्र राज स्थापित करनेके लिए आन्दोलन खड़ा करेंगे।"*

अपना स्वतन्त्र राज कायम करनेकी मुसलमानोंकी आकांक्षा संसारभरके मुसलमानोंको एक सूत्रमें बाँधनेके प्रयासका एक अङ्ग है (सिलसिला-ए-जामिया-वहादत उमाम-इस्लाम) जिसे तुर्कीमें स्वर्गीय अतातुर्ककी प्रेरणासे स्वर्गीय सैयद जलील अहमद सिनयूसीकी संरक्षतामें जारी किया गया था। उसके उद्देश्योंमें एक उद्देश्य वर्तमान स्वतन्त्र मुस्लिम राजोंके अतिरिक्त संसारके उन देशोंमें जहाँ मुसलमानोंका बहुमत हो—अधिकाधिक स्वतन्त्र मुस्लिम प्रजातन्त्र राज कायम करना था। जिन दस मुस्लिम प्रजातन्त्रकी स्थापनाका प्रयास था उनमें एक बङ्गालमें, दूसरा उत्तर-पश्चिममें तथा तीसरा हैदराबाद रियासतमें था।"†

---

* एम० आर० टी० : इन इण्डियाज प्राब्लम ऑव हर फ्यूचर कांस्टिट्यू-शन पृ० ६०-६७।

† अन्सारी—पाकिस्तान—दि प्राब्लम ऑव इण्डिया पृ० ४७

इन घोषणाओंको पढ़कर यदि गैर-मुसलमानोंके हृदयमें यह आशङ्का उठे कि विभाजनकी आड़में मुसलमानोंका इरादा भारतपर पुनः विजय प्राप्त करना, तथा मध्यएशियावर्ती मुसलमानोंको चीन तथा रूसकी अधीनतामे छुटकारा दिलाकर विश्वव्यापी इस्लामी-क्रान्ति करनेका है, तो इसके लिए उन्हें कोई दोषी नहीं ठहरा सकता। जिन लोगोंने यह स्वप्न देखा है उनकी आकांक्षाएँ प्रशंसनीय हैं, यद्यपि इनका आधार हिन्दुओं, चीनियों तथा रूसियोंके प्रति अविश्वास है। उनके बारेमें यह मान लिया गया है कि मुसलमानोंको सतानेके अतिरिक्त उनके लिए और कोई काम नहीं है जो पूर्णतया निराधार है।

यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि जिस जातिका ध्येय इस्लामके लिए भारत तथा विश्वपर विजय प्राप्त करना है उस जातिके दिलमें यदि इस बातकी आशङ्का हो कि हिन्दू-बहुमत शक्तिशाली मुस्लिम-अल्पमतको सताएगा, तो इसकी निस्सारता तो केवल विश्वविजयके उद्देश्यसे ही साबित हो जाती है।

(२) यह समझ सकना कठिन है कि सम्पूर्ण भारतमेंसे दो नये मुस्लिम राज कायम कर देनेसे भारत तथा उन नये राजोंसे अल्पमतकी समस्या कैसे हल हो जाती है। संसारमें ऐसा एक भी देश नहीं है जिसमें केवल एक ही जातिके लोग बसते हों। प्रत्येक देशमें अल्पमत समुदायका होना अनिवार्य है। इसमे न कभी विकल्प हुआ है और न भारतमे ही विभाजनके बाद ऐसा हो सकता है। विभाजनके बाद मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंके बीच आदान-प्रदानसे उस समस्याके हलको आर्थिक तथा मानवीय कारणोंसे भी अव्यावहारिक बतलाया गया है। मुस्लिम क्षेत्रमें अल्पसंख्यक समुदायकी संख्याका ऊपर दिग्दर्शन कराया गया है। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें गैर-मुस्लिम-प्रधान जिलोंको शामिल करने या न करनेके अनुसार गैर-मुस्लिम आबादी २५ से २८ फी सदी-तक होगी। इसी तरह पूर्वी क्षेत्रमें बङ्गाल या आसामको गैर-मुस्लिम प्रधान जिलोंमे शामिल रखने या न रखनेके अनुसार उस क्षेत्रके गैर-मुसलमानोंकी आबादी ३१ से ४८ फी सदीतक होगी। यदि हमलोग उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रोंको एक साथ लेकर विचार करें तो इन क्षेत्रोंके गैर-मुस्लिम

जिलोंको शामिल करने अथवा न करनेके अनुसार इसकी आबादी ७१'६६ अथवा ५५'२३ फी सदी होगी। यदि गैर-मुस्लिम क्षेत्रसे समस्त पञ्जाब, बङ्गाल और आसामको निकाल दिया जाय तब ब्रिटिश भारतके गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें मुसलमानोंकी आबादी १०'७४ फी सदी मात्र रह जाती है। और यदि गैर-मुस्लिम-प्रधान जिले मुस्लिम क्षेत्रसे हटाकर गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें मिला दिये जाते हैं तब १३'२२ फी सदी रहती है।

गैर-मुस्लिम प्रान्त :—

(क) यदि समस्त बङ्गाल, आसाम और पञ्जाब मुस्लिम क्षेत्रमें शामिल कर लिये जाते हैं—

प्रान्त	लाखमें जनसंख्या	मुसलमान	मुसलमानोंका औसत
मद्रास	४९३'४२	३८'९६	७'९०
बम्बई	२०८'५०	१९'२०	९'२१
संयुक्त प्रान्त	५५०'२१	८४.१६	१५'३०
बिहार	३६३.४०	४७'१६	१२'९८
मध्यप्रान्त बरार	१६८'१४	७'८४	४'६६
उड़ीसा	८७'२९	१'४६	१'६८
अजमेर मारवाड़	५'८४	०'९०	१५'४०
अण्डमन निकोबार	०'३४	०'०८	२३'७०
कुर्ग	१'६९	०'१४	८'७८
दिल्ली	९'१८	३'०५	३३'२२
जोड़	१८८८'०१	२०२'९५	१०'७५

मुस्लिम प्रान्त—

(क) गैर-मुस्लिम जिलोंको निकाल देनेपर—

प्रान्त	कुल आबादी	मुसलमान	औसत
बङ्गाल	४०९·६५	२८७·१०	७०·०८
आसाम	३१·७६	१८·९२	६०·७१
पञ्जाब	१६८·७०	१२३·६३	७३·२५
सीमाप्रान्त	३०·३८	२७·८९	९१·७९
सिन्ध	४५·३५	३२·०८	७०·७५
बलूचिस्तान	५·०२	४·३९	८७·५०
जोड़	६९०·८६	४९४·०१	७१·५६

(ख) गैर-मुस्लिम जिलोंको शामिल रखनेपरः—

प्रान्त	कुल जनसंख्या	मुसलमान	औसत
बङ्गाल	६०३·०६	३३०·०५	५४·७३
आसाम	१०२·०५	३४·४२	३३·७३
पञ्जाब	२८४·१९	१६२·१७	५७·०७
सीमाप्रान्त	३०·३८	२७·८९	९१·७९
सिन्ध	४५·३५	३२·०८	७०·७५
बलूचिस्तान	५·०२	४·३९	८७·५०
जोड़	१०७०·०५	५९१·००	५५·२३

(ग) यदि पञ्जाब बङ्गाल तथा आसामके गैर-मुस्लिम जिले मुस्लिम क्षेत्रसे अलग कर दिये जाते हैं तब :—

प्रान्त	कुल जनसंख्या	मुसलमान	औसत
बङ्गाल	१९३·४२	४२·९५	२२·२१
असाम	७०·८९	१५·५०	२१·८९
पञ्जाब	११५·४९	३८·५४	३३·३७
टोटल	३७९·८०	९६·९९	२५·२७
अन्य गैर-मुस्लिम	१८८८·०१	२०२·९५	१०·७५
प्रान्त	२२६७·८१	२९९·९४	१३·२२

ब्रिटिश भारतमें मुसलमानोंकी कुल जनसंख्या ७९३-९५ लाख है। इसमेंसे यदि आसाम, बङ्गाल तथा पञ्जाबके गैर-मुस्लिम जिले मुस्लिम क्षेत्रसे अलग कर दिये गये तब २९९-९४ लाख (३७·७७) फीसदी और यदि अलग नहीं रखे गये तब २०२-९५ लाख या (२५·५६) फीसदी मुसलमानों-की आबादी गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें रह जायगी। प्रत्येक प्रान्तमें उनका औसत भिन्न भिन्न होगा, जैसे उड़ीसामें १·६८ फीसदी संयुक्तप्रान्तमें १५·३० फी सैकड़े तथा दिल्ली प्रान्तमें ३३·२२ फी सैकड़े।

दूसरी ओर गैर-मुस्लिम जिलोंको शामिल रखने या न रखनेके अनुसार उत्तर पश्चिमी क्षेत्रमें गैर-मुसलमानोंकी आबादी क्रमशः १३८·४० तथा ६१·४६ लाख तथा उसी तरह उत्तर पूर्वी मुस्लिम क्षेत्रमें ३४०·६४ तथा १३४·७६ लाख होगी। दूसरे शब्दोंमें गैर-मुस्लिम जिलोंको शामिल रखने या न रखनेके अनुसार दोनों मुस्लिम क्षेत्रोंको मिलाकर गैर-मुसलमानोंकी आबादी क्रमशः ४७९·०४ अथवा १९६·२५ लाखसे कम नहीं होगी। इस तरह गैर-मुस्लिम या मुस्लिम क्षेत्रोंमें गैर-मुस्लिम-प्रधान जिलोंको शामिल

रखने या न रखनेके अनुसार अल्पसंख्यक मुसलमानों तथा अल्पसंख्यक गैर-मुसलमानोंकी कुल आबादी क्रमशः ६८१.९९ लाख अथवा ४९६.१५ लाख होगी।

इस तरह हिन्दू और मुस्लिम क्षेत्रोंकी संख्याके अनुसार अल्पसंख्यकोंकी तादाद पर्याप्त होगी। मुस्लिम क्षेत्रोंसे गैर-मुस्लिम जिलोंके अलग करने या न करनेके अनुसार गैर-मुसलमानोंकी आबादी उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रमें २५ से ३५ फीसदी तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रमें ३१ से ४८ फीसदी तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंमें मुसलमानोंकी आबादी १०·७४ से १३·२२ फीसदीतक होनेके कारण गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकोंकी तादाद मुस्लिम अल्पसंख्यकोंसे कहीं ज्यादा होगी।

इसके साथ ही मुसलमान अल्पसंख्यक कन्याकुमारी अन्तरीपसे हिमालयकी तराईतकके विस्तृत क्षेत्रमें बिखरे रहनेके कारण प्रभावशाली नहीं हो सकेंगे, लेकिन गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक दोनों संकीर्ण क्षेत्रोंके भीतर ही रहनेके कारण केन्द्रित रहेंगे और अपने स्वार्थों तथा विशेषाधिकारोंकी माँगोंपर जोर डालनेके लिए बलशाली अल्पसंख्यक समुदाय होंगे।

अगर मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंके बीच विस्तृत पैमानेपर आबादीका आदान-प्रदान हो तो अल्पसंख्यक समुदायोंका अन्त हो सकता है। आबादीका आदान-प्रदान ऐच्छिक अथवा अनिवार्य हो सकता है। लाखों करोड़ों मुसलमानोंको गैर-मुस्लिम क्षेत्रसे मुस्लिम क्षेत्रमें तथा गैर-मुसलमानोंको मुस्लिम क्षेत्रोंसे गैर-मुस्लिम क्षेत्रमें अपनी इच्छासे चले जानेकी कल्पना नहीं की जा सकती। आबादीके आदान-प्रदानके लिए अपनी इच्छासे स्थानान्तरित होनेका बहुत असन्तोष-जनक परिणाम बाल्कन इलाकेका उदाहरण स्वरूप है। कारण सहज है। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छासे अपनी मातृभूमि छोड़कर छापा मारना नहीं चाहता था। भारतीयोंके सम्बन्धमें यह और भी निश्चित है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंका गृह-प्रेम इतना उत्कट होता है कि एक दूसरे राष्ट्रके सदस्य या नागरिक बननेके लिए वे उस स्थानको छोड़कर—जहाँ वे अनेक पुश्तोंसे बसे हुए हैं—कहीं अन्यत्र जाना कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। खिलाफत

आन्दोलनके समय हिज्रतका जो अनुभव मुसलमानोंको हुआ था उसके आधार-पर भी यही कहा जा सकता है कि इसके लिए लोगोंमें ज्यादा उत्साह नहीं होगा। दूरीके अलावा वातावरण, भाषा, जलवायु, स्थानीय अवस्था, रहन-सहनमें इतना ज्यादा भेदभाव होगा कि उससे अनुत्साह ही नहीं मिलेगा बल्कि लोग इस प्रश्नपर विचारतक नहीं करेंगे। इसके साथ ही इतनी बड़ी आबादीके स्थानान्तरित करनेके व्ययका भी प्रश्न है। जहाँ वे सदियोंसे बसे हैं, वहाँसे उन्हें उखाड़कर एकदम नयी जगह बसानेकी क्रियामें सम्पत्तिकी हानि—यद्यपि मावज़ा दिया जायगा—आदिका इतना बड़ा बोझ होगा जिसे न तो मुस्लिम और न गैर-मुस्लिम राष्ट्र ही बर्दाश्त कर सकेंगे। लोगोंको असीम कष्टका सामना करना पड़ेगा और आर्थिक तथा शासन दोनों दृष्टियोंसे इस योजनाको पूरा करना असम्भव होगा। अनिवार्य आदान-प्रदानमें ये कठिनाइयाँ सौगुनी बढ़ जायँगी। अन्य मुसीबतोंके साथ एक यह भी मुसीबत आ खड़ी होगी कि पुलिस और सेनाकी देखरेखमें आबादीको स्थानान्तरित करना पड़ेगा जो विचारसे बाहरकी बात है। यूनान तथा तुर्कीकी चन्द लाख आबादीके आदान-प्रदानके आधारपर जो लोग मंसूबा बाँधते हैं वे लोग यह भूल जाते हैं कि भारतमें कमसे कम ५से ७ करोड़ जनसंख्याको इधर उधर दूर-दूरतक ले जाना पड़ेगा और इस काममें इतना ज्यादा खर्च पड़ेगा कि दोनों राष्ट्र यदि उसके बोझको सँभाल भी सकेंगे तो भी इस व्ययके भारसे उनकी रीढ़ टूट जायगी और बहुत समय-तकके लिए वे बेकार हो जायँगे।

लीगके प्रस्तावमें कहा गया है कि मुस्लिम राष्ट्र गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंके अल्प-संख्यकोंकी सहमतिसे उनकी धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शासन-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारोंकी रक्षाके लिए उपयुक्त तथा अनिवार्य संरक्षणकी व्यवस्था करेगा।

प्रश्न यह उठता है कि यदि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम राष्ट्र स्वतन्त्र राष्ट्र कायम किये जायँगे और दोनों राष्ट्रोंको अपना शासन-विधान तैयार करनेकी स्वतन्त्रता होगी तो ये स्वतन्त्र राष्ट्र संरक्षण प्रदान करनेके लिए बाध्य किस तरहसे

किये जायँगे। मान लीजिये कि स्वतन्त्र अस्तित्व कायम हो जानेके बाद ये राष्ट्र संरक्षण प्रदान करनेसे साफ इनकार कर दें तब उन्हें बाध्य किस प्रकार किया जा सकेगा। यह भी मान लिया जाय कि आरम्भमें इस तरहके संरक्षण प्रदान किये जाते हैं लेकिन आगे चलकर उनमें इस तरहके परिवर्तन कर दिये जाते हैं जो अल्पसंख्यकोंके लिए अहितकर हों अथवा वे संरक्षण एकदम हटा दिये जाते हैं, तब उन्हें प्रयोगमें लानेके लिए किस तरह बाध्य किया जा सकता है ? मान लीजिये कि शासन-विधानमें संरक्षणोंका उल्लेख तो कर दिया गया लेकिन उन-पर अमल नहीं किया जाता है अथवा उनका समग्र प्रयोग नहीं होता है ऐसी हालतमें एक स्वतन्त्र राष्ट्र दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्रको उसपर अमल करनेके लिए किस तरह बाध्य करेगा ? यह मान लिया गया है कि राष्ट्र स्वतन्त्र होंगे, एकका दूसरेपर कोई अधिकार नहीं होगा, और दोनोंके ऊपर न तो कोई केन्द्रीय सर-कार होगी जिसके हाथमें विधानोंके नियमोंपर अमल करानेका कर्तव्य हो। जब राष्ट्र स्वतन्त्र होंगे, अपने विधानमें परिवर्तन करनेके लिए पूर्ण स्वतन्त्र होंगे और शर्तोंका पालन करानेके लिए कोई केन्द्रीय सरकार न होगी तब केवल विधान और अनिवार्य शब्दोंके प्रयोगसे ही काम नहीं चल सकता।

राष्ट्रसंघका अनुभव भी यही बतलाता है। राष्ट्रसंघने इस बातका जिम्मा लिया कि सन्धिकी शर्तोंमें अल्प संख्याओंके लिए जो धाराएँ दी गयी थीं उनका वह पालन करावेगा। लेकिन यह नहीं हो सका। इससे स्पष्ट है कि इस तरहके आश्वासनके होते हुए भी कोई बाहरी शक्ति इस तरहकी शर्तोंका पालन करानेमें समर्थ नहीं हो सकती। अमानतके सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं हैं। अत्याचारका उत्तर अत्याचारसे देना जायज नहीं माना जाता। आँखके बदले आँख और दाँतके बदले दाँतके प्राचीन कानूनमें भी यह व्यवस्था नहीं थी कि एकके अपराधके बदले दूसरेकी आँख या दाँतको क्षति पहुँचायी जाय और न उसमें यही व्यवस्था है कि एक अपराध करे और दूसरा दण्डका भागी बने। तब भला किस आधारपर एक समुदायके अपराधके लिए दूसरे समुदायको केवल इसलिए दण्ड दिया जा सकता है कि दोनों एक ही धार्मिक विश्वासके हैं और

एक ही देवताकी पूजा करते हैं यद्यपि एक न तो दूसरेको जानता ही है और न उनके कारनामोंमें उसका किसी तरहका हाथ ही है। एक प्रमुख मुसलमानके शब्दोंमें "अमानतका सिद्धान्त कारगर नहीं हो सकता, यदि उसपर अमल किया भी जाय तो वह सभ्य मनुष्योंको जङ्गली बना देगा या दूसरे शब्दोंमें इन्सानको हैवान बना देगा।"* पाकिस्तानके प्रचारक चाहे जो भी कहें लेकिन इस बातपर कयास नहीं किया जा सकता कि अच्छे विचारके मुसलमान या गैर-मुसलमान इस जङ्गली उपायसे काम लेना चाहेंगे।

अलग और स्वतन्त्र राष्ट्रोंका अस्तित्व ही इस बातको अत्यन्त कठिन बना देता है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर इसके लिए दबाव डाल सके कि वह अपने अधीनस्थ नागरिकोंके साथ उचित व्यवहार करे यदि वे दोनों एक संघराष्ट्रके सदस्य नहीं हैं। ऐसी हालतमें प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रके लिए एक ही शान्तिमय उपाय है अर्थात् दोनों राष्ट्रोंमें एक दूसरेके प्रतिनिधि रहें। इसके अतिरिक्त तो युद्ध ही एकमात्र रास्ता है चाहे वह आर्थिक युद्ध हो या सशस्त्र युद्धका मार्ग ग्रहण किया जाय। लेकिन सङ्गीन शिकायतोंके लिए भी तबतक युद्ध सम्भव नहीं है जबतक दोनों राष्ट्रोंके निवासी इस स्थितिपर न पहुँच जायँ कि युद्धके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय समझौतेका न दिखाई पड़े। केवल शिकायतोंपर युद्ध सम्भव नहीं है। जबतक कि किसी राष्ट्रको गहरा घाव न लगेगा और जबतक वह अपनी शक्तिको भलीभाँति आजमा नहीं लेगा, तबतक वह युद्धके खतरेमें कभी भी जाना नहीं चाहेगा। दूसरे राष्ट्रके किसी सुदूर कोनेमें बसे हुए अपने सहधर्मियोंके स्वार्थ और हितकी अपेक्षा वह अपने नागरिकोंके स्वार्थ और हितपर सबसे पहले ध्यान देगा।

यह प्रश्न केवल सैद्धान्तिक विवेचनका भी नहीं है। भारतके पड़ोसमें ही अनेक स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र हैं। आजतकका एक भी उदाहरण ऐसा

---

* ट्रीटी बिट्वीन इण्डिया ऐण्ड यूनाइटेड किंगडम बाई सर सुलतान अहमद, पृष्ठ ८४।

नहीं मिला कि भारतके मुसलमानोंपर दिये गये अत्याचारोंसे उत्तेजित होकर उन्होंने युद्धका ऐलान किया हो। अपने इस लम्बे शासनकालमें ब्रिटिश सरकारने तथा लीगके कथनानुसार अपने २७ मासके अल्पकालके जीवनमें कांग्रेस मंत्रिमण्डलने भारतके मुसलमानोंपर जो जुल्म और अत्याचार किये उन्हें देखकर किसी पड़ोसी मुस्लिम राष्ट्रके ललाटपर शिकन आते नहीं देखा गया। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलको उस तरह मुसलमानोंपर तथाकथित जुल्म करते देखकर पंजाब, बंगाल तथा सिन्धके मुस्लिम मंत्रिमण्डलने भी तो अँगुली नहीं उठायी! यह तो कपोलकल्पना मात्र है कि दो नये मुस्लिम राष्ट्रके निर्माणसे ही स्थिति इस तरह बदल जायगी कि गैर-मुस्लिम क्षेत्रके मुसलमानों तथा मुस्लिम क्षेत्रके गैर-मुसलमानोंके साथ उचित और न्यायपूर्ण व्यवहार होने लगा। अल्पसंख्यकोंको हर हालतमें मानवताके नैसर्गिक सिद्धांतोंपर तथा उन व्यापक सदाचारों तथा माननीय नियमोंपर निर्भर करना पड़ेगा जो सभी सभ्य समाजको संचालित करते है चाहे उनके जो भी धार्मिक विश्वास हों। इस बातपर जोर देना सरासर भूल है कि मुसलमानोंके सतानेके अतिरिक्त गैर-मुसलमानोंको दूसरा कोई काम नहीं करना होगा और साथ ही गैर-मुसलमान यह मान लें कि मुसलमान इतने निरीह हैं कि वे गैर-मुसलमानोंपर किसी तरहका अत्याचार या जुल्म कर ही नहीं सकते। इस तरहकी धारणा या घोषणा कि मुसलमानोंका गैर-मुसलमानोंपर विश्वास नहीं है, इसलिए किसी भी रूपमें वे केन्द्रीय सरकार स्वीकार नहीं कर सकते, धूर्ततासे खाली नहीं है। चाहे उस केन्द्रीय सरकारके अधिकार कितने ही सीमित क्यों न हों और उसके कर्तव्यक्षेत्र दायरेके भीतर क्यों न हों और साथ ही गैर-मुसलमानोंके इस अश्वासनपर विश्वास करें कि उनके साथ न्यायके साथ व्यवहार किया जायगा। यदि विश्वाससे विश्वासका उदय होता है तो अविश्वाससे अविश्वासका भी उदय होता है और यदि आप गैर-मुसलमानोंका अविश्वास करते हैं और हर कदमपर उनकी ईमानदारीपर सन्देह प्रकट करते हैं तब आपको यह आशा करनेका कोई अधिकार नहीं है कि उनकी भी आपके प्रति वही धारणा नहीं होगी। स्वतन्त्र

राष्ट्रोंके निर्माणसे ही अल्पसंख्यकोंकी समस्या हल नहीं हो जाती बल्कि उसका हाल और भी जटिल हो जाता है। मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम दोनों राष्ट्रोंके अल्पसंख्यकोंकी दशा और भी दयनीय हो जाती है। वे न तो स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं और न अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए दूसरोंको सहायता ही प्राप्त कर सकते हैं।

(३) तथा (४) भारतके उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी सीमाकी रक्षाकी समस्या भी पाकिस्तानसे हल नहीं होती। कहा जाता है कि उत्तर-पश्चिम सीमाके उस पार बसनेवाली जातियाँ मुसलमान हैं इसलिए सीमापर मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापनाके बाद गैर-मुसलमानोंके खिलाफ जेहादका उनका सारा धार्मिक, राजनीतिक जोश जाता रहेगा। ऐसी आशाका न तो कोई वास्तविक आधार है और न इतिहास ही इसकी पुष्टि करता है। भारतके इतिहासमें यह पहला अवसर नहीं होगा कि यहाँ स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र कायम होंगे। कुतुबुद्दीन ऐबकके समयसे लेकर उत्तर-पश्चिम भारतके एक कोनेमें स्वतन्त्र सिख राजकी स्थापनातक भारतमें स्वतन्त्र मुस्लिम राज थे। उस ६००सालकी लम्बी अवधिमें भारतपर जितने भी बाहरी मुसलमानोंके आक्रमण हुए हैं सभी मुसलमान राजोंपर थे क्योंकि उस समय भारतपर हिन्दुओंका शासन नहीं था। अलाउद्दीन खिलजीके शासनकालसे ही दिल्लीके मुसलमान सुलतानोंको उत्तर-पश्चिमके आक्रमणसे सदा उलझे रहना पड़ा है। अलाउद्दीनको तो अपनी सीमापर बहुत बड़ी सेनाका प्रबन्ध करना पड़ा था फिर भी आक्रमणकारियोंका दल बारबार आता ही रहा। मुसलमान शासकोंकी अन्ततक यही नीति बनी रही। तैमूर, बाबर, नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली सभी मुसलमान थे और भारतपर इनकी चढ़ाइयाँ मुसलमान शासकोंके विरुद्ध हुई थीं। ये उस समयकी बड़ी बड़ी चढ़ाइयाँ हैं जिनकी चर्चा यहाँ कर दी गयी है। इन उदाहरणोंके देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि सीमाप्रान्तपर स्वतन्त्र मुस्लिम राज कायम होनेके बाद उधरसे विदेशी आक्रमणका भय जाता रहेगा। वर्तमान युगमें चढाई करना आसान नहीं है इसलिए आक्रमण नहीं होंगे। लेकिन

इसका कारण सीमाप्रान्तमें स्वतन्त्र मुस्लिम राजका कायम हो जाना नहीं होगा, बल्कि कुछ दूसरे ही कारण होंगे।

केवल इतना ही नहीं है कि अन्य मुसलमान बादशाहोंने भारतके मुसलमानी राज्योंपर चढ़ाई की अथवा भारतके मुसलमान बादशाहोंने किसी बाहरी मुसलमान राज्यपर चढाई की बल्कि राज्य और सिंहासनके लिए मुसलमान आपसमें ही लड़े। इस्लाम धर्ममें इस बातकी शिक्षा आवश्यक है कि यह धर्म ग्रहण करनेके बाद देश और जातिका भेदभाव भूल जाना चाहिए लेकिन इस्लामकी यह शिक्षा मुसलमानोंके बीचके परस्पर युद्धको उसी तरह नहीं रोक सकी जिस तरह ईसाई धर्म ईसाइयोंके बीचके परस्पर युद्धको रोकनेमें असमर्थ रहा है। अतीत इतिहासमें बहुत दूर जानेकी जरूरत नहीं है। हमलोग जानते हैं कि प्रथम विश्व-युद्धमें तुर्कोंके खिलाफ युद्ध करनेमें अरब सैनिक एक बार भी नहीं हिचके। एक तरफ तो हिन्दुस्तानके मुसलमान तुर्कीके सुलतानकी हर तरहसे मदद करनेके यत्नमें थे कि उनकी शक्ति और प्रतिष्ठा कायम रहे उधर दूसरी ओर भारतके लोग उनके खिलाफ विद्रोह खड़ा कर रहे थे। आधुनिक फारसके वास्तविक निर्माता रजाशाह पहलवीको सिंहासनका परित्याग कर अपने जीवनके अन्तिम दिन निर्वासनमें इसलिए बिताने पड़े कि उनके देशके मुसलमानोंकी सहायतासे ही यूरोपीय शक्तियाँ उनके खिलाफ षड्यन्त्रमें सफल हो सकीं। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धके बीच अफगानिस्तानमें दो बार क्रान्ति हुई। अमानुल्लाखाँको बचासक्काने पदच्युत किया और बचासक्काको नादिरशाहने मार भगाया। ये तीनके तीनों निश्चयरूपसे मुसलमान ही थे। आज भी इस बातकी कोशिश जारी है कि तुर्कों, फारसों और अफगानोंको अकेला छोड़कर समग्र अरब राष्ट्रोंको एक सूत्रमें संगठित कर दिया जाय। इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न राष्ट्रीयता तथा जातीयताके मुसलमानोंको — एक देशमें ही बसनेवाले मुसलमानोंको — एक सूत्रमें सङ्गठित करनेमें सफलता नहीं मिल सकी, जब कि यह आशा की जाती है कि केवल मुसलमान ही नहीं बल्कि प्रत्येक राष्ट्रको यह सद्‌बुद्धि प्राप्त होगी कि वह शान्तिपूर्वक आपसमें मिलकर युद्ध और रक्तपातके

बिना रहना सीखेगा, लेकिन यह कहना निर्मूल है कि मुस्लिम राष्ट्र एक दूसरेके ऊपर चढ़ाई नहीं करेंगे।

यह तो उत्तर-पश्चिमी सीमाकी ओरसे आक्रमणकी बात हुई। अब जहाँतक उत्तर-पूर्वी सीमाकी बात है वहाँके लिए यह भी बताना नहीं है क्योंकि उत्तर-पश्चिमकी अपेक्षा इधरसे चढ़ाईका खतरा अब बहुत ज्यादा हो गया है। पूर्वमें स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापनाका एकमात्र फल यह होगा कि उत्तर-पश्चिमकी सीमाके बारेमें जो बातें कही जाती हैं उस तरहका कोई लाभ मुस्लिम राष्ट्रको तो प्राप्त नहीं होगा लेकिन भारतके गैरमुसलमानोंको जो प्राकृतिक रक्षाका साधन प्राप्त है उससे वे वंचित हो जायँगे।

स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रके पक्षमें जो तर्क उपस्थित किया गया है, वह केवल उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रमें लागू हो सकता है। यह तर्क रक्षाकी समस्याको आसान करनेके लिए पेश किया जाता है लेकिन वास्तवमें गैरमुस्लिम क्षेत्रोंकी रक्षाकी समस्या इससे और भी जटिल हो जाती है। अगर भारतके गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंके खिलाफ धार्मिक और राजनीतिक जेहादका जोश बढ़ा तब ऐसी हालतमें भारतकी सीमाके भीतर मुस्लिम राष्ट्रोंका अस्तित्व उसे और भी सङ्गीन बना देगा। भारतके उत्तर-पश्चिमी भागमें पर्वत-मालाओंकी प्राकृतिक रक्षाके साधनके त्याग देनेपर गैरमुसलमानोंको अपने देशकी रक्षाकी व्यवस्था उस प्राकृतिक साधनके बिना ही करनी पड़ेगी। यदि पाकिस्तानके पक्षके समर्थनके लिए इसमें कोई तथ्य है तब गैरमुसलमानोंका यह कहना सर्वथा उचित होगा कि प्राकृतिक रक्षाके साधनोंसे उन्हें वंचित करनेकी आड़में दूषित मनोवृत्ति काम कर रही है खासकर जब पाकिस्तानकी स्थापनाका अन्तिम ध्येय वैसा है जैसा पीछे कहा जा चुका है और ऐसी अवस्थामें भारतके गैर मुसलमान विभाजनके लिए किसी भी हालतमें तैयार नहीं होंगे।

डा० अम्बेडकरका कहना है कि "सुरक्षित सीमाकी अपेक्षा सुरक्षित सेना कहीं अच्छी होती है।* सम्भव है कि समर्थनमें बहुत कुछ कहनेके लिए हो।

---

*डा० अम्बेडकर : 'थाटस आन पाकिस्तान' पृष्ठ ९५।

रक्षाके प्रश्नपर नये दृष्टिकोणसे विचार करना होगा क्योंकि युद्धके नये नये साधनोंके निकल जानेसे युद्धकी प्रणालीमें घोर परिवर्तन हो गया है। युद्धकी पुरानी पद्धतिके अनुसार भी मुस्लिम राष्ट्रोंको उत्तर-पश्चिम तथा पूर्वी क्षेत्रोंमें शेष भारतके लिए जितने समुद्री किनारेकी रक्षाका भार रहेगा उसे छोड़कर भी व्यापक समुद्री किनारेकी रक्षाकी व्यवस्था करनी होगी। इससे यह प्रश्न सहज ही उठ जाता है कि मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंके पास इसके लिए क्या साधन हैं। उन्हें केवल बाहरी आक्रमणोंसे रक्षाकी व्यवस्था नहीं करनी होगी बल्कि भारतके भीतर ही एक दूसरेके आक्रमणसे रक्षाकी व्यवस्था करनी होगी। यह दिखलानेके लिए बहुत अधिक गणितकी जरूरत नहीं होगी कि विभाजनके बाद मुस्लिम तथा गैरमुस्लिम दोनों राष्ट्रोंकी आमदनीके साधनोंमें बहुत बड़ी कमी पड़ जायगी और रक्षाके साधनोंका व्यय बहुत अधिक बढ़ जायगा और दोनों अपनेको ऐसी लाचारीकी हालतमें पाएँगे कि अपने राष्ट्रमें बसनेवालोंके ऊपर करका बहुत अधिक बोझ लादे बिना रक्षाकी समुचित व्यवस्था नहीं कर सकेंगे। "आर्थिक तथा व्यावसायिक साधन" वाले अध्यायमें हमने दोनों-मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंकी आर्थिक स्थितिका दिग्दर्शन कराया है। विभाजनके बाद तंग हालत हो जानेपर भी मुस्लिम राष्ट्रोंकी अपेक्षा गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंकी आर्थिक दशा अच्छी ही रहेगी। अपनी रक्षाकी समुचित व्यवस्था करनेके लिए मुस्लिम राष्ट्रोंके पास न तो धन ही होगा और न सैनिक साधन ही। किसी भी हालतमें "भारतके प्रत्येक निवासीके लिए यह बहुत बड़े महत्वकी बात है कि उसकी रक्षाके साधन विघटित होकर बहुमुखी नहीं हो जाते, उनका विस्तार इतना नहीं बढ़ जाता कि वे प्रभावहीन हो जाते हैं, तथा वे इतने खर्चीले नहीं हो जाते कि उनकी उचित व्यवस्था ही नहीं हो सकती तथा अन्तर्राष्ट्रीय संसारमें उनकी स्थिति पूर्ण रूपसे सुरक्षित रहती है।*

डाक्टर अम्बेडकरकी पुस्तक (थाट्स आन पाकिस्तान पृ० ७०) की

*** सर सुलतान अहमद : 'ए ट्रीटी बिट्वीन इण्डिया ऐण्ड दि यूनाइटेड किंगडम' पृष्ठ ८७।**

इस तालिकासे प्रकट होता है कि भारतीय सेनाकी साम्प्रदायिक स्थितिमें किस तेजीके साथ परिवर्तन हुआ है :—

क्षेत्र और जाति	औसत १९१४	औसत १९१८	औसत १९१९	औसत १९३०
१—पञ्जाब सीमाप्रान्त तथा काश्मीर	४७	४६'५	४६	५८'५
१—सिख	१९'२	१७'४	१५'४	१३'५८
२—पञ्जाबी मुसलमान	११'१	११'३	१२'८	२२'६
३—पठान	६'२	५'४२	४'५८	६'३५
२—नैपाल, कमायूँ, गढ़वाल	१५	१६'६	१२'२	१६'४
१—गोरखा	१३.१	१६'६	१२'२	१६'४
३—उत्तर भारत	२२	२२'७	२५'५	११
१—सयुक्तप्रान्तके राजपूत	६'४	६'८	७'७	२'५५
२—हिन्दुस्तानी मुसलमान	४'१	३'४२	४'४५	०
३—ब्राह्मण	१'८	१'८६	२'५	०
४—दक्षिण भारत	१६	११'९	१२	५'५
१—मराठा	४'९	३'८५	३'७	५'३३
२—मद्रासी मुसलमान	३'५	२'७१	२'१३	०
३—तामिल	२'५	२	१'६७	०
५—बर्मी	०	नगण्य	१'७	३'०

"ऊपरकी तालिकासे स्पष्ट है कि पञ्जाबी मुसलमान तथा पठानोंकी संख्यामें अतिशय वृद्धि हुई है। साथ ही सिखोंका स्थान प्रथमसे घटकर तृतीय हो

गया है राजपूतोंका स्थान चतुर्थ तथा संयुक्तप्रान्तके ब्राह्मणों, मद्रासी मुसलानों एवं तामिलवालोंकी संख्या शून्य हो गयी है।''*

"१९३० में भारतीय सेनामें विभिन्न सम्प्रदायोंकी स्थितिकी आलोचना करते हुए डाक्टर अम्बेडकर इस परिणामपर पहुँचे हैं कि पैदल सेनामें गोरखों-को मिलाकर मुसलमानोंकी संख्या ३६ फीसदी,—यदि गोरखोंको निकाल दें तब ३० फीसदी तथा घुड़सवार सेनामें ३० फीसदी थी। दिल्लीके पड़ोसके १ फीसदी नगण्य संख्याको छोड़कर पैदल सेनाके सभी मुसलमान तथा समस्त घुसड़वार सेनाके प्रायः १९ फीसदी सैनिक पंजाब तथा सीमाप्रान्तके थे।'' इसके बादके आँकड़ोंको जाननेके लिए केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके सदस्योंने अनेक बार प्रश्न पूछे लेकिन भारत सरकारने उन्हें प्रकट करनेसे इनकार कर दिया। सर सिकन्दर हयात खाँ सरीखे पंजाबी मुसलमानके लिए यह उपयुक्त ही था कि भारतीय संघकी योजनाका मसविदा बनाते समय वे इस बातपर जोर दें कि भारतीय सेनाका जो सङ्गठन १९३७ की जनवरीमें था उसमें किसी तरहका परिवर्तन नहीं किया जायगा और यदि सेना घटायी जाय तो युद्धके अवसरोंको छोड़कर विभिन्न सम्प्रदायोंका वही अनुपात रहे जो जनवरी १९३७ में था। मुसलमानोंके अतिरिक्त १९३० में भारतीय सेनाके १३.५८ फीसदी सिख भी पंजाब प्रान्तके ही हैं। विभाजनका सबसे पहला परिणाम यह होगा कि भारतीय सेनाकी इस बड़ी तादादको गैरमुस्लिम क्षेत्रसे अलग कर दिया जायगा और यदि मुसलिम राष्ट्र समर्थ होंगे तो इन्हें अपनी सेनामें भर्ती करना होगा। यह बतलाया जा चुका है कि जातियोंमें लड़ाकू और गैर-लड़ाकूके भेदभावका न तो कोई वास्तविक कारण है और न इसका कोई ऐतिहासिक आधार। यह भेदभाव तो सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोहमें भाग लेनेके कारण संयुक्तप्रान्त तथा बिहार-वालोंको दण्ड देने तथा पञ्जाबियोंको पुरस्कार देनेके लिए किया गया था।

---

* डा० अम्बेडकर : 'थाट्स आन पाकिस्तान' पृ० ७५

† वही पृ० ७६

इस अप्राकृतिक भेदभावको मिटानेके लिए भारतके प्रत्येक प्रान्तसे लगातार माँग पेश की जा रही है। इसलिए ऊपर जो अनुपात दिखलाया गया है उसे कोई भी राष्ट्रीय सरकार कायम नहीं रख सकेगी और यदि भारतका विभाजन न भी हुआ तो प्रत्येक प्रान्तको सेनामें उचित हिस्सा देना पड़ेगा। तो भी विघटनका यह काम संयुक्त भारतमें इतने जल्द और तेजीसे नहीं होगा जितना कि भारतके विभाजन तथा स्वतन्त्र राष्ट्रोंकी स्थापनासे होगा। प्रोफेसर कूपलैंडने लिखा है कि भारतीय सेनामें १९३९ में मुसलमानोंकी संख्या एक तिहाई थी और इस समय भी ३०·८ फीसदी है। यदि इस अनुपातको घटाकर २५ फीसदी कर दिया जाय तो पञ्जाबके रहनेवालोंकी रहन-सहनपर इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा क्योंकि यहाँके अधिकांश लोग पञ्जाबी सेनाओंके वेतन और पेंशनपर निर्भर करते हैं।* विभाजनके कारण हिन्दुस्तानकी सेनामें नौकरी पानेका यह रास्ता बन्द हो जानेपर उनकी हालत और भी अधिक दयनीय हो जायगी।

यह कहा जा सकता है कि जो लोग आज भारतीय सेनामें नौकरी कर रहे हैं वे उस दिन मुस्लिम राष्ट्रीय सेनामें नौकरी करेंगे। शायद यह सम्भव हो, यद्यपि यह कठिन है, यदि असम्भव नहीं, कि इतने छोटे मुस्लिम राष्ट्र इतनी बड़ी सेना रख सकें कि उन तमाम अलग किये हुए सैनिकोंको भर्ती कर लें। यदि वे उन्हें भर्ती कर भी लें तो उनके रखनेका सारा व्यय मुस्लिम राष्ट्रोंको अपनी ही जनतासे लेना पड़ेगा। भारतके अन्य किसी भी भागसे उन्हें कुछ नहीं मिलेगा। मुस्लिम राष्ट्रको इस मदमें जितनी क्षति होगी, गैर-मुस्लिम राष्ट्रको उतना ही लाभ होगा क्योंकि वह रकम—चाहे वह जितनी भी हो—गैर-मुस्लिम राष्ट्र अपनी सेनाके सैनिकोंपर व्यय करेगा जिससे सेनामें वे ही लोग होंगे जिनसे आयके रूपमें आमदनी होगी।

(५) कहा जाता है कि आर्थिक स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार मुसलमानोंको एकमात्र विभाजनसे ही प्राप्त हो सकता है। आर्थिक प्रश्नके दो पहलू हैं। एकका

---

* आर कूपलैण्ड : दि फ्यूचर आव इण्डिया, पृ० ७७

सम्बन्ध सरकारी नौकरियोंसे है । स्वतन्त्र राष्ट्र हो जानेके बाद मुस्लिमक्षेत्र उन दायरोंमें मुसलमानोंकी स्थितिमें कोई भी सुधार नहीं कर सकेंगे । सरकारी नौकरियोंमें भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके लिए अनुपात कायम कर दिया गया है, यदि वह उचित और ठीक नहीं है तो उसमें संशोधन कराया जा सकता है । यदि यह नियत हो कि सरकारी नौकरियोंसे गैर-मुसलमान एकदम वञ्चित रखे जायँ अथवा केवल अपने धार्मिक विश्वासके कारण उन्हें नीचा पद दिया जाय तब समझमें नहीं आता कि उनका अनुमान कैसे कराया जा सकता है ! इसके अलावा यह स्मरण रखनेकी बात है कि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंमें भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंको सरकारी नौकरियोंमें उचित स्थान देकर परस्पर सद्भाव कायम रखा जा सकता है और अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य रोका जा सकता है । चूँकि मुस्लिम राष्ट्रोंमें गैर-मुसलमानोंकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक होगी इसलिए गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंमें मुसलमानोंकी आबादी १ से १३ फीसदीतक होगी लेकिन मुस्लिम राष्ट्रोंमें गैर-मुसलमानोंकी आबादी २५ से ४८ फीसदीतक होगी । ऐसी हालतमें सरकारी नौकरियोंमें मुस्लिम राष्ट्रोंमें जो महत्व गैर-मुसलमानोंको प्राप्त होगा गैरमुस्लिम राष्ट्रोंमें उसका दावा मुसलमान नहीं पेश कर सकेंगे । इसका परिणाम यह होगा कि न्याय और सद्भावके लिए गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंकी सरकारी नौकरियोंमें गैर-मुसलमानोंकी औसत-संख्यामें कोई घटती नहीं होगी । सरकारी नौकरियोंके लिए भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंकी जो संख्या नियत है विभाजन होनेपर उनमें उलट फेर अनिवार्य है क्योंकि वर्तमान व्यवस्थाके विभाजनका कोई सम्बन्ध नहीं है और साथ ही संयुक्तराष्ट्रके नागरिकोंको जो सुविधा प्रदान की जा सकती है विभाजनके बाद वह सुविधा और रिआयत किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकेगी । इस तरह जहाँतक नौकरियोंका सम्बन्ध है यह बात भी ध्यानमें रख लेनेपर कि मुस्लिम राष्ट्रोंमें मुसलमानोंको ज्यादा सरकारी नौकरियाँ मिलेंगी और इस तरह हिन्दुस्तानमें उन्हें जो हानि होगी उसकी वहाँ पूर्ति हो जायगी । मुस्लिम राष्ट्रोंमें मुसलमानोंको कोई विशेष लाभ नहीं होगा लेकिन हिन्दुस्तानमें (गैर-मुस्लिम राष्ट्रों) में वे घाटेमें रहेंगे ।

दूसरा पहलू औद्योगिक विस्तारद्वारा आर्थिक सुधार है। भारतके वर्तमान उद्योग-धन्धोंमें गैर-मुसलमानोंकी प्रधानताका कारण उनका राजनीतिक उत्कर्ष नहीं है। भारतका राजनीतिक अधिकार न तो हिन्दुओंके हाथमें है और न मुसलमानोंके हाथमें, जो कुछ भी अधिकार है अंग्रेजोंके हाथमें है। इसलिए इस क्षेत्रमें हिन्दुओंने जो कुछ भी प्रधानता प्राप्त की है वह राजनीतिक उत्कर्षके कारण नहीं बल्कि अध्यवसायके कारण। यदि आर्थिक उत्कर्षका आधार राजनीतिक प्रधानता होती तो आज भारतके व्यायसायिक क्षेत्रमें पारसियोंका कोई स्थान न होता क्योंकि जनसंख्यामें उनका अनुपात केवल नगण्य है। लेकिन भारतीय उद्योगके क्षेत्रमें उनका स्थान यदि हिन्दुओंसे बढ़कर नहीं है तो घटकर भी नहीं है। उनसे कभी किसीने डाह नहीं किया, और न कभी उन्होंने ही यह शिकायत की कि भारतकी असीम जनसंख्याके बोझके नीचे—जो पारसी नहीं हैं—वे दबे जा रहे हैं। इसलिए इस कथनमें कोई सार्थकता नहीं है कि हिन्दुओंको प्रधान स्थान प्राप्त है। भारतके उद्योग-धन्धोंमें जो स्थान हिन्दुओंको प्राप्त है उस स्थानसे मुस्लिम राष्ट्रमें वे सभी च्युत हो सकेंगे जब मुस्लिम राष्ट्र उनके साथ अन्याय करेगा, बेईमानीसे पेश आवेगा, साम्प्रदायिक संकीर्णताका परिचय देगा। कहनेका यह मतलब है कि मुस्लिम राष्ट्रमें भी जबतक भेदभावकी नीतिसे काम नहीं लिया जायगा, उनकी हालत किसी भी तरह खराब नहीं हो सकती। अगर पाकिस्तानके समर्थकोंकी यही मंशा है—और विभाजनके समर्थनमें जो बातें कही गयी हैं यदि भावी कार्यक्रमका वही आधार रहा तो दूसरा उद्देश्य हो भी नहीं सकता—तब मुसलमानोंको यह आशा कभी नहीं करनी चाहिए कि गैर-मुसलमान इस स्थितिको कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। यदि हिन्दुओंके हाथमें राजनीतिक अधिकार रहता और यदि उसका उपयोग उन्होंने हानि पहुंचाकर अपने लाभके लिए किया होता तो स्थिति निश्चय ही भिन्न होती। लेकिन जैसा ऊपर दिखलाया गया है केन्द्रीय शासनमें उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है और प्रान्तोंमें जो भी अधिकार उन्हें २७ मासकी छोटी अवधिमें प्राप्त था उसके मुकाबिले मुसलमानोंको पाकिस्तानके प्रान्तोंमें ८ सालकी लम्बी

अवधितक प्राप्त रहा। न तो उसमें कोई बाधा उपस्थित हुई और न ब्रिटिश सरकारकी तरफसे किसी तरहका हस्तक्षेप ही हुआ बल्कि उनको सद्भावना ही मुस्लिम मन्त्रिमण्डलको प्राप्त थी। इस सम्बन्धमें यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि केवल अपने अध्यवसायके बलपर पञ्जाबके अनेक सिखोंने पञ्जाबसे बाहर उद्योगधन्धे कायम कर लिये हैं। मुसलमान सम्प्रदायके मेमन तथा खोजा जातियोंकी तरह राजपूताना, काठियावाड़, गुजरात तथा चटगाँवके हिन्दू भारतके प्रधान व्यावसायिक जातियोंमें हैं। इन लोगोंने यह व्यावसायिक प्रधानता किसी राजनीतिक प्रभुताके कारण नहीं प्राप्त की है। दूसरे मुसलमान इस अवस्थाको नहीं प्राप्त हो सकते यदि उनका इरादा दूसरी जातियोंको दबाना न हो और मुस्लिम राष्ट्रोंमें अन्य राष्ट्रीयताकी जातियोंके प्रति उनका उपर्युक्त व्यवहार किसी भी हालतमें उचित और न्यायानुमोदित नहीं हो सकता।

विभाजनके विरुद्ध तर्क

इस तरह जिन आधारोंपर विभाजनका समर्थन किया जाता है वे या तो वास्तविक नहीं हैं या ऐसे हैं जिन्हें विभाजनके लिए उचित तथा न्यायानुमोदित नहीं स्वीकार किया जा सकता। इसके प्रतिकूल विभाजनके विषयमें अनेक सार्थक तर्क हैं। यहाँ उनमेंसे कुछ कारणोंका संक्षिप्त विवरण दे देना अनुचित नहीं होगा :—

(१) छोटे छोटे स्वतन्त्र राष्ट्रोंके अस्तित्वका युग यदि बीत नहीं गया तो गिना हुआ अवश्य है। हालके अनुभवोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि कोई छोटा राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं कर सकता। बड़े बड़े राष्ट्र भी उसकी रक्षामें कठिनाईका अनुभव कर रहे हैं। इसलिए स्वाभाविक प्रवृत्ति स्वतन्त्र राष्ट्रोंको संयुक्त करनेकी ओर हो रही है। बड़े बड़े राष्ट्रोंके ऊपर एक विशिष्ट राष्ट्र शक्ति कायम करनेकी ओर वर्तमान राजनीतिज्ञोंकी प्रवृत्ति हो रही है। इसलिए भारतमें छोटे छोटे राष्ट्रोंको कायम कर उसकी शक्ति और आकारको कम करनेका मतलब वर्तमान राजनीतिक प्रवाहके विपरीत आचरण करना

होगा। इस बातकी बहुत अधिक सम्भावना है कि मुस्लिम राष्ट्रोंको अलग कर देनेसे ही विभाजनकी समस्याका समाधान नहीं हो जायगा बल्कि एक बार आरम्भ होनेपर ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है कि भारतके विभाजनकी क्रियाकी केवल मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंमें ही समाप्ति न होकर ये मुस्लिम और गैर-मुस्लिम राष्ट्र, देशी रियासतोंके अलावा भी अनेक छोटे-छोटे राष्ट्रोंमें बँट जायँ। इस तरह छोटे छोटे राष्ट्रोंमें बँटकर यदि भारत कभी स्वतन्त्र हुआ तो उसकी हालत ठीक उस परिवारकी तरह हो जायगी जो बँटवाराके बाद कमजोर होकर विदेशी शक्तियोंके षड्यन्त्रका शिकार हो जायगी। परिणाम यह होगा कि उसके अङ्गीभूत सभी स्वतन्त्र राष्ट्र कमजोर होंगे, विदेशी आक्रमणोंसे अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे और एक दूसरेके खिलाफ उभाड़े जाते रहेंगे।

(२) किसी देशके प्राकृतिक साधनोंका सम्यक् प्रयोग सबके लाभके लिए तभी हो सकता है जब सबलोग एक दूसरेका खयाल रखें और सभी मिलकर काम करें। दो स्वतन्त्र राष्ट्रोंकी स्थापनाके बाद यह असम्भव हो जायगा। दोनों राष्ट्र एक दूसरेसे स्वतन्त्र होंगे, यही बात परस्पर समझौता तथा संयुक्त काम करनेके रास्तेमें बाधक होगी। छोटे-छोटे राष्ट्रोंका अस्तित्व विस्तृत पैमानेपर कोई भी योजना बनानेमें बाधक सिद्ध होगा। सभी राष्ट्रोंके ऊपर प्रकृतिकी समान कृपा नहीं होगी। अधिकांश राष्ट्रोंको आधुनिक राष्ट्रोंकी रक्षा और कल्याणके अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण साधनोंके लिए अन्य राष्ट्रोंपर निर्भर करना पड़ेगा। राष्ट्रका क्षेत्र जितना व्यापक होगा, साधनोंकी उतनी ही अधिक बहुलता प्राप्त होगी। प्राकृतिक साधनों—कृषि, खनिज, तथा शक्ति-उत्पादन—का दायरा जितना विस्तृत होगा उतनी ही ज्यादा सम्भावना व्यवस्थित अर्थशास्त्रकी होगी। विभाजनके साथ ही भारत इस लाभसे वञ्चित हो जायगा और जैसा कि इस पुस्तकमें दिखलाया जा चुका है उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्वके मुस्लिम राष्ट्रोंको इस दृष्टिसे सबसे अधिक क्षति उठानी पड़ेगी। पीछे दिखलाया जा चुका है कि मुस्लिम राष्ट्रोंके पास इतना भी पर्याप्त साधन नहीं रहेगा कि वे शासन चला सकें और रक्षाका व्यय सँभाल सकें।

(३) वर्तमान समयमें भारतकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि राष्ट्रीय निर्माण कार्यमें वह अधिकाधिक व्यय कर सके। ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत भारतको असीम क्षति उठानी पड़ी है क्योंकि ब्रिटेनने भारतके साथ पुलिस राष्ट्रकासा व्यवहार किया है और राष्ट्रीय निर्माणने सभी विभागोंको लापरवाहीसे देखकर उनकी पूरी अवज्ञा की है। समस्त राष्ट्रको उस बड़े अभावकी पूर्ति करना है। मुस्लिम राष्ट्र इससे पृथक नहीं किये जा सकते। देशका किसी भी तरहसे विभाजन उसके साधनोंको कम कर देगा और मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम दोनों राष्ट्रोंको उसकी बढ़ती माँगको पूरा करना असम्भव हो जायगा।

(४) वर्तमान युगमें मुस्लिम देशोंकी विचारधारा भी यही है कि धर्मकी अपेक्षा राजनीति तथा अर्थनीतिको ही आश्रयका आधार बनाया जायगा। मुस्लिम लीग तथा पाकिस्तानके समर्थक चाहे जो कहें लेकिन वास्तविकता यह है कि यूरोपके ईसाई राष्ट्रोंकी भाँति संसारके मुस्लिम राष्ट्र भी—यदि अभी-तक नहीं हो गये हैं—तो अर्थवादी राष्ट्र होते जा रहे हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतके ही मुसलमान उलटी धारा बहानेका प्रयास करेंगे और भारतमें अन्य किसी आधारपर राष्ट्र कायम करेंगे?

(५) यह तो सभी जानते हैं कि विभाजनके प्रस्तावका घोर विरोध सभी गैर-मुसलमानोंकी ओरसे तो हो ही रहा है, मुसलमानोंकी ओरसे भी हो रहा है। मैं इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कहना चाहता कि भारतके बहुसंख्यक मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व मुस्लिम लीग करती है या वे अन्य दल जैसे, जमैयतुल-उलेमा, जैमतुल मोमीन, अहरार, राष्ट्रीय मुस्लिम दल, अखिल भारतीय शिया कान्फरेंस वगैरह। असल बात यह है कि पिछले सभी दलोंने एक स्वरसे विभाजनका विरोध किया है। मुसलमान चाहे जो भी रुख अख्तियार करें, हिन्दुओं तथा सिखोंने तो स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि वे विभाजनका विरोध करेंगे। विभाजनकी माँग ज्यों ज्यों तीव्र होती जायगी, विरोधकी त्यों त्यों उग्रता होती जायगी। यह कहना कठिन है कि यह सङ्घर्ष भविष्यमें क्या रूप ग्रहण करेगा। लेकिन एक बात तो निश्चित है कि जिन लोगोंका इससे अधिक सम्बन्ध है

उन लोगोंकी सद्भावना और रजामन्दीसे यह प्राप्त नहीं हो सकता और यदि विभाजन किसी प्रकार हो भी गया तो उसके बाद भी यह दुर्भाव और मनोमालिन्य बढ़ेगा। इस प्रस्तावकी तहमें जो अविश्वास है वह बढ़ता जायगा और यह आशा कि विभाजनके बाद सभी बातें स्थिर हो जायँगी, और स्वतन्त्र राष्ट्र एक दूसरेके मित्र बन जायँगे, बालूकी भीत साबित होगी। सम्भावना तो इसी बातकी है कि इस मनोमालिन्य और अविश्वासके फलस्वरूप परस्पर मेल तथा सद्भावना और कठिन हो जायँगे और दोनों ओर रक्षाके साधनोंकी अधिक आवश्यकता प्रतीत होगी। यदि और कुछ बुरा नहीं हुआ तो भी आर्थिक युद्धकी आशङ्का तो दूर नहीं प्रतीत होती।

(६) इसका फल यह होगा कि स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें अल्पसंख्यकोंकी दशा अतिशय शोचनीय हो जायगी। मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम राष्ट्रोंके बहुसंख्यक सम्प्रदायोंके इस सङ्घर्षके फल स्वरूप वे उस सद्भाव तथा सहानुभूतिसे वञ्चित हो जायँगे जो उन्हें मिलना चाहिए और उनकी दशा आजकी अपेक्षा कहीं अधिक खराब हो जायगी। अल्प-संख्यकोंकी हालत खाईसे निकलकर कुएँमें गिरे हुएके समान हो जायगी। यदि विभाजनका प्रस्ताव सफल हुआ तो यह अवस्था गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदायपर जबर्दस्ती लादी जायगी लेकिन मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय तो अपनी रजामन्दीसे इस विपत्तिमें पड़ेंगे क्योंकि वे इसके लिए यत्न करेंगे और गैर-मुसलमानोंसे जबर्दस्ती इसे प्राप्त करेंगे। इसलिए वे इसके लिए किसी दूसरेको दोषी नहीं ठहरा सकते।

पीछे कहा गया है कि मुस्लिम राष्ट्रके गैर-मुसलमान, गैर-मुस्लिम स्वतन्त्र राष्ट्रके मुसलमानोंकी अपेक्षा अपनी रक्षा अधिक कर सकेंगे क्योंकि मुस्लिम अल्पमतकी अपेक्षा उनकी संख्या बहुत ज्यादा होगी और जहाँ मुस्लिम अल्पमत विस्तृत गैर-मुस्लिम स्वतन्त्र राष्ट्रमें इधर उधर बिखरे रहेंगे वहाँ गैर-मुस्लिम मुस्लिम स्वतन्त्र राष्ट्रमें केन्द्रित होंगे। साथ ही विशेष हकों और रिआयतोंके सम्बन्धमें आदान-प्रदानकी भी बहुत ज्यादा गुञ्जायश नहीं होगी क्योंकि बराबरीके आदान-प्रदानका साधन मुस्लिम राष्ट्रोंके पास नहीं होगा इसलिए गैर-मुस्लिम-राष्ट्रोंको इसके लिए कोई समुचित प्रोत्साहन भी नहीं मिलेगा।

षष्ठ भाग

पाकिस्तानके विकल्प

१
क्रिप्सका प्रस्ताव

मार्च १९४० में मुस्लिम लीगने अपने लाहौरवाले अधिवेशनमें जबसे पाकिस्तानका प्रस्ताव स्वीकृत किया है तबसे भारतके मुसलमानोंकी उचित माँगों-की पूर्तिके उद्देश्यसे कितनी ही योजनाएँ उपस्थित की गयी हैं, जिन्हें हम पाकिस्तानके विकल्प कह सकते हैं।

१. इन विकल्पोंमें सर्वप्रथम स्थान ब्रिटिश युद्ध मन्त्रिमण्डलद्वारा प्रस्तुत उस प्रस्तावको दिया जा सकता है जिसे लेकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत पधारे थे। उन्होंने ही उसे सबसे पहले प्रकाशित किया था, इसी कारण वह 'क्रिप्स-प्रस्ताव'के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ क्रिप्स प्रस्तावके केवल उस अंशसे हमारा तात्पर्य है जिसमें भारतीय संयुक्त राजके प्रकार तथा उसकी विधान निर्मात्री परिषद्का वर्णन है। उसमें प्रस्तावित अस्थायी शासन व्यवस्था, क्रिप्सकी वार्ता अथवा उसके परिणामसे हमारा तात्पर्य नहीं है। उक्त प्रस्तावका उद्देश्य 'स्पष्ट शब्दोंमें उन उपायोंकी चर्चा करना था जो ब्रिटिश सरकार भारतको शीघ्रातिशीघ्र स्वशासनाधिकार प्रदान करनेके निमित्त करना चाहती है। उसका उद्देश्य एक नये भारतीय संयुक्तराजकी स्थापना करना है जो एक उपनिवेशके रूपमें रहेगा तथा सम्राट्के प्रति राजभक्तिके नियमोंसे उसी भाँति बँधा रहेगा जिस भाँति ब्रिटेन तथा अन्य उपनिवेश हैं। वह प्रत्येक विषयमें अन्य उपनिवेशोंके सम-कक्ष रहेगा तथा घरेलू अथवा बाहरी—किसी भी विषयमें अन्य उपनिवेशोंसे निम्न श्रेणीका न समझा जायगा।' 'युद्ध समाप्त होते ही भारतके लिए एक नया विधान निर्माण करनेके लिए, आगे वर्णित ढङ्गपर, एक विधान निर्मात्री परिषद् संघटित करनेका प्रयत्न किया जायगा। इस बातका भी आयोजन रहेगा कि विधान निर्मात्री परिषद्में देशी राज्य भी सम्मिलित हो सके।' और 'ब्रिटिश

सरकार निम्न लिखित शर्तोंके साथ ऐसे विधानको स्वीकार करने और व्यवहृत करनेका वचन देती है—

१. यदि ब्रिटिश भारतका कोई प्रान्त नये विधानको स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत न होगा तो उसे ऐसा करनेका अधिकार रहेगा। वह अपनी वर्तमान वैधानिक स्थितिमें ही बना रह सकेगा। यदि बादमें वह उक्त विधानको स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत हो जायगा तो उसे विधानमें सम्मिलित होनेकी सुविधा रहेगी। इस प्रकारके विधानको अस्वीकार करनेवाले प्रान्त यदि कोई ऐसा नया विधान बनायेंगे जिसमें उन्हें भारतीय संयुक्त राजके समान ही पूर्ण अधिकार रहेंगे और जिसके निर्माणकी विधि भी यहाँ वर्णित विधिसे ही मिलती जुलती रहेगी तो ब्रिटिश सरकार ऐसे विधानको स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत रहेगी।

(२) ब्रिटिश सरकार भारतीयोंको सभी अधिकार हस्तान्तरित करने और अल्पमतवालोंके हितोंकी रक्षा करनेके लिए सभी आवश्यक बातोंके सम्बन्धमें विधान निर्मात्री परिषद्से जो सन्धि करेगी उसमें वह भारतीय सयुक्त राजपर ऐसा कोई प्रतिबन्ध न लगायेगी जिससे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्य सदस्योंके साथ उसके भावी सम्बन्ध-निर्णयमें किसी तरहका हस्तक्षेप हो। यदि युद्धकी समाप्तिके पूर्व प्रमुख सम्प्रदायोंके भारतीय नेता कोई अन्य सर्वसम्मत उपाय न खोज निकालेंगे तो विधान निर्मात्री परिषद्का सङ्गठन इस प्रकारसे होगा—

युद्धकी समाप्तिके बाद ही प्रान्तीय असेम्बलियोंके चुनाव होंगे। उनके परिणामकी घोषणा होनेके उपरान्त ही प्रान्तीय असेम्बलियाँ प्रतिनिधित्वके अनुपातके आधारपर विधान निर्मात्री परिषद्का चुनाव करेंगी। इस परिषद्में असेम्बलीके लगभग $\frac{1}{10}$ सदस्य रहेंगे। देशी रियासतोंको भी उसी अनुपातमें अपने प्रतिनिधि चुननेके लिए आमन्त्रित किया जायगा जो अनुपातसे उनकी कुल जनसंख्या और सारे ब्रिटिश भारतकी जनसंख्याके बीच होगा, ब्रिटिश भारतके प्रतिनिधियोंको जो अधिकार रहेंगे वे ही देशी रियासतोंके प्रतिनिधियोंको प्राप्त रहेंगे।"

उपर्युक्त बातोंका सारांश यही है कि ब्रिटिश सरकारका यह प्रस्ताव था कि युद्ध समाप्त होते ही एक नया भारतीय संयुक्त राष्ट्र बनानेका प्रयत्न किया जायगा जिसे पूरा औपनिवेशिक पद प्राप्त रहेगा और वह यदि चाहेगा तो ब्रिटिश मण्डलसे अपना सम्बन्ध भी विच्छेद कर सकेगा। नये चुनावमें चुने गये प्रान्तीय असेम्बलियोंके सभी सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधिद्वारा विधान निर्मात्री परिषद्का सङ्गठन करेंगे। वही परिषद् भारतके लिए नया विधान प्रस्तुत करेगी। इसमें जनसंख्याके अनुपातसे देशी रियासतोंके प्रतिनिधि भी रहेंगे। विधान निर्मात्री परिषद्द्वारा प्रस्तुत किया गया विधान ब्रिटिश सरकार स्वीकार कर लेगी और उसे व्यवहृत करेगी। यदि कोई प्रान्त इस विधानको स्वीकार न करना चाहेगा तो वह संयुक्त राजसे पृथक् रहनेके लिए स्वतन्त्र रहेगा। वह यदि चाहेगा तो अपने ढङ्गका विधान प्रस्तुत कर सकेगा और उसे भी भारतीय संयुक्त राजके समान अधिकार रहेगा। ब्रिटिश सरकार तथा विधान निर्मात्री परिषद्के बीच अधिकार हस्तान्तरित करनेसे सम्बद्ध सभी आवश्यक विषयों और नस्ल और धर्मके अनुसार बने अल्पसंख्यक दलोंके सम्बन्धमें एक सन्धि होगी। इसका आरम्भ पृथक स्वतन्त्र राजोंसे नहीं, प्रत्युत एक भारतीय संयुक्त राजसे किया गया है और यह बात प्रान्तोंकी इच्छापर छोड़ दी गयी है कि जो प्रान्त विधानको स्वीकार न करेंगे वे पृथक् रह सकेंगे और उनका पद भारतीय संयुक्त राजके समान ही होगा। प्रोफेसर कूपलैण्डके शब्दोंमें ब्रिटिश सरकारने अपने इस उद्देश्यकी स्पष्ट शब्दोंमें घोषणा कर दी कि वह भारतके नये विधानमें एक भारतीय संयुक्त राजकी स्थापना करना चाहती है जिसका पद औपनिवेशिक रहेगा। ब्रिटिश घोषणाको पढ़नेवाला कोई भी व्यक्ति यह बात स्वीकार करेगा कि प्रस्तावमें असम्बद्ध रह सकनेकी आयोजनावाली धाराका लक्ष्य भारतको स्वतन्त्र करनेकी पूरी योजनाको असफल होनेसे बचाना ही है।"*

विशेषतः यही कारण था जिससे मुसल्लिम लीगने यह कहकर क्रिप्स

---

* आर० कूपलैण्ड 'इण्डियन पालिटिक्स १९३६–४२', पृष्ठ २०६

प्रस्ताव ठुकरा दिया कि इसमें विभाजनके सम्बन्धमें कोई स्पष्ट घोषणा नहीं है और जहाँ इसमें पाकिस्तानकी बात स्वीकार कर ली गयी है वहाँ वस्तुतः उसमें एकसे अधिक संयुक्त राजकी किसी सम्भावनाके लिए कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

४ अप्रैल १९४२ को प्रयागमें अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके अध्यक्ष पदसे किये गये भाषणमें तथा १३ अप्रैल १९४२ को पत्रप्रतिनिधियोंके सम्मेलनके सम्मुख किये गये अपने एक वक्तव्यमें श्रीजिनाने स्पष्ट शब्दोंमें सारी बातें प्रकट कर दीं। उन्होंने इन कारणोंसे उक्त योजना अस्वीकार कर दी।

१. इसका मुख्य उद्देश्य एक नये भारतीय संयुक्त राजकी स्थापना है। इसमें पृथक् होनेपर अल्पमतवालोंको जो अधिकार प्रदान करनेकी बात कही गयी है वह केवल धोखेकी टट्टी है। (२) विधान निर्मात्री परिषद् प्रमुख संस्था होगी जिसका चुनाव ११ असेम्बलियोंके कुल सदस्योंमेंसे आनुपातिक प्रतिनिधित्वके आधारपर होगा, पृथक् निर्वाचन पद्धतिके आधारपर नहीं। पृथक् प्रतिनिधित्व होनेपर भी उसमें मुसलमानोंकी संख्या २५ प्रतिशतसे अधिक न होगी किन्तु आनुपातिक प्रतिनिधित्वसे उससे कम संख्या हो सकती है। उसका निर्णय बहुमतसे होगा अतः यह पूर्णतः निश्चित है कि वह ऐसा विधान प्रस्तुत करेगी जो अखिल भारतीय संयुक्त राजके उपयुक्त होगा। (३) प्रान्त या प्रान्तोंको सम्बन्ध विच्छेद कर लेनेका अधिकार जिस प्रकारसे दिया गया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसमें कहा गया है कि यदि किसी प्रान्तकी असेम्बलीमें ६० प्रतिशत मतदाता सम्मिलित रहनेके पक्षमें हैं तो सम्बन्ध विच्छेदकी बात स्पष्ट हो जायगी; किन्तु यदि ५९ प्रतिशत व्यक्ति पक्षमें हैं और अल्पमतवाले ४१ प्रतिशत हैं तो प्रान्तकी जनता बालिग मताधिकारद्वारा इसका निर्णय करेगी। इस भाँति मुस्लिम राष्ट्रकी एकता और अखण्डता स्वीकार नहीं की गयी है। प्रान्तोंको प्रादेशिक अखण्डतापर ही, जोकि ब्रिटिश नीतिके फलस्वरूप संयोगसे बन गयी है, अत्यधिक जोर दिया गया है। मुसलमानोंका राष्ट्रीय आत्मनिर्णयका अधिकार, जोकि दोनों राष्ट्रोंके संयुक्त

अधिकारसे भिन्न है, स्पष्टतः स्वीकार नहीं किया गया है। अत्यधिक मुस्लिम-बहुमतवाले पञ्जाब और बङ्गाल प्रान्तकी असेम्बलियोंमें मुसलमान बहुमतमें नहीं हैं। यहाँके मुसलमान हिन्दू अल्पमतकी दयापर निर्भर रहेंगे। सीमाप्रान्त और सिन्धमें गैर-मुसलमानोंको जो अत्यधिक महत्व और स्थान दिया गया है उसे देखते हुए अपने लक्ष्यकी पूर्ति करना मुसलमानोंके लिए अत्यधिक कठिन होगा।

अतः यह योजना अस्वीकार्य ठहरी, कारण, एक तो इसमें पाकिस्तानकी बात स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार नहीं की गयी थी और दूसरे, मुसलमानोंका आत्म-निर्णयका सिद्धान्त नहीं माना गया था। विभाजनकी बात इसमें अवश्य स्वीकार की गयी थी जिसका कि पर्याप्त स्वागत किया गया।*

२

प्रोफेसर कूपलैण्डकी प्रादेशिक योजना

प्रोफेसर रेजिनाल्ड कूपलैण्ड्ने 'दि फ्यूचर ऑव इण्डिया' नामक अपनी पुस्तकमें एक योजना उपस्थित की है जिसे वे प्रादेशिकतापर आधृत बताते हैं। उन्होंने सर सिकन्दर हयात खाँकी भारतीय संघकी योजनासे प्रादेशिकताका भाव लिया है और प्रादेशिक सीमानिर्धारणकी वह योजन स्वीकार की है जो भारतके मर्दुमशुमारी-कमिश्नर एम० डब्ल्यू० एम० यीट्सने १९४१ की मर्दुमशुमारी-की रिपोर्टकी भूमिकामें भारतकी जल-विद्युत शक्तिकी उन्नतिकी ५० वर्षीय योजनाके अन्तर्गत दी है। इस योजनाके अनुसार उत्तरी भारत नदियोंके ३ जल-शोषक प्रदेशोंमें बाँट दिया जायगा—(१) सिन्ध नदीका जलशोषक प्रदेश—जो काश्मीरसे कराँचीतक रहेगा (राजनीतिक शब्दावलीमें जो पाकिस्तान कहलाता है), (२) गङ्गा यमुनाका जलशोषक प्रदेश—पञ्जाब और बङ्गालके बीचमें (अर्थात्

---

* 'स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स आव मिस्टर जिना', पृष्ठ ३५०–३६४.

हिन्दुस्तान) और (३) गङ्गा और ब्रह्मपुत्रका शोषक प्रदेश—बिहार और पूर्वी सीमाके बीच (अर्थात् उत्तरी-पूर्वी भारत)। गङ्गाके जलशोषक प्रदेशका दो टुकड़ोंमें विभाजन प्राकृतिक कारणोंके अनुकूल है। बिहारकी पूर्वी सीमापर जैसे ही गङ्गा १५० मील दूर ब्रह्मपुत्रसे मिलनेके लिए दक्षिणकी ओर झुकने लगती है वैसे ही देशकी प्राकृतिक स्थितिमें परिवर्तन होने लगता है। उत्तरी मैदानवाला देश मिटता जाता है, महान डेल्टावाला देश आने लगता है।* (४) महान प्रायद्वीप मोटे रूपमें चौथा प्रदेश कहा जा सकता है। प्रोफेसर कूपलैण्डके कथनानुसार नदियोंके जलशोषक प्रदेशोंमें आर्थिक आवश्यकताओंकी भी पूर्ति हो जाती है। आर्थिक उन्नति अनेक अंशोंमें जलविद्युत्के सम्यक् उपयोगपर निर्भर करती है। नदियोंके पूर्ण उपयोग और जलविद्युत्शक्तिके कारखानोंके लिए लम्बे प्रदेशकी योजनाकी आवश्यकता है जिसकी कि पृथक् क्षेत्रों अथवा पृथक् प्रान्तोंके साधनोंद्वारा पूर्ति सम्भव नहीं है। उसके लिए प्रान्तेतर सहयोगकी आवश्यकता है। उसमें इतना व्यय पड़ेगा और ऐसा नियन्त्रण आवश्यक होगा जो केवल प्रादेशिक आधारपर ही सम्भव है। इसके लिए भारतको निम्नलिखित चार प्रदेशोंमें विभक्त किया जा सकता है—

* आर. कूपलैण्ड: 'दि फ्यूचर ऑव इण्डिया', पृष्ठ २०

प्रदेशका नाम	ब्रिटिश भारतके प्रान्त	देशी रियासतें	क्षेत्रफल १००० वर्गमीलमें देशी रियासतोंको लेकर	क्षेत्रफल १००० वर्गमीलमें देशी रियासतोंको छोड़कर
सिन्ध	सीमाप्रान्त पञ्जाब, ब्रिटिश-बिलोचिस्तान, सिन्ध, अजमेर-मेरवाड़ा	काश्मीर, सीमाप्रान्तीय एजेंसियाँ और रियासतें, पंजाबकी रियासतें पर्वतीय रियासतें, बिलोचिस्तानकी रियासतें राजपूतानाकी रियासतें—निम्नलिखित (क) और (ख) छोड़कर	५६९·७२	२१८·३५
गङ्गा	युक्तप्रान्त बिहार, उड़ीसा	युक्तप्रान्तकी रियासतें, ग्वालियर, उड़ीसाकी रियासतें, ग्वालियरके पूर्व मध्यप्रान्तकी रियासतें, छत्तीसगढ़की रियासतें (ग) छोड़कर, राजपूतानाकी रियासतें (क) भरतपुर, बूँदी, धौलपुर, करौली, कोटा	३११·८०	२०८·२०
डेल्टा	बङ्गाल आसाम	बङ्गालकी रियासतें, आसामकी रियासतें, सिक्किम	१५६·९६	११२·३९
दक्षिण	मद्रास बम्बई, मध्यप्रान्त और बरार, कुर्ग, पंथपिपलोदा	पश्चिम भारतकी रियासतें, ग्वालियरके पश्चिम और दक्षिण मध्य-भारतकी रियासतें, गुजरातकी रियासतें बड़ौदा राजपूतानाकी (ख) रियासतें—बाँसवाड़ा, दांता, डूंगरपुर, पलनपुर, छत्तीसगढ़की (ग) रियासतें—बस्तर, छुइखदान, कांकेर, कवर्धा, खैरागढ़ नन्दगाँव, दक्षिण और कोल्हापुरकी रियासतें, हैदराबाद, मद्रासकी रियासतें, मैसूर त्रावणकोर और कोचीन	५३९·२५	३०२·७९

(पीछेके पृष्ठका शेषांश)

जनसंख्या १० लाखमें देशी रियासतोंको लेकर				जनसंख्या १० लाखमें देशी रियासतोंको छोड़कर				प्रति जनसंख्या देशी रियासतोंको लेकर			प्रति जनसंख्या देशी रियासतोंको छोड़कर		
हिन्दू	मुसलमान	आदि जातियाँ	कुल	हिन्दू	मुसलमान	आदि जातियाँ	कुल	हिन्दू	मुसलमान	कुल	हिन्दू	मुसलमान	कुल
२१'३४	३१'९०	१'२२	६१'२५	९.३८	२२'७५	०'१३	३७'०८	३४'८	५२'०	१३'२	२५'२	६१ ३	१३'५
९१'८९	१४'०३	९.८१	११६'५५	७९'१५	१३'२९	७'०७	१००'०९	७८'७	१२'०	९'३	७९.०	१३'२	७'८
३०'६६	३६'८५	५'५९	७३'५०	२९'२७	३६'४५	४'३७	७०'५१	४१'७	५०'१	८'२	४१'५	५१'६	६'९
११०'४४	११'२२	८.७७	१३६'८२	७२'४२	६'६१	५'१३	८७'१८	८०'५	८'२	११'३	८३'०	७'५	९'५

जनसंख्याके आधारपर अनुपातका अनुमान बैठानेमें विद्वान प्रोफेसरने नकशेमें थोड़ीसी हिसाब-सम्बन्धी भूल की है जिसे मैंने ठीक कर दिया है ।

प्रोफेसरके कथनानुसार प्रादेशिकता विभाजनसे भी भिन्न है और संघसे भी। इसमें भारतकी अखण्डता बनी रहती है । इसमें एक अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रकी स्थापनाकी कल्पना की गयी है । किन्तु यह केन्द्र नये ढङ्गका होगा जिसके हाथमें केवल उतने ही न्यूनतम अधिकार रहेंगे जिनकी कि भारतकी अखण्डताकी रक्षाके निमित्त उसे देनेकी आवश्यकता होगी और वह इन अधिकारोंका प्रयोग अखिल भारतीय मतदाताओंके बलपर नहीं, प्रदेशोंकी संयुक्त संस्थाके रूपमें करेगा ।

भारतकी अखण्डताके लिए विदेशियोंकी दृष्टिसे जिन न्यूनतम अधिकारोंकी आवश्यक होगी, वे ये हैं—(१) परराष्ट्र सम्बन्धी मामले और रक्षा, (२) विदेशी व्यापार अथवा 'जकात नीति और (३) मुद्रा । रक्षामें केवल अपनी ही स्थल, जल और विमान सेनाके नियन्त्रण और बनाये रखनेकी बात आती है जितनी कि बाहरी आक्रमणसे भारतकी रक्षाके लिए आवश्यक हो ।

देशसे जाकर विदेशमें बसने और विदेशसे आकर देशमें बसनेपर नियन्त्रण रखने और जन्मजात नागरिकों जैसे अधिकार प्राप्त करनेके प्रश्न भी परराष्ट्र सम्बन्धी मामलोंसे सम्बद्ध हैं ।

केन्द्रमें दूतावाससे सम्बद्ध लोगोंको रखने, जकात वसूल करने आदिका खर्च विशेष न होगा । खर्चकी मोटी मद रक्षा-सम्बन्धी होगी और वर्तमान युद्धके पूर्व भारतकी रक्षाका व्यय जकातसे प्राप्त होनेवाली आयसे ही कमबेश पूरा हो जाता था । इस प्रश्नपर विचार करना होगा कि क्या घाटेकी पूर्ति करनेके लिए केन्द्रको कर लगानेका अधिकार रहना चाहिए अथवा विधानमें निश्चित आधारपर विभिन्न प्रदेशोंद्वारा उसकी पूर्ति होनी चाहिए । इसी भाँति विधानमें बचतका धन विभिन्न प्रान्तोंमें वितरित करनेकी धारा बनायी जा सकती है ।

इन न्यूनतम केन्द्रीय विषयोंके अतिरिक्त यातायात—रेल, विमान, जहाज-रानी, बेतारके तार, टेलीफोन, तार और सम्भवतः डाक विभागको भी इसमें सम्मिलित कर देना अधिक सुविधाजनक और आर्थिक दृष्टिसे लाभकर होगा। साधारण स्थितिमें अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रके लिए इनकी विशेष आवश्यकता नहीं भी हो सकती है पर विधानमें ऐसी धारा रखी जा सकती है कि युद्ध जैसी तात्कालिक आवश्यकता उत्पन्न होनेपर इन वस्तुओंपर केन्द्रका नियन्त्रण रहे। जनगणना, वैज्ञानिक शोध, औद्योगिक उन्नति, खानों और तैल-कूपोंकी खुदाई प्रमुख बन्दर और जलयातायात, शस्त्रास्त्र, विस्फोटक पदार्थ आदिका नियन्त्रण भी केन्द्रमें रहनेसे अधिक सुविधा और आर्थिक लाभ हो सकता है। किन्तु ये विषय विभिन्न क्षेत्रोंमें बिखरे होंगे। जिन मामलोंमें एकरूपता लानेकी आवश्यकता है उनके सम्बन्धमें अनुरोधपूर्वक ही केन्द्रीय कानून बनवानेकी व्यवस्था रखी जा सकती है अर्थात् ऐसे केन्द्रीय कानून प्रदेशोंकी अनुमति लेकर ही बनाये जा सकेंगे।

अन्तर्प्रादेशिक संयुक्तराज को हलके ढङ्गका संघ कहा जा सकता है किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रादेशिकतासे एक नये भावकी उत्पत्ति होती है। यह सबसे पहले भारतको कई बड़े राजोंमें विभक्त करता है जोकि पूर्णतः स्वतन्त्र हो सकते हैं परन्तु वे कुछ संयुक्त उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए अपने अधिकारोंको बाँट देनेका निश्चय करते हैं। सभी वर्तमान संघ इस ढङ्गसे विभाजित किये गये हैं कि स्थानीय स्वशासनके सिद्धान्तका राष्ट्रीय एकताके सिद्धान्तसे सामंजस्य हो जाता है। किन्तु प्रादेशिकतामें ऐसा दोहरा सिद्धान्त लागू नहीं होता। केन्द्र शुद्ध अन्तर्प्रादेशिक संस्था है। वह संस्थाके रूपमें ही समझी जायगी। उसकी कार्यकारिणी और असेम्बलीके सदस्य अपने प्रदेशके एजेण्टके रूपमें कार्य करेंगे। पर वह ऐसे संघसे भिन्न रहेगा जो केवल एक संस्थाके रूपमें रहता है, जिसके हाथमें अपना कोई अधिकार नहीं होता और उसके जिन निश्चयोंको इकाइयाँ स्वीकार करती हैं, उन्हें वे स्वयं अपने खर्चसे व्यवहृत करती हैं। पर अन्तर्प्रादेशिक केन्द्र एक सरकारके रूपमें होगा। वह

अपने सैनिकों और कर्मचारियोंको आदेश देगा और अपने ढङ्गसे अपना कार्य करेगा। वस्तुतः उसकी स्थिति 'कान्फेडरेसी' (संघ) और साधारण संघके मध्यवर्तीकी-सी होगी।

अन्तर्प्रादेशिक असेम्बली १९३५ के शासन-विधानमें वर्णित सङ्घ असेम्बलीसे इस अर्थमें भिन्न रहेगी कि उसमें भारतीय राष्ट्रीयताकी भावना और शक्ति व्यक्त न होगी, कारण, प्रादेशिक भावनाका अर्थ ही यह है कि सारे भारतकी एकराष्ट्रीयताकी उपलब्धि नहीं हो सकी है। उसमें विभिन्न प्रदेशोंकी पृथक् पृथक् राष्ट्रीयताओंकी भावनाका प्रदर्शन होगा अतः उसमें प्रत्येक प्रदेशके प्रतिनिधियोंकी संख्या समान होनी चाहिए और सम्बद्ध इकाइयोंको पर्याप्त प्रतिनिधित्वके लिए संख्यामें लेशमात्र भी वृद्धि न करनी चाहिए। इसमें प्रदेशोंके आकार-प्रकार तथा उनकी जनसंख्याका कोई ध्यान न रखना चाहिए। सदस्योंको अपने प्रदेशोंसे अधिकार प्राप्त होंगे और उन्हींके प्रति वे जिम्मेदार होंगे। वे प्रादेशिक असेम्बलियोंद्वारा चुने जा सकते हैं और चुनावकी पद्धति ऐसी हो जिससे प्रान्तों और राजोंको पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। यदि गङ्गाके जलशोषक प्रदेश और दक्षिण प्रदेशोंके अन्तर्गत पड़नेवाले कुछ प्रान्त और राज इन प्रदेशोंमें सम्मिलित होना न स्वीकार करेंगे तो अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रमें उनके प्रतिनिधित्वकी ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि उनके प्रतिनिधियोंकी संख्या उतनी ही हो मानो गैर-प्रदेशवाले प्रान्त वस्तुतः प्रदेशोंमे मिलकर एक हो गये हों। अर्थात् अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रीय असेम्बलीमें दो मुस्लिम प्रदेशों—सिन्धका जलशोषक प्रदेश और डेल्टाका प्रदेश—के प्रतिनिधियोंकी संख्या गङ्गाके जलशोषक प्रदेश और दक्षिणी प्रदेशके प्रतिनिधियोंकी संख्याके बराबर होगी। इस बातका कोई खयाल न किया जायगा कि बादवाले प्रदेश प्रदेशोंके रूपमें सङ्घटित हुए हैं अथवा नहीं।

केन्द्रका क्षेत्र केवल तीन विषयोंके लिए सीमित रहनेसे तथा बहुत थोड़ेसे कार्यके कारण केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डलमें केवल ४ विभागीय मन्त्री रहेंगे और एक दो बिना विभागवाले मन्त्री रहेंगे। वहाँ वैधानिक संयुक्त सरकार रहेगी

और कुछ अंशोंमें स्विट्जरलैण्ड जैसा विधान लागू होगा। सम्भव है कि कौंसिल ही प्रधान मन्त्री तथा मन्त्रि-मण्डलके अन्य सदस्योंका चुनाव करे और उनका कार्यकाल उतने ही दिनोंका हो जितने दिनोंका कौंसिलका रहे। स्विट्जरलैण्डके मन्त्रि-मण्डलके समान ही वे भी किसी कानूनको बनवानेके लिए कौंसिलके बहुमत-पर निर्भर रह सकते हैं और अपने शासनकी दैनिक काररवाईके लिए वे कौंसिलके प्रति उत्तरदायी न होंगे। स्विट्जरलैण्डके आदर्शपर मन्त्रि-मण्डलके पदोंका भी समान बँटवारा हो सकता है। प्रत्येक प्रदेशको कमसे कम एक और अधिकसे अधिक दो स्थान मिलें। इस कार्यके लिए भी वे प्रान्त प्रदेश माने जायँ जो किसी प्रदेशमें सम्मिलित न हों। प्रधान मन्त्री क्रमानुसार एक बार हिन्दू रहे और दूसरी बार मुसलमान।

विधानकी धाराओंका ठीक अर्थ प्रतिपादित करनेके लिए सर्वोच्च न्यायालयके अधिकार वैसे ही होंगे जैसे अधिकार इस समय सङ्घन्यायालयको हैं। इसमें प्रत्येक प्रदेशका एक न्यायाधीश रहे और बिना प्रदेशवाले प्रान्त इस मामलेमें भी एक प्रदेश माने जायँ।

इस नयी व्यवस्थाका साम्प्रदायिक समस्यापर क्या प्रभाव पड़ेगा? प्रोफेसर कूपलैण्डका मत है कि इसका उत्तर केन्द्रमें स्थापित साम्प्रदायिक सन्तुलनके प्रकारपर निर्भर करता है। प्रादेशिक व्यवस्थामें अन्तर्प्रादेशिक असेम्बलीके चुनावमें कोई राष्ट्रीय भावना काम न करेगी। सदस्य केवल अपने प्रदेशोंके ही शुद्ध प्रतिनिधि रहेंगे। वे वस्तुतः अपनी सरकारोंके शासनादिष्ट प्रदेशों और असेम्बलियोंके प्रतिनिधिके रूपमें रहेंगे और तदनुकूल ही उन्हें अपना मत प्रदान करना पड़ेगा। इस भाँति केन्द्रीय असेम्बलीका साम्प्रदायिक सन्तुलन सदस्योंके या दलोंके व्यक्तिगत मतोंका सन्तुलन न होगा, वह प्रदेशोंकी पारस्परिक नीतिका सन्तुलन होगा। इससे भारतके दो प्रमुख सम्प्रदायोंके प्रतिनिधियोंको भारतकी संयुक्त सेनाके लिए दिन प्रतिदिन एक साथ मिलकर काम करनेका अवसर मिलेगा और सम्भव है कि एक दिन ऐसा आ जाय जब हिन्दू और मुसलमान, कनाडियन अथवा स्विस लोगोंकी भाँति अपनी राष्ट्रीयताकी विशेषताओंको बनाये

रखते हुए भी, स्विट्जरलैण्ड अथवा कनाडाकी भाँति एक भारतीय राष्ट्रलकी भावनाके प्रति जागरूक हो उठें। यह कहते हुए प्रोफेसर कूपलैण्ड हिन्दुओंको सलाह देते हैं कि वे किन्हीं भी शर्तोंपर संयुक्त राज स्वीकार कर लें ताकि उसका व्यवहृत होना सम्भव हो जाय। मुसलमानोंसे आप अपील करते हैं कि यद्यपि इस योजनाद्वारा मुस्लिम राजोंकी पूर्ण स्वाधीनताकी माँग पूरी नहीं होती तथापि उनकी अन्य सभी माँगें तो पूरी हो जाती हैं अतः उन्हें इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यह दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तको स्वीकार करती है। इसमें राष्ट्रीय राज अथवा राजोंके अन्तर्गत भारतीय मुस्लिम राष्ट्रकी स्थापनाकी बात है। इसमें यह बात स्वीकार की गयी है कि वे राज, फिर उनका आकार-प्रकार अथवा जन-संख्या कुछ भी क्यों न हो, पदमें हिन्दू राजों अथवा प्रान्तोंके समूहके समकक्ष हैं। इनमें उनकी स्वतन्त्रतामें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता अपितु यह उन्हें एक छोटे क्षेत्रके अधिकारोंमें अन्य राजोंके साथ अपने :चुने हुए प्रतिनिधियों-द्वारा हिस्सा बँटानेका अवसर प्रदान करती है।

मैंने प्रोफेसर कूपलैण्डकी प्रादेशिक योजनाकी रूपरेखा यथासाध्य उन्हींके शब्दोंमें देनेका प्रयत्न किया है। विद्वान लेखकने जैसा कि स्वयं स्वीकार किया है, इसमें सन्देह नहीं कि यह योजना इस बातपर आधृत है कि भारतमें दो राष्ट्र हैं और यहाँ एक भारतीय राष्ट्र नहीं है। इस अनुमानको अपने सामने रख-कर लेखक मुस्लिम लीगके विभाजनके दावेको यथासाध्य पूरा करनेका प्रयत्न करता है और ऐसा करते हुए उसने भौगोलिक और आर्थिक एकतापर आधृत प्रादेशिकताके द्वारा धार्मिक और साम्प्रदायिक जनसंख्याके वितरणके आधारपर स्वशासित मुस्लिम राजोंकी स्थापनाका समर्थन किया है। डाक्टर राधाकमल मुखर्जीके शब्दोंमें "प्रोफेसर कूपलैण्डने आर्थिक सिद्धान्तोंपर मुसलमानोंके 'वतन' का जो राजनीतिक सीमानिर्धारण किया है वह कृषि सम्बन्धी भूगोलकी दृष्टिमें भद्दी भूल है।"*

---

* डाक्टर राधाकमल मुखर्जी : 'एन एकानामिस्ट लुक्स एट पाकिस्तान' पृष्ठ १२।

इस योजनापर सबसे बड़ी आपत्ति यह की जा सकती है कि यह सर्वांशमें प्रादेशिकताके अनुरूप भी तो नहीं चलती। प्रोफेसर कूपलैण्डने यह बात स्वीकार की है कि पंजाबका बहुतसा भाग वस्तुतः गंगा नदीके जलशोषक प्रदेशमें पड़ता है परन्तु उन्होंने उसे सिन्ध नदीके जलशोषक प्रदेशमें सम्मिलित कर लिया है। कोई भी ऐसा भौगोलिक कारण नहीं है जिसके द्वारा इस प्रदेशका जिसमें तीन चौथाई राजपूताना शामिल है, मार्ग परिवर्तित करनेका औचित्य सिद्ध हो सके। प्रोफेसरके शब्दोंमें 'प्राकृतिक तथा नस्लकी दृष्टिसे इसका अपना पृथक् महत्व है'। और यदि किसी कारणसे यह प्रदेश सिन्ध नदीके जलशोषक प्रदेशमें जोड़ा भी जाय तो कोई कारण नहीं कि चार दक्षिणी राज गुजरातके साथ एक प्रदेशमें जोड़ दिये जाँय जिनका कि गुजरात और उसके निवासियोंसे कोई साम्य या सम्पर्क नहीं और स्वयं गुजरात ही अथवा कमसे कम उसका उत्तरी आधा भाग, जिसे अरावली पहाड़ियोंसे निकलनेवाली नदियाँ ही सींचती हैं और भारी वर्षा होती है, इस प्रदेशमें क्यों न शामिल कर लिया जाय और दक्षिणसे पृथक् कर लिया जाय।

गङ्गा नदीके जलशोषक प्रदेशपर जब हम विचार करते हैं तो देखते हैं कि यह भी भौगोलिक और प्राकृतिक दृष्टिकोणकी सर्वथा उपेक्षा कर मनमाने प्रदेश मिलाकर बना दिया गया है। यह बात तो सर्वविदित है कि हिमालयसे निकलनेवाली अनेक नदियोंका उद्गम और जलशोषक प्रदेश ब्रिटिश सीमाके बाहर पड़ता है और उसकी व्यवस्था करनेमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। उत्तर बिहारकी कोसी नदी जो प्रायः भारी गजब ढाया करती है, इसी प्रकारकी एक नदी है। बागमती तथा अन्य ऐसी ही कितनी ही नदियाँ हैं जो मुजफ्फरपुर और दरभङ्गा जिलोंमें बाढ़ तथा भारी आपत्ति ढा देती हैं। सोन और नर्बदाका उद्गम अमरकण्टक पहाड़ियोंमें है परन्तु वे उलटी दिशामें बहती हैं। अमरकण्टकमें भारी वर्षा होनेसे अत्यधिक दूर दूरपर बसे बिहारके पटना और शाहाबाद और कभी कभी सारनके जिलोंमें तथा मध्यप्रान्तके जबलपुर, हुशङ्गाबाद तथा नीचेके अन्य जिलोंमें और गुजरातके भी

कुछ भागोंमें भीषण बाढ़ और प्रलयकासा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

प्रोफेसर कूपलैण्डने बहुत बादमें अमेरिकाकी टेनेसी घाटीकी अधिकृत योजनाका उल्लेख किया है और उसीके आधारपर अपनी नदियोंके जल-शोषक प्रदेशकी योजना उपस्थित की है। किन्तु उन्होंने ऐसी किसी भी योजनाके लिए परम आवश्यक एक बातकी सर्वथा उपेक्षा की है। वह यह कि आप किसी भी नदीको मनमाने ढंगसे काटकर उसके जलशोषक प्रदेशकी उन्नतिकी कोई योजना नहीं बना सकते। इसके लिए नदीके पूरा प्रदेशको, उसके उद्गमसे लेकर किसी अन्य नदीमें अथवा समुद्रमें उसके मिलनेतकके प्रदेशको एक साथ लेना होगा। प्रोफेसर कूपलैण्डने गंगाको, जहाँ वे दक्षिणकी ओर मुड़ती हैं वहीं पर, उन्हें मनमाने ढंगसे काट दिया है। यदि देशके प्राकृतिक रूप और भूमिके प्रकारपर दृष्टिपात करें तो हम देखेंगे कि उत्तरी बिहार—चम्पारनका पश्चिमोत्तर और उत्तरी प्रदेश, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, मुंगेर, भागलपुर और पूर्निया जिलेके उत्तरी भागमें और बंगालके उत्तरी जिलों तथा व्यवहार्यतः सारी आसाम घाटी-में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यदि हम प्रोफेसरके कथनानुसार गंगाको दो भागोंमें विभक्त भी करें तो गंगाकी दो शाखाएँ हो जाती हैं—एक भागीरथी और दूसरी हुगली जो बंगालके पश्चिमी जिलोंमें बहती बतायी जा सकती है, पर ये प्रदेश पूर्वमें मेघना और पद्माके जलशोषक प्रदेशोंकी अपेक्षा बिहारसे अधिक मिलते हैं। इसके अतिरिक्त छोटा नागपुरसे पश्चिमी बंगालके जिलोंमें होकर बहनेवाली दामोदर नदी है जो अपनी बाढ़के कारण भीषण आपत्ति ढा देती है। जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं उसी समय भारत सरकारके एक सदस्यकी अध्यक्षतामें बिहार और बंगालकी सरकारोंके प्रतिनिधियोंकी एक बैठक इसी प्रश्नपर विचार करनेके लिए हो रही है कि बाढ़के भीषण संकटसे रक्षाके निमित्त कौनसे उपाय किये जाने चाहिएँ। प्रोफेसर कूपलैण्डकी प्रादेशिकता और प्रस्तावित विभाजनके लिए इस सम्बन्धमें गंगाके जलशोषक प्रदेश और डेल्टाके बीच कुछ कामचलाऊ समझौता करना पड़ेगा। यह समस्या स्वयं हल न हो सकेगी। बात यह है कि प्रोफेसरने जिस जिस विभाजनकी सिफारिश की है

यह पूर्णतः मनमाना है और सच पूछिये तो प्रादेशिकताका मखौल है। प्रादेशिकता यदि उचित रूपसे व्यवहृत की जाय तो उस अवस्थामें जो प्रदेश बनेंगे इससे वे सर्वथा भिन्न होंगे और उनसे प्रोफेसरके देशको चार भागोंमें विभाजित करनेके उस मूल उद्देश्यकी लेशमात्र भी पूर्ति न होगी कि दो मुस्लिम क्षेत्र शेष भारतके साथ समानताके आधारपर बना दिये जाँय।

यह बात उस समय और अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हम चौथे प्रदेश-पर विचार करते हैं। इसमें उत्तरके तीन प्रदेशोंको छोड़कर सारा भारत आ जाता है। यदि देशका इतना विस्तृत भूखण्ड जो लम्बाईमें १००० मील है और चौड़ाईमें उसका आधा है, एक प्रदेशमें आ सकता है तो कोई कारण नहीं है कि सारा देश ही एक प्रदेश न मान लिया जाय। चार प्रदेशोंमें यदि विभाजन न किया जाय तो दो गैर-मुस्लिम क्षेत्रोंके मुकाबलेमें दो मुस्लिम क्षेत्रोंके उद्देश्यकी पूर्ति और कैसे हो सकती थी? मुस्लिम क्षेत्र तो किसी भी हालतमें दोसे तीन या अधिक नहीं हो सकते। डाक्टर कूपलैण्ड जानते हैं कि दक्षिणी प्रदेशके लिए तो किसी नदीके जलशोषक प्रदेशद्वारा विभाजन करनेके लिए भी कोई बहाना नहीं रह गया है। वह तो स्पष्टतः अन्य तीन प्रदेशोंसे बची हुई भूमिवाला प्रदेश है।

विद्वान प्रोफेसरने अपने प्रदेश बाँटते समय और किसी बातकी ओर ध्यान नहीं दिया है। प्रोफेसर राधाकमल मुखर्जीने इस बातकी ओर ध्यान दिलाया है कि 'प्रादेशिक समाजशास्त्रमें प्रादेशिकताके भावका अर्थ होता है किसी प्रदेशके निवासियोंकी रहन-सहन, व्यवसाय, भाषा, परम्परा और संस्कृतिकी एकता और अखण्डता।'* 'भाषा विज्ञान और सांस्कृतिक बातोंकी उपेक्षा करना तो प्रादेशिकताके भावका मखौल उड़ाना है।'* यदि भारत अपने विभिन्न भागोंमें प्रचलित भाषा सम्बन्धी और सांस्कृतिक मतभेदोंके कारण एक राष्ट्र नहीं है तो इन मतभेदोंको रखते हुए प्रत्येक प्रदेश भारतका एक संकुचित संस्करण हो जायगा और यदि प्रदेश अपने भीतरी अन्तरोंके रहते हुए भी मिलकर काम

---

* राधाकमल मुखर्जी : 'एन एकानामिस्ट लुक्स एट पाकिस्तान', पृ० १३

चला सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि सारा भारत मिलकर अपना काम न चला सके। वस्तुतः प्रोफेसर कूपलैण्ड यह बात स्वीकार करते हैं कि उनका प्रादेशिक विभाजन किसी स्पष्ट सिद्धान्तपर आधृत नहीं है। बहुत सम्भव है कि प्रदेशोंकी विभिन्न इकाइयाँ उसमें सम्मिलित होना स्वीकार न करें। उन्हें यह आशा है कि सिन्ध और डेल्टा प्रदेशोंकी इकाइयोंको प्रदेशोंमें सम्बद्ध होनेमें कोई कठिनाई न होगी परन्तु गङ्गाके जलशोषक प्रदेश और दक्षिणी प्रदेशमें कठिनाई उत्पन्न होनेकी आशङ्का है। यदि एक बार भी ऐसी कठिनाई उपस्थित हो जाय तो दो मुस्लिम देशोंके दो गैर-मुस्लिम प्रदेशोंसे मुकाबला करनेकी बात ही असम्भव हो जायगी। किन्तु बिना निराश हुए प्रोफेसर यह सुझाव पेश कर देते हैं कि अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रमें प्रतिनिधित्वके लिए बादवाले दो प्रदेशोंकी इकाइयोंको, बिना यह देखे कि वे प्रदेशोंमें सम्मिलित होती हैं अथवा नहीं, यह मान लेना चाहिए कि वे दोनों प्रदेशोंमें शामिल हैं।

चार प्रदेश बनाते समय प्रोफेसर कूपलैण्डने न तो प्रदेशके छोटे या बड़े क्षेत्रकी ओर कोई ध्यान दिया है और न जनसंख्याकी ओर। नकशेसे स्पष्ट है कि डेल्टा जिसका क्षेत्रफल देशी रियासतोंको लेकर १५६·९६ वर्गमील है और उनको छोड़कर १३२·३९ वर्गमील है, गङ्गा नदीके जलशोषक प्रदेश और दक्षिणी प्रदेशके समान मान लिया गया है जिनका क्षेत्रफल देशी रियासतोंको लेकर और छोड़कर क्रमशः ३११·८० और ५३९·२५ वर्गमील अथवा २८०·२० और ३०२·७९ वर्गमील है। जनसंख्याका अन्तर तो इससे भी अधिक है। सिन्ध नदीके जलशोषक प्रदेशमें देशी रियासतोंको लेकर और छोड़कर जहाँ ६१२·५ अथवा ३७०·८ लाख जनसंख्या है और उसी क्रमसे डेल्टा प्रदेशमें ७३५·० लाख अथवा ७०५·१ लाख जनसंख्या है वहाँ गङ्गाके जलशोषक प्रदेशमें क्रमशः ११६५·५ लाख अथवा १०००·९ लाख जनसंख्या है और दक्षिणी प्रदेशोंमें क्रमशः १३६८·२ लाख अथवा ८७१·८ लाख जनसंख्या है। यदि हम विभिन्न प्रदेशोंमें मुस्लिम और गैर-मुस्लिम जनसंख्याका अनुपात लगायें तो वह और भी महत्वपूर्ण प्रतीत होगा। यदि हम ब्रिटिश

भारत और देशी रियासतोंके मुसलमानोंको एक साथ मिलाकर देखें तो सिन्ध और डेल्टा प्रदेशोंमें हमें मुसलमानोंका अनुपात नाममात्रके बहुमतमें अर्थात् ५२·० प्रतिशत और ५०·१ प्रतिशत मिलता है जब कि शेष दोनों गैर-मुस्लिम प्रदेशोंमें ४८·० प्रतिशत और ४९·९ प्रतिशत मिलता है। यदि हम केवल ब्रिटिश भारतको लें तो सिन्ध और डेल्टा प्रदेशोंमें मुसलमानोंका बहुमत ६१·३ और ५१·६ प्रतिशत मिलता है और गैर-मुस्लिम प्रदेशोंमें क्रमशः ६८·७ और ४८·४ प्रतिशत। मुस्लिम प्रदेशोंमें मुसलमानोंके नाममात्रके इस बहुमतके विरुद्ध गङ्गाके जलशोषक प्रदेश और दक्षिणी प्रदेशको यदि हम देखें तो हम वहाँपर देशी रियासतोंको लेकर गैर-मुसलमानोंका अत्यधिक बहुमत ८८·० और ९१·८ प्रतिशत पाते हैं और वहाँपर मुसलमानोंका अनुपात केवल १२·० और ८·२ प्रतिशत है। केवल ब्रिटिश भारतमें गैर-मुशलमानोंका अनुपात क्रमशः ८६·८ और ९२·५ प्रतिशत है तथा मुसलमानोंका केवल १३·२ और ७·५ प्रतिशत।

यह सारा अनौचित्य, सारी अव्यवस्था केवल इसीलिए सहन कर लेनी होगी कि दो मुस्लिम प्रदेशोंके मुकाबलेमें दो गैर-मुस्लिम प्रदेश रखने हैं। यदि यही उद्देश्य है तो इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक अच्छा, स्पष्ट और उचित होगा कि मुस्लिम और गैर-मुस्लिम प्रान्तों और राज्योंमें अन्य किन्हीं बातोंका कोई भी खयाल किये बिना पद और अधिकारोंमें समानता होनी चाहिए, भार और उत्तरदायित्वकी कोई बात नहीं। प्रादेशिकता अथवा आर्थिक सुविधाकी नकाबका पर्दा इतना पतला है कि वह न तो मुसलमानोंको धोखा दे सकता है और न गैर-मुसलमानोंको।

प्रोफेसर कूपलैण्डने जिस विधानकी सिफारिश की है उससे स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाती है। अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रकी जो व्यवस्थापक कौंसिल होगी उसके सदस्योंका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न होगा प्रत्युत वे अपने शासनादेशोंके अनुसार अपने अपने प्रदेशके प्रतिनिधिका ही काम करेंगे। केवल व्यवस्थापिका सभाके सदस्योंके सम्बन्धमें ही नहीं, यह बात शासन परिषद्के सदस्योंके भी

सम्बन्धमें लागू होगी। वे भी अपने अपने प्रदेशोंका प्रतिनिधित्व करेंगे। प्रोफेसरके मस्तिष्कमें यह बात नहीं आती कि यदि किसी विधानमें बारबार गत्यवरोधकी नौबत आ सकती है तो वह उन्हीं द्वारा प्रस्तावित विधान हो सकता है। अन्य विधानोंमें ऐसे गत्यवरोधोंकी आशङ्का और उसका प्रतिकार रहता है। प्रोफेसर कूपलैण्डके विधानमें गत्यवरोधोंके लिए द्वार तो खुला ही है, उनका होना अनिवार्य है फिर भी उन्होंने गत्यवरोधोंके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं बताया है।

जब यह बात पूर्णतः स्पष्ट कर दी गयी है कि केन्द्रमें जिन लोगोंको काम करना है उन्हें आपसमें परामर्श करके ऐसा कार्य नहीं करना है जो वे स्वयं सर्वोत्तम और उचित समझते हैं किन्तु उस ढंगसे कार्य करना है जो उनसे हजारों मील दूर बैठे उनके प्रदेशके लोग, जिन्हें कभी आपसमें विचार-विनिमय और परामर्श करनेका अवसर नहीं मिला है, सर्वोत्तम और उचित समझते हैं— तो यह आशा करना सर्वथा निराधार है कि केन्द्रमें एक साथ मिलकर कार्य करनेसे ऐक्य होना सम्भव हो सकेगा। उस समयतक साथ मिलकर कार्य करनेका कोई अर्थ ही नहीं होता जब साथ काम करनेवाले व्यक्ति मिलकर कार्य नहीं करते प्रत्युत यन्त्रपरिचालित रूपमें कार्य करते हैं, और जिनके हाथमें उनका परिचालन रहता है वे उनसे बहुत दूरपर बैठे रहते हैं। इसके अतिरिक्त ऐक्यकी उस समयतक कोई आशा ही कैसे रखी जा सकती है जब इकाइयोंमें मुसलमान और गैर-मुसलमानकी भावना ठूँस ठूँसकर भरी जाती है और तदनुसार उन्हें कार्य करनेके लिए कहा जाता है तथा किसी भी कोनेसे राष्ट्रीयताका लेशमात्र भी प्रकाश नहीं आने दिया जाता।

मुस्लिम और गैर-मुस्लिम प्रदेशोंको पद और अधिकारमें समानता दिलाना ही इस विधानका अभीष्ट है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य किसी पहलूपर विचार करना ही व्यर्थ है। इसमें कहीं भी इस बातकी सिफारिश नहीं की गयी कि पद और अधिकारकी इस समानताके अनुरूप चारो प्रदेशोंमें उत्तरदायित्व और भारमें भी समानता रहेगी। वस्तुतः इससे इसके प्रतिकूल ही अर्थ निकलता

है। कहा गया है कि रक्षा-विभागके अतिरिक्त अन्तर्प्रादेशिक केन्द्रके कार्य-सञ्चालनके लिए अधिक व्ययकी आवश्यकता न पड़ेगी। वर्तमान युद्धके पूर्व रक्षा-विभागका व्यय जकातद्वारा पूरा कर लिया जाता था और युद्धके उपरान्त भी यदि यही नियम रहा तो यह कल्पना की गयी है कि इसमें कोई विशेष कठिनाई न होगी। विद्वान प्रोफेसरने इस सम्बन्धमें इस बातपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझी है कि भूतकालमें विभिन्न प्रदेश इस उद्देश्यसे कितना कर देते रहे हैं और भविष्यमें उन्हें कितना देना होगा। वे इतना ही कहकर सन्तुष्ट हो गये हैं कि सरकारी आमदनी खर्च करनेमें मुस्लिम प्रदेश गैर-मुस्लिम प्रदेशोंके समान ही रहेंगे और गैर-मुस्लिम प्रदेश, मजेमें सरकारी आमदनीका अधिकांश दिया करेंगे और इस कार्यमें मुस्लिम प्रदेश उनकी समानता न करेंगे। ऐक्य उत्तम वस्तु है परन्तु अत्यधिक मूल्य चुकाकर यह किन्हीं भी शर्तोंपर खरीदना चाहिए!

३

सर सुलतान अहमदकी योजना

तीसरी योजना सर सुलतान अहमदने 'ए ट्रीटी बिट्वीन इण्डिया एण्ड दि युनाइटेड किंगडम' नामक अपनी पुस्तकमें उपस्थित की है। पाकिस्तानके प्रस्तावपर विचार करनेके उपरान्त वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि 'यदि पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर पाकिस्तान स्वतन्त्र प्रभु राज रहेंगे और उनका शेष भारतके साथ कोई वैधानिक सम्बन्ध न रहेगा तो व्यवहार्यतः वे असफल होंगे। कारण, न तो उनकी सैनिक सुरक्षा ही रहेगी और न उनकी आर्थिक स्थिरता ही रहेगी। उनकी असफलताका एक कारण यह भी रहेगा कि वे शेष भारतके मुसलमानोंको शान्ति और न्याय दिलानेमें भी समर्थ न होंगे। अतः अन्य विकल्प खोजने और उनपर विचार करनेकी आवश्यकता है। ऐसा करते समय

हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि हमें भारतके उन भयाक्रान्त मुसलमानोंको सन्तुष्ट करना है जो जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें हिन्दूप्रभुत्वसे भयभीत रहते हैं।* इसलिए आप अपनी योजना उपस्थित करते हैं और इस बातका दावा करते हैं कि यह योजना व्यवहार्य तथा भारतकी वर्तमान विचित्र स्थितिमें अनुपयुक्त नहीं है। आपकी योजना ब्रिटिश सरकारके क्रिप्स प्रस्तावपर आधृत है। आपकी योजनामें भारतका संयुक्त राज बनानेकी बात है जिसमें कितनी ही इकाइयाँ सम्मिलित रहेंगी। वे सब संघराज होंगी और उनका अपना एक केन्द्र रहेगा। इन इकाइयोंकी सीमामें जहाँ आवश्यक समझा जायगा परिवर्तन किया जा सकेगा। पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर प्रान्तोंकी, आवश्यकतानुसार सीमापरिवर्तनके साथ ऐसी दो इकाइयाँ बन जायँगी जिनमें मुसलमानोंका बहुमत पर्याप्त रूपमें बढ़ जाय। सभी भीतरी मामलोंमें इन इकाइयोंको पूर्ण स्वशासनाधिकार रहेगा और इनकी प्रभुसत्ता होगी। बाहरी मामलोंमें उनकी स्वतन्त्रतामें केवल उतने ही अधिकारोंकी कमी रहेगी जितने अधिकार वे सभी इकाइयोंसे समझौता करके संयुक्त राजको प्रदान कर देंगी।

(१) **अधिकार :** केन्द्रको इन विषयोंमें अधिकार रहेंगे—रक्षा, परराष्ट्र सम्पर्क, मुद्रा, जकात, रेडियो, विमान, यातायात, रेल, जहाजरानी, डाक और तार। अवशिष्ट अधिकार प्रान्तोंको रहेंगे।

(२) **संघ असेम्बली :** संघ असेम्बलीमें ४३ प्रतिशत मुसलमान, ४० प्रतिशत हिन्दू और १० प्रतिशत दलित रहेंगे। शेष १० प्रतिशतमें भारतीय ईसाई, एंग्लो इण्डियन, सिख, पारसी आदि रहेंगे। इससे बहुमत अधिक परिवर्तनशील बन सकेगा और वह विभिन्न दलोंके सक्रिय सहयोगपर निर्भर करेगा। इसमें हिन्दुओंको भी बहुमत प्राप्त करनेका अवसर रहेगा और मुसलमानोंको भी। बहुमत इतना संकुचित भी रहेगा कि वह विरोधी दलके सहयोग और सद्भावपर निर्भर करेगा।

---

* **सर सुलतान अहमद : 'ए ट्रीटी बिटवीन इण्डिया एण्ड दि युनाइटेड किंगडम', पृष्ठ ८८**

(३) विधान निर्मात्री परिषद् : विधान निर्मात्री परिषद्का संघटन इस प्रकार होगा :—ऊपर हिन्दू और मुसलमानोंके लिए ८० स्थान बताये गये हैं । ये ८० स्थान ४० दुहरे निर्वाचन क्षेत्रोंसे एक-एक हिन्दू और एक-एक मुसलमान सदस्य लेकर पूरे किये जायँगे। प्रत्येक निर्वाचनक्षेत्र ५०० मण्डलोंमें विभक्त किया जायगा। प्रत्येक मण्डलमें ऐसे बालिग मुसलमानों और बालिग हिन्दुओंके पृथक् पृथक् रजिस्टर रखे जायँगे जो शिक्षित होंगे अथवा जिनका अपना मकान होगा या जो कोई कर देते होंगे । ऐसे मण्डलोंमें ऐसे मुसलमान और हिन्दू मतदाता अपना एक-एक प्रतिनिधि चुनेंगे । इस प्रकार प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्रमें पृथक् निर्वाचन पद्धतिसे ५०० मुसलमान और ५०० हिन्दू चुने जायँगे। ये १००० मुसलमान और हिन्दू संयुक्त निर्वाचन पद्धतिद्वारा एक मुसलमान और एक हिन्दू सदस्य चुनेंगे । दलितवर्ग तथा अन्य लोगोंके प्रतिनिधि चुननेके लिए भी इसी प्रकारकी पद्धति काममें लायी जा सकती है । इस प्रकार संघटित असेम्बलियोंके दस प्रतिशत अथवा पाँच प्रतिशत सदस्योंको लेकर विधाननिर्मात्री परिषद् संघटित हो सकती है ।

(४) शासन परिषद् : (क) शासन परिषद्में साम्प्रदायिक अनुपात वही रहेगा जो असेम्बलीमें रहेगा । (ख) शासन परिषद् असेम्बलीके प्रति उत्तर-दायी रहेगी । (ग) प्रधान मन्त्री क्रमानुसार मुसलमान और गैर-मुसलमान रहेगा । (घ) प्रधान मन्त्रीके मुसलमान रहनेपर उपप्रधान मन्त्री हिन्दू रहेगा और हिन्दू प्रधान मन्त्री रहनेपर उपप्रधान मन्त्री मुसलमान रहेगा । (ङ) प्रधान सेनापति यदि गैर-मुसलमान रहेगा तो रक्षा-सदस्य मुसलमान रहेगा और प्रधान सेना पतिके मुसलमान रहनेपर रक्षा-सदस्य गैर-मुसलमान । (च) संयुक्त उत्तरदायित्वकी परम्परा रहेगी । सिद्धान्तकी बात छोड़ भी दें तो भी यह उपाय ऐसे संरक्षणका कार्य करेगा कि इसके कारण किसी सम्प्रदायकी स्वीकृतिके बिना उससे सम्बन्धित कोई निर्णय न किया जा सकेगा । कारण, सम्बन्धित सम्प्रदायके मन्त्री पदत्याग कर देंगे और मन्त्रि-मण्डल भङ्ग हो जायगा ।

(५) मुल्की विभागकी नौकरियाँ : जहाँतक सम्भव होगा वहाँतक

मुल्की विभागकी नौकरियोंमें भी वही अनुपात रहेगा। उसमें योग्यताका भी विचार रखा जायगा। उन्नति प्रायः योग्यता और अधिक कार्यकालके क्रमके अनुसार होगी।

(६) सार्वजनिक संस्थाएँ : सभी स्वशासित संस्थाओं, कारपोरेशनों, म्युनिसिपल कौंसिलों, विभिन्न बोर्डों और कमीशनोंमें भी उपरिलिखित साम्प्रदायिक अनुपात रहेगा।

(७) सेनामें नौकरियाँ : सेनामें काम करनेवाले सैनिकोंमें ५० प्रतिशत मुसलमान रहेंगे और ५० प्रतिशत गैर-मुसलमान।

(८) संरक्षणकी धाराएँ : इस सम्बन्धमें कांग्रेसद्वारा घोषित सैद्धान्तिक अधिकारों और अल्पमतवालेके अधिकारोंकी तथा श्री जिनाकी १४ शर्तोंका जिक्र किया जा सकता है जिनमें (क) धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तथा (ख) राजनीतिक और शासन सम्बन्धी संरक्षणोंकी माँग की गयी है। (क) के सम्बन्धमें आपत्तिजनक अंश मिलाकर 'वन्दे मातरम्' गान और इकबालका गान सरकारी तौरपर एक साथ स्वीकार किया जा सकता है। कांग्रेसके राष्ट्रीय झण्डेपर मुस्लिम चिह्न भी अङ्कित किया जाय। गायकी कुर्बानीकी छूट रहे परन्तु उसका कोई प्रदर्शन न किया जाय। अजाँके कारण किसीको कोई कठिनाई न बोध हो। मसजिदके आगे बाजा बन्द कर दिया जाय तथा उसके बदलेमें हिन्दुओंके जुलूसोंमें कोई बाधा न डाली जाय। बाद-विवादसे बचनेके लिए केन्द्रमें अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपिका व्यवहार किया जाय। प्रान्तोंमें अंग्रेजी भाषाके उपयोगकी अनुमति दी जा सकती है। (ख) में किसी प्रान्तमें प्रादेशिक पुनर्विभाजनद्वारा मुस्लिम बहुतको प्रभावित करने, मुसलमानोंको व्यक्तिगत कानून और संस्कृतिके संरक्षणके लिए वैधानिक आश्वासन देने और सरकारी तथा स्थानीय संस्थाओंकी नौकरियोंमें साम्प्रदायिक अनुपातके लिए कानून बनानेकी बात आती है। पाकिस्तानका इरादा रद कर देनेपर पहली बातका प्रश्न ही नहीं उठता। अन्य बातें स्वीकार कर लेनी चाहिए। इस बीच और कोई शिकायत उठ खड़ी हो तो उसका भी निपटारा हो जाना चाहिए।

(९) संरक्षणोंका पक्का आश्वासन : ब्रिटिश सरकारके क्रिप्स प्रस्तावमें अल्पसंख्यकोंके सम्बन्धमें ब्रिटेनके आश्वासनकी व्यवस्था थी। भारत ऐसे किसी ब्रिटिश या विदेशी आश्वासनको केवल तभी अस्वीकार कर सकता है जब भारतवासियोंके हृदयमें भारतके संयुक्त राजको प्रभुसत्ताके लिए वही आदर हो तथा अपने पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्यमें वैसा ही विश्वास हो जिसके बलपर वह संरक्षणोंका वैसा ही पक्का और प्रभावकर आश्वासन दे सके जैसा विदेशी सत्ता देती। 'यदि ऐसा हो तो हम अपने देशके कानूनमें विश्वास करेंगे और तब हम अपनी शिकायतोंकी अपीलका फैसला इकाइयोंकी अदालतों अथवा संयुक्त राजके सर्वोच्च न्यायालय अथवा अन्तमें अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयसे करावेंगे।'

(१०) सांस्कृतिक संरक्षण : धार्मिक विश्वासों, धार्मिक संस्थाओं, शिक्षण संस्थाओं और धर्मार्थ संस्थाओंको स्वतन्त्रता सम्बन्धी सांस्कृतिक संरक्षण इस्टोनियाके सांस्कृतिक स्वशासन कानूनके ढङ्गपर दिये जा सकते हैं। इकाइयोंमें अल्पसंख्यकोंके धार्मिक, सामाजिक और शिक्षण अधिकारों तथा संस्थाओंकी रक्षा और शासनके लिए सांस्कृतिक कौंसिलें स्थापित की जा सकती हैं।

(११) राजनीतिक संरक्षण : यदि कोई सम्प्रदाय किसी बिलको अपने लिए हानिकर बतावे तो उसपर उस समयतक कोई कारवाई न की जाय जबतक उक्त सम्प्रदायके कमसे कम तीन चौथाई व्यक्ति उसके लिए सहमति न प्रकट करें।

(१२) सिख सम्प्रदायसे सम्बन्धित प्रस्ताव केवल पञ्जाब असेम्बलीमें उपस्थित किये जायँ और उन्हें उपरिलिखित (११) पैरॉ में वर्णित राजनीतिक संरक्षण प्राप्त रहें।

(१३) पारसी सम्प्रदायसे सम्बन्धित प्रस्ताव केवल बम्बई असेम्बलीमें उपस्थित किये जायँ और उन्हें भी उपरिलिखित (११) वें पैरॉमें वर्णित राजनीतिक संरक्षण प्राप्त रहें।

इकाइयाँ

संघबद्ध राज्योंकी असेम्बलियोंमें, तथा शासन विभाग और सरकारी नौकरियोंमें प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमें निम्नलिखित समुदायोंपर विचार किया जा सकता है—

(क) प्रतिनिधित्वके अल्पसंख्यक दल यदि चाहेंगे तो पृथक् निर्वाचन पद्धति बनाये रखे जा सकते हैं परन्तु केन्द्रमें अपने प्रतिनिधित्वके लिए उन्हें उसी पद्धतिका आश्रय लेना चाहिए जिसके लिए 'विधान निर्मात्री परिषद्' शीर्षक पैरॉमें सिफारिश की गयी है।

(ख) इस समय विभिन्न प्रान्तोंमें अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधियोंकी जितनी संख्या है उसे वे यदि चाहें तो बनाये रख सकते हैं परन्तु बङ्गालमें यूरोपियन प्रतिनिधियोंको संख्यामें पर्याप्त कमी हो जानी चाहिए।

(ग) आवश्यकता प्रतीत हो तो इकाइयोंकी सीमामें परिवर्तन कर दिये जायँ परन्तु वह परिवर्तन इस ढङ्गका न हो जिससे कोई बहुसंख्यक दल अल्पसंख्यक दलमें परिवर्तित हो जाय।

(घ) यथासम्भव और योग्यताको ध्यानमें रखते हुए शासन विभाग तथा सरकारी नौकरियोंमें भी साम्प्रदायिक अनुपात वही रखा जाय जो असेम्बलियोंमें रहे।

(ङ) उपरिलिखित (४), (५), (६), (८), (९), (१०), (११), और (१२) पैरॉ जब इकाइयों और विशेषतः अल्पसंख्यकोंपर लागू हो सकते हों तब उनपर लागू किये जायँ।

एक और विकल्प सुझाया गया है। केन्द्रमें हिन्दुओं और मुसलमानोंको क्रमानुसार ५१ प्रतिशत बहुमत प्रदान करके समताकी व्यवस्था की जा सकती है। ऐसा करनेसे मत प्राप्त करनेके लिए की जानेवाली चालबाजियाँ मिट जायँगी और एक दूसरेको समझने तथा संयुक्त रूपसे, मिलकर कार्य करनेके लिए अत्यधिक उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत हो सकेगा। जब एक पक्षको यह

ज्ञात रहेगा कि हम यदि अपरपक्षके प्रति अभी अन्याय करेंगे तो दूसरी बार अपर-पक्षको जैसे ही अवसर हाथ लगेगा वह हमें पत्थरका जवाब पत्थरसे देगा, तब कोई पक्ष किसीके प्रति अन्याय न कर सकेगा। इस विकल्पमें यह दोष है कि ४०—४० प्रतिशत प्रतिनिधित्ववाली योजनामें अन्य अल्पसंख्यकोंके हाथमें शक्ति-सन्तुलनका जो अधिकार रहेगा वह सर्वथा जाता रहेगा।

सर सुलतान अहमदकी उपरिलिखित योजना स्पष्ट है। इसमें अपना वास्तविक उद्देश्य स्पष्टतः प्रकट कर दिया गया है, इसमें प्रादेशिकता अथवा अन्य किसी वादके पर्देमें छिपाकर अपनी बात नहीं कही गयी है। अतः इसपर ध्यानपूर्वक विचार करना आवश्यक है। मुस्लिम लीगके विचारोंको माननेवाले व्यक्तियोंको छोड़कर ब्रिटिश भारतमें कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा, जो संघ-योजनाके विरुद्ध न हो। देशमें केवल मुस्लिम लीग ही ऐसी संस्था है जिसने किसी भी रूपमें किसी भी प्रकारकी संघ-योजनाको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया है। केन्द्रकी सत्ता और अधिकारके अन्तर्गत आनेवाले विषयोंके सम्बन्धमें कोई समझौता करनेमें भी कोई अजेय कठिनाई उपस्थित नहीं हो सकती। सर सुलतान अहमदने अपनी सूचीमें जो विषय दिये हैं उनमें केवल एक महत्वपूर्ण विषय छूटा है जिसपर लोगोंका मतभेद हो सकता है। वह है—व्यापक पैमानेपर योजना बनाने और उसे व्यवहृत करनेका विषय। किन्तु यह विषय ऐसा नहीं है जिसपर कोई समझौता होना असम्भव हो। अगस्त १९४२ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, जिसकी कि सरकार और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके अध्यक्षने अत्यन्त कटु आलोचना की है, उसके उपरान्त इस बातपर कोई भी कांग्रेसजन आपत्ति नहीं कर सकता कि अवशिष्ट अधिकार प्रान्तोंको प्रदान किये जायँ।

योजनाकी शेष बातें कुछ कल्पनाओंपर आधृत हैं। मूल कल्पना यह है कि हिन्दू, जोकि बहुसंख्यक हैं, मुसलमानोंको कुचलनेके उद्देश्यसे ही सदासे कार्य करते आ रहे हैं, अब भी ऐसा ही कर रहे हैं और भविष्यमें भी ऐसा ही करेंगे। अतः यह आवश्यक है कि भावी शासन विधानकी योजना इस ढङ्गकी बनायी

जाय जिससे उनका अत्याचार करना असम्भव हो जाय। हिन्दुओंपर तीनों ओरसे आक्रमण होता रहा है और उसके लिए सर सुलतान अहमद अवश्य ही उत्तरदायी नहीं हैं। प्रथम आक्रमण तो दलितवर्गोंको हिन्दुओंसे पृथक् कर उनकी जनसंख्याका अनुपात कम करनेकी चेष्टाद्वारा हुआ है। द्वितीय आक्रमण आदिवासियोंको हिन्दुओंसे पृथक् करनेकी चेष्टाद्वारा हुआ है। मानव विज्ञानके अधिकारी आचार्योंतकने यह बात स्वीकार की है कि आदिवासियोंकी गणना हिन्दुओंमें की जानी चाहिए। इस प्रकार हिन्दुओंका अनुपात और अधिक कम किया गया है। हिन्दुओंके इतने घटाये हुए अनुपातको और अधिक घटाये जानेका अन्तिम प्रयत्न विधानद्वारा किया जा रहा है। इस भाँति असेम्बली, शासन व्यवस्था और सरकारी नौकरियोंमें हिन्दुओंको उचित प्रतिनिधित्वसे वञ्चित करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। सर सुलतान अहमदका प्रस्ताव है कि १३·५० प्रतिशत दलितवर्गों और ५·६५ प्रतिशत आदिवासियोंको पृथक कर देनेसे हिन्दू सारी जनसंख्याका ५१·० प्रतिशत रह जाते हैं, उन्हे भी केन्द्रमें ४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जाय और मुसलमानोंको भी ४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जाय जो कि जनसंख्याका केवल २६·८३ प्रतिशत हैं। यहाँतक कि दलितवर्गोंका प्रतिनिधित्व भी, जिनकी बड़ी हिमायत करनेका मुसलिम लीग दावा करती है, घटाकर १० प्रतिशत कर दिया गया है। इस सम्बन्धमें कुछ ही समय पूर्वकी ऐतिहासिक घटनाएँ दे देना अनुचित न होगा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुसलिम लीगमें लखनऊमें जो समझौता हुआ उसमें उन प्रान्तोंके मुसलमानोंको पर्याप्त प्रतिनिधित्व देनेका निर्णय किया गया जहाँ वे अल्पसंख्यक थे। इस भाँति युक्तप्रान्त और मद्रास प्रेसीडेन्सीमें, जहाँ उनकी आबादी क्रमशः १४ और ६·१५ प्रतिशत थी, उन्हें ३० और १५ प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया गया। बिहार और उड़ीसामें, जहाँ उनकी आबादी १० और ११ प्रतिशत थी, उन्हें २५ प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिला। किन्तु बंगाल और पंजाबमें, जहाँ बहुसंख्यक थे और उनकी आबादी ५१·३ और ५१ प्रतिशत थी, उन्हें

क्रमशः ५० और ४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिला। यह समझौता ब्रिटिश सरकारने स्वीकार कर लिया और तदनुसार १९२० के विधानमें यह समझौते-द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधित्व मान लिया गया। पर मुसलमान इससे असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि यह इसलिए अनुचित है कि इसमें उन प्रान्तोंके मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वका अनुपात कम कर दिया गया है जहाँ वे बहुसंख्यक हैं। उन्होंने यह माँग की कि वे जहाँपर बहुमतमें हैं वहाँ ऐसा न हो कि उनका प्रतिनिधित्व बहुमतसे घटाकर अल्पमत अथवा समान भी कर दिया जाय। अब तख्ता एकबारगी ही उलट दिया गया है और अब वे ही व्यक्ति जो मुसलिम लीगके दृष्टिकोणसे सहानुभूति रखते हैं बड़ी गम्भीरतापूर्वक इस ढंगकी योजनाएँ उपस्थित करते हैं जिनसे बहुमतवाला हिन्दू सम्प्रदाय घटकर असहाय अल्पमत बन जाय। हिन्दुओंका जहाँ बहुमत है जैसे सारे भारतवर्षमें, वहाँ बहुमतका शासन बुरा और निन्दनीय है परन्तु जहाँ मुसलमान बहुमतमें हैं जैसे उत्तर-पश्चिम और पूर्वी क्षेत्रमें, वहाँ बहुमतका शासन अच्छा है। सर सुलतान अहमदने केन्द्रमें प्रतिनिधित्वका जिस रीतिसे विभाजन किया है वह इन्हीं विचारोंपर आधृत है। हिन्दू बहुमत घटाकर ४० प्रतिशत कर दिया गया है और मुसलिम प्रतिनिधित्व बढ़ाकर ४० प्रतिशत कर दिया गया है ताकि दोनों समानताकी श्रेणीमें आ जायँ। सर सुलतान अहमद अपनी योजनाको यह विशेषता बताते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच शक्ति सन्तुलन अल्पसंख्यकोंके हाथ रहेगा।

असेम्बलीमें ही इस शक्ति सन्तुलनका अन्त नहीं हो जाता। शासन व्यवस्था और सरकारी नौकरियोंकी नियुक्तिमें भी यह सारी योजना प्रविष्ट हो जाती है। कहीं कहीं तो वह इससे भी आगे बढ़ जाती है। इसमें कहा गया है कि प्रधान मन्त्री क्रमानुसार एक मुसलमान और एक गैर-मुसलमान होगा। गैर मुसलमानमें ईसाई, सिख, पारसी, आदिवासी, दलित तथा वे अन्य सब लोग आ जाते हैं जो मुसलमान नहीं हैं। इसमें हिन्दू भी आते हैं। योजनाके अन्तर्गत विधानमें ही ऐसी व्यवस्था रखी गयी है कि किसी निश्चित समयके

उपरान्त मुसलमान प्रधान मन्त्री होगा किन्तु हिन्दू सर्वथा असहायावस्थामें छोड़ दिये गये हैं और यदि मुसलमान तथा अन्य अल्पसंख्यक दल मिल जायँ तो यह सम्भव है कि हिन्दूके प्रधान मन्त्री बननेका कभी अवसर ही न आये। यह कहा जा सकता है कि ऐसी कल्पना अनुचित है कि अल्पसंख्यक दल मिलकर कभी हिन्दू प्रधान मन्त्री न बनने देंगे। किन्तु इसके विरुद्ध यह कल्पना क्या कम अनुचित है कि हिन्दू और गैर-मुसलिम दल मिलकर यह प्रयत्न करेंगे कि कोई मुसलमान कभी प्रधान मन्त्री न बनने पाये? यदि एक कल्पना सम्भव है तो दूसरी भी कम सम्भव नहीं। यदि हिन्दू और गैर-मुसलमान मिलकर मुसलमान प्रधान मन्त्री न बनने देंगे तो यह भी उसी भाँति सम्भव है कि मुसलमान और अन्य अल्पसंख्यक मिलकर हिन्दू प्रधान मन्त्री न बनने देंगे। यह अच्छी बात है कि सर सुलतान अहमदने प्रधान मन्त्रित्व अन्य सबको पृथक् करके केवल हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए सुरक्षित नहीं रखा है। इसी भाँति यदि प्रधान सेनापति गैर-मुसलमान होगा तो रक्षा-सदस्य मुसलमान होगा और प्रधान सेनापतिके मुसलमान होनेपर रक्षा-सदस्य गैर-मुसलमान। यदि मुसलमान तथा अन्य अल्पसंख्यक दल मिल जायँ तो इन दोनोंपर भी किसी हिन्दूकी नियुक्ति होना असम्भव है। इन सब बातोंसे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि वैधानिक चालोंद्वारा मुसलिम अल्पमतके हितोंकी रक्षा और संरक्षणका उद्देश्य तो कम है, हिन्दू बहुमतको कष्ट देने, पीड़ित करने और कुचलनेका उद्देश्य अधिक है।

सर सुलतान अहमदकी योजनामें पैरा ६ में वर्णित सार्वजनिक संस्थाओं सम्बन्धी धाराका कोई अर्थ नहीं निकलता। क्या इसका अर्थ यह है कि सभी कारपोरेशनों, म्युनिसिपल कौंसिलों, लोकल बोर्डों आदिमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका ४०-४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व रहेगा चाहे जनसंख्याके अनुसार उनका अनुपात कुछ भी क्यों न हो? साथ ही क्या यही व्यवस्था सभी प्रान्तोंमें रहेगी? यह सुझाव सर्वथा लचर है और मैं समझता हूँ कि सर सुलतान अहमदने इसके सभी पहलुओंपर भलोभाँति विचार किये बिना ही इसे दे दिया

है । यह बात बिलकुल नहीं जँचती कि उन्होंने गम्भीरतापूर्वक ऐसा सुझाव रखा हो कि उड़ीसाकी किसी म्युनिसिपलिटी अथवा लोकल बोर्डमें, जहाँ कि मुसलमानोंकी आबादी १ अथवा १·५ प्रतिशतसे अधिक नहीं है, मुसलमानोंको ४० प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जाय ।

भारतीय सेनामें ५० प्रतिशत मुसलमान और ५० प्रतिशत गैर-मुसलमान भरती करनेका भी यह अर्थ हो सकता है कि यदि सेनामें एक भी हिन्दू न भरती किया जाय तो यह कार्य अवैधानिक अथवा गैरकानूनी न कहा जा सकेगा । बहुत सम्भव है कि उसमें मुसलमानोंके अतिरिक्त केवल सिख, ईसाई और दलित ही रखे जायँ । यह कहा जा सकता है कि सर सुलतान अहमदका उद्देश्य यह नहीं है, किन्तु मैं यहाँपर उनकी भाषाका ही अर्थ दे रहा हूँ । सर सुलतान अहमद जैसी स्थितिवाले व्यक्तिसे विशेषतः तब जब मुसलमानोंके अधिकारोंके सम्बन्धमें उनके शब्द सर्वथा स्पष्ट हैं, सर्वसाधारण अधिक सरल और स्पष्ट भाषाकी अपेक्षा रखते हैं ।

धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरक्षणोंके सम्बन्धमें सर सुलतान अहमदकी योजनामें जो सुझाव उपस्थित किये गये हैं उनकी बारीकियोंमें जाना व्यर्थ है । केवल इस बातकी ओर इंगित कर देना ही पर्याप्त है कि योजनामें जहाँ गायकी कुर्बानीमें और अजाँमें हस्तक्षेपकी मनाही की गयी है वहाँ यह कहा गया है कि हिन्दू जुलूस यदि उपद्रवसे त्राण पाना चाहते हैं तो मसजिदके सामने बाजा बन्द करके शान्ति खरीदें ।

भाषा और लिपिकी पेचीदी और वादविवादपूर्ण समस्याको आप केन्द्रमें अंग्रेजी भाषा और रोमनलिपिके उपयोगकी सलाहद्वारा सुलझा लेते हैं और प्रान्तोंको प्रान्तीय भाषाओंका व्यवहार करनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ देते हैं ।

मैंने सर सुलतान अहमदकी योजनाकी उन बातोंकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिलाया है जो एकाङ्गी जान पड़ती हैं और जिनमें हिन्दुओंके प्रति अन्याय किया गया है । किन्तु इसका यह अर्थ लगाना अनुचित होगा कि मैं यह समझता हूँ कि उसमें कोई बात ऐसी है ही नहीं जिसके आधारपर बात चलायी

जाय अथवा इसमें उठाये गये प्रश्नोंपर शान्त वातावरणमें पक्षपातशून्य दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसमें सुधारकी कोई गुञ्जाइश ही नहीं है।

४

सर अर्देशीर दलालकी योजना

मई १९४३ में सर अर्देशीर दलालने 'एन आल्टरनेटिव टु पाकिस्तान' शीर्षक कुछ लेख समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित कराये थे जिसमें उन्होंने कहा था कि 'भारत पर्वत और समुद्रद्वारा निर्धारित सीमासहित केवल भौगोलिक इकाई ही नहीं है, अपितु वह अनादिकालसे एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक इकाई भी है। यह ऐक्य सांस्कृतिक परम्परा और व्यवहारद्वारा असख्य पीढ़ियोंसे चला आ रहा है। जो लोग यहाँ आकर बसे अथवा जिन्होंने यहाँ विजय प्राप्तकर भारतको अपना निवास बनाया वे अपनी सहनशीलता और स्थितिके अनुकूल अपनेको मोड़ लेनेके कारण यहींकी जनतामें सर्वथा घुल मिल गये। यही भारतीय सभ्यताकी विशेषता है। पाकिस्तान इस ऐक्यको नष्ट करना चाहता है।' उसपर केवल तभी विचार किया जा सकता है जब उसका अन्य कोई विकल्प सम्यक् ही न हो। इससे उद्भूत बातोंकी संक्षेपमें चर्चा करते हुए आप इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि 'पाकिस्तानका परिणाम अन्य लोगोंके लिए घातक होनेके बजाय स्वयं मुसलमानोंके लिए ही अधिक घातक होगा' और 'भारतकी इकाईको खण्ड खण्ड करनेमें इतनी अधिक आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी कि उनपर विजय प्राप्त करना सर्वथा असम्भव होगा।' 'जबतक राजनीतिक दल राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्योंपर आधृत होनेके स्थानपर धार्मिक उद्देश्योंपर स्थापित होते रहेंगे तबतक मुसलमान यही महसूस करेंगे कि ब्रिटेनकी पार्लमेण्टरी शासन-पद्धतिमें, जो उन्हें प्रदान की जा रही है, वे सदैव ही गुलाम बने रहेंगे और उन्हें अन्य देशोंके राजनीतिक दलोंकी भाँति शासन करनेका कभी अवसर ही न मिल सकेगा। संयुक्त भारतकी किसी केन्द्रीय

सरकारकी बातपर उनके आपत्ति करनेका मूल कारण यही है। देशके बहुमतवाले राजनीतिक दल होनेके नाते हिन्दुओंको अल्पमतवाले दलोंका विश्वासभाजन बननेके लिए सभी प्रकारका उचित त्याग करना चाहिए। इसीलिए उन्होंने पाकिस्तानका एक विकल्प उपस्थित किया है जो कि इस प्रकार है—

भारतका भावी शासन-विधान संघ-प्रणालीका और ठोस रहेगा। उसमें पार्लमेण्टरी शासन व्यवस्था और न्याय व्यवस्था रहेगी। न्यायानुमोदित शासन होगा तथा न्यायके लिए सर्वोच्च न्यायालयसंघ न्यायालय होगा। न्यून-तम विषय ही जिसका केन्द्रमें रखना अत्यावश्यक होगा, केन्द्रके शासनमें रहेंगे। शेष सारे विषय संघबद्ध इकाइयोंके मातहत रहेंगे और उन्हींके हाथमें अवशिष्ट अधिकार रहेंगे।

केन्द्रीय विषय ये रहेंगे—रक्षा, परराष्ट्र सम्पर्क, मुद्रा, ऋण, जकात, आयकर, संघकर, प्रवास ; विदेशियोंका देशमें आकर बसना और नागरिक अधिकार प्राप्त करना ; रेल, डाक और तार, जलमार्ग और उद्योगोंका विस्तार। संघबद्ध इकाइयोंकी सीमाके ऐसे पुनर्निर्धारणपर कोई आपत्ति न होनी चाहिए जिससे मुसलिम बहुमतवाले क्षेत्र अपनेको अर्धशासित इकाइयोंमें संघटित कर सकें।

निम्नलिखित आधारपर प्रत्येक व्यक्तिको वैयक्तिक, नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रताका पक्का आश्वासन रहना चाहिए और सबके सैद्धान्तिक अधिकारोंका एक घोषणापत्र होना चाहिए—न्यायकी दृष्टिमें भारतीय संघके सभी नागरिक समान समझे जायँगे।

प्रत्येकको भाषण, लेखन और सम्पर्ककी पूर्ण स्वाधीनताका पक्का आश्वासन रहेगा। किसी भी व्यक्तिको न्यायानुमोदित न्यायालयद्वारा ही कोई दण्ड दिया जा सकेगा और वहीं किसीपर मुकदमा चल सकेगा। किसीके भी मकानमें कोई व्यक्ति बलपूर्वक प्रविष्ट न हो सकेगा।

धर्म, विश्वास, जाति, वर्ण, रङ्ग अथवा सम्प्रदायका सदस्य होनेके कारण कोई व्यक्ति किसी कार्य अथवा पदसे वञ्चित न किया जायगा। धर्म और आत्मानुकूल कार्य करनेकी स्वतन्त्रताका प्रत्येक व्यक्तिको पक्का आश्वासन रहेगा।

विश्वास, पूजा, उपासना, प्रचार, सम्पर्क-स्थापन और शिक्षाकी स्वतन्त्रताका भी आश्वासन रहेगा। न्यायकी दृष्टिमें प्रत्येक धर्म समान रहेगा।

अल्पसंख्यक दल अपने पृथक् अस्तित्वके लिए जिन हितोंको अपना मूल समझेंगे, विशेषतः शिक्षा, भाषा, धर्म और व्यक्तिगत कानूनको, राज्य उनकी पूर्णतः रक्षा करेगा। सभी अल्पसंख्यकोंको अपने खर्चसे दातव्य और धार्मिक संस्थाएँ, स्कूल तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने, उनका प्रबन्ध और नियन्त्रण करनेका समान अधिकार रहेगा। इनमें उन्हें अपनी भाषाका उपयोग करने और अपने धर्मके अनुसार आचरण करनेका अधिकार रहेगा।

ऐसे प्रत्येक ग्राममें जहाँ किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदायके कमसे कम ५० बालकोंके अभिभावक अपने लिए प्राइमरी स्कूलकी स्थापनाकी माँग करें वहाँ शिक्षा विभागके अधिकारी उनके लिए स्कूल खोल देंगे और उसमें अल्पसंख्यकोंकी अपनी भाषामें ही शिक्षा दी जायगी।

अल्पसंख्यकोंद्वारा स्थापित सभी स्कूलों, कालेजों, कला तथा अन्य व्यवसायोंकी शिक्षण संस्थाओंको, यदि वे सरकारी नियमोंके अनुकूल चलें तो उन्हें उसी ढङ्गसे सरकारी सहायता प्राप्त होगी जैसे अन्य सार्वजनिक अथवा बहुसंख्यक सम्प्रदायकी इस प्रकारकी संस्थाओंको प्राप्त होगी और दोनोंपर समान रूपसे नियन्त्रण रहेगा।

चुनाव सम्बन्धी मताधिकार और व्यापक बनाना पड़ेगा किन्तु साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति बनाये रखनी पड़ेगी। बहुसंख्यक निर्वाचन क्षेत्रोंमें मुसलमानोंके अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यकोंके लिए कुछ स्थान सुरक्षित रहें। उनमें वृद्धि की जा सकती है तथा मुसलमान चाहें तो उनके लिए भी, कुछ और क्षेत्र बढ़ाये जा सकते हैं। स्थानीय स्वशासित संस्थाओंके सम्बन्धमें भी अनेक निर्वाचन क्षेत्रोंका जिनमें कुछ स्थान सुरक्षित रहें, सिद्धान्त स्वीकार किया जा सकता है।

१९३५ के शासन-विधानमें विभिन्न प्रान्तीय असेम्बलियोंमें मुसलमानों और दलितवर्गके प्रतिनिधियोंकी जो संख्या स्वीकार की गयी है वह बनायी रखी

जा सकती है। केवल बङ्गालके सम्बधमें, यदि सम्भव हो तो, पारस्परिक समझौते-द्वारा पूनावाले समझौतेमें कुछ संशोधन किया जा सकता है। यदि इकाइयोंकी सीमामें कुछ, परिवर्तन किया जायगा तो असेम्बलीके लिए निर्धारित प्रतिनिधियोंकी संख्यामें अवश्य ही परिवर्तन करना पड़ेगा। यदि नव-निर्धारित इकाइयोंमें मुसलमान अल्पमतमें हों तो उनका प्रतिनिधित्व आजके समान ही बना रहेगा। किन्तु जिन प्रान्तोंमें हिन्दू अल्पमतमें होंगे वहाँ उन्हें भी अधिक प्रतिनिधित्व देना पड़ेगा। अत्यधिक मुस्लिम बहुमतवाली इकाइयोंमें साधारण स्थान यदि मुस्लिम बहुमतको प्रदान किये जायँ तो अनुचित न होगा। किसी भी इकाई या राजमें स्थानका विभाजन इस ढङ्गसे नहीं होना चाहिए कि बहुमतवाला दल बन जाय।

संघ-राजोंमें असेम्बलीमेंसे चुने गये मन्त्रियोंका मन्त्रि-मण्डल बनेगा, किन्तु वे संयुक्त मन्त्रि-मण्डल होंगे और उनका निर्माण इस ढङ्गपर होगा:—ऐसे सभी अल्पसंख्यकोंको अपनी जनसंख्याके अनुपातसे मन्त्रि-मण्डलमें प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा जो एक निश्चित न्यूनतम प्रतिशतसे अधिक होंगे अथवा असेम्बलीमें उनका प्रतिनिधित्व जिस अनुपातसे होगा उसी अनुपातसे मन्त्रि-मण्डलमें रहेगा।

मन्त्रि-मण्डलके सदस्योंकी ठीक संख्या कितनी रहेगी इसका निर्धारण इसी उद्देश्यसे गठित एक कमीशन करेगा। प्रत्येक अल्पसंख्यक सम्प्रदायके मन्त्रियोंका चुनाव असेम्बलीमें उस सम्प्रदायके प्रतिनिधि आनुपातिक प्रतिनिधित्वके ढङ्गपर करेंगे। प्रधान मन्त्री अथवा मन्त्रि-मण्डल बनानेवाले अधिकारी यदि अल्पसंख्यकोंकी निर्धारित संख्याके अतिरिक्त भी किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदायमेंसे किसी अन्य सदस्यको मन्त्रि-मण्डलमें लेना चाहेंगे तो उसमें कोई बाधा न होगी।

केन्द्रीय असेम्बलीमें मुसलमानोंको सदस्योंकी कुल संख्याके ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत स्थान मिलेंगे परन्तु, महिलाओं अथवा विशेष हितवाले जैसे मजदूर, जमींदार, व्यापारीवर्ग आदिको छोड़कर सभी अल्पसंख्यक समुदायोंको कुल मिलाकर ५० प्रतिशतसे अधिक स्थान न मिलेंगे।

केन्द्रीय सरकार संयुक्त सरकार रहेगी और उसमें कमसे कम तिहाई मुसलमान रहेंगे। असेम्बलीके मुसलमान सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी पद्धतिपर केन्द्रीय सरकारके लिए मुसलमान सदस्योंका चुनाव करेंगे। इसी प्रकार असेम्बलीके सिख सदस्य और दलितवर्गके सदस्य अपना एक एक प्रतिनिधि चुनेंगे। केन्द्रीय मंत्रिमंडलमें केन्द्रीय सरकारके लिए अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या कुल मंत्रियोंकी संख्याके ५० प्रतिशतसे अधिक न होगी। प्रधान मंत्री यदि चाहेंगे तो निर्धारित संख्याके अतिरिक्त भी किसी अल्पसंख्यक समुदायके सदस्यको मंत्रिमण्डलमें ले सकेंगे। उनके इस कार्यमें कोई बाधा न होगी।

सरकार असेम्बलीके प्रति उत्तरदायी होगी। असेम्बली उसके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव ला सकती है। ऐसा प्रस्ताव केवल तभी स्वीकार किया जा सकेगा जब वह पूर्ण बहुमतसे स्वीकृत हो और जब उस बैठकमें असेम्बलीके कमसे कम दो तिहाई सदस्य उपस्थित हों।

असेम्बलीमें ऐसा कोई बिल, प्रस्ताव अथवा उसका अंश स्वीकृत न होगा जिसका समुदायके तीन चौथाई सदस्य यह कहकर विरोध करें कि यह हमारे समुदायके धार्मिक और सांस्कृतिक हितोंको अथवा व्यक्तिगत कानूनको जिससे हम अभीतक शासित होते रहे हैं भारी नुकसान पहुँचेगा। किसी भी समुदायको उस समयतक ऐसा अधिकार न मिलेगा जबतक उसके सदस्योंकी संख्या कुल सदस्योंकी संख्याका कमसे कम १५ प्रतिशत न हो।

यदि ऐसा कोई विवाद उठ खड़ा हो कि अमुक बिल या प्रस्ताव अमुक धाराके अन्तर्गत आता है अथवा नहीं, तो वह मामला संघन्यायालयमें उपस्थित किया जायगा।

संघन्यायालयमें ५ न्यायाधीश रहेंगे जिनमें दो मुसलमान होंगे।

सेनामें मुसलमानोंका अनुपात किसी भी हालतमें उतनेसे कम न होगा जो १९३८ में था।

भारत सरकारके ४ जुलाई १९३४ के प्रस्ताव संख्या एफ १४/१७—बी

३३ में सरकारी नौकरियोंमें सामुदायिक प्रतिनिधित्वके लिए जो धाराएँ हैं, वे आवश्यक छोटे-मोटे परिवर्तनके साथ कानून बनाकर शामिल कर ली जायँगी।

विधानमें केवल तभी कोई परिवर्तन हो सकेगा जब केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके सारे सदस्य मिलकर उनपर विचार करें और दो तिहाई बहुमतद्वारा यह स्वीकार कर लिया जाय तथा संघबद्ध इकाइयोंकी असेम्बलियाँ भी, यदि असेम्बली और कौंसिल दो हों तो दोनों मिलकर, बहुमतसे उसकी स्वीकृति प्रदान करें।

सभी बातोंकी वैधानिकतापर अन्तिम वादविवाद और निर्णय संघ-न्यायालयमें हो सकेगा।

उपर्युक्त प्रस्तावोंमें कौंसिलें, उनके संयुक्त और पृथक् प्रभाव क्षेत्रों तथा अन्य ऐसी कितनी ही बातोंका कोई जिक्र नहीं है जो भारतके लिए विधान प्रस्तुत करते समय आ उपस्थित होंगी। वे बातें उन्हीं संस्थाओंपर छोड़ देनी चाहिए जो विधानका निर्माण करेंगी। उनका अल्पसंख्यकोंको पर्याप्त संरक्षण प्रदान करनेकी मुख्य समस्यासे कोई विशेष सम्पर्क नहीं होगा।

देशी राज्योंको सम्प्रति पृथक् छोड़ देना ही अच्छा होगा।

यह दावा नहीं किया जा रहा है कि ऊपर जिस विधानकी रूप-रेखा दी गयी है वह आदर्श है। 'मैं संयुक्त मन्त्रि-मण्डलोंके विधानको इन प्रस्तावोंका सार समझता हूँ।' अल्पसंख्यकोंके संरक्षणोंके लिए मुख्यतः ये बातें बतायी गयी हैं कि यह एक ऐसा विधान है जिसमें कोई संशोधन केवल उसी पद्धतिसे होसकेगा जिसमें अल्पसंख्यकोंका पर्याप्त प्रतिनिधित्व रहेगा और उनके धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रताकी रक्षा होगी और उन्हें सरकारी नौकरियोंमें तथा सेनामें भी उचित भागका पक्का आश्वासन मिलेगा। इसमें असेम्बलियोंमें तथा केन्द्रीय और राजकीय मन्त्रि-मण्डलोंमें अल्पसंख्यकोंको उचित प्रतिनिधित्व मिलेगा। इसमें संघबद्ध-इकाइयोंको उतना ही स्वशासन प्राप्त

है जितना किसी भी सङ्घके लिए सम्भव है। अन्तिम मुख्य बात यह है कि इसमें सङ्घ-न्यायालयकी व्यवस्था है जिसे कि विधानकी धाराओंका कोई दुरुपयोग या उल्लङ्घन होनेपर उसमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार है।

संरक्षण केवल कागजी संरक्षण नहीं हैं। विधानको पूर्णतः भङ्ग किये बिना उनका उल्लङ्घन सम्भव नहीं है। सम्भव है कि उस स्थितिमें गृह-युद्ध आरम्भ हो जाय। इस सम्बन्धमें सबसे बुरी कल्पना यही हो सकती है कि यह दस वर्षतक के लिए एक प्रयोग होगा, तदुपरान्त मुस्लिम अल्पमत यदि चाहेगा तो वह अपना अलग मार्ग चुन सकेगा।

इसके अतिरिक्त यह न भूलना चाहिए कि युद्धकी समाप्तिके उपरान्त एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाका स्थापित होना अनिवार्य है। यह संस्था राष्ट्र-सङ्घसे कहीं अधिक शक्तिशाली होगी और अल्पसंख्यकोंको सच्चा और वास्तविक संरक्षण देनेमें समर्थ हो सकेगी।

सर अर्देशीर दलाल पारसी हैं और इसलिए न तो वे अधिकारोंके लिए लड़नेवाले हिन्दुओंमें शामिल हैं, न मुसलमानोंमें। अतः उनकी योजना दोनों सम्प्रदायोंके हितोंसे निष्पक्ष मानी जा सकती है। वे केन्द्र और प्रान्तोंमें संयुक्त मन्त्रि-मण्डल बनानेपर जोर देते हैं और असेम्बली तथा मन्त्रि-मण्डलमें मुसलमानोंको उतना प्रतिनिधित्व देना चाहते हैं जो उनकी जनसंख्यासे अधिक है। उनके लिए वे केवल यही सीमा निर्धारित करते हैं कि अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधि कुल संख्याके ५० प्रतिशतसे अधिक न हों। मन्त्रि-मण्डलमें अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधियोंका चुनाव असेम्बलीमें उक्त सम्प्रदायके सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्वके आधारपर करेंगे। प्रधान मन्त्री यदि चाहेगा तो अल्पसंख्यकोंके मन्त्रियोंकी निर्धारित संख्याके अतिरिक्त भी उनमेंसे कोई सदस्य मन्त्रिमण्डलमें ले सकेगा। इस भाँति यदि प्रधान मन्त्री अनुरक्त रहे तो मन्त्रि-मण्डलोंमें अल्पसंख्यकोंको ५० प्रतिशतसे अधिक स्थान मिल सकते हैं।

—

५

डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जीका साम्प्रदायिक समस्यापर नया सुझाव

डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जीने 'ए न्यू एप्रोच टु दि कम्युनल प्राब्लम' नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित की है जिसमें आपने प्रथम विश्वयुद्धके उपरान्त यूरोपके विभिन्न देशोंके अल्पसंख्यकोंके साथ राष्ट्रोंके मातहत और आश्वासनपर हुई सन्धियों और रूसके विधानके प्रयोगके अनुभवोंके आधारपर कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो संक्षेपमें नीचे दिये जा रहे हैं।

साम्प्रदायिक समस्या एक सार्वदेशिक समस्या है। कारण, नस्ल सम्बन्धी तथा धार्मिक और सामाजिक परिधियाँ राजनीतिक और राष्ट्रीय परिधियोंसे सर्वथा भिन्न रही हैं। दोनोंका एक होना सर्वथा असम्भव है। प्रत्येक राजको अपने अन्तर्गत अनेक वर्गों और समुदायोंको लेकर चलना पड़ता है। किसी अल्पसंख्यकको सर्वथा निर्मूल कर देनेमे कोई भी राज समर्थ नहीं हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि अल्पसंख्यकोंके साथ व्यवहार करनेके लिए कोई उपाय खोज निकाला जाय। प्रथम महासमरके पूर्व क्रीमियाके युद्धके उपरान्त ३० मार्च १८५६ को पेरिसकी जो सन्धि हुई थी उसमें यह शर्त रखी गयी थी कि किसी भी देशमें प्रजाका कोई भी भाग, धर्म, जाति या नस्लके कारण, अन्य वर्गोंसे नीचा न समझा जायगा। महासमरके उपरान्त अल्पसंख्यकोंके सम्बन्धमें एक योजना तैयार की गयी और वह अल्पसंख्यकोंको आश्वासन देनेवाली सन्धिके रूपमें वैध करार दी गयी। राष्ट्रसंघसे सम्बद्ध विश्वके सभी राज—जिनकी कि संख्या एक बार ५२ तक पहुँच गयी थी इन अन्तर्राष्ट्रीय शर्तोंको पालन करनेके लिए बाध्य थे।

किसी संयुक्त राजके अन्तर्गत रहनेवाले विभिन्न सम्प्रदायोंका मतभेद इन ३ भागोंमें बाँटा जा सकता है—(१) भाषा (२) नस्ल और (३) धर्म। जो अल्पसंख्यक दल अपने लिए विशेष प्रकारके व्यवहारकी माँग करे उसकी

जनसंख्या, तुर्क विधानके अनुसार 'जनसंख्याका पर्याप्त भाग' होनी चाहिए। इस सम्बन्धमें सबने मिलकर यह बात स्वीकार कर ली थी कि अल्पसंख्यक समुदायकी जनसंख्या राजकी सारी जनसंख्याका २० प्रतिशत होना चाहिए। कारण, आर्थिक और शासन-व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिसे इससे छोटे अल्पसंख्यक समुदायके लिए विशेष व्यवहारकी व्यवस्था करना अव्यवहार्थ होगा।

अल्पसंख्यकोंको जिस संरक्षणका आश्वासन दिया गया था वह नस्ल, धर्म और भाषाके मतभेदोंतक सीमित था। इनके कारण उत्पन्न ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषताओंका पूर्ण आदर करना उचित समझा गया ताकि विभिन्न सम्प्रदाय अपने विकासके मार्गसे ही अपनी उन्नति और प्रगति करते हुए सारी मानवताकी संस्कृतिके विकासमें सहायक हों। अतः प्रत्येक सम्प्रदायका यह अधिकार स्वीकार किया गया कि वह अपनी भाषा तथा मातृभाषाका विकास कर सकता है। आरम्भिक पाठशालाओंमें उसके बच्चोंको उनकी मातृभाषा और उनकी लिपिमें ही शिक्षा देनी होगी और अल्पसंख्यकोंके कमसे कम ठेठ बालक यदि अपने लिए पृथक् पाठशालाकी माँग करें तो राजको उसकी व्यवस्था करनी होगी।

इसके अतिरिक्त अन्य शासन-सम्बन्धी व्यय और सरकारी सहायताके अतिरिक्त अल्पसंख्यकोंको आरम्भिक पाठशालाओंके लिए उसी अनुपातसे सरकारी सहायता मिलनी चाहिए जिस अनुपातसे ऐसी अन्य पाठशालाओंके लिए बजटमें रखा जाय।

नस्ल सम्बन्धी संरक्षणके आश्वासनके लिए यह घोषणा की गयी कि प्रत्येक सम्प्रदाय अपने विशेष रीति-रिवाजों, व्यक्तिगत कानूनों, विवाह और उत्तराधिकार-सम्बन्धी नियमोंकी रक्षा कर सकेगा और उनके द्वारा अपने सम्प्रदायका पृथक् अस्तित्व और नस्ल सम्बन्धी सम्पूर्णता व्यक्त कर सकेगा। इसी भाँति प्रत्येक सभ्य देशमें विभिन्न सम्प्रदायोंका धार्मिक संस्करण स्वीकार कर लिया गया है। इसके लिए तुर्क विधानको आधार माना जा सकता है। उसमें कहा गया है कि 'सारी प्रजाको घर या बाहर, सर्वत्र अपने धर्म और विश्वासके अनुकूल,

ऐसा आचरण करनेका अधिकार रहेगा जो शान्ति और सदाचारके प्रतिकूल न होगा। तुर्क-प्रजाके गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदायोंके प्रति भी ठीक वैसा ही व्यवहार और न्याय होगा जैसा अन्य तुर्क-प्रजाके साथ। विशेषतः उन्हें अपने खर्चसे धार्मिक, सामाजिक और धर्मार्थ संस्थाएँ तथा शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करनेका समान अधिकार रहेगा। इनमें उन्हें अपनी भाषाका व्यवहार करने और अपने धर्मके अनुकूल आचरण करनेका अधिकार रहेगा।'

शासन-व्यवस्थामें अल्पसंख्यकोंका क्या स्थान रहेगा, इस सम्बन्धमें तुर्क विधानमें कहा गया है कि 'नागरिक अथवा राजनीतिक अधिकारोंकी प्राप्तिमें, जैसे सरकारी नौकरियों, उत्सवों, सम्मान प्राप्ति अथवा उद्योग व्यवसाय आदिमें, किसी भी तुर्क प्रजाका धर्म अथवा विश्वासका भेद बाधक न होगा। तुर्क प्रजाके अल्पसंख्यक गैर-मुसलमान अल्पसंख्यकोंको मुसलमानोंके समान ही नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त रहेंगे। न्यायकी दृष्टिमें तुर्कीकी सारी प्रजा, चाहे उसका कोई भी धर्म क्यों न हो, एक समान समझी जायगी। सरकारी नौकरियों, उत्सवों, सम्मानों, सैनिक पदों, सार्वजनिक संस्थाओंमें सारी प्रजाकी भरती एक समान रूपसे होगी और पद-वृद्धि आदिमें भी किसीके साथ कोई भेद-भाव न रखा जायगा।'

इस भाँति योजनामें अल्पसंख्यकोंको कुछ विशेष मामलों और हितोंके सम्बन्धमें, जो उनके विकासके लिए परम आवश्यक हैं, पूर्ण संरक्षण दिया गया है और इन विषयोंमें उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी गयी है। किन्तु अल्पसंख्यकोंके हितोंकी रक्षाकी भी एक सीमा है और वह है राजकी अखण्डता—जिसकी कि सर्वस्व त्यागकर रक्षा करना प्रत्येक सम्प्रदायका समान रूपसे कर्तव्य है और किसी भी सम्प्रदायको अपनी अतिशयोक्तिपूर्ण और असीम कल्पनाओंको, जो स्वयं राजकी अखण्डताको खण्ड खण्ड करना चाहती हों, व्यवहृत करनेकी अनुमति नहीं दी जा सकती। ऐसा कोई भी प्रयत्न चलने नहीं दिया जा सकता जिससे अखण्डताका पक्ष दुर्बल हो।

रूस अत्यन्त विषम साम्प्रदायिक समस्याओंका सामना कर रहा है। रूसमें

(१) १७ करोड़की आबादी है, (२) १८० भिन्न राष्ट्रीय जातियाँ हैं, (३) १५१ भिन्न भाषाएँ हैं, (४) ११ राष्ट्रीय लोकतन्त्र हैं और (५) २२ स्वशासनाधिकारप्राप्त लोकतन्त्र हैं। जारशाहीने साम्प्रदायिक समस्या विरासतमें छोड़ी थी और रूसके सम्मुख अत्यधिक विषम कठिनाइयाँ उपस्थित थीं। जारशाहीको अपने विस्तृत प्रदेशके विभिन्न समुदायोंके नागरिकोंकी एकतामें कोई दिलचस्पी नहीं थी और उसके शासनकालमें सबमें परस्पर बड़ी शत्रुता चलती थी। 'रूसी महान' के हितोंके अनुकूल साम्राज्यका शासन चलता था और वे अन्य सभी राष्ट्रीय जातियों और प्रजाको अपनेसे निम्न कोटिका मानते थे। आक्रमणात्मक और युद्धरत रूसी राष्ट्रीयतासे प्रभावित होकर गैर-रूसी राष्ट्रीय जातियोंको निर्दयता-पूर्वक रूसी बनानेकी स्पष्ट नीति चालू थी। विभिन्न राष्ट्रीय जातियोंपर इसकी प्रतिक्रिया हुई और पृथक् होनेकी भावना तीव्र रूपसे बढ़ी जिसे कि आत्मनिर्णयके नारेसे बड़ा बल मिला। जब शासनकी बागडोर बोलशेविकोंके हाथमें आयी तो उन्होंने जारशाहीकी नीति सर्वथा उलट दी और विभाजनवाली भावनाओंको मिटानेके निमित्त उन्होंने मुसलमान, तातार, तुर्क और तारतार जैसे सम्प्रदायोंके लिए घोषणा कर दी कि अबसे वे अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों, राष्ट्रीय संस्थाओं और संस्कृतिके विषयमें स्वतन्त्र हैं, उनमें कोई हस्तक्षेप न किया जायगा और अब वे क्रान्तिके शक्तिशाली संरक्षणमें हैं। इस भाँति बोलशेवकोंने पूर्व रूसी साम्राज्यकी सारी प्रजाको आत्म-निर्णयका आश्वासन दे दिया। स्वतन्त्र राष्ट्रसंघके रूपमें रूसी राष्ट्र-मंडल संघटित कर दिया गया जो कि १९१८ के विधानके अनुसार 'रशियन सोशलिस्ट फेडरेटिव सोवियेट रिपब्लिक' कहलाया। यह घोषणा बोलशेविकोंद्वारा स्थापित अन्य रूसी प्रजातन्त्रोंका आदर्श बनी। यूक्रेन, श्वेतरूस, ट्रांस-काकेशस संघ और केन्द्रीय एशियाई प्रजातन्त्र—ये सभी रूसी राज एक बड़े सघमें सम्मिलित हो गये और इस नये संघका नाम 'यूनियन ऑव सोशलिस्ट सोवियेट रिपब्लिक' (यू० एस० एस० आर०) रखा गया। इसमेंसे 'रूसी' शब्द निकाल दिया गया।

यू० एस० एस० आर० संघकी विभिन्न इकाइयाँ स्वयं संघके रूपमें संघ-

टित हैं अतः यह संघ कितनी ही मात्राओंमें संघसे भी ऊपर है। इस भाँति ११ राष्ट्रीय अथवा संयुक्त लोकतन्त्रोंको अधिकतम अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें पूर्ण स्व-शासनाधिकार तो है ही, अपने प्रतिनिधि भेजकर यू० एस० एस० आर० (रूसी लोकतन्त्र) के संयुक्त शासनमें भाग लेनेका भी अधिकार है। उन्हें 'अपनेको सर्वथा स्वतन्त्र रखने, यहाँतक कि संघसे भी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेने' तकका अधिकार प्राप्त है (१९३६ के विधानकी धारा १७ द्वारा इसकी पुष्टि हो चुकी है)। इनसे निचली श्रेणीके २० स्वशासनाधिकारप्राप्त लोकतन्त्रोंको आत्मनिर्णयका इतना अधिकार तो अवश्य नहीं है कि वे चाहें तो संघसे अपना सम्बन्ध-विच्छेदतक कर लें, पर वे अपना स्थानीय शासन करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। तीसरी श्रेणीकी वे स्वशासनाधिकारप्राप्त इकाइयाँ हैं जिनका स्वशासन अपने ही स्थानीय मामलोंतक सीमित है। इनकी संख्या समय समयपर बदलती रहती है और इनपर उन संयुक्त लोकतन्त्र अथवा स्वशासनाधिकारप्राप्त लोकतन्त्रोंका नियंत्रण रहता है जिनके प्रदेशके अन्तर्गत वे पड़ती हैं। नये विधानको अपने निर्माण तथा अपनी स्थिति दृढ़ करनेके लिए जो सबसे पहला कदम उठाना पड़ा वह यह था कि उसने भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि-कोणको ध्यानमें रखते हुए राष्ट्रीय सिद्धान्तके अनुसार नया प्रादेशिक विभाजन किया और उस पुरानी पद्धतिका अन्त कर दिया जिसके अनुसार प्रत्येक प्रान्तमें सदा परस्पर लड़नेवाले कई नस्लोंके लोग रहते थे।

मोटे तौरसे केन्द्र तथा विभिन्न श्रेणीकी उससे सम्बद्ध इकाइयोंके बीच अधिकारोंका विभाजन इस प्रकार है—परराष्ट्रनीति, रक्षा, यातायात, डाक और तार-विभाग संयुक्त सरकारके हाथमें हैं। आर्थिक, राजस्व विषयक और मजदूरोंकी समस्याओंका प्रबन्ध संयुक्त सरकार और उससे सम्बद्ध राज आपसमें मिलकर करते हैं। न्याय, स्वास्थ्य, उन्नति और सुधार तथा शिक्षा विभागका शासन सम्बद्ध राजों और स्वशासनाधिकारप्राप्त प्रजातन्त्रों और प्रदेशोंके हाथमें है। इस भाँति रूसकी विभिन्न इकाइयाँ इन सीमाओंके भीतर स्वशासनाधिकार-प्राप्त हैं और उन्हें पूर्ण सांस्कृतिक स्वशासनाधिकार प्राप्त हैं। रूसकी विभिन्न नस्लोंमें

समानताका सिद्धान्त व्यवहृत करने तथा स्वशासनद्वारा पिछड़े प्रदेशों और सम्प्रदायोंका सांस्कृतिक, बौद्धिक और आर्थिक धरातल ऊपर उठाकर समानताको स्थापित करनेके उद्देश्यसे ही नयी व्यवस्थाकी सृष्टि हुई है। प्रत्येक समुदाय अपने बच्चोंको अपनी भाषामें ही शिक्षा देता है। जिन भाषाओंकी वर्णमाला न थी उनकी वर्णमाला खोज निकाली गयी है और सन् १९३४ तक वहाँ ७४ सम्प्रदायोंकी वर्णमालाएँ आविष्कृत हो गयी थीं।

अल्पसंख्यकोंकी स्थानीय स्वतन्त्रता तथा आत्मनिर्णयपर इसीलिए कुछ प्रतिबन्ध लगा है कि वे सङ्घकी सङ्घटित शक्तिमें बाधक बनें। वेबके शब्दोंमें—'राज संयुक्त रूपसे अपने ऐक्यमें कोई बाधा नहीं पड़ने देता और अन्य सङ्घ-राजोंकी भाँति उसने शासक-सत्ताके केन्द्रीकरणमें ही वृद्धि की है। केवल रूसका प्रजातन्त्र ऐसा है जहाँ केन्द्रीकरणके कारण अल्पसंख्यकोंकी सांस्कृतिक स्वाधीनतामें कोई कमी नहीं पड़ी है।' व्यवहार्यतः स्थानीय स्वशासनका अधिकार इसलिए बहुत कम हो जाता है कि जिन बड़े प्रदेशोंके अन्तर्गत ये इकाइयाँ पड़ती हैं उनका शासन सिरपर रहता है और उनके विभिन्न सीमाक्षेत्रोंमें भेद करनेवाली शायद ही कोई स्पष्ट और प्रत्यक्ष रेखा हो। उच्च शासक-संस्था अपने मातहत संस्थाको अपने अधिकारमें ले सकती है, कारण उसका शासन दोनोंके जिम्मे रहता है, केवल अधीनस्थ संस्थाके ही जिम्मे नहीं रहता। यह मूल बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि विधानका आधार उसकी आर्थिक योजना है और जिसके दायरेमें सारे देश और उसके विभिन्न अङ्गोंका सारा जीवन आ जाता है और यह आर्थिक योजना सङ्घ-शासनकी सीमाके ही अन्तर्गत है। विधानकी १५वीं धारा दिखानेके लिए तो अवश्य ही सङ्घके अधिकारोंको सीमित कर देती है परन्तु व्यवहार्यतः वह केवल विभिन्न सम्प्रदायोंकी सांस्कृतिक स्वाधीनता और विशेषतः उनकी निजी भाषाओंके प्रयोगके अधिकारोंकी ही रक्षा करती है।

सङ्घसे सम्बन्ध-विच्छेदका अधिकार केवल ११ राष्ट्रीय अथवा संयुक्त लोकतन्त्रोंको उपलब्ध है। वह अनेक स्वशासनाधिकार-प्राप्त प्रजातन्त्रों तथा प्रदेशोंको

उपलब्ध नहीं है। स्टालिनके शब्दोंमें—'सम्बन्ध-विच्छेदके अधिकारके सम्बन्धमें कम्युनिस्टपार्टीका रुख अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिकी वास्तविकताको तथा क्रान्तिके हितोंको देखते हुए निश्चित किया गया था। इसीलिए कम्युनिस्ट सभी उपनिवेशोंको पृथक् करनेके लिए लड़ते हैं पर साथ ही वे रूसकी सीमापरके प्रदेशोंको पृथक् होनेसे बचानेके लिए लड़ते हैं।' तीन वर्ष पूर्व १९१७ में स्टालिनने कहा था कि 'जब हम पीड़ित जनताके पृथक् होने, और अपने राजनीतिक भाग्यका स्वयं निर्णय कर सकनेके अधिकारको स्वीकार करते हैं तो इसके द्वारा हम इस प्रश्नका निपटारा नहीं कर देते कि अमुक राष्ट्र किसी निश्चित समयपर रूसी राजसे पृथक् हो जाय...। अतः हम सर्वहारा वर्ग और उसकी क्रान्तिके हितोंको ध्यानमें रखकर किसीके पृथक् होने अथवा न होनेके सम्बन्धमें आन्दोलन करनेके लिए स्वतन्त्र हैं।' १९३७-३८ के शुद्धीकरणके जमानेमें समाचारपत्रोंमें ऐसे लोगोंके कितने ही विवरण प्रकाशित हुए थे जो किसी प्रदेशको सङ्घसे पृथक् करनेके लिए षड्यन्त्र रच रहे थे। केवल सङ्घ लोकतन्त्रको ही सम्बन्ध विच्छेदका अधिकार प्राप्त है। किसी स्वशासनाधिकारप्राप्त प्रजातन्त्रको संयुक्त लोकतन्त्रकी श्रेणीमें परिवर्तित करनेके ये तीन उपाय हैं—(१) सम्बन्धित प्रजातन्त्रका किसी सीमापर बसा होना आवश्यक है। वह चारों ओरसे रूसी प्रदेशद्वारा घिरा न हो ताकि पृथक् होनेपर उसको जानेके लिए कहीं स्थान न रहे, (२) लोकतन्त्रकी जो राष्ट्रीय जाति ऐसा चाहे उसका अपने भीतर पूर्ण बहुमत होना आवश्यक है, अतः राजकी ओरसे किसी भी अल्पसंख्यकको सम्बन्ध विच्छेदका अधिकार नहीं दिया जा सकता, (३) ऐसे प्रजातन्त्रकी जनसंख्या बहुत कम न होनी चाहिए, अर्थात् १० लाखसे अधिक ही हो, कम नहीं।

इस भाँति सोवियत प्रजातन्त्रने, अपने मुख्यांश, अपनेसे सम्बद्ध प्रजातन्त्रोंको अपनेमें बाँध रखनेके लिए, पृथक् क्षेत्रोंका अधिकार प्रदान कर अपना अस्तित्व दृढ़ किया। ये प्रजातन्त्र एक बार सङ्घमें आकर उससे पृथक् नहीं होना चाहते और दिन दिन सङ्घको अधिकाधिक केन्द्रित बनाते चल रहे हैं। भारतकी एकता और अखण्डता आज बनानेकी वस्तु नहीं है। वह शताब्दियोंसे

बनी हुई है और १ शताब्दीसे अधिक कालसे तो भारत सरकार ही उसपर इसी रूपमें शासन कर रही है। यहाँ भी रूसके ढङ्गपर स्वतन्त्र मुस्लिम राज चाहनेवालों और उनके विरोधियोंके परस्पर विरोधी दृष्टिकोणोंको सन्तुष्ट करनेके लिए विभिन्न सम्प्रदायोंकी सांस्कृतिक स्वतन्त्रताकी योजना बनानी चाहिए। मुसलमानोंको यह आशङ्का है कि हिन्दू बहुमतवाला सङ्घ मुस्लिम राजकी प्रभुशक्तिपर अपना अधिकार जमा लेगा। इस कठिनाईको हल करनेके कई व्यवहार्य उपाय हैं जिनके द्वारा सङ्घके अन्तर्गत रहते हुए ही, राजको कई खण्डोंमें विभक्त किये बिना समस्या सुलझायी जा सकती है। उपाय ये हैं—(१) सङ्घ और प्रान्तोंके, विषयोंका विभाजन इस प्रकारसे किया जाय कि प्रान्तोंको स्वशासनका लगभग पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाय और प्रत्येक पाकिस्तान राजको सभी व्यावहारिक दृष्टियोंमें प्रभुराज बना दिया जाय। (२) रूसके ढङ्गपर प्रत्येक सम्प्रदायको सांस्कृतिक स्वतन्त्रताका पक्का आश्वासन दे दिया जाय। (३) भाषाविज्ञानके आधारपर प्रान्तोंका पुनर्सीमा-निर्धारण कर दिया जाय बशर्ते कि वे आर्थिक दृष्टिसे आत्मभर हों।

ऐसी किसी योजनापर श्री जिनाके शब्दोंमें यह आपत्ति की जाती है कि 'वैधानिक अथवा अन्य प्रकारके सरक्षणोंका कोई अर्थ न होगा। जबतक केन्द्रमें हिन्दुओंका बहुमत रहेगा तबतक ये सभी संरक्षण केवल कागजी संरक्षण बने रहेंगे, और कुछ नहीं। इसका उत्तर यह है कि सम्प्रदायोंकी सांस्कृतिक स्वाधीनताकी योजनाके अन्तर्गत, अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षा कानून और विधानद्वारा की जायगी। विधानमें सर्वोच्च न्यायालय जैसी पृथक् कानूनी संस्थाकी आयोजना हो सकती है जिसका कार्य ही यह होगा कि वह यह देखती रहे कि अल्पसंख्यकोंको जो संरक्षण प्रदान किये गये हैं उनका सम्यक् रूपसे पालन होता है अथवा नहीं। कोई भी पीड़ित सम्प्रदाय इस न्यायालयमें अपनी शिकायत पेश कर सकेगा। इस प्रकारके न्यायालयके निर्माणमें साम्प्रदायिकता न बरती जानी चाहिए। भारतीय संयुक्त राज विभिन्न दलोंके पारस्परिक समझौतेद्वारा स्थापित होगा। वह संयुक्त राजके विधानमें रखे गये संरक्षणोंको रद्द नहीं

कर सकेगा और सर्वोच्च न्यायालय, जो कि असाम्प्रदायिक रहेगा, संरक्षणोंके व्यवहृत करानेमें समर्थ हो सकेगा।

६

कम्युनिस्टपार्टीद्वारा पाकिस्तानका समर्थन

इस बातपर किसीको आश्चर्य न होना चाहिए कि भारतकी कम्युनिस्ट-पार्टीके नेता तथा उनके दलवाले रूसके विधान तथा श्री स्टालिनके लेखोंके आधार-पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी माँगका समर्थन करते हैं। पर यह बात अवश्य ही आश्चर्यजनक है कि अखण्ड हिन्दुस्तान सम्मेलनके अध्यक्ष डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी भी इन्हीं सूत्रोंका आधार लेते हैं और इन्हींके आधार-पर अपने सुझाव उपस्थित कर देते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम कुछ विस्तारसे कम्युनिस्टपार्टीद्वारा स्वीकृत तथा अक्तूबर १९१७ की क्रान्तिके उप-रान्त नये रूपमें विकसित रूसके विधानमें सम्मिलित श्री स्टालिनके दृष्टिकोणपर विचार करें।

श्री स्टालिन अपनी परिभाषामें कहते हैं—'राष्ट्र ऐतिहासिक ढङ्गसे विक-सित वह पुष्ट सम्प्रदाय है जिसकी भाषा, प्रदेश, आर्थिक जीवन और मनो-वैज्ञानिक ढाँचेद्वारा यह व्यक्त हो कि वह एक सांस्कृतिक सम्प्रदाय है।'* अन्य ऐतिहासिक तत्वोंकी भाँति 'उसमें परिवर्तन होता है, उसका अपना इतिहास होता है और उसका आदि तथा अन्त होता है। यहाँ इस बातपर जोर देना आवश्यक है कि उपर्युक्त गुणोंमेंसे कोई एक ही गुण राष्ट्रकी पूरी परिभाषा करनेके लिए पर्याप्त नहीं है। उसमें एक साथ सब गुण होने आवश्यक हैं। किन्तु साथ ही यह भी है कि इनमेंसे यदि एक गुण न रहे तो राष्ट्र फिर राष्ट्र नहीं रह सकता।'* 'वर्त-मान राष्ट्रोंकी उत्पत्तिकी एक ही कहानी है और वह है पूँजीवादका विकास।

---

* 'मार्क्सिज्म एण्ड दि नेशनल एण्ड कोलोनियल क्वेश्चन', पृष्ठ ८

जागीर प्रथाका नाश और पूँजीवादका विकास राष्ट्रोंके सङ्घटनका कारण बना। ब्रिटिश, फ्रेंच, जर्मन और इटालियन जनता पूँजीवादकी विजय-यात्रा और उसकी जागीरदारोंके अनैक्यके कारण ही राष्ट्रके रूपमें सङ्घटित हुई।

'जहाँपर राष्ट्रोंकी स्थापनाके समय ही केन्द्रित राजोंकी स्थापना हुई वहाँ राष्ट्र स्वतः राजमें संयुक्त हो गये और स्वतन्त्र बुर्जुआ, राष्ट्रीय राजोंमें परिणत हो गये। ब्रिटेन (आयर्लैण्ड छोड़कर) फ्रान्स और इटलीमें यही हुआ। दूसरी ओर पूर्वी यूरोपमें जागीरदारीके नष्ट होने और इसलिए राष्ट्रोंके निर्माणके पूर्व ही (तुर्कों, मङ्गोलों आदिके) आक्रमणसे रक्षाके निमित्त केन्द्रित राजोंकी स्थापना हुई। अतः परिणामतः यहाँपर राष्ट्रीय राजोंमें न तो परिणत ही हुए और न हो ही सकते थे। इसके स्थानपर वे कई संयुक्त, बहुराष्ट्रीय बुर्जुआ राजोंमें सङ्घटित हो गये जिनमें एक राष्ट्र शक्तिशाली तथा प्रधान था और अन्य राष्ट्र निर्बल और उसके दास। आस्ट्रिया, हङ्गरी और रूस इसके उदाहरण हैं।

फ्रान्स और इटली जैसे राष्ट्रीय राज, जो मुख्यतः अपनी ही राष्ट्रीय सेनापर निर्भर रहते थे, विदेशी अत्याचारसे अनभिज्ञ थे। इनके विपरीत बहुराष्ट्रीय राज, जो एक राष्ट्रके प्रभुत्वपर आधृत हैं, राष्ट्रीय अत्याचार और राष्ट्रीय आन्दोलनोंके मुख्य और वास्तविक स्थल थे। शासक और शासित राष्ट्रोंके हितोंमें जो सङ्घर्ष रहता है वह जबतक हल नहीं किया जाता तबतक बहुराष्ट्रीय राजोंका अस्तित्व डावाँडोल रहता है और उसका स्थायित्व असम्भव रहता है। बहुराष्ट्रीय बुर्जुआ राजकी सबसे अप्रिय और दुःखद घटना यह है कि वह इन विरोधोंको जीतनेमें असमर्थ रहता है और व्यक्तिगत सम्पत्तिको तथा वर्ग असमानता बनाये रखते हुए जब जब वह राष्ट्रोंको समतलपर लाने और अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षाका प्रयत्न करता है तब तब वह नये सिरेसे असफल होता है और विभिन्न राष्ट्रीय जातियोंमें शत्रुता बढ़ जाती है।

यूरोपमें पूँजीवादके विकास, नये बाजारोंकी आवश्यकता, बचे माल और ईंधनकी तलाश तथा साम्राज्यवादके विस्तार, पूँजीके निर्यात और महान सागर

तथा रेल-मार्गोंकी रक्षाकी आवश्यकताने एक ओर तो जहाँ पुराने राष्ट्रीय राजों-को नये प्रदेश हथियाने तथा इन नये उपनिवेशोंको ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली जैसे बहुराष्ट्रीय राजोंमें जहाँपर राष्ट्रीय अत्याचार और राष्ट्रीय संघर्ष अनिवार्य हैं, परिवर्तित करनेकी ओर सचेष्ट किया, वहाँ दूसरी ओर पुराने बहुराष्ट्रीय शासक राजोंमें केवल अपनी पुरानी सीमा सुरक्षित रखनेकी ही नहीं अपितु उसका विस्तार करने और पड़ोसी राजोंकी बलि देकर नयी (निर्बल) राष्ट्रीय जातियों-पर अपना अधिकार जमानेकी लालसा उत्पन्न कर दी। इस प्रकार राष्ट्रीय समस्याने व्यापक रूप धारण किया और अन्तमें घटनाक्रमके अनुसार वह उप-निवेशोंकी समस्यामें शामिल हो गयी और दमनने भीतरी प्रश्न बने रहनेके स्थानपर अन्तर्जातीय प्रश्नका क्रम धारण किया। वह निर्बल और प्रभुसत्ताशून्य राष्ट्रीय जातियोंको गुलाम बनानेके लिए महान साम्राज्यवादी शक्तियोंके बीच संघर्ष और युद्धका कारण बन बैठा।' *

१९१४ से १९१८ तक चलनेवाले साम्राज्यवादी युद्धके कारण उपनिवेश-वाले विजयी राजों (ब्रिटेन, फ्रांस, इटली) के भीतर राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी चरम सीमापर जा पहुँचा, पराजित बहुराष्ट्रीय राजों (आस्ट्रिया, हङ्गरी, १९१७ वाला रूस) का पूर्ण विघटन हो गया और अन्तमें नये बुर्जुआ राष्ट्रीय राजों (पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, फिनलैण्ड, जार्जिया, आर्मेनिया आदि) की स्थापना हुई जिनमें प्रत्येकके अपने अल्पसंख्यक थे। नये राष्ट्रीय-राजोंकी स्थापना व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा वर्ग असमानताके आधारपर हुई है। उनके अस्तित्वके लिए यह आवश्यक है कि वे (१) अपने अल्पसंख्यकोंपर अत्याचार करें (पोलैण्ड श्वेतरूसियों, यहूदियों, लिथुआनियनों और यूक्रेनियनों-पर अत्याचार करता है; जार्जिया आसेटों, आबखासियनों और आर्मेनियनोंपर अत्याचार करता है; युगोस्लाविया क्रोटों, बोसनियनों तथा अन्य लोगोंपर

---

* मार्च १९२१ में रूसी कम्युनिस्टपार्टीकी दसवीं कांग्रेसमें स्वीकृत प्रस्ताव, 'मार्क्सिज्म एण्ड दि कोलोनियल क्वेश्चन पृ० २७०—७१ पर उद्धृत।

अत्याचार करता है ।) (२) अपने पड़ोसियोंकी भूमि हड़पकर अपने प्रदेशका विस्तार करें जिसका अनिवार्य परिणाम संघर्ष और युद्ध है । और (३) राजस्व, अर्थ और सैनिक सभी दृष्टियोंसे 'महान' साम्राज्यवादी शक्तियोंके गुलाम बन जायँ।

ऐसा होना अनिवार्य था । कारण, व्यक्तिगत सम्पत्ति और पूँजी अनिवार्यतः जनतामें अनैक्य, राष्ट्रीय एकताका सर्वनाश और दमन और अत्याचारकी वृद्धि करती है जब कि सामूहिक सम्पत्ति और श्रमद्वारा जनता अधिक निकट सम्पर्कमें आती है, राष्ट्रीय मतभेद मिटता है और दमनका अन्त हो जाता है । राष्ट्रीय दमनशून्य पूँजीवादका अस्तित्व उसी प्रकार कल्पनामें न आनेकी वस्तु है जिस भाँति पीड़ित राष्ट्रोंकी मुक्ति तथा राष्ट्रीय स्वाधीनताके बिना समाजवादका अस्तित्व । अतः राष्ट्रीय अत्याचारके अन्त, राष्ट्रीय समानताकी स्थापना तथा अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षाके आश्वासनके लिए सोवियतकी विजय तथा सर्वहारा वर्गके अधिनायकत्वकी मूल शर्त है । रूसमें सोवियत पद्धतिकी स्थापना तथा राष्ट्रोंके सम्बन्ध-विच्छेदके अधिकारकी घोषणाके कारण रूसको विभिन्न राष्ट्रीय जातियोंके पारस्परिक सम्बन्धमें घोर परिवर्तन हो गया है । पृथक् रहनेसे अनेक सोवियत प्रजातन्त्रोंको पूँजीवादी राजोंसे भारी खतरा था और उनका अस्तित्व अनिश्चित और डावाँडोल था । युद्धकालमें रक्षा सम्बन्धी उनके संयुक्त हितों और उत्पादक शक्तियोंका पुनर्गठन चूरचूर हो गया और इस बातसे कि वे सोवियत लोकतन्त्र जिनके पास पर्याप्त खाद्य सामग्री है वे खाद्य सामग्रीकी कमीवाले लोकतन्त्रोंकी अवश्य सहायता करें, विभिन्न लोकतन्त्रोंके राजनीतिक ऐक्यकी बात परिलक्षित होती है । साम्राज्यवादी पराधीनता और अत्याचारसे मुक्ति पानेका एकमात्र उपाय यही है । *

उपर्युक्त उद्धरणोंमें अधिकृत रूपसे रूसकी कम्युनिस्टपार्टीके सिद्धान्त आ गये है । श्री स्टालिन तथा अन्य लोग अपने भाषणों और वक्तव्योंद्वारा १९१७ की क्रान्तिसे बहुत पहलेसे लेकर आजतक इनकी व्याख्या करते आये हैं।

---

* वही उपर्युक्त प्रस्तावसे उद्धृत ; पृष्ठ २७३-७४ ।

आइये, इन सिद्धान्तोंकी ऊपर दी गयी व्याख्याके अनुसार हम मुस्लिम लीगके इस दावेपर विचार करें कि भारतके मुसलमान भारतके अन्य राष्ट्र या राष्ट्रोंसे पृथक् राष्ट्र हैं और इसलिए उन्हें केवल सम्बन्ध विच्छेद कर सकनेका ही अधिकार नहीं है अपितु भारतके जिन क्षेत्रोंमें उनका बहुमत है उनमें उन्हें वस्तुतः जब चाहें तब पृथक् हो जानेका अधिकार प्राप्त है।

यदि हम कम्युनिस्टोंकी राष्ट्रकी परिभाषाकी कसौटीपर कसें तो हम देखते हैं कि भारतके सारे मुसलमान एक राष्ट्र नहीं कहे जा सकते हैं। वे सबके सब एक ही भाषा नहीं बोलते। विभिन्न प्रान्तों और प्रदेशोंमें उनकी भिन्न भाषा है। वस्तुतः मुसलमान जिस प्रान्तमें निवास करते हैं उसी प्रान्तकी प्रान्तीय भाषा बोलते हैं। उनकी भाषा वही रहती है जो उनके प्रान्तके गैर-मुसलमान बोलते हैं और वह अन्य प्रान्तोंसे भिन्न रहती है। यह बात केवल दूरस्थ प्रान्तों-के विषयमें ही सत्य नहीं है अपितु पश्चिमोत्तर प्रदेशके पास पास लगे प्रान्तोंके विषयमें भी सत्य है। यहाँपर ४ प्रान्तोंके निवासी बलूची, सिन्धी, पश्तो और पञ्जाबी बोलते हैं। इन सब भाषाओंमें आपसमें उतना ही अन्तर है जितना हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी अथवा बङ्गाली और गुजरातीमें है।

जबतक हम सारे भारतको एक प्रदेश न मान लें तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि ये सभी एक ही प्रदेशमें निवास करते हैं। भारतके पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा पूर्वी प्रदेशके बीच, जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हैं, लगभग एक हजार मीलका अन्तर है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि मुसलमानोंका आर्थिक जीवन गैर-मुसलमानोंसे भिन्न है। जिस प्रदेशमें वे रहते हैं उसीके गैर-मुसल-मानोंके आर्थिक जीवनसे उनका आर्थिक जीवन मिलता है, और उसी भाँति अन्य प्रान्तवाले मुसलमानों और गैर-मुसलमानोंसे वह भिन्न रहता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्री स्टालिनने धर्मको किसी पृथक् राष्ट्रकी नींवका आधार नहीं बताया है। वस्तुतः उन्होंने अपने लेखोंमें अनेक स्थानोंपर इस कल्पनाका मजाक उड़ाया है कि यहूदी केवल अपने धर्मके कारण पृथक् राष्ट्र कहे जा सकते हैं। किन्तु हम यह बात मान सकते हैं कि वे 'किसी सांस्कृतिक

सम्प्रदायमें समाया मनोवैज्ञानिक ढाँचा' जिसे कहते हैं उसमें धर्मका प्रभाव भी सम्मिलित है और किसी सम्प्रदायके सांस्कृतिक विकासमें उसका निश्चय ही महत्वपूर्ण हाथ रहता है। इस्लामने चाहे जो शिक्षा प्रदान की हो इस बातमें सन्देह नहीं है कि सारे भारतमें इस्लामी संस्कृति एक रूपमें नहीं है। देशके विभिन्न भागोंमें उसके रूपमें बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है, और मुसलमान भी इस्लाममें अन्य समुदायोंके समान ही विभिन्न रङ्गोंमें चित्रित दिखाई पड़ते हैं। शीया और सुन्नियोंका मतभेद व्यवहार्यतः उतना ही पुराना है जितना पुराना इस्लाम है। इसके अतिरिक्त मुसलमानोंमें ऐसे कितने ही दल हैं जो पहले हिन्दू ही थे और जो आज भी उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू कानूनका पालन करते हैं और हिन्दू सम्प्रदायकी कितनी ही प्रथाओंका भी पालन करते हैं। कादियानियोंका भी हालका बना हुआ वर्ग है। अनेक मतभेद तो धार्मिक सिद्धान्तोंको लेकर हैं पर उनका भी तो मुसलमानोंके सामाजिक जीवनपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है और वे उसमें प्रविष्ट हो गये हैं तो भी इतना अवश्य है कि इन मतभेदोंके बावजूद एक ऐसी मुस्लिम संस्कृत है जो सभी मुसलमानोंमें पायी जाती है। इसी अर्थमें सर्वत्र व्याप्त एक भारतीय संस्कृति भी है जो सभी मुसलमानों और गैर-मुसलमानोंमें, अनेक मतभेदोंके रहते हुए भी, समान रूपसे व्याप्त है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कम्युनिस्टोंकी परिभाषाके अनुसार भारतके मुसलमानोंकी समष्टि एक पृथक् राष्ट्र नहीं है। भारतीय कम्युनिस्ट भी यह बात स्वीकार करते हैं। 'गान्धीजीको धर्मको राष्ट्रत्वका आधार स्वीकार करनेमें सबसे अधिक आपत्ति है। उनका यह तर्क इस अर्थमें सही है कि केवल धर्मसे ही राष्ट्र नहीं बनता। यहाँ इस बातपर विचार करना विषयान्तर समझा जायगा कि किसी जातिके मनोवैज्ञानिक ढाँचे तथा राष्ट्रीय संस्कृतिके निर्माणपर धर्मका क्या प्रभाव पड़ता है। ये दोनों वस्तुएँ राष्ट्रका ही अङ्ग हैं। हमारे लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि भारतके मुसलमान केवल समानधर्मी होनेके कारण एक राष्ट्र नहीं कहे जा सकते; किन्तु केवल इतना कहना अर्धसत्य है।'* श्री

* पी० सी०जोशी : 'दे मस्ट मीट अगेन', पृष्ठ ७

जोशीके कथनानुसार इस सत्यका आधा अंश यह है कि भारत विभिन्न राष्ट्रीय जातियोंका एक परिवार है।

दूसरी विचारणीय बात ऐतिहासिक है और वह है राष्ट्रीयताके प्रश्नका विकास। श्री स्टालिन इसे तीन कालोंमें विभाजित करते हैं। प्रथम काल वह काल है जिसमें पश्चिममें जागीरदारीका नाश और पूँजीवादकी विजय हुई। इस कालमें ब्रिटेन (आयर्लैण्ड छोड़कर), फ्रान्स और इटलीमें जनता राष्ट्रके रूपमें सङ्घटित हुई।'* 'पूर्वी यूरोपमें इसके विपरीत राष्ट्रीयताओंकी स्थापनाकी पद्धति और जागीरदारोंके अनैक्यका अन्त केन्द्रित राजोंकी स्थापनाकी पद्धतिके साथ साथ नहीं पड़ा......संयुक्त राज स्थापित हुए जिनमें प्रत्येकमें कई राष्ट्रीय जातियाँ थीं जो राष्ट्रोंके रूपमें सङ्घटित नहीं हो पायी थीं पर वे सब एक संयुक्त राजमें एक साथ मिलकर सङ्घटित हो गयीं......ये पूर्वके बहुराष्ट्रीय राज उस राष्ट्रीय दमन और अत्याचारकी जन्मभूमि थे जिसने राष्ट्रीय सङ्घर्षों, राष्ट्रीय आन्दोलनों, राष्ट्रीय समस्या तथा उस समस्याको हल करनेके विभिन्न उपायोंको जन्म दिया।'† जारशाहीके जमानेमें रूस भी यूरोपके उन पूर्वी राजोंमेंसे एक था जहाँ सीमापरके प्रदेशोंपर महान रूसियोंके अत्याचारके कारण यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ।

'द्वितीय कालमें पूर्वी यूरोपमें पराधीन राष्ट्रों (चेक, पोल और यूक्रेनियन) में जागृति उत्पन्न हुई, उन्होंने अपना संघटन किया जिसके कारण, साम्राज्य-वादी युद्धके फलस्वरूप, पुराने बुर्जुआ राष्ट्रीय राजोंका विघटन हुआ और नये राष्ट्रीय राजोंकी स्थापना हुई जो 'महान शक्तियोंके अधीन हो गये।

'तृतीय काल सोवियत काल है जिसमें पूँजीवादका नाश तथा अत्याचार और दमनका अन्त हुआ।'‡

भारतमें विकासका यह रूप नहीं रहा। हमारे यहाँ निश्चय ही एक केन्द्रित राज रहा जिसका सारे भारतपर तो शासन रहा ही, देशी रियासतोंपर भी आधि-

---

* 'मार्क्सिज्म एण्ड नेशनल एण्ड कोलोनियल क्वेश्चन' पृष्ठ ९९।
† वही, पृष्ठ ९९–१००। ‡ वही, पृष्ठ १००–१०१।

पत्य रहा। किन्तु इस केन्द्रित राजमें भारतके किसी सम्प्रदाय या प्रान्तके हाथमें कोई अधिकार नहीं रहा। यहाँकी राष्ट्रीय जातियोंको जो दमन और अत्याचार सहन करना पड़ा वह पूर्वी यूरोप और विशेषतः रूसकी भाँति केन्द्रीय अधिकार अपने हाथमें रखनेवाले किसी भारतीय दल अथवा सम्प्रदायके हाथों नहीं, वरन् सबको एक ही केन्द्रीय शक्ति, विदेशी शासन-सत्ताके अत्याचारोंका शिकार होना पड़ा। यहाँपर राष्ट्रीय जातियोंके अधिकारोंकी आपसमें ही रक्षा करनेकी समस्या नहीं है, अपितु सभी राष्ट्रीय जातियोंपर समान रूपसे शासन करनेवाली संयुक्त केन्द्रीय सत्तासे अपने अधिकारोंकी रक्षा करनेकी समस्या है। अतः भारतका मामला यूरोपियन राष्ट्रीय जातियोंकी श्रेणीका नहीं अपितु उपनिवेशोंकी श्रेणीका है। अतः तर्ककी दृष्टिसे मुख्य और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न ब्रिटेनके साम्राज्यवादी चंगुलसे मुक्ति पानेका होना चाहिए, नकि पीड़ित राष्ट्रीय जातियोंके एक दूसरेसे पृथक् होनेका होना चाहिए। वस्तुतः इसी बातपर कांग्रेस सबसे अधिक जोर देती रही है।

यह कहा जा सकता है कि जो राष्ट्रीय जातियाँ अल्पसंख्यक हैं उन्हें यह आश्वासन मिल जाना चाहिए कि जब साम्राज्यवादी शासन और दमनसे मुक्ति मिल जाय तो साम्राज्यवादी शासनका अन्त हो जानेपर शासनारूढ़ होनेवाला बहु-संख्यक दल उनपर उसी भाँति अत्याचार न करे। यह आश्वासन प्रदान करनेके लिए रूसके विधानके ढंगपर आत्मनिर्णय अथवा सम्बन्ध विच्छेदका अधिकार कुछ स्वतःसिद्ध और आवश्यक सीमाओंके साथ स्वीकार किया जा सकता है।

'किसी राष्ट्रके स्वतन्त्रतापूर्वक सम्बन्ध विच्छेद कर लेनेके "अधिकार" का अर्थ यह नहीं है कि किसी निश्चित समयपर वह "अवश्य ही" उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर ले।······जब हम कहींकी पीड़ित जनताके सम्बन्ध-विच्छेदका, अपने राजनीतिक भविष्यका स्वयं निर्णय कर सकनेका अधिकार स्वीकार करते हैं तो इसके द्वारा हम इस प्रश्नका निर्णय नहीं कर डालते कि अमुक राष्ट्र किसी निश्चित समयपर रूसी राजसे पृथक् हो ही जाय। मैं किसी राष्ट्रके सम्बन्ध विच्छेदके अधिकारको भले ही स्वीकार कर लूँ परन्तु इसका अर्थ

यह नहीं है कि मैं उसे सम्बन्ध विछेदके लिए विवश करता हूँ। किसी राष्ट्रकी जनताको सम्बन्ध विच्छेदका अधिकार प्राप्त होनेपर यह उसकी इच्छा और परिस्थितियोंपर निर्भर करता है कि वह इस अधिकारका प्रयोग करे या न करे, उससे सम्बन्ध विच्छेद करे या न करे। अतः हम सर्वहारा वर्ग और उसकी क्रान्तिके हितोंको दृष्टिमें रखते हुए किसीके सम्बन्ध विच्छेदके पक्ष या विपक्षमें प्रचार करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। किसी विशेष मामलेमें सम्बन्ध विच्छेदके प्रश्नका निर्णय वर्तमान परिस्थितियोंको देखते हुए करना चाहिए। सम्बन्ध विच्छेदके अधिकारका अर्थ किसी भी परिस्थितिमें अवश्य ही सम्बन्ध विच्छेद कर डालना न समझ लेना चाहिए।'* परन्तु भारतमें केवल सम्बन्ध विच्छेदके अधिकारकी स्वीकृतिकी ही माँग नहीं की जाती अपितु, देशसे सम्राज्यवादी शासन उठनेके पूर्व ही, वस्तुतः तत्काल सम्बन्ध विच्छेद कर लेनेकी माँग की जाती है।

स्पष्ट है कि श्री स्टालिन और कम्युनिस्ट पार्टी इस बातपर जोर नहीं देती कि विभिन्न देशोंमें वहाँकी विशेष परिस्थितियोंकी ओर ध्यान न देते हुए सर्वत्र एकसी नीति बरती जाय। श्री स्टालिन विशेषतः उस क्रान्तिमें भेद करते हैं जो उन साम्राज्यवादी देशोंमें होती है जहाँके निवासी अन्य देशोंकी जनतापर अत्याचार करते हैं तथा जो उन उपनिवेशों और पराधीन देशोंमें होती है जो अन्य राजोंके साम्राज्यवादी दमनके शिकार बनते हैं।† वे अपने समर्थनमें अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट संस्थाके निबन्धमेंसे कुछ अंश उद्धृत करते हुए कहते हैं कि चीन और भारत जैसे देशोंमें 'विदेशी शासन वहाँके सामाजिक जीवनके विकासमें निरन्तर बाधा डाला करता है' और 'इसलिए उपनिवेशोंमें क्रान्तिका पहला कदम विदेशी पूँजीवादको उखाड़ फेंकना होना चाहिए।‡ क्या इससे इस बातका समर्थन नहीं होता कि भारतमें पहला कदम विदेशी शासनसे मुक्तिका होना चाहिए, नकि देशके विभाजनका?

---

* स्टालिन : 'मार्क्सिज्म एण्ड दि नेशनल एण्ड कोलोनियल क्वेश्चन' पृष्ठ ६४८ † वही, पृष्ठ २३२। ‡ वही, पृष्ठ २३६।

यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि एक ओर जहाँ कम्युनिस्ट पार्टीने राष्ट्रोंके आत्मनिर्णय और अपना स्वतन्त्र राजनीतिक अस्तित्व रखनेके अधिकारको नीति स्वीकार की वहाँ दूसरी ओर वह इतने ही जोरदार रूपमें यह बात स्वीकार करती है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और पूँजीके नाशके बिना, सामूहिक सम्पत्ति और श्रमकी स्थापनाके बिना और सर्वहारा वर्गके अधिनायकत्वके बिना पीड़ित राष्ट्रीय जातियोंकी मुक्ति नहीं हो सकती। अतः केवल एक संघ राजके भीतर सभी लोगोंके भाईचारेके साथ रहनेके लिए दोनों राष्ट्रीय जातियोंके सम्बन्ध-विच्छेदके अधिकारकी स्वीकृति तथा सोवियत राज और सर्वहारा वर्गके अधि-नायकत्वकी स्थापनाके सिद्धान्तोंके एक साथ चलनेकी आवश्यकता है। इन दोमेंसे किसी भी एक सिद्धान्तको त्याग देनेसे काम नहीं चल सकता। यह स्पष्ट है कि दोनों पहलुओंके एकीकरणमें अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी और जो लोग मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी माँगका समर्थन करते हैं वे इस बातको जानते हैं। वे इस सम्बन्धमें एक पहलूपर तो बोलते हैं पर दूसरेपर सर्वथा मौन धारण कर लेते हैं। इस बातमें भी कुछ रहस्य अवश्य है कि भारतकी कम्युनिस्टपार्टी लीगके प्रस्तावका जैसा जोरदार समर्थन कर रही है उसे देखते हुए श्री जिना तथा मुस्लिम लीग यदि उनके प्रति पूर्णतः विरोधी नहीं तो उपेक्षा अवश्य रखती है।

७

सप्रू कमेटीके प्रस्ताव

कुछ समय पूर्व सर तेजबहादुर सप्रूकी अध्यक्षतामें ऐसे व्यक्तियोंकी एक कमेटी नियुक्त हुई जो सार्वजनिक जीवनमें तथा बृटिश भारत और देशी रियासतोंमें उच्च पदोंपर रहकर कार्य कर चुके हैं। कमेटीकी ओरसे यह दावा किया गया कि उसके सदस्य देशके किसी सम्प्रदाय-विशेषसे सम्बद्ध नहीं हैं और उन्होंने भारतकी साम्प्रदायिक समस्या तथा वैधानिक समस्याका हल

खोजनेके लिए उपस्थित किये गये किसी प्रस्तावका समर्थन नहीं किया है, अतः कमेटीको आशा है कि वह ऐसे सुझाव उपस्थित कर सकेगी जो सर्वथा निष्पक्ष होंगे। कमेटीने अपने निर्णय दो खण्डोंमें प्रकाशित किये हैं। प्रथम खण्डमें केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनाकी अस्थायी व्यवस्थाके सम्बन्धमें कुछ प्रस्ताव हैं और द्वितीय खण्डमें भारतके भावी विधानके सम्बन्धमें सुझाव पेश किये गये हैं। यहाँ मैं द्वितीय खण्डमें उपस्थित किये गये प्रस्तावोंकी ही चर्चा करूँगा।

कमेटीके प्रकाशित प्रस्तावोंमें भारतकी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें कोई विशेष सिफारिशें नहीं की गयी हैं। ब्रिटिश पार्लमेण्टद्वारा इन प्रस्तावोंके स्वीकृत होनेकी आशा है। इसके अतिरिक्त ये प्रस्ताव औपनिवेशिक विधान तथा स्वतन्त्र भारतके विधान—दोनों—के उपयुक्त हैं।

विधान निर्मात्री परिषद्—क्रिप्स प्रस्तावकी धारा 'डी' में इस परिषद्के सङ्घटनकी जो पद्धति दी गयी है उसमें निम्नलिखित संशोधनोंके साथ विधान निर्मात्री परिषद्का संघटन होगा—(१) परिषद्में कुल १६० सदस्य रहेंगे जिनमें विशेष हितों—वाणिज्य-व्यवसायों, जमींदारों, विश्वविद्यालयों, मजदूरों और महिलाओं—के १६ ; दलितवर्गोंको छोड़कर हिन्दुओंके ५१ ; मुसलमानोंके ५१ ; दलितवर्गोंके २० ; भारतीय ईसाइयोंके ७ ; सिखोंके ८ ; पिछड़ी जातियों और मूल निवासियोंके ३ ; एंग्लो-इण्डियनोंके २ ; यूरोपियनोंका १ और अन्य लोगोंका १ प्रतिनिधि रहेगा। कमेटीने विधान-निर्मात्री परिषद्में १६० सदस्य रखनेकी सिफारिश की है जब कि क्रिप्स प्रस्तावमें कहा गया था कि सभी असेम्बलियोंके कुल सदस्योंकी संख्याके $\frac{१}{१०}$ व्यक्ति परिषद्में रहें। उक्त प्रस्तावके अनुसार भी लगभग इतनी ही संख्या होती है। कमेटीके प्रस्तावमें और क्रिप्स प्रस्तावमें यह अन्तर है कि कमेटीके प्रस्तावमें विभिन्न हितों अथवा सम्प्रदायोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या निश्चित कर दी गयी है और इस भाँति मुसलमानों और दलितवर्गोंके अतिरिक्त अन्य हिन्दुओंको समानताकी श्रेणीपर रख दिया गया है, जबकि क्रिप्स प्रस्तावमें आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी पद्धतिपर

चुनावका विधान था जिसके अनुसार असेम्बलियोंमें विभिन्न दलोंके उतने ही प्रतिनिधि पहुँचते जितने प्रतिनिधित्वके अनुसार निश्चित होते, उससे एक भी अधिक नहीं। इस भाँति हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंकी संख्या कहीं कम होती और हिन्दुओंकी संख्या कमेटीके प्रस्तावके अनुसार निर्धारित संख्यासे कहीं अधिक होती। कमेटीने साम्प्रदायिक एकताके उद्देश्यसे इस संशोधनकी सिफारिश की है।

विधानका कोई भी निर्णय उसी समय वैध होगा जब उपस्थित सदस्योंमेंसे तीन चौथाई सदस्य उसका समर्थन करें और मतप्रदान करें। ब्रिटिश सरकार विधान निर्मात्री परिषद्के वैध निर्णयोंके आधारपर विधानको कानूनीरूप प्रदान करेगी और जिन मामलोंपर आवश्यक बहुमत प्राप्त न होगा उनपर आवश्यकतानुरूप अपना निर्णय देगी।

भारतका विभाजन—कमेटी भारतको दो अथवा अधिक पृथक् स्वतन्त्र प्रभुराजोंमें विभक्त करनेके सर्वथा विरुद्ध है, कारण उससे सारे देशकी शान्ति और नियमित प्रगतिमें बाधा पड़ेगी और किसी सम्प्रदायको कोई विशेष सुविधा प्राप्त न होगी।

देशी राज—विधानमें ऐसा आयोजन रहना चाहिए कि देशी राज यदि स्वीकृत शर्तोंपर चाहें तो संयुक्त राजमें इकाई रूपमें प्रविष्ट हो सकें, किन्तु संयुक्त राज ही स्थापनाके लिए उसमें सभी कुछ या किसी देशी राजका शामिल होना अनिवार्य न हो।

सम्मिलित न होना और सम्बन्ध-विच्छेद—ब्रिटिश भारतके किसी भी प्रान्तको यह अधिकार न रहे कि वह अपनी इच्छासे संयुक्त राजमें सम्मिलित न हो और न संयुक्त राजमें सम्मिलित किसी प्रान्त या राजको ही यह अधिकार रहे कि वह उससे सम्बन्ध विच्छेद कर उससे पृथक् हो जाय।

भाषा-विज्ञान अथवा संस्कृतिके आधारपर प्रान्तोंकी सीमाके पुनःनिर्धारणके नामपर नये विधानमें विलम्ब करना कमेटीकी दृष्टिमें अवांछनीय है। यह कार्य

बादमें हो सकता है। कमेटीने विधान निर्मात्री परिषद्के लिए कुछ सिफारिशें की हैं।

भारतके संयुक्त राजका एक प्रधान रहेगा, जिसे (१) विधानद्वारा स्वीकृत सभी अधिकार प्राप्त रहेंगे, और विधानद्वारा निश्चित कर्तव्योंका पालन करना पड़ेगा। (२) वे सभी अधिकार प्राप्त रहेंगे जो इस समय इङ्गलैण्डके सम्राट्को प्राप्त हैं जिनमें वे अधिकार भी सम्मिलित हैं जो देशी रियासतोंके सम्बन्धमें सम्राट्को प्राप्त हैं।

राजके प्रधानका कार्यकाल ५ वर्ष रहेगा और साधारणतः वह एक बारसे अधिक इस पदपर कार्य न करेगा।

राजके प्रधानको (१) या तो संयुक्त राजकी दोनों व्यवस्थापक सभाएँ अपने संयुक्त अधिवेशनद्वारा या तो बिना किसी प्रतिबन्धके चुनेंगी अथवा उनके लिए यह विकल्प रहेगा कि वे न्यूनतम इतनी जनसंख्या अथवा इतनी मालगुजारीवाली देशी रियासतोंके शासकोंमेंसे चुन सकते हैं, अथवा (२) देशी नरेश अपने बीचमेंसे चुनेंगे, अथवा (३) इङ्गलैण्डके सम्राट् संयुक्त राजके मंत्रिमंडलके परामर्शसे, उपरिलिखित किसी विधिसे, नामजद करेंगे। यदि तृतीय विकल्प स्वीकार किया जाय और ब्रिटिश सम्राट्से भारतकी कड़ी न टूटे तब भी भारतमंत्री तथा उनका या ब्रिटिश मंत्रिमंडलका भारतीय शासनपर जो नियन्त्रण है उसका तो अन्त ही हो जाना चाहिए।

राजका प्रधान संयुक्त राजके मंत्रिमंडलकी सलाहसे देशी नरेशोंके अतिरिक्त अन्य इकाइयोंके अध्यक्षकी नियुक्ति करेगा।

संयुक्त राजकी व्यवस्थापिका सभाएँ : राजके प्रधानके अतिरिक्त दो व्यवस्थापिका सभाएँ रहेंगी—एक संयुक्त राजकी असेम्बली और एक राज्य परिषद्। असेम्बलीके सदस्योंकी संख्या इस अनुपातमें रहेगी कि जनसंख्याके १० लाख व्यक्तियोंपर एक सदस्य रहे। उसके दस प्रतिशत स्थान विशेष हितों—जमींदार, वाणिज्य और व्यवसाय, मजदूर, महिलाओं—के प्रतिनिधित्वके लिए सुरक्षित रहेंगे। शेष स्थान इन सम्प्रदायोंमें बाँट दिये जायँगे—सवर्ण

हिन्दू, मुसलमान, दलितवर्ग, सिख, भारतीय ईसाई, एंग्लो इण्डियन, अन्य सम्प्रदाय। यदि मुसलमान सम्प्रदाय पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचनके लिए स्थान सुरक्षित रखते हुए सर्वत्र संयुक्त निर्वाचनकी पद्धति स्वीकार कर ले तो, केवल उसी स्थितिमें, हिन्दुओं और मुसलमानोंकी जनसंख्यामें भारी असमानता रहते हुए भी साम्प्रदायिक ऐक्यके हितकी दृष्टिसे कमेटी यह सिफारिश करेगी कि केन्द्रीय असेम्बलीमें विशेष हितोंको छोड़कर ब्रिटिश भारतके मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व सर्वत्र हिन्दुओंके समान रहे।

यदि यह सिफारिश स्वीकृत न हो तो हिन्दू सम्प्रदाय समान प्रतिनिधित्वकी बातको ही अस्वीकार करनेके लिए नहीं अपितु साम्प्रदायिक निर्णयपर पुनर्विचार करानेके लिए भी स्वतन्त्र होगा।

भारत शासन विधानमें सिखों तथा दलितवर्गोंको दिया गया प्रतिनिधित्व अपर्याप्त और अनुचित है। उसमें वृद्धि होनी आवश्यक है। उन्हें कितना प्रतिनिधित्व दिया जाय इसका निर्णय विधान निर्मात्री परिषद् करेगी।

संयुक्त राजकी असेम्बलीमें विशेष हितोंको छोड़कर अन्य स्थानोंके लिए बालिग मताधिकार रहेगा।

अधिकारोंका विभाजन : अधिकारोंके विभाजनकी विस्तृत सूची विधान निर्मात्री परिषद् प्रस्तुत करेगी। उसके पथप्रदर्शनके लिए कमेटी इन सिद्धान्तोंकी सिफारिश करती है—(क) केन्द्रके यथासम्भव न्यूनतम अधिकार और कार्य रहने चाहिएँ पर ये बातें अवश्य रहनी चाहिएँ —(१) सारे भारतके संयुक्त हितोंके विषय जैसे—परराष्ट्र रक्षा, देशी रियासतोंसे सम्बन्ध, यातायात, वाणिज्य, जकात, डाक और तार, (२) इकाइयोंमें होनेवाले झगड़ोंका निपटारा, (३) जहाँ आवश्यक हो वहाँ विभिन्न इकाइयोंमें व्यवस्था और शासन-प्रबन्धमें मेल, और (४) ऐसे सभी विषय और कार्य जो सारे भारत अथवा उसके किसी भागकी शान्ति तथा सुरक्षा और भारतकी राजनीतिक और आर्थिक अखण्डताकी रक्षा तथा विशेष स्थितिका सामना करनेके लिए आवश्यक हो।

अवशिष्ट अधिकार : संयुक्त राज तथा इकाइयोंके विषयों और अधिकारोंकी सूचीमें जो अधिकार न आयेंगे वे इकाइयोंके ही अधिकारमें रहेंगे।

एकसे अन्य इकाईके बीच ज़कात सम्बन्धी बाधाएँ रद कर दी जायँगी परन्तु यदि किन्हीं इकाइयोंपर इसका बुरा असर पड़ेगा तो संयुक्त राजके खजानेसे उनकी पूर्ति की जायगी।

केन्द्रीय सरकार : संयुक्त राजका केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल इस अर्थमें संयुक्त रहेगा कि उसमें इन सम्प्रदायोंका प्रतिनिधित्व रहेगा—(१) सवर्ण हिन्दू, (२) मुसलमान, (३) दलितवर्ग, (४) सिख, (५) भारतीय ईसाई, (६) एंग्लो-इण्डियन। मन्त्रिमण्डलमें इन सम्प्रदायोंका प्रतिनिधित्व यथा-सम्भव उसी अनुपातसे रहेगा जिस अनुपातसे असेम्बलीमें इनका प्रतिनिधित्व होगा।

यदि किसी सम्प्रदायके प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डलमें सम्मिलित होनेसे इनकार कर दें तब भी, उनके बिना भी, मन्त्रिमण्डल विधिवत् स्थापित किया हुआ माना जायगा।

मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूपसे असेम्बलीके प्रति उत्तरदायी रहेगा। प्रधान मन्त्री उसका नेता होगा जोकि प्रायः एक ऐसे दलका नेता होगा जिसका या तो स्वयं ही असेम्बलीमें बहुमत होगा अथवा जो अन्य दलोंको अपने साथ रखकर बहुमत बनाये रखनेमें समर्थ होगा। प्रधान मन्त्री और उपप्रधान मन्त्रीयोंके पदोंपर सदैव ही कोई एक ही सम्प्रदाय पदारूढ़ न रहेगा।

अन्य मन्त्री प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे नियुक्त किये जायँगे। इनमेंसे एक मन्त्री उपप्रधान मन्त्री रहेगा। ऐसा कानून रहेगा कि प्रधान मन्त्री और उपप्रधान मन्त्री एक ही सम्प्रदायके न रहें।

इसके लिए एक विकल्प भी सुझाया गया है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा अपने संयुक्त अधिवेशनमें एकमात्र हस्तान्तरित किये जा सकनेवाले वोटकी पद्धतिद्वारा उपर्युक्त प्रकारके मन्त्रिमण्डलका चुनाव करे। इसके मन्त्री व्यवस्थापिका सभाके कार्यकालतक पदारूढ़ रहेंगे। व्यवस्थापिका सभा ही मन्त्रियोंमेंसे एकको अध्यक्ष और एकको उपाध्यक्ष चुनेगी पर, ये दोनों एक ही सम्प्रदायके न होंगे।

देशी राजोंके मन्त्री : एक मन्त्री देशी राजोंके लिए रहेगा। देशी रियासतों सम्बन्धी सभी मामलोंका सम्पर्क उसीसे रहेगा। उसके साथ कमसे कम तीन और अधिकसे अधिक पाँच व्यक्ति काम करेंगे जो देशी रियासतों सम्बन्धी परामर्शदाता कहलायेंगे और उनका चुनाव देशी रियासतोंके परामर्शसे निश्चित पद्धतिद्वारा होगा। मन्त्री सभी महत्त्वके प्रश्नोंपर इन परामर्शदाताओंसे सलाह लेंगे और विधान कानूनमें निश्चित कुछ मामलोंमें उनकी स्वीकृति प्राप्त करेंगे।

न्याय-व्यवस्था : संयुक्त राजके लिए एक सर्वोच्च न्यायालय रहेगा और प्रत्येक इकाईमें एक हाईकोर्ट रहेगी। न्यायधीशोंकी संख्या और वेतन विधान-कानूनमें आरम्भमें ही निश्चित दी जायगी। उसमें हाईकोर्ट, सम्बन्धित सरकार और सर्वोच्च न्यायालयकी सिफारिश और राजके प्रधानकी स्वीकृतिसे ही कोई संशोधन हो सकेगा पर किसी न्यायाधीशके वेतनमें उसके कार्यकालमें कोई हानिकारी परिवर्तन न किया जायगा।

भारतके प्रधान न्यायाधीशकी नियुक्ति राजके प्रधान करेंगे। सर्वोच्च न्यायालयके अन्य न्यायाधीशोंकी नियुक्ति भी भारतके प्रधान न्यायाधीशकी सलाहसे राजके प्रधान करेंगे। किसी हाईकोर्टके प्रधान न्यायाधीशकी नियुक्ति भी राजके प्रधान उक्त इकाईके प्रधान तथा भारतके प्रधान न्यायाधीशकी सलाहसे करेंगे। हाईकोर्टके अन्य न्यायाधीशोंकी नियुक्ति राजके प्रधान उक्त इकाईके प्रधान, उसीके प्रधान न्यायाधीश तथा भारतके प्रधान न्यायाधीशकी सलाहसे करेंगे। किसी हाईकोर्ट अथवा सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीशकी कार्यावधि उतनी रहेगी जितनी विधान-कानूनमें निश्चित रहेगी।

राजका प्रधान किसी हाईकोर्टके न्यायाधीशको दुर्व्यवहार अथवा मस्तिष्क या शरीरकी खराबीके कारण उसके पदसे पृथक् कर सकता है, बशर्ते कि इसकी रिपोर्ट माँगनेपर सर्वोच्च न्यायालय यह बात कहे कि उपर्युक्त कारणोंसे उक्त न्यायाधीश हटा दिया जाना चाहिए। इन्हीं कारणोंपर राजका प्रधान सर्वोच्च न्यायालयके किसी न्यायाधीशको पृथक् भी कर सकता है बशर्ते कि इन कारणोंकी

जाँचके लिए विशेष रूपसे नियुक्त विशेष ट्रिब्यूनल यह रिपोर्ट दे कि उक्त न्यायाधीश हटा दिया जाना चाहिए।

रक्षा : मन्त्रिमण्डलमें रक्षा विभाग भी रहेगा। उसके लिए एक मन्त्री रहेगा जो व्यवस्थापिका सभाके प्रति उत्तरदायी रहेगा किन्तु सेनाका वास्तविक नियन्त्रण और अनुशासन प्रधान सेनापतिके हाथमें ही रहना चाहिए।

देशमें शीघ्रसे शीघ्र राष्ट्रीय सेना स्थापित की जायगी। ऐसी सेनाकी स्थापनाके लिए कमेटी निम्नलिखित बातोंकी सिफारिश करती है—

(क) भारतकी रक्षाके निमित्त जिन ब्रिटिश दस्तोंकी अस्थायी रूपसे आवश्यकता हो तथा पर्याप्त भारतीय अफसर तैयार न होनेतक जिन अफसरोंकी आवश्यकता हो उनके सम्बन्धमें संयुक्त राजकी सरकार तथा ब्रिटिश सरकारसे परस्पर सन्धि कर ली जाय और तदनुसार ये सैनिक और अफसर ले लिये जायँ।

(ख) युद्ध समाप्त होते ही भारतीय सेनामें ब्रिटिश अफसरोंकी भरती तत्काल बन्द कर दी जाय। जो ब्रिटिश अफसर भारतीय सेनाके अफसर न होंगे तथा जिनकी आवश्यकता भी न होगी वे ब्रिटिश सेनामें ही पुनः वापस भेज दिये जायँ। एक ऐसी संस्था स्थापित कर दी जाय जिसमें आकाश, जल और स्थल—सेनाओंके लिए पर्याप्त संख्यामें अफसर तैयार किये जायँ, उन्हें इसकी शिक्षा प्रदान की जाय। वर्तमान शिक्षा-पद्धतिमें जो दोष हैं वे दूर कर दिये जायँ। जिन विश्वविद्यालयोंमें अफसरोंको शिक्षा प्रदान करनेके लिए शिक्षण संस्थाएँ नहीं हैं वहाँ वे स्थापित की जायँ और उनका विस्तार किया जाय।

सरकारी नौकरियोंमें प्रतिनिधित्व : केन्द्रमें इस समय सरकारी नौकरियोंमें विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रतिनिधित्वके लिए जो नियम हैं वे उस समयतक जारी रखे जा सकते हैं, जबतक नया शासन-विधान लागू न हो। फिर भी कमेटीकी सिफारिश है कि सिखों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो इण्डियनों और पारसियोंके लिए इस समय जो ८$\frac{1}{3}$ प्रतिशत है वह इस प्रकार विभाजन कर दिया जाय—सिख ३$\frac{1}{2}$ प्रतिशत, भारतीय ईसाई ३ प्रतिशत, एंग्लो इण्डियन और पारसी १$\frac{5}{6}$ प्रतिशत; किन्तु १९३५ के भारत शासन-विधानकी धारा

२४२ के अन्तर्गत कुछ नौकरियोंमें एंग्लो इण्डियनोंके लिए जो विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं, उनपर इस सिफारिशका कोई प्रभाव न पड़ेगा।

संयुक्त राज और इकाइयोंके पब्लिक सर्विस कमीशनके अध्यक्ष और सदस्योंकी नियुक्ति राजके प्रधान अथवा इकाईके प्रधान संयुक्त राजके अथवा इकाईके प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे करेंगे।

सैद्धान्तिक अधिकार : विधानमें सैद्धान्तिक अधिकारोंकी विस्तृत घोषणा होगी जिनमें इन बातोंका आश्वासन रहेगा—(क) वैयक्तिक स्वतन्त्रता, (ख) प्रकाशन और मिलने-जुलनेकी स्वतन्त्रता, (ग) सभी नागरिकोंको नागरिकताके समान अधिकार, (घ) पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता, (ङ) सभी सम्प्रदायोंकी भाषा और संस्कृतिकी रक्षा और उन सभी बाधाओं और प्रतिबन्धोंका नाश जो दलित-वर्गोंपर परम्परा अथवा प्रथाके अनुसार लागू हुए हों तथा धार्मिक रीति-रिवाजोंकी रक्षा, जैसे—सिखोंका कृपाण धारण करना।

अल्पसंख्यकोंका कमीशन : केन्द्रमें तथा प्रान्तोंमें अल्पसंख्यकोंका एक स्वतन्त्र कमीशन रहेगा। इसमें असेम्बलीमें पहुँचे हुए विभिन्न सम्प्रदायोंके सदस्यों-द्वारा चुना हुआ प्रत्येक सम्प्रदायका एक-एक प्रतिनिधि रहेगा (यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिनिधि उसी सम्प्रदायका सदस्य हो जिस सम्प्रदायका वह प्रति-निधित्व करे)। इसके चुनावमें असेम्बलीका कोई सदस्य खड़ा न हो सकेगा। इस कमेटीके सदस्योंका कार्यकाल असेम्बलीके समयकालीन रहेगा। इस कमी-शनका कार्य यह होगा कि यह अल्पसंख्यक सम्प्रदायके हितोंपर लगातार ध्यान रखे, इस सम्बन्धमे जिस प्रकारकी सूचना आवश्यक समझे, माँगे, समय-समयपर मौलिक अधिकारों सम्बन्धी नियमोंका उल्लङ्घन करके बरती जानेवाली नीतिकी आलोचना करे तथा प्रधान मन्त्रीके सम्मुख अपनी रिपोर्ट पेश करे। उक्त रिपोर्ट-पर मन्त्रिमण्डल विचार करेगा और प्रधान मन्त्री उक्त कमेटीकी रिपोर्ट तथा उसपर की गयी सारी कारवाईका विवरण असेम्बलीमें उपस्थित करेगा और उसपर वहाँ वाद विवाद हो सकेगा।

पञ्जाबके अल्पसंख्यक : कमेटी यह सिफारिश करती है कि विधान

निर्मात्री परिषद् पश्चात् असेम्बलीमें सिखों, हिन्दुओं और भारतीय ईसाइयोंके प्रतिनिधित्वके प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार कर कुछ निश्चय करे।

विधानमें संशोधन : विधानके प्रकाशनके ६ मासके पूर्व विधानमें संशोधनका कोई प्रस्ताव संयुक्त राजकी व्यवस्थापिका सभामें न उपस्थित किया जा सकेगा। ऐसा संशोधन उस समयतक स्वीकृत न समझा जायगा जबतक दोनों व्यवस्थापिका सभाओंके कमसे कम दो तिहाई सदस्य उसका समर्थन न करें। इसके अतिरिक्त ऐसे संशोधन उस समयतक व्यवहृत न हो सकेंगे जब-तक इकाइयोंकी असेम्बलीके कमसे कम दो तिहाई सदस्य उसे स्वीकार न कर लें।

विधानमें वर्णित किसी महत्वपूर्ण विषयके सम्बन्धमें कोई भी संशोधन, नया विधान लागू होनेके ५ वर्षके भीतर न किया जा सकेगा।

विभिन्न व्यक्तियोंने विभिन्न दृष्टिकोणोंसे इस योजनाकी आलोचना की है; कोई दल योजनाके किसी अंशको दोषपूर्ण बताता है तो दूसरा दल उसीकी प्रशंसा करता है। इस प्रकार अनेक आलोचनाएँ तो यों ही एक दूसरेका खण्डन कर देती हैं। इसमें किसी दल-विशेषके दकियानूसी दृष्टिकोणका समर्थन नहीं किया गया है, यह तर्क इसके पक्षमें उपस्थित किया जा सकता है। एक ओर जहाँ इसमें मुस्लिम लीगका भारतके विभाजनका प्रस्ताव अस्वीकृत किया गया है वहाँ विधान निर्मात्री परिषद्, केन्द्रीय असेम्बली तथा संयुक्त राजके मन्त्रिमण्डलमें मुसलमानोंको सवर्ण हिन्दुओंके समान प्रतिनिधित्व देनेकी सिफारिश भी की गयी है। जहाँ इसमें विधान निर्मात्री परिषद्, केन्द्रीय असेम्बली तथा केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डलमें मुसलमानोंको सवर्ण हिन्दुओंके समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है वहाँ इस समान प्रतिनिधित्वके लिए यह शर्त लगा दी गयी है कि मुसलमान पृथक् निर्वाचन पद्धतिका त्याग कर दें। इसने स्वतन्त्रताको अपने क्षेत्रसे बहि-ष्कृत नहीं कर दिया है, अपितु औपनिवेशिक विधानके लिए भी उसीके समान द्वार खुला छोड़ दिया है। इसमें चुनावद्वारा राजका प्रधान चुननेकी व्यवस्था रखी गयी है पर चुनाव करनेवालोंके लिए यह शर्त लगा दी है कि वे देशी नरेशोंमेंसे ही किसीको चुनें। इसमें देशी रियासतोंका सम्पर्क संयुक्त राजके

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलके अधीन कर दिया गया है पर देशी नरेशोंको संयुक्त राजके प्रधानके पदके चुनावमें खड़े होनेकी सुविधा दे दी है। इसमें राजके प्रधानका कार्यकाल ५ वर्ष निर्धारित किया गया है पर इस बातकी सम्भावना है कि बड़ी बड़ी देशी रियासतोंके ही दलमेंसे कोई व्यक्ति प्रधान होगा। इसमें मन्त्रि-मण्डलको असेम्बलीके प्रति उत्तरदायी बनाया है पर उस मन्त्रिमण्डमें सभी दलोंके प्रतिनिधियोंको रखनेका आयोजन है। इसमें असेम्बलीको साम्प्रदायिक दलोंमें विभक्त कर दिया गया है पर संयुक्त निर्वाचनकी पद्धति रख दी है अतः सभी सम्प्रदायोंको यह छूट है कि वे अन्य दलोंके सदस्योंके चुनावपर अपना प्रभाव डाल सकें। इसमें ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये हैं और ऐसा सन्तुलन किया गया है कि न तो विधान निर्मात्री परिषद्में और न संयुक्त राजकी असे-म्बली या मन्त्रिमण्डलमें ही किसी साम्प्रदायिक दलका प्रभुत्व हो सके। विधानकी बारीकियाँ विधान निर्मात्री परिषद्के लिए छोड़ दी गयी हैं।

अन्य आलोचनाओंको जाने भी दें, फिर भी इस बातका कोई कारण नहीं जान पड़ता कि संयुक्त राजका प्रधान कोई देशी नरेश ही बनाया जाय। साथ ही इसमें इस बातका कोई आयोजन नहीं है कि देशी नरेश अपनी रियासतोंकी प्रजाको अधिकार हस्तान्तरित कर दें। देशी नरेशोंने समष्टि रूपसे ऐसी किसी क्षमता, योग्यता अथवा सहमतिका प्रमाण नहीं दिया है कि वे किसी लोकतन्त्रात्मक विधानमें रहकर कार्य करें और इस बातमें कोई तुक नहीं है कि देशी नरेशोंसे यह कहनेके स्थानपर कि वे प्रजाको अधिकार हस्तान्तरित कर दें, उन्हें केवल अपनी रियासतोंका ही नहीं, सारे भारतका एक छत्राधिकार प्रदान कर दिया जाय।

८

डाक्टर अम्बेडकरकी योजना

डाक्टर अम्बेडकरने साम्प्रदायिक समस्याका एक हल हालमें ही उपस्थित किया है जिसके विषयमें उनका दावा है कि उनका हल पाकिस्तानकी अपेक्षा उत्तम है। आपका हल इस सिद्धान्तपर आधृत है कि बहुसंख्यक सम्प्रदायको कुछ अधिक प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है परन्तु उसे कभी भी पूर्ण बहुमत न मिलना चाहिए। यह सिद्धान्त उन प्रान्तोंपर भी लागू होगा जहाँ मुसलमानोंका बहुमत है। किसी भी स्थितिमें बहुमतको ४० प्रतिशतसे अधिक प्रतिनिधित्व नहीं मिलना चाहिए। डाक्टर अम्बेडकर विधान सम्मेलनके किसी भी प्रस्तावके पूर्ण विरोधी हैं। आप उसे व्यर्थका कार्य बताते हैं। आप समझते हैं कि १९३५ के भारत शासन विधानमें ही भारतका विधान इतने अधिक विस्तृत रूपमें है कि इसी कार्यके लिए विधान सम्मेलन नियुक्त करना पूर्णतः व्यर्थ होगा। उसे वही कार्य दुबारा करना पड़ेगा जब कि आवश्यकता केवल इस बातकी है कि भारत शासन-विधानकी वे धाराएँ निकाल दी जायँ जो औपनिवेशिक पदके लिए बेमेल हैं।

असेम्बली, शासन व्यवस्था तथा नौकरियोंमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वको तीन श्रेणियोंमें विभक्त करते हुए डाक्टर अम्बेडकर उन सिद्धान्तोंका चर्चा करते हैं जिनके आधारपर यह सारी व्यवस्था चलनी चाहिए। आपका कहना है कि नौकरियोंके सम्बन्धमें केवल इतना करना आवश्यक है कि आज शासन विभागकी ओरसे जो पद्धति जारी है उसे कानूनी रूप दे दिया जाय। शासन व्यवस्थामें हिन्दुओं, मुसलमानों तथा दलितवर्गोंका प्रतिनिधित्व असेम्बलीमें उनके प्रतिनिधित्वकी संख्याके अनुपातसे होना चाहिए। अन्य अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधित्वके लिए दो एक स्थान सुरक्षित रखने चाहिए तथा इस प्रकारकी पद्धति बना देनी चाहिए कि पार्लमेंटरी सेक्रेटरियोंमें उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व रहे। पार्लमेंटरी सेक्रेटरियोंकी संख्यामें और भी वृद्धि करनी पड़ेगी।

असेम्बलीमें जिस दलका बहुमत हो उसीका मन्त्रिमण्डल न होना चाहिए प्रत्युत मन्त्रिमण्डल इस ढंगसे संगठित होना चाहिए कि उसे केवल असेम्बलीके बहुमतवाले दलोंसे ही नहीं, अल्पमतवाले दलोंसे भी शासनादेश प्राप्त हो। वह इस अर्थमें गैर-पार्लमेंटरी हो कि असेम्बलीके कार्यकालकी समाप्तिके पूर्व वह हटाया न जा सके और इस अर्थमें पार्लमेंटरी हो कि मन्त्रिमण्डलके सदस्य असेम्बलीके ही सदस्योंमेंसे चुने जायँ और उन्हें असेम्बलीमें बैठने, भाषण करने, मत देने और प्रश्नोंका उत्तर देनेका अधिकार प्राप्त हो।

प्रधान मन्त्री मंत्रिमण्डलका प्रधान होगा। उसपर पूरी असेम्बलीका विश्वास होना चाहिए। मन्त्रिमण्डलमें किसी विशेष अल्पसंख्यक समुदायका जो प्रतिनिधि हो उसपर असेम्बलीके उक्त सम्प्रदायके सदस्योंका विश्वास होना चाहिए। मंत्रिमण्डलका कोई भी सदस्य केवल तभी पृथक् किया जाय जब असेम्बली उसे भ्रष्टाचार अथवा षडयन्त्रका दोषी करार दे। इन सिद्धान्तोंके अनुसार बहुसंख्यक समुदायमेंसे मंत्रियों तथा प्रधान मंत्रीका चुनाव असेम्बलीके सभी सदस्य मिलकर एक मात्र हस्तान्तरित किये जा सकनेवाले वोटद्वारा करें तथा अल्पसंख्यक दलके मंत्रियोंका चुनाव असेम्बलीके प्रत्येक अल्पसंख्यक दलके सदस्य एकमात्र हस्तान्तरित किये जा सकनेवाले वोटद्वारा करें।

विभिन्न सम्प्रदायोंका निम्नलिखित प्रतिनिधित्व रहना चाहिए—

केन्द्रीय असेम्बलीमें—

सम्प्रदाय—	जनसंख्या —	वांछनीय प्रतिनिधित्व
हिन्दू	५४.६८ प्रतिशत	४० प्रतिशत
मुसलमान	२८.५ ,,	३२ ,,
दलितवर्ग	१४.३ ,,	२० ,,
भारतीय ईसाई	१.१६ ,,	३ ,,
सिख	१.४९ ,,	४ ,,
एंग्लो इण्डियन	०.५ ,,	१० ,,

(जनसंख्याका प्रतिशत जनगणनामेंसे आदिवासियों की संख्या घटाकर निकाला गया है ।)

बम्बईमें—

सम्प्रदाय	जनसंख्या	वांछनीय प्रतिनिधित्व
हिन्दू	७६.४२ प्रतिशत	४० प्रतिशत
मुसलमान	९.९८ ,,	२८ ,,
दलितवर्ग	९.६४ ,,	२८ ,,
भारतीय ईसाई	१.७५ ,,	२ ,,
एंग्लो इण्डियन	०.०७ ,,	१ ,,
पारसी	०.४४ ,,	१ ,,

पंजाबमें—

सम्प्रदाय	जनसंख्या	वांछनीय प्रतिनिधित्व
मुसलमान	५७.०६ प्रतिशत	४० प्रतिशत
हिन्दू	२२.१७ ,,	२८ ,,
सिख	१३.२२ ,,	२१ ,,
दलितवर्ग	४.३९ ,,	९ ,,
भारतीय ईसाई	१.७१ ,,	२ ,,

वितरण निम्नलिखित सिद्धान्तोंपर आधृत बताया गया है—

(१) बहुमतका शासन सिद्धान्ततः अस्वीकार्य और व्यवहार्यतः अनुचित है ।

(२) असेम्बलीमें किसी बहुसंख्यक दलको इतना प्रतिनिधित्व न मिल जाना चाहिए कि वह न्यूनतम अल्पसंख्यक दलकी सहायतासे अपना प्रभुत्व स्थापित कर ले ।

(३) स्थानोंका वितरण इस ढंगसे न होना चाहिए कि बहुसंख्यक दल और किसी बड़े अल्पसंख्यक दलके मेलसे बने बहुमतद्वारा अल्पसंख्यकोंके हितोंकी सर्वथा उपेक्षा कर दी जाय ।

(४) वितरण इस ढंगका होना चाहिए कि यदि सभी अल्पसंख्यक दल आपसमें मिल जाँय तो वे बहुसंख्यक दलपर निर्भर हुए बिना ही मंत्रिमण्डल बना लें।

(५) बहुसंख्यक दलके प्रतिनिधित्वमें जितनी कमी की जाय वह अल्पसंख्यकोंमें उनके सामाजिक स्तर, आर्थिक स्थिति और शिक्षा सम्बन्धी स्थितिको देखते हुए उल्टे क्रमसे वितरित कर दी जाय ताकि जिस अल्पसंख्यक दलकी सामाजिक, आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी स्थिति अन्य अल्पसंख्यक दलकी अपेक्षा उन्नत है उसे दूसरेकी अपेक्षा कम प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। जो पिछड़ा है उसे अधिक प्रतिनिधित्व मिले।

डाक्टर अम्बेडकरका दावा है कि उनकी योजना मुसलमानोंके लिए पाकिस्तानकी अपेक्षा उत्तम है। कारण, उसमें (१) साम्प्रदायिक बहुमतका खतरा, जो कि पाकिस्तानका मूल है, सर्वथा जाता रहता है; (२) मुसलमानोंको इस समय जितना प्रतिनिधित्व प्राप्त है उसमें कोई कमी नहीं पड़ती; (३) गैर-पाकिस्तानी प्रान्तोंमे मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वमें अत्यधिक वृद्धि हो जाती है जो कि पाकिस्तान स्थापित होनेपर सम्भव ही नहीं है।

डाक्टर अम्बेडकरका हिन्दुओंसे कहना है कि वे बहुमतके शासनपर जोर देना बन्द कर दें, कारण साम्प्रदायिक समस्या मुसलमानोंमें यह बहुत बड़ी कठिनाई है। उन्हें योजनाके अन्तर्गत जितना बहुमत प्रदान किया जा रहा है उसीसे तथा अल्पसंख्यकोंको दिये जानेवाले सन्तोषजनक संरक्षणोंसे वे सन्तुष्ट हो जायँ।

डाक्डर अम्बेडकरने जो सिद्धान्त उपस्थित किये हैं उनपर थोड़ासा ध्यान देते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे इस कल्पनाको लेकर आगे बढ़ते हैं कि हिन्दू और मुसलमान कभी आपसमें न मिलेंगे अथवा यह कहिये कि उन्हे कभी एकमें न मिलना चाहिए। यह कल्पना न तो सिद्धान्ततः उचित है न व्यवहार्यतः। उससे यह भी स्पष्ट है कि जहाँ वे बहुमतका शासन तथा बहुसंख्यक दल और न्यूनतम अल्पसंख्यक दलको संयुक्त बहुमत शासन, सिद्धान्ततः अस्वीकार्य और व्यवहार्यतः अनुचित बताते हैं, वहाँ उन्हें अल्पमत दलोंका आपसमें

मिलकर बहुसंख्यक दलपर ही नहीं सभी संयुक्त बहुसंख्यकोंपर शासन करना अनुचित नहीं प्रतीत होता। उन्होंने जो आँकड़े पेश किये हैं उनमे यह प्रकट है कि किसी भी बहुसंख्यक दलको, फिर वह कितना ही भारी क्यों न हो, वे ४० प्रतिशतसे अधिक प्रतिनिधित्व देनेको प्रस्तुत नहीं। इसके बाद जो प्रतिनिधित्व बचेगा वह अल्पसंख्यकोंमें वितरित कर दिया जायगा। अतः अल्पसंख्यकोंके लिए यह सदैव सम्भव बना रहेगा कि वे बहुसंख्यक दलको मन्त्रि-मण्डल बनानेसे सदा वञ्चित रखें। उन्होंने अपना तीसरा सिद्धान्त केन्द्र तथा दो प्रान्तोंपर लागू नहीं किया जिनके कि उन्होंने आँकड़े दिये हैं। उन आँकड़ोंद्वारा केवल इतना ही सम्भव नहीं कि बहुसंख्यक दल एक बड़े अल्पसंख्यक दलको अपनेमें मिलाकर काफी बड़ा बहुमत बना ले, अपितु केन्द्र और बम्बईके दो बड़े अल्पसंख्यक मिलकर भी ऐसा कर सकते हैं।

डाक्टर अम्बेडकरका पाँचवाँ सिद्धान्त उत्तम है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह केवल दलित वर्गोंपर लागू होनेके लिए है अन्य लोगोंपर नहीं। यह बात सभी स्वीकार करते हैं कि आदिवासी सामाजिक, आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी सभी दृष्टियोंसे देशकी सबसे पिछड़ी जातियोंमेंसे हैं। किन्तु सारी योजनामें उनका कहीं भी जिक्र नहीं है, केवल एक स्थानपर इतना कहा गया है कि विभिन्न सम्प्रदायोंकी जनसंख्याका प्रतिशत निकालनेमें उनकी संख्या जनगणनासे घटा दी गयी है। ब्रिटिश भारतकी जनसंख्यामें वे ५·६५ प्रतिशतसे कम नहीं हैं जब कि दलित वर्ग १३·५० प्रतिशत, मुसलमान २६·८२ प्रतिशत, ईसाई १·१८ प्रतिशत, और सिख १·४१ प्रतिशत हैं। इन सबके लिए तो विशेष प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था है पर उनकी सर्वथा उपेक्षा कर दी गयी है। कुछ प्रान्तोंमें तो उनकी संख्या दलितवर्गोंकी संख्यासे भी अधिक है। आसाममें आदिवासी २४·३५ प्रतिशत हैं और दलितवर्ग केवल ६·६३ प्रतिशत। बिहारमें आदिवासी १३·९१ प्रतिशत हैं जब कि दलितवर्ग केवल ११·९४ प्रतिशत हैं। उड़ीसामें आदिवासी १९·७२ प्रतिशत हैं जब दलितवर्ग केवल १४·१९ प्रतिशत हैं। मध्यप्रान्त और बरारमें उनकी संख्या दलितवर्गोंके

लगभग समान है। आदिवासी १७·४७ प्रतिशत हैं और दलितवर्ग १८·१४ प्रतिशत हैं। बम्बईमें आदिवासी ७·७४ प्रतिशत हैं और दलितवर्ग ८·८९ प्रतिशत। बिहार, मध्यप्रान्त और बरार तथा उड़ीसामें उनकी जनसंख्या मुसलमानोंसे अधिक है। इन प्रान्तोंमें मुसलमानोंकी जनसंख्या क्रमशः केवल १२·९८ प्रतिशत, ४·६६ प्रतिशत और १·६८ प्रतिशत है। आदिवासियोंको पृथक् कर देनेका सर्वोत्तम कारण यही है कि भारतकी तथा उपरिलिखित प्रान्तोंकी जनसंख्यामें उनका अनुपात दलितवर्गों से और कुछमें मुसलमानोंसे अधिक है। यदि डाक्टर अम्बेडकरका पाँचवाँ सिद्धान्त लागू किया जाय तो अपने पिछड़ेपनके कारण आदिवासियोंको दलितवर्गोंसे भी अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जायगा, और इस प्रकार दलितवर्गों और मुसलमानोंके बीच सारे अधिकार बाँट लेनेकी सारी योजना ही उलट जायगी।

विद्वान डाक्टरने जो सिद्धान्त निकाले हैं उनके अतिरिक्त भी कुछ सिद्धान्त उनके प्रस्तावोंसे निकलते हैं। मन्त्रियोंके चुनावमें, अल्पसंख्यकोंको अपने प्रतिनिधि स्वयं चुननेका अधिकार दिया गया है, जब कि बहुसंख्यक दलके मंत्रियोंका चुनाव असेम्बलीके सभी सदस्य मिलकर एकमात्र हस्तान्तरित किये जा सकनेवाले वोटद्वारा करेंगे।

इसका अर्थ यह होगा कि मन्त्रि-मण्डलमें बहुसंख्यक दलके प्रतिनिधियोंमें, कुलके केवल १६ प्रतिशत, अर्थात् ४० प्रतिशतके ४० प्रतिशत व्यक्तियोंका चुनाव केवल उस बहुसंख्यक दलके सदस्य करेंगे, शेष मन्त्रियोंका अर्थात् मन्त्रि-मण्डलके अधिकांश मन्त्रियोंका चुनाव या तो एकमात्र अल्पसंख्यक दल करेंगे अथवा वे और सबके साथ मिलकर करेंगे। इस भाँति मन्त्रि-मण्डलमें अल्पसंख्यकोंके केवल उतने ही प्रतिनिधि न रहेंगे जितना असेम्बलीके कुल सदस्योंमें उनका अनुपात रहेगा, अपितु वे औरोंके साथ मिलकर उन अनेक स्थानोंपर भी अपना प्रतिनिधि चुनवा सकते हैं जो वस्तुतः बहुसंख्यक सम्प्रदायके लिए रहे हों।

इसके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान यदि दलितवर्गोंकी सहायता न लें

तो वे आपसमें बिना मिले मन्त्रि-मण्डल स्थापित नहीं कर सकते किन्तु यदि उनमेंसे एक भी सम्प्रदाय दलितवर्गोंसे मिल जाय तो वह दूसरे तथा अन्य अल्पसंख्यकोंकी सहायताके बिना ही मन्त्रि-मण्डल स्थापित कर सकता है।

डाक्टर अम्बेडकरने समाचारपत्रोंमें जिस रूपमें अपनी योजना प्रकाशित करायी है उसमें केवल केन्द्र तथा बम्बई और पञ्जाबके ही आँकड़े दिये हैं। यदि अन्य प्रान्तोंके भी आँकड़े निकाले जायँ तो उनके सिद्धान्तोंका थोथापन प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। उदाहरणतः यह कहना कठिन है कि वे सीमाप्रान्तके शेष ६० प्रतिशत स्थान वहाँके कुल ८·२१ प्रतिशत अल्पसंख्यकोंमें किस भाँति वितरित करेंगे अथवा उड़ीसामें वे क्या करेंगे, जहाँ आदिवासियोंको छोड़कर—जिन्हें उन्होंने सर्वथा छोड़ रखा है—दलितवर्ग १४·१९ प्रतिशत, मुसलमान १·६८ प्रतिशत और ईसाई ०·३२ प्रतिशत हैं अर्थात् कुल मिलाकर केवल १६·१९ प्रतिशत अल्पसंख्यक हैं।

९

श्री मानवेन्द्रनाथ रायकी योजना

श्रीमानवेन्द्रनाथ रायने भारतके लिए एक विधानका मसविदा प्रस्तुत किया है। इसमें 'मूल प्रश्नों तथा विवादास्पद समस्याओंपर विचार किया गया है, बारीकियाँ बादके लिए छोड़ दी गयी हैं।' 'मूल प्रश्न ये हैं—(१) अधिकार किस विधिसे हस्तान्तरित किये जायँ, (२) राजका संघटन कैसा हो और (३) अधिकार कहाँसे प्राप्त हो। अन्य सम्प्रदायोंकी, जैसे दलितवर्गकी स्थिति भी विवादका प्रश्न रही है। इस मसविदेका उद्देश्य मूलप्र श्नोंका उत्तर देना और विवादास्पद प्रश्नोंका हल सुझाना है।' 'इस मसविदेकी मूल कल्पना यह है कि लोकतन्त्रात्मक विधान सारे भारतकी जनताके हाथमें अधिकार आ जानेकी बात सोचकर ही आगे बढ़ता है।' क्रान्तिके बिना विधान सम्मेलन अव्यवहार्य है अतः अधिकार हस्तान्तरित करनेके लिए ब्रिटिश पार्लमेण्ट ही पहले कदम

उठायेगी जो पहले तो जाब्तेसे और कानूनके साथ भारतीय जनताके हाथमें अधिकार हस्तान्तरित करेगी, दूसरे, भारतमें एक वैधानिक सत्ताका जन्म देगी ताकि भारतीय जनता प्रभुसत्ताके अधिकारको व्यवहृत कर सके। 'प्रभुसत्ता हस्तान्तरित करनेके आधारपर एक विधानके स्थानपर दूसरा विधान व्यवहृत करनेके लिए एक अस्थायी सरकारकी अनिवार्य आवश्यकता है। जिस भाँति वसीयतके आदेश कार्यान्वित करनेके लिए कुछ व्यक्ति नियुक्त कर दिये जाते हैं उसी भाँति ब्रिटिश पार्लमेण्ट ऐसी अस्थायी सरकार नियुक्त करेगी। इस प्रकार उत्तराधिकारका एक बिल बनेगा जिसके अनुसार ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतोंके सभी प्रदेशोंका अधिकार भारतीयोंको प्राप्त होगा, देशी रियासतोंके साथ हुई पुरानी सन्धियाँ समाप्त हो जायँगी। यह विश्वास करते हुए भावीविधान स्वीकार कर लिया जायगा कि उससे लोकतन्त्रात्मक स्वाधीनताकी स्थापना होगी, एक गवर्नर जेनरल नियुक्त होगा जो अस्थायी सरकारकी नियुक्ति करेगा। अस्थायी सरकार जो न्यायतः अधिकृत होगी और किसी निर्वाचित संस्थाके प्रति उत्तरदायी न होगी, जनताकी कमेटियोंकी प्रादेशिक सीमा और जनसंख्याका आधार निश्चित करेगी, भाषा विज्ञान तथा सांस्कृतिक एक जातीयता और शासन व्यवस्थाकी सुविधाको ध्यानमें रखते हुए भारतीय प्रान्तोंकी सीमाका पुनः निर्धारण करेगी, जनताकी प्रान्तीय कौंसिलों और प्रान्तीय गवर्नरोंका चुनाव करायेगी और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल स्थापित करेगी, नवस्थापित प्रान्तीय सरकारोंसे पूछकर यह निश्चय करेगी कि कोई प्रान्त भारतके संघराजसे पृथक् तो नहीं रहना चाहता, गवर्नर जेनरल तथा संघ असेम्बलीके उपाध्यक्षोंका चुनाव करायेगी, राज्यपरिषद्‌के सदस्योंको नामजद करेगी और इस प्रकार भारतकी संघ राजकी जनताकी सर्वोच्च परिषद्‌की स्थापना करेगी और उन प्रान्तोंमें भी ऐसी ही व्यवस्था करेगी जो भारतके संघराजमें सम्मिलित न होना चाहेंगे। संघ सरकारी तथा प्रान्तीय सरकारोंके मन्त्रि-मण्डलोंकी स्थापनाके उपरान्त वह पद त्याग कर देगी।

देशी नरेशोंकी स्थितिसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाईको दूर करनेके लिए इस

विधानमें यह उपाय बताया गया है कि ब्रिटिश सरकारसे कहा जायगा कि वह उनसे इस आशयका समझौता कर ले कि वे अपनी रियासतोंपर शासनका अधिकार त्याग दें और उनके लिए कुछ आर्थिक भत्ता या सहायता निश्चित कर दी जाय जिनसे वे सम्मानजनक रीतिसे अपना जीवन यापन कर सकें।

विधानमे मौलिक अधिकारों और मौलिक सिद्धान्तोंकी घोषणाका आयोजन है जिसमें एक घोषणा इस आशयकी भी रहेगी कि 'सभी निर्वाचित संस्थाओंमे अल्पसंख्यकोंके अधिकार पृथक् निर्वाचनकी पद्धतिसे आनुपातिक प्रतिनिधित्वद्वारा सुरक्षित रहेंगे।' सङ्घराजका रूप और ढाँचा बताते समय उक्त विधानमें कहा गया है कि 'जो प्रान्त सङ्घराजसे पृथक् रहना चाहेगा वह उसकी सम्बद्ध इकाई न बन सकेगा।'

भारतके सङ्घराजकी स्थापनाके पूर्व विधानद्वारा सङ्घटित जनताकी प्रान्तीय कौंसिलोंको ऐसा प्रस्ताव रखनेका अधिकार रहेगा कि हमारा प्रान्त सङ्घराजसे पृथक् रहे। यदि यह प्रस्ताव बहुमतसे स्वीकृत हो जाय तो इसपर बालिग मताधिकारद्वारा प्रान्तकी जनताका मत लिया जायगा। प्रान्तके मतदाता यदि बहुमतसे इस प्रस्तावका समर्थन करें तभी यह व्यवहृत हो सकेगा। सङ्घसे पृथक् रहनेवाले प्रान्त विधानकी धाराओंसे, उन धाराओंको छोड़कर जो कि स्पष्टतः सङ्घके लिए बनी हैं, शासित रहेंगे और उन्हें अपना दूसरा सङ्घ स्थापित करनेका अधिकार रहेगा। भारतका सङ्घराज जकात, मुद्रा और रेलवे व्यवस्था आदि पारस्परिक हितके प्रश्नोंपर उनके साथ सहयोग और पारस्परिक मैत्रीकी सन्धि कर लेगा। भारतका संघराज वृहद् संघ ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलका सदस्य रहेगा और कुछ शर्तोंपर उससे उसकी सन्धि रहेगी। भारतका सङ्घराज सङ्घटित हो जानेपर सङ्घकी सम्बद्ध इकाइयोंको सङ्घसे सम्बन्ध-विच्छेदका जन्मजात अधिकार प्राप्त रहेगा। सम्बन्ध-विच्छेदके प्रस्तावपर प्रान्तीय सरकार जनमत सग्रह करेगी और यदि प्रान्तके मतदाताओंका बहुमत उसका समर्थन करे तो वह अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सकेगा।

विधानमें सङ्घ-असेम्बली, राज्यपरिषद्, जनताकी सर्वोच्च परिषद्, गवर्नर

जेनरल, न्याय और शासनकी अधिकारी संस्थाएँ, प्रान्त, समाजका आर्थिक सङ्घ-टन, न्याय विभाग और स्वायत्त-शासन, आदिके सम्बन्धमें जो बातें दी गयी हैं उनका सारांश मैंने नहीं दिया है, कारण, उनका हमारे वर्तमान विषय—साम्प्रदायिक समस्या और उसके प्रस्तावित हल पाकिस्तान—से कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसे महत्वके प्रश्नोंपर यहाँ चलती हुई चर्चा कर देना अनुचित होगा विशेषतः जब उनमें साम्प्रदायिक समस्याको लेकर कोई विशेष बात नहीं कही गयी है।

श्री रायने साम्प्रदायिक समस्यापर जो सुझाव रखे हैं उनका सारांश ऊपर दिया गया है। इनके विषयमें श्री रायका दावा है कि 'इसमें मुस्लिम लीगकी माँगकी पूर्णतः पूर्ति कर दी गयी है। भारतकी जनताको अधिकार हस्तान्तरित होनेके पूर्व जैसी स्थिति कि आज है, कुछ प्रदेशोंके पृथक्करणकी माँग कार्य विधिके प्रतिकूल है। मसविदेमें यह समस्या हल कर दी गयी है। भारतको एक वैधानिक इकाई मानकर ही अधिकारोंका हस्तान्तरण होगा। तदुपरान्त स्थायी सरकार द्वारा, जो किसी भारतीय निर्वाचित संस्थाके प्रति उत्तरदायी न होगी, पुनर्निर्धारित सीमावाले प्रान्त सङ्घमें सम्मिलित होने न होनेके लिए स्वतन्त्र होंगे। दूसरी ओर प्रान्तोंके सम्बन्ध-विच्छेदकी धारा रखकर मसविदेमें सङ्घ-व्यवस्थावाली शासन-पद्धतिकी आयोजना की गयी है, अतः खण्डनात्मक प्रवृत्तियोंके लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। सङ्घवाद और केन्द्रवादका एकीकरण किया गया है।'

यहाँ इस सम्बन्धमें मुझे केवल यही कहना है कि मुस्लिम लीग विभाजनके प्रश्नको दूर भविष्यपर नहीं छोड़ देना चाहती, न वह जनमतसंग्रहके लिए ही प्रस्तुत है, न यही सम्भावना है कि वह भाषा, विज्ञान और सांस्कृतिक एक-जातीयताके आधारपर प्रान्तोंकी सीमाके पुनर्निर्धारणको स्वीकार कर ले, कारण, सम्भव है कि उक्त नयी सीमा धर्म और साम्प्रदायिकताके आधारपर निर्धारित सीमासे मेल न खाये और वह सीमा निर्धारण भी ऐसी अधिकृत संस्थाद्वारा होनेकी बात कही गयी है जिसके विधानके विषयमें केवल इतना बताया गया है कि वह ब्रिटिश पार्लमेण्टद्वारा नियुक्त गवर्नर जेनरलद्वारा नियुक्त की जायगी। अल्पसंख्यकोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए सभी निर्वाचित सार्वजनिक संस्थाओंमें

पृथक् निर्वाचन-पद्धतिसे आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी जो धारा रखी गयी उससे भी मुस्लिम लीग सन्तुष्ट होनेवाली नहीं।

उपसंहार

पिछले पृष्ठोंमें मैंने वे अनेक योजनाएँ दी हैं जो मुस्लिम लीगके भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वमें स्वतन्त्र मुस्लिम-राज-स्थापनके प्रस्तावके विकल्पके रूपमें उपस्थित की गयी हैं ताकि पाठक उनपर विचार कर अपना मत निर्धारित कर सकें। मेरे लिए यह आवश्यक नहीं है कि मैं अपनी ओरसे कोई योजना उपस्थित करूँ। जहाँतक मुझे पता है देशमें मुस्लिम लीगके अतिरिक्त अन्य किसी भी साम्प्रदायिक दल अथवा संस्थाने ऐसा कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया है कि भारतके स्वतन्त्र मुस्लिम और गैरमुस्लिम राज्योंमें विभक्त कर दिया जाय। स्वयं मुसलमानोंमें कितने ही दल ऐसे हैं जिन्होंने इस प्रस्तावका विरोध किया है। मेरा यह काम नहीं है कि मैं यह निश्चित करने बैठूँ कि ये दल मुसलमानोंके बहुमत अथवा किसी अंशकी ओरसे बोलनेके अधिकारी हैं अथवा नहीं। और न मेरे प्रतिपाद्य विषयके लिए ही इसकी कुछ आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि गैर-मुस्लिम संस्थाओंने, बिना किसी अपवादके इसका विरोध किया है। जो लोग विभाजनकी किसी भी योजनाके विरुद्ध हैं वे इन विकल्पोंमेंसे किसी भी विकल्पको आधार बनाकर इस विषयमें वार्ता आरम्भ कर सकते हैं तथा ऐसा कोई उचित हल खोज सकते हैं जिससे सभी दल सन्तुष्ट हो जायँ। मैं इस बातमें निश्चय ही विश्वास करता हूँ कि गोलमेज सम्मेलन बुलाकर सबके लिए सन्तोषप्रद योजना तैयार की जा सकती है। ऐसा कोई सम्मेलन यदि उपरिलिखित योजनाओंके ढंगपर ही कोई योजना प्रस्तुत करे तो उससे कोई विशेष लाभ हो सकनेकी सम्भावना प्रतीत नहीं होती। जहाँतक मुस्लिम लीगका प्रश्न है उसके अध्यक्ष तथा अन्य नेताओंने यह मत प्रकट कर दिया है कि लीग ऐसी किसी योजनापर विचार करनेके लिए प्रस्तुत नहीं है जो लीगके लाहौरवाले प्रस्तावोंको

स्वीकारकर आगे नहीं बढ़ती। किसी भी वार्ताके श्रीगणेशके लिए यह आवश्यक है कि उसके पूर्व उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाय। यह उसकी अनिवार्य शर्त है। अतः लीग ऐसी किसी योजनापर विचार-विनिमयके लिए प्रस्तुत नहीं है जो इस प्रस्तावको आधार रूपमें स्वीकार कर आगे नहीं चलती। इतना ही नहीं कि लीग ऐसी किसी योजनापर वार्ता करनेके लिए प्रस्तुत नहीं जो उसके स्वयं निकाले अर्थको स्वीकार नहीं कर लेती, अपितु वह स्पष्ट शब्दोंमें उसकी ऐसी व्याख्या करनेसे भी इनकार करती है जिससे सारा चित्र स्पष्ट और समझमें आने लायक तो हो जाय। श्रीयुत् चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसके सम्बन्धमें उनका दावा है कि उसमें लीगके लाहौरवाले प्रस्तावकी सभी शर्तें पूरी हो जाती हैं। लीगके प्रस्तावमें जो बात सिद्धान्त रूपमें और साधारण शब्दोंमें कही गयी है उसीको उन्होंने ठोस रूप देनेकी चेष्टा की है। किन्तु लीगके अध्यक्ष उसपर विचारतक करनेके लिए प्रस्तुत न थे और महात्मा गान्धीसे उनकी जो लम्बी वार्ता चली उसमें उन्होंने विस्तारसे उस प्रस्तावपर विचार-विनिमय करनेके स्थानपर महात्माजीको प्रस्तावमें निहित सिद्धान्तों और नीतियोंके सम्बन्धमें 'आदेश देने' की ही चेष्टा की। अतः मुस्लिम लीगको किसी ठोस योजनाकी आवश्यकता नहीं है। इसीलिए मैंने जानबूझकर अपनी ओरसे कोई योजना उपस्थित करनेकी चेष्टा नहीं की है। अस्तु। किसी भी योजनामें दो बातोंका होना आवश्यक है। उसमें सभी सम्प्रदायोंके प्रति न्याय होना चाहिए। इतना ही नहीं, आजकलकी तू-तू मैं-मैं और संकीर्णतासे वह परे होनी चाहिए और उसमें देश और करोड़ों देशवासियोंके लिए कोई ठोस वस्तु स्पष्ट दिखाई पड़नी चाहिए जिसपर सबलोग गर्व कर सकें और जिसके लिए सभी लोग लड़ें, जियें और मरें। मनुष्य किसी सम्प्रदायका सदस्य अवश्य होता है, किन्तु इतना ही नहीं, वह मनुष्य भी होता है और शायद किसी सम्प्रदायका सदस्य होनेकी भावनाकी अपेक्षा उसमें मनुष्यताकी भावना अधिक होती है। ऐसी किसी भी योजनाका कोई मूल्य नहीं हो सकता जिसमें मनुष्यकी सर्वथा उपेक्षा की गयी हो और साम्प्रदायिक दावोंकी माँगसे भी अधिक पूर्ति कर दी गयी हो। इस महान

देशके निवासियोंके लिए तो केवल वैसी ही योजना उपयुक्त हो सकती है जिसमें यहाँका छोटासे छोटा नागरिक भी पूर्वकालकी अपेक्षा अधिक प्रसन्न और उत्तम जीवन बिता सके।

भारतवासियोंके सम्मुख वस्तुतः दो विकल्प हैं जिनमेंसे उन्हें एक चुनना है। दो प्रकारकी योजनाएँ उनके सम्मुख हैं—एक देशके विभाजन और देशकी जनताको विभिन्न क्षेत्रों और राष्ट्रीयताओंमें विभक्त कर देनेका है और दूसरी है भारतकी अखण्डताकी रक्षा करने तथा उसके सभी निवासियों यहाँतक कि छोटेसे छोटे दलोंकी भी नैतिक, बौद्धिक और भौतिक—सभी प्रकारकी अधिकतम उन्नति करने तथा सभी सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक बाधाओंको पूर्णतः दूर कर देनेकी। देशके सभी निवासियोंको, फिर वे चाहे मुसलमान हों चाहे हिन्दू अथवा अन्य कोई, इन दोनोंमेंसे एक बात चुननी है। यह निर्णय उन्हें भलीभाँति अपनी दोनों आँखें खोलकर, पूर्णतः समझ-बूझकर, सारी बातोंको ध्यानमें रखकर, हित-अनहित सोचकर करना है। इसमें जोर जबर्दस्तीका कोई प्रश्न नहीं उठ सकता। न इसमें अपर पक्षको ठगने या धोखा देनेकी ही कोई बात हो सकती है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि ये प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं और इनका केवल भारतसे ही नहीं विश्वके अन्य देशोंसे भी सम्बन्ध है। इन बातोंका अन्य देशोंके लाखों आदमियोंपर प्रभाव डालना अनिवार्य है। हमें हरएक प्रश्नपर ठण्डे मस्तिष्कसे न्यायबुद्धिसे विचार और निश्चय करना चाहिए। यदि हम प्रत्येकके प्रति न्यायबुद्धि रखते हुए अपना निश्चय करेंगे तो ऐसा हल खोजना असम्भव नहीं है जो सबको स्वीकार्य हो। यह कहना व्यर्थ है कि पिछले दिनों ऐसे समझौतेके सभी प्रयत्न निष्फल हुए हैं। इससे तो हमारी निर्बलता और आत्मविश्वासकी कमी ही प्रकट होगी।

किन्तु किसी वार्ताको सफल अथवा कमसे कम सम्भव बनानेके लिए हमें 'अल्टिमेटम' देना त्याग देना चाहिए। हमें ऐसी शर्तें लगानी छोड़ देनी चाहिए जिनकी पूर्ति किसी वार्ताका श्रीगणेश होनेके पूर्व ही हो जानी चाहिए। हमें यह माँग करनी छोड़ देनी चाहिए कि हमारी न्यूनतम

इतनी माँगें जो अधिकतम कही जा सकती हैं, वार्ता आरम्भ होनेके पहले ही स्वीकृत हो जानी चाहिए। वाद-विवाद, समझाना बुझाना, लेना और देना—ये मार्ग हमारे सम्मुख खुले हैं। इसके अतिरिक्त, सभ्य उपाय भी केवल ये ही हैं। अन्य उपायोंकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, भले ही आज सभ्य राष्ट्र व्यापक पैमानेपर उनका प्रयोग कर रहे हों और अखिल विश्व उसका तमाशा देख रहा हो।

अल हमजाने अपनी पुस्तकमें उदाहरण देकर यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि पाकिस्तान यूरोपके कुछ न्यूनतम और न्यून देशों और राष्ट्रोंसे क्षेत्रफल और जनसंख्यामें बड़ा होगा। यूरोपके न्यूनतम अथवा न्यून देशोंसे बड़े होकर ही हम क्यों सन्तुष्ट हो जायँ? क्यों न हमारा लक्ष्य यह हो कि हमारा भारत यूरोपके महानतम देशोंसे, अमेरिकाके महानतम देशोंसे बड़ा और एशियाके महानतम देशके लगभग बड़ा हो जाय? क्या यह आदर्श नहीं है जिसके लिए हम जियें और मरें? इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनेसे छोटे और निर्बलोंको दबाने और कुचलनेके लिए बड़ा बनना चाहते हैं। भारतका दीर्घकालीन इतिहास इस बातका साक्षी है कि उसने कभी अपने किसी पड़ोसी देश अथवा दूरस्थ देशपर कोई अत्याचार नहीं किया। हम केवल इसलिए बड़ा बनना चाहते हैं कि हम अपनी सेवा भी कर सकें और दूसरोंकी भी; हम अपने यहाँके छोटेसे छोटेकी सेवा कर सकें और अन्य स्थानोंके भी छोटेसे छोटेकी सेवा कर सकें। प्रत्येक सम्भव उपायद्वारा इस सेवाके मार्गकी सभी बाधाओं और कठिनाइयोंको दूर कर दीजिये। बड़ा बन जानेसे दमन और उत्पीड़नका जो प्रलोभन और प्रोत्साहन सम्मुख रहता है उसे प्रत्येक सम्भव उपायसे पूर्णतः नष्ट कर दीजिये। हमें निराश नहीं होना है और लाचारीका हल नहीं खोजना है।

इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि विभाजन लाचारीका हल है। वह अल्पसंख्यकोंकी समस्याका निराकरण नहीं कर सकता, भले ही वह उसे विषम न बनाये। पर मुझे तो यह सन्देह है कि इससे समस्या और विषम रूप धारण करेगी। यह अपने पीछे अनेक कटु स्मृतियाँ छोड़ जायगा। इसके प्रयोगद्वारा

एक ओर तो प्रसन्नताकी सीमा न रहेगी पर दूसरी ओर क्षोभ और धीरे-धीरे सुलगने-वाली प्रतिक्रिया होगी। इससे वैसे ही झगड़ोंकी जड़ पड़ेगी जिनके कारण भाई भाईका खून कर देता है और विश्वव्यापी महासमरका जन्म होता है। इसे नगण्य न समझनेमें ही हमारी बुद्धिमत्ता है। हमारी बुद्धिमत्ता इसमें भी है कि हम सद्भाव और मैत्रीके उस कोषको भी नगण्य न समझें जो हमें एक हजार वर्षसे साथ-रहने और जीवन बितानेसे प्राप्त हुआ है। उसके कारण आज भी सन्तोषजनक समझौता होना सम्भव है।

किन्तु यहींपर एक 'किन्तु' आ जाता है जिसकी कि उपेक्षा सम्भव नहीं। यदि इन सब बातोंका कोई प्रभाव न पड़े और विभाजन अनिवार्य हो जाय तो उसके बादकी प्रतिक्रियाका सामना करनेके लिए हमें प्रस्तुत रहना चाहिए और मृग-मरीचिकामें न फँस जाना चाहिए कि उसके उपरान्त सारा झगड़ा समाप्त हो जायगा। उसका उत्तम चित्र खींचना जितना सरल रहा है उतना ही सरल उस समयकी विनाशक घटनाओंका चित्रण भी हो सकता है। हमें प्रत्येक स्थितिमें न्यायपरायण और ईमानदार होना चाहिए और यदि वस्तुतः हम सब अपने जीवन और व्यवहारमें ऐसे बन जायँ तो सर्वनाश रोकने और उसके कारण उत्पन्न होनेवाली कटुताका प्रभाव कम करनेके लिए अब भी कुछ किया जा सकता है। मैं निराशापूर्ण शब्दोंसे इस पुस्तकका अन्त नहीं करना चाहता। अपने देश-वासियों—हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, पारसियों तथा अन्य लोगों—की न्याय परायणता और सुबुद्धिके विषयमें मैं निराश नहीं हूँ और मैं समझता हूँ कि वे अवश्य ही ऐसा कुछ महत्वपूर्ण और सारगर्भित निर्णय करनेमें समर्थ होंगे जिसपर हमारे आगे आनेवाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी तथा जो किंकर्तव्य-विमूढ़ जगतीके लिए एक अनुकरणीय आदर्शका कार्य करेगा। यह केवल तभी सम्भव है जब सत्यरूपी प्रकाश और अहिंसारूपी पाथेय लेकर हम अपने मार्गपर अग्रसर हों।

हमने अपनी इसी पीढ़ीमें अपनी आँखों दो सर्वनाशी महासमर देखे हैं। प्रथम महासमरके उपरान्त राष्ट्रीय राज्योंकी स्थापनाद्वारा राष्ट्रीय जातियोंकी

समस्या हल करनेका जो प्रयोग किया गया वह असफल रहा और उसीके फल-स्वरूप उससे भी बढ़कर व्यापक और सर्वनाशी द्वितीय महासमर हुआ। कुछ लोग कह सकते हैं कि यूरोपपर ऐसे दो सर्वनाशोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और वह अब भी, अवसर पाते ही युद्धके लिए सन्नद्ध रहनेवाली राष्ट्रीय जातियों-पर अपना नियन्त्रण रखकर, विश्वमें शान्ति बनाये रखनेपर जोर देगा। क्या यह सम्भव नहीं है कि हम अपने देशमें ऐसा राज स्थापित कर सकें, जो असंख्य मतभेदों और, अनेक कटु स्मृतियों, के रहते देशकी सारी जनताकी केवल रक्षा ही न करे अपितु उसकी उच्च आकांक्षाओंकी भी पूर्ति करे? इसका अर्थ आत्म-निर्णयसे इनकार करना नहीं, अपितु उसकी पूर्ति करना है। अवश्यकता केवल इस बातकी है कि सभी ऐसा निश्चय कर लें तथा सद्भाव, प्रेम और ईमानदारीसे इसे व्यवहृत करें।

— समाप्त —

	संख्या	फी सदी
क	९०८५७९०१	१००.००
ख	७८१९८३०८	८६.०७
ग	१२६५९५९३	१३.९३
घ	६४११९५५५	७०.५७
ङ	५५२२७१८०	६०.७८
च	८८९२३७३	९.७९
छ	८७२८२३३	९.६१
ज	२८३४११९	३.१२
झ	१५२६३५०	१.६८
ञ	९९००५३	१.०९

सम्पूर्ण भारत (ब्रिटिश तथा देशी राज्य)
जन - संख्या
जातियों के अनुसार
क ३८९९९९६२३ १००·००
ख २९४६०८४२७ ७६·१९
ग ९२०५८०९६ २३·८१
घ २५४९३०५०६ ६५·६३
च २०६११७३२६ ५३·३१
छ ४८८१३१८० १२·६२
ज २५४४१४८९ ६·५८
ट ६३१६५४९ १·६३
ठ ५६९१४४७ १·४३
ड २२२८५३६ ०·५७
१००
९०
८०
७०
६०
५०
४०
३०
२०
१०
०
क कुल जोड़
ख गैर मुस्लिम
ग मुस्लिम
घ हिन्दू
च सवर्ण हिन्दू
छ दलित जातियां
ज आदि जातियां
ट ईसाई
ठ सिख
ड अन्य
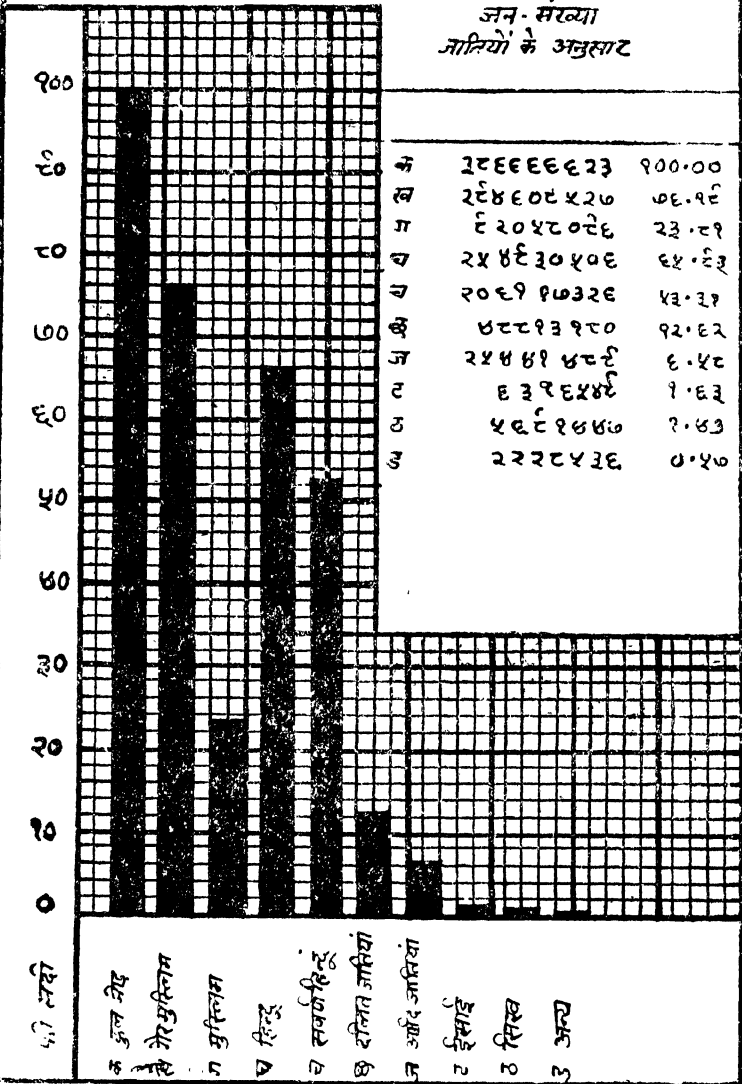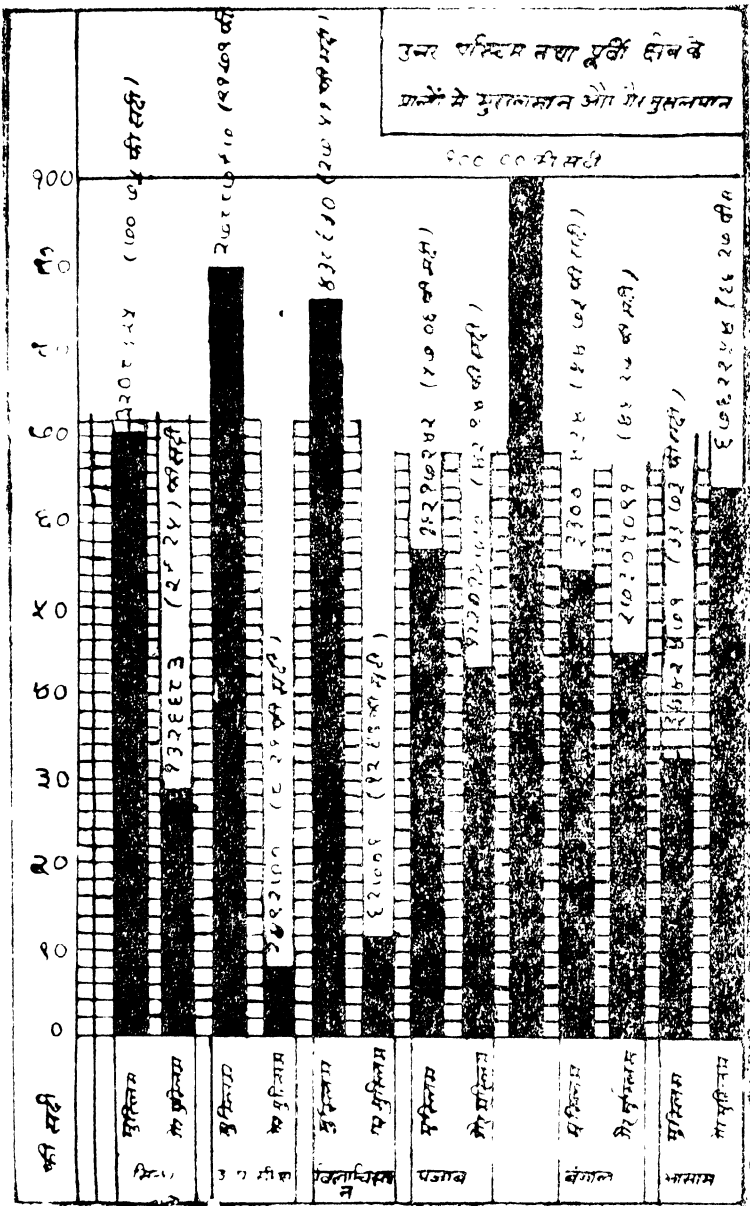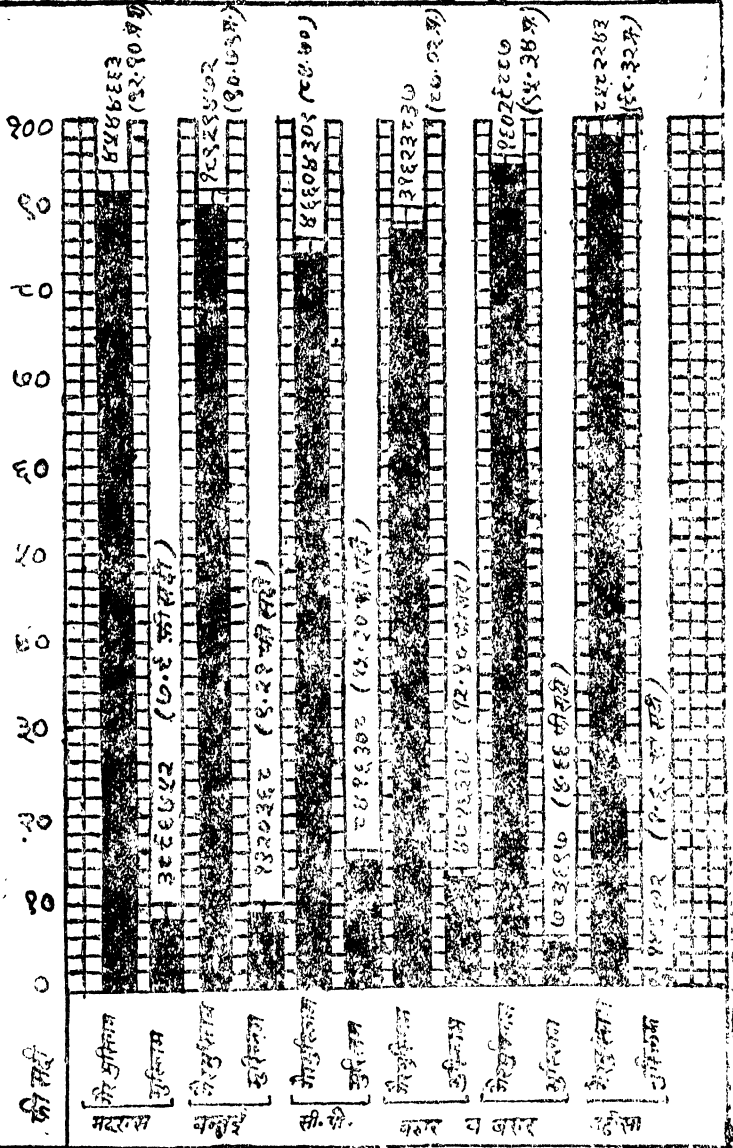
पाकिस्तान उत्तर पश्चिमी प्रदेश
जन संख्या
संख्या
१००.००
१००
९०
८०
७०
६०
५०
४०
३०
२०
१०
०
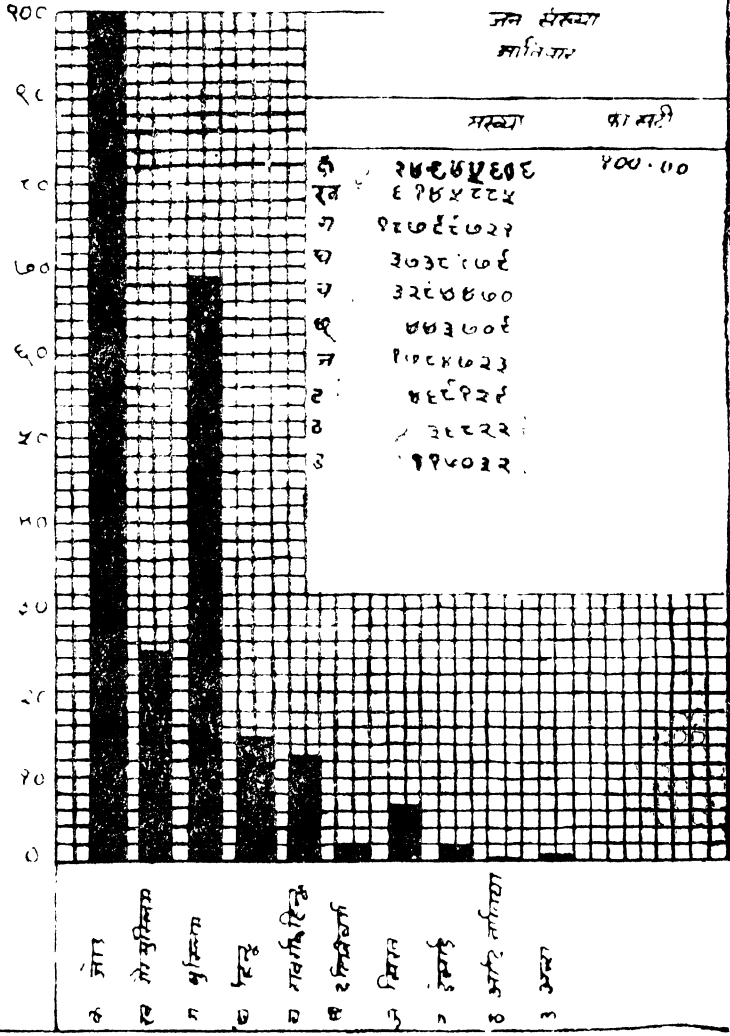
पाकिस्तान — उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र
प्रान्तों के आधार पर
सिन्ध, सीमा प्रान्त, बिलूचिस्तान और पंजाब

जातिवार जन-संख्या

	संख्या	फी सदी
क	३६४८३५२५	१००.००
ख	१३८४०२३१	३७.९३
ग	२२६४३२९४	६२.०६
घ	९००५२४२	२४.६८
च	७५५९८७१	२०.७२
छ	१४४५३७१	३.९६
ज	३८५८२९९	१०.५७
ट	५४२०४१	१.४८
ठ	३६८२२	०.१०
ड	३९७८५७	१.०९

१०० ९० ८० ७० ६० ५० ४० ३० २० १० ०

क जोड़, ख गैरमुस्लिम, ग मुस्लिम, घ हिन्दू, च सवर्ण हिन्दू, छ दलितवर्ग, ज सिख, ट ईसाई, ठ आदिजातियां, ड अन्य
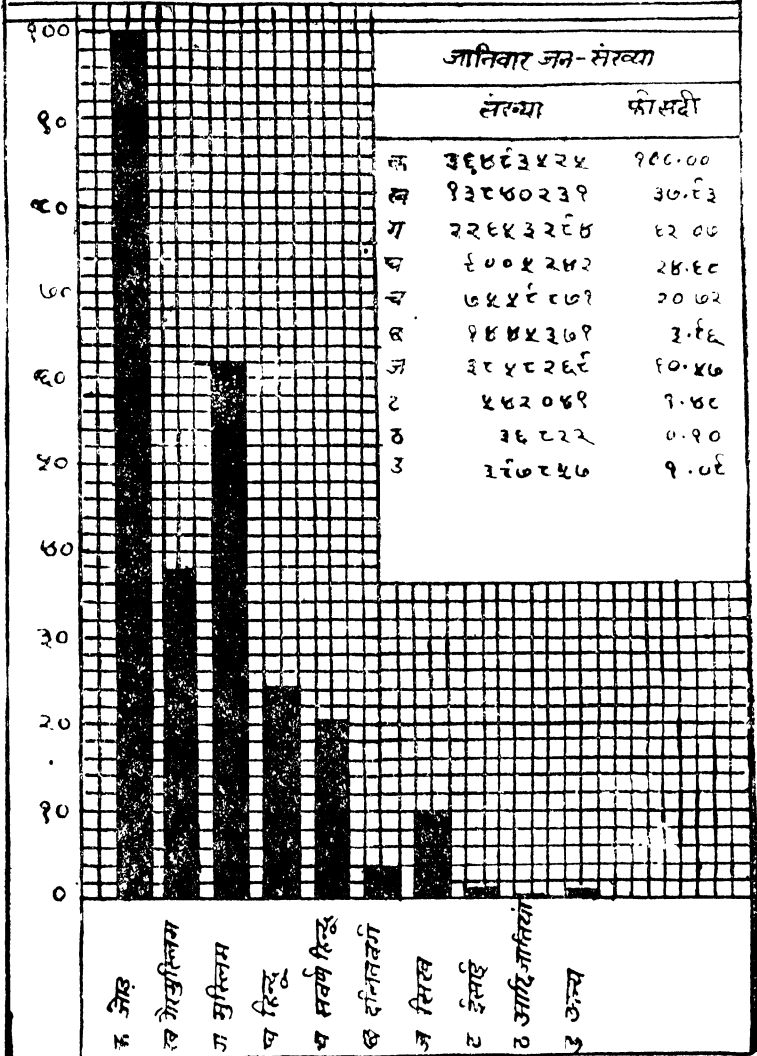
पाकिस्तान – पूर्वी क्षेत्र

जिलों के आधार पर

बंगाल – बर्दवान कमिश्नरी तथा चौबीस परगना, कलकत्ता, खुलना, जलपाइगुड़ी, दरजीलिंग जिलों को छोड़कर।

आसाम – केवल सिलहट जिला

जातिवार जनसंख्या

	संख्या	फी सदी
क	४४०८१३८१	१००.००
ख	१३४७८८०२	३०.५८
ग	३०६०२५०१	६९.४२
घ	१२५३४००१	२८.४३
च	८२४११६८	१८.७१
छ	४२८४८४१	९.७२
ज	५७७८७	०.१३
ट	७७६५२२	१.७६
ठ	११०४८८	०.२५

१००
९०
८०
७०
६०
५०
४०
३०
२०
१०
०

जोड़
गैर मुस्लिम
मुस्लिम
हिन्दू
सवर्ण हिन्दू
दलितवर्ग
ईसाई
आदिजाति
अन्य

पाकिस्तान — पूर्वी क्षेत्र
प्रान्तोंके आधार पर
(बंगाल और आसाम)

जातिवार जन संख्या

	संख्या	फी सदी
क	७०५११२५८	१००·००
ख	३४०६३३४५	४८·३१
ग	३६४४७९१३	५१·६९
घ	२९२७२२४७	४१·५१
च	२१२१६९८६	३०·०९
छ	८०५५२६१	११·४२
ज	२०७३१९	०·२९
ट	४३७४३८५	६·२०
ठ	२०९३९७	०·३०

उद्योग धन्धे

मजदूरों की दैनिक औसत संख्या के अनुसार

		ब्रिटिश भारत संख्या	ब्रिटिश भारत फ़ी सदी	हिन्दू क्षेत्र संख्या	हिन्दू क्षेत्र फ़ी सदी	मुस्लिम क्षेत्र संख्या	मुस्लिम क्षेत्र फ़ी सदी
सरकारी तथा स्थानीय पूंजी के कारखाने	स्थायी	१३७०६६	७.८८	१०३९२३	५.९०	२७५६३	१.६०
	मौसिमी	१३६०	०.०१	१०२३	०.०६	३४५	०.०२
अन्य कारखाने	स्थायी	१३२९२४८	७५.११	१२५१३५८	७१.११	६९९९०	३.९९
	मौसिमी	२९९४४३	१६.४०	२५८७५६	१४.७८	३०६४७	१.७५

	ब्रिटिश भारत		हिन्दू क्षेत्र		मुस्लिम क्षेत्र	
	रुपया	फी सदी	रुपया	फी सदी	रुपया	फी सदी
कोयला	९७६३००१८	६१.५०	१३५१८०५०	६०.७९	११२६६८	०.५२
पेट्रोल	१६५४३१७२	१०.७६	११२६४५८७	१०.३३	४२५८३५५	३.५३
कच्चा तांबा	३२४०६४०	२.१०	३२४०६४०	२.१०	...	...
कच्चा लोहा	२६११८२९	१.७५	२६११८२९	१.७५	...	...
मैंगनीज़	३२०९३७०९	२०.८६	३२०९३७०९	२०.८६	...	...
अभ्रक	४०८१४८८	२.७०	४०८१४८८	२.७०	...	...
क्रोमाइट या मैगनेसाइट	५६०८१८	०.३७	२३४८०४	०.१६	३२६०१४	०.२१

विषयानुक्रमणिका